CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्दार्थ प्रकाश

[आधुनिक भाषा-विज्ञान की सभी मान्यताओं का तर्कपूर्ण खण्डन]

लेखक

जादव प्रसाद अग्रवाल

एवम्

प्रतिभा अग्रवाल

163 5

भारत में प्रत्येक विषय और ज्ञान पर अपनी एक अनादि कालीन मौलिक विचारधारा है जिसके अन्तर्गत ब्रह्म से लेकर जड़ पार्थिवभूत प्रत्येक पदार्थ ग्राह्य हैं। शब्द तथा भाषा सम्बन्धी जो भारतीय विचारधारा है, विश्वविद्यालयों के भारतीय भाषा-विज्ञान में उसका कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। यही कारण है कि भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में आधुनिक भाषा-विज्ञान की शिक्षा पूर्णरूप से अनर्गल और असत्य है। जिन व्यक्तियों को हमारी भाषा का स्वल्प ज्ञान भी नहीं है, वे ही व्यक्ति विश्वविद्यालयों में भाषा-विज्ञान की शिक्षा देते हैं तथा सरस्वती और संस्कृत भाषा से शून्य अज्ञानी हमारी भाषा-विकास पद्धति को समझाते हैं।

प्रकाशक

भारतीय विद्या संस्थान

लखनऊ-४.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्दार्थ प्रकाश

[आधुनिक भाषा-विज्ञान की सभी मान्यताओं का तर्कपूर्ण खण्डन]

लेखक

जादव प्रसाद अग्रवाल

एवम्

प्रतिभा अग्रवाल

भारत में प्रत्येक विषय और ज्ञान पर अपनी एक अनादि कालीन मौलिक विचारधारा है जिसके अन्तर्गत ब्रह्म से लेकर जड़ पार्थिवभूत प्रत्येक पदार्थ ग्राह्य हैं। शब्द तथा भाषा सम्बन्धी जो भारतीय विचारधारा है, विश्वविद्यालयों के भारतीय भाषा-विज्ञान में उसका कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। यही कारण है कि भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में आधुनिक भाषा-विज्ञान की शिक्षा पूर्णरूप से अनर्गल और असत्य है। जिन व्यक्तियों को हमारी भाषा का स्वल्प ज्ञान भी नहीं है, वे ही व्यक्ति विश्वविद्यालयों में भाषा-विज्ञान की शिक्षा देते हैं तथा सरस्वती और संस्कृत भाषा से शून्य अज्ञानी हमारी भाषा-विकास पद्धति को समझाते हैं।

प्रकाशक

भारतीय विद्या संस्थान

लखनऊ-४.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

376

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

State Museum Library Lucknow
7635

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय
प्रो॰ बी एन॰ पुरी संग्रह
लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्दार्थ प्रकाश

[आधुनिक भाषा-विज्ञान की सभी मान्यताओं का तर्कपूर्ण खण्डन]

State Museum Library
Lucknow

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय
प्रो० बी० एन० पुरी
संग्रह
लखनऊ

लेखक

जादव प्रसाद अग्रवाल

एवम्

प्रतिभा अग्रवाल

प्रकाशक

भारतीय विद्या संस्थान

लखनऊ—४.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कापीराइट | लेखकों के आधीन

संस्करण | प्रथम संवत् २०३१ वि०

प्रकाशक | भारतीय विद्या संस्थान (पञ्जीकृत)
३३१, अग्रवाल विद्यालय मार्ग, मोतीनगर, लखनऊ–४.
फोन : २६५६२

मुद्रक | अग्रवाल प्रेस, लखनऊ–४.

शब्दार्थ प्रकाश • जादव प्रसाद अग्रवाल एवं प्रतिभा अग्रवाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय
प्रो० बी एन० पुरी
संग्रह
लखनऊ

उन उष्ण रक्त के तरुणों को जिन्हें हिन्दी भाषा-विज्ञान
एवम् प्राचीन भारतीय इतिहास के नाम पर
विदेशी लेखकों के अनर्गल प्रलाप पढ़ाये जा
रहे हैं। राष्ट्र के यह नवयुवक सत्य
दर्शन करें। अतः साभार
एवम् शुभ कामनाओं
सहित

शब्दार्थ प्रकाश

सर्मपित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिस क्षण से जड़ रजकण, गतिमय होकर जङ्गम कहलाये ।
जल विहँसी प्रथमा ऊषा वह जबकि कमलदल मुस्काये ।
जब मिट्टी में चेतन चमका, प्राणों के झोंके आये ।
है तब से यह देश हमारा, यह मन, प्राण हमारा है ।।
भारतवर्ष हमारा है यह, हिन्दुस्तान हमारा है ।।

—नवीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह दिन बीत गये

हमारे मूल जन्म स्थान परम पावनी यमुना नदी के तटवर्ती उपनगर हैं जो उत्तर प्रदेश का पश्चिमी जनपद है। यही कुरु प्रदेश का केन्द्र है और हमारी मातृभाषा ब्रह्मर्षि देश कुरुप्रदेश की कथ्य भाषा है। आज तक इस क्षेत्र की भाषा म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों से मुक्त है और भारत की पुराप्राचीनकाल की भाषा के शब्द आज तक हमारी भाषा में प्रचलित है। व्यापार के सम्बन्ध में हमारे जीवन का एक दीर्घ काल बङ्ग देश के कलकत्ता नगर में व्यतीत हुआ है, तथा भारत के सभी प्रदेशों और प्रमुख नगरों में रहने का अवसर मिला है। कलकत्ते में अनेक बङ्गाली विद्वान हमसे जिज्ञासा किया करते थे कि हिन्दी भाषा में सञ्ज्ञावाची शब्दों के लिङ्गानुशासन का क्या विधान है। उस समय हम उनके इस प्रश्न का कोई सन्तोषप्रद उत्तर देने में असमर्थ थे। इस पर बङ्गाली महाशय कहा करते थे कि जिस भाषा में सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग के अनुसार क्रियापदों में भेद होता हो किन्तु उस भाषा में शब्दों के लिङ्गानुशासन का कोई निश्चित नियम न हो, वह भाषा अहिन्दी भाषियों को किस प्रकार पढ़ाई जा सकती है और वह राष्ट्रभाषा क्यों बनाई जाये। बात कटु होती थी परन्तु थी सत्य। कुछ वर्ष हुये हमें अपने स्वास्थ सुधार हेतु कलकत्ता छोड़कर लखनऊ आकर रहना पड़ा जहाँ हम आजकल रह रहे हैं। सन् १९६९ ई० में हमारी पुत्री ने लखनऊ विश्वविद्यालय से हिन्दी लेकर एम० ए० की उपाधि प्राप्त की तो हमें उसकी पुस्तकों से हिन्दी के प्रमुख लेखकों की रचनायें और हिन्दी भाषा-विज्ञान विषय की पुस्तकें देखने का अवसर मिला, परन्तु भाषा-विज्ञान में कोई समाधान उन विषयों का न मिला जो हमारे मस्तिष्क में पनप रहे थे। हमने अपने अध्ययन को विस्तृत किया और हिन्दी, संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश के अनेक व्याकरण ग्रन्थों का अध्ययन किया। इसके पश्चात हमने हिन्दी, संस्कृत, पालि और प्राकृत के सभी उपलब्ध शब्द कोशों को सङ्गृहीत किया। हमारे प्रदेश के ग्रामों की मातृ-भाषा में प्रचलित अधिकांश शब्द संस्कृत शब्द कोशों में तत्सम एवम् सार्थक रूप में मिले। अतः जिज्ञासा को बल मिला और हम मातृभाषा के शब्दों की संस्कृत शब्दों से तुलना में तीव्रता लाये जिसके फलस्वरूप हमने अपनी मातृभाषा के सभी शब्दों का साधु शब्द (संस्कृत शब्द कोशों में दिया हुआ शब्द) ढूँढ़ निकाला। हम यह स्पष्ट कर दें कि यदि कुरु प्रदेश के ग्रामों में प्रचलित मातृभाषा के शब्दों की हमें पूर्ण रूप से जानकारी न होती तो सम्भवतः हमारा ध्यान साधुशब्द के ज्ञान की ओर आकर्षित न होता। साधु शब्दों का ज्ञान होते ही हमें अपनी भाषा के सञ्ज्ञावाची शब्दों के लिङ्गानुशासन का बोध हो गया।

इसके पश्चात भारतीय संस्कृति, भारतीय दर्शन एवम् भाषा शास्त्र विषय पुस्तकों के प्रति रुचि अधिक हुई और इनके अध्ययन के प्रमाण स्वरूप हमने अपने कुछ सिद्धान्तों का निरूपण किया। हृदय राष्ट्र विचारों से अभिप्रेत तो था ही, ईसाई धर्म प्रचारकों के भ्रामक तथा असत्य प्रचार से मन में परिक्षुब्धता हुई और फिर इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निष्कर्ष पर पहुँचे कि हिन्दी भाषा-विज्ञान में कोई शोध नहीं है अपितु भारत का दूषित चित्र प्रस्तुतीकरण करना है। अतः सिद्धान्त पूर्ण मण्डन और तर्कपूर्ण खण्डन के साथ पुस्तक विद् पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। अनेक स्थलों पर भारतीय एवम् विदेशी भाषा वैज्ञानिकों के प्रति हमारा उग्र रूप है उसका कारण यह है कि हृदय में उमड़ते हुये विचारों को जब क्षति पहुँचती है और विदेशी विचारों पर ताल देते किसी भारतीय लेखक को पाते हैं तो हमें तीव्र व्यङ्गात्मक आलोचना का आश्रय लेना पड़ा है।

हमने अपनी भाषा का और भाषा-विज्ञान सम्बन्धी प्रभूत लेखकों के विचारों का अध्ययन, मनन, चिन्तन तथा तार्किक दृष्टि से विवेचन करने के पश्चात जिस सत्य की अनुभूति हमारे हृदय में हुई उसी सत्य को हमने सरल और सीधे ढङ्ग में इन पङ्क्तियों में आबद्ध करने का प्रयास किया है। सरल सात्विक हृदय में जो विचार निसृत हुये वे उसी रूप में प्रस्तुत हैं। किसी के प्रति किसी प्रकार की अवमानता करना हमारा उद्देश्य नहीं है। सत्य का प्रकटीकरण करते हुये कतिपय लेखकों के प्रति यदि हमने कुछ कठोर शब्दों का प्रयोग किया है तो वह हमारे विचारों की सत्य-शक्ति के कारण है। व्यक्तिगत रूप से हमारा उन लेखकों के प्रति न कोई वैमनस्य है और न कोई द्वेष भावना है। इन लेखकों में किसी से भी हमारा व्यक्तिगत परिचय नहीं है और केवल उनकी रचनाओं द्वारा हम उनके विचारों को जानते हैं। हम भाषा-विज्ञान सम्बन्धी लेखकों तथा सामान्य पाठकों को यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमारा न तो किसी विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग से सम्बन्ध है और न इनके दलगत एवम् वर्गवादी राजनीति से सम्बन्ध है। हमें अपनी इस रचना के द्वारा किसी विद्वान की प्रशस्ति अथवा विश्वविद्यालय की किसी उपाधि की कोई इच्छा नहीं है। यह पुस्तक न अर्थ प्राप्ति के लिये लिखी गई है और न किसी विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम की स्वीकृति के लिये लिखी गई है। हम तो केवल बड़ी विनम्रता के साथ भारतीय भाषाओं के विद्यार्थियों को उस सत्य का दर्शन कराना चाहते हैं जिसका हमने स्वयम् दर्शन किया है।

हमारे इस लेख में कहीं-कहीं पर विचारों की उत्तेजना और कतिपय लेखकों पर कटु आक्षेप भी हैं जिनका सहज कारण यह है कि भारत में विदेशी शासन के साथ ही विदेशी इसाई धर्म प्रचारकों ने अनर्गल सिद्धान्तों की रचना करते हुये हमारे पूर्वज वैदिक ऋषियों, दार्शनिक मुनियों, विचार चेताओं तथा महान वैयाकरणों का एक उपहास उड़ाया और उनके ज्ञान दर्शन को इतनी गर्हित दृष्टि से रूपान्तर किया कि भारतीयों के मन में अपने पूर्वजों के प्रति हीनता की भावना आ जावे। इन्हीं उन्मादी इसाई धर्म प्रचारकों के कलुषित भावों को भारतीय लेखकों ने उसी रूप में स्वीकार किया और उनसे भी बढ़कर सहस्त्रगुणा होकर उनका प्रचार किया और कर रहे हैं। जब कोई भारतीय ही हमारी राष्ट्र चेतना पर चोट करता है तो हमारे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रक्त में उष्णता का सञ्चार होना स्वाभाविक ही है। भारतीय भाषा-विज्ञान के लेखकों को हम स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि उन्होंने भारत की संस्कृति, सभ्यता और राष्ट्रीयता पर, उसके गौरव और गरिमा पर तीव्र प्रहार किया है अर्थात् यह वह कुपुत्र हैं जो स्वयम् अपनी जननी को निःवस्त्र करते हैं। अतः हमने अपनी इन पङ्क्तियों द्वारा भारतीय ज्ञान राशि के जो उज्ज्वल और चमकते हुये स्वर्ण किरण हैं उन्हें बचाने का प्रयास किया है तथा जो सत्य है उसे प्रकट किया है। अतः यह पङ्क्तियाँ देश की राष्ट्रीय ज्ञानराशि और गौरव गाथा को प्रकट करती हैं।

भारत की पवित्र भूमि पर भारत के प्राचीन गौरव उसकी भाषा और संस्कृति को अस्वीकार करने की विदेशी षड्यन्त्रकारों और इसाई धर्म प्रचारकों की एक स्वःरचित क्रमबद्ध योजना थी। भारतीय ऋषियों का रक्त जिनमें प्रवाहित हो रहा हो, वह मातृभूमि के सुपुत्र उस अनर्गलता को कैसे सहन कर सकते हैं। अतः उन विदेशियों और इसाई धर्म प्रचारकों को ऐसे वर पुत्रों द्वारा एक चेतावनी दी गई। इस विदेशी षड्यन्त्र को निष्फल और विध्वंस करने वाली भारत पुत्रों की जो परम्परा विकसित हुई उसमें दयानन्द, विवेकानन्द, तिलक, लाजपत और गोलवलकर जैसे विद् पुरुषोंका योगदान है। प्रस्तुत रचना भी भारतीय गौरवमयी संस्कृति प्रतिष्ठा का लघु योगदान है जिसका विषय भारतीय भाषा एवम् उसके स्वरूप से सम्बन्धित है। हमारा उद्देश्य नवयुवकों में स्वदेश का गौरव, भारतीय भाषा और संस्कृति की उपासना को जन्म देना है और उनके श्वास प्रश्वासों में उस राष्ट्रप्रियता का उदय हो जो विदेशियों द्वारा विषाक्त कृष्ण धूम मण्डल को तिरोहित कर सके। अब वह दिन बीत गये जब देवात्मा हिमालय के इस विस्तृत प्राङ्गण में गङ्गा-यमुना से सिक्त भूकणों पर कोई विदेशी बैठ कर हमारी मातृ-भूमि के गौरव को निःवस्त्र करे और हम उसकी वाणी में उसके स्वरों का सहयोग दें जैसा भारतीय विश्वविद्यालयों के कतिपय बुद्धिजीवी भाषा-वैज्ञानिक और इतिहास लेखक करते आ रहे हैं। आज यह भयङ्कर देशद्रोहिता और मातृ-गौरव घातक पाप होगा जो भारत को निकृष्ट कहे तथा भारतीय उसका अनुमोदन और प्रचार करें। भारतीय विश्वविद्यालयों के भाषा-विज्ञान एवम् भारतीय इतिहास के अध्यापक इसे गम्भीरता से पढ़ें और समझने का प्रयत्न करें।

हिन्दी के दुशासनों से—

इस पुस्तक का तीसरा भाग, 'शब्द खण्ड' है। जिसमें हमारी भाषा में प्रचलित सहस्त्रों सञ्ज्ञा, क्रियार्थक सञ्ज्ञा तथा विशेषण शब्दों को सङ्ग्रह किया गया है। इनमें अनेक शब्द वह हैं जिनको भाषा-विज्ञान के लेखक 'देशज' की सञ्ज्ञा देते हैं तथा हिन्दी शब्द कोशों के सम्पादक जिनकी व्युत्पत्ति नहीं बता सकते हैं। हमने उन सभी शब्दों की व्युत्पत्ति तथा साधुशब्द का ज्ञान कराया है और प्रकृति-प्रत्यय लिङ्गानुशासन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नियम के आधार पर उन शब्दों का शुद्धलिङ्ग निर्धारित करके अपने सिद्धान्त को पूर्णतया प्रमाणित किया है। हमारी भाषा के किसी भी गद्य या पद्य का शुद्ध अर्थ उस समय तक समझ में नहीं आ सकता है जबतक कि उसमें प्रयुक्त शब्दों के साधु शब्दों का ज्ञान करके संस्कृत शब्द कोशों से उनके अर्थ का ज्ञान न कर लिया जावे। हम एक 'गद्य' और 'पद्य' का उदाहरण देकर अपने कथन को स्पष्ट करते हैं। कुरु-प्रदेश का एक ग्रामवासी दूसरे से कह रहा है--"भाई आसार तो अच्छे हैं देखो समा कैसी रहे। संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में शब्द 'आसार' को (अरबी) लिखा है और उसका अर्थ लिखा है--"चिह्न, लक्षण"। शब्द 'समा, के आगे लिखा है—सञ्ज्ञा पु० देखो "समाँ"। शब्द 'समाँ' को संस्कृत शब्द (समय) बताकर उसका अर्थ "समय, वक्त" लिखा है। अतः संक्षिप्त शब्द सागर के आधार पर हिन्दी के अध्यापकों ने हमें उपर्युक्त वाक्य का अर्थ इस प्रकार बताया है--"भाईं, चिह्न या लक्षण तो अच्छे हैं देखा समय कैसा रहता है।" परन्तु हमारी भाषा के अनुसार यह अर्थ पूर्णतया अशुद्ध है। 'आसार' सरस्वती भाषा का तत्सम शब्द है जिसका अर्थ है—निरन्तर वर्षा, मूसलाधार वृष्टि; आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृ० ३७२। शब्द 'समा' स्त्री-लिङ्ग है और यह भी सरस्वती भाषा का तत्सम शब्द है जिसका अर्थ है--"वर्ष, संवत्सर"; आप्टे पृ० १६३२। इसी अर्थ में यह शब्द रघुवंश ८/९२, १२/६ और १९/४ में प्रयोग हुआ है। अतः उपर्युक्त वाक्य का अर्थ है—"भाई वर्षा तो अच्छी हो रही है देखो संवत कैसा रहता है।"

हमारी भाषा के एक लोकगीत के बोल हैं--"मैं तो वारी रे नन्दलाल तुम्हारी चितवान में।" संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में शब्द वारियां को (हिन्दी वारी) बताकर उसका अर्थ लिखा है--"निछावर, बलि।" विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अनेक अध्यापकों ने, जो हिन्दी शब्द सागर को प्रामाणित मानते हैं, उपर्युक्त गीत का अर्थ यह बताया—"अरे नन्दलाल मैं तुम्हारी वक्र दृष्टि (देखने के ढङ्ग) पर निछावर (बलिहारी) हूँ।" प्रतीत होता है उन अध्यापकों पर म्लेच्छ भाषा का पूर्ण प्रभाव है। यह वही विचार हैं जो म्लेच्छ भाषा के इन शब्दों से प्रकट होते हैं—तिरछी निगाह पर बाङ्की अदा पर कुरबान जाऊँ। इस प्रकार के अशिष्ट और अश्लील विचारो का हमारे लोकगीतों में कोई स्थान नहीं है। सरस्वती भाषा में शब्द 'वारी' का अर्थ है—'बन्दनी', आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृ० १४१६। शब्द 'चितवन' सञ्ज्ञा स्त्री० की व्युत्पत्ति है—(चित्—वनि) सं० स्त्री०। चित् का अर्थ है देखना, आप्टे पृ० ७०७; 'वनि' का अर्थ है—"इच्छा, कामना, अभिलाषा", आप्टे पृ० १३३७। इस प्रकार 'चितवन' का अर्थ है--"देखने की अभिलाषा।" अतः हमारी भाषा में उपर्युक्त गीत का अर्थ है—"अरे नन्दलाल (कृष्ण) मैं तुम्हारे देखने की अभिलाषा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में बन्दनी सी हो गई हूँ।" इस गीत का अन्तिम शब्द 'में' इस अर्थ को पूर्णतया प्रमाणित करता है। यदि इस गीत का पहला अर्थ होता तो गीत में शब्द 'में' के स्थान पर शब्द 'पर' प्रयोग होता।

आज हिन्दी भाषा की दुर्दशा का मुख्य कारण हिन्दी भाषा के शब्द कोश हैं। जब तक हिन्दी भाषा के शब्द कोशों से म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का वहिष्कार और परित्याग नहीं कर दिया जायगा, हिन्दी भाषा की कभी उन्नति नहीं होगी और न वह समस्त भारत में व्याप्त होकर राष्ट्र भाषा का वास्तविक रूप गृहण कर सकेगी। केवल वृहत हिन्दी कोश में हिन्दी शब्दों के अर्थ संस्कृत शब्द कोशों के आधार पर लिखे गये हैं, किन्तु उसमें भी म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों और उनके अर्थों को हिन्दी शब्दों और उनके अर्थों के साथ गुम्फित कर दिया गया है, जिस के फल स्वरूप उस शब्द कोश का महत्त्व भी पूर्णतया नष्ट हो गया है। अब वह दिन बीत गये जब म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों को हिन्दी भाषा का अङ्ग बता कर उन्हें हिन्दी शब्द कोशों में स्थान दिया जाता था। वह दिन भी बीत गये जब संस्कृत, पालि, प्राकृत को मध्यदेश की विभिन्न युगों की भाषा बता कर हिन्दी को पूर्व-वर्ति प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का विकसित आधुनिक रूप बताया जाता था। हमारी भाषा अनादि निधना, अजरा अमरा, देववाणी सरस्वती भाषा का ही आधुनिक रूप है जो भारत की समस्त भाषाओं की जननी है।

खेद है कि मुद्रणालय के पामर कार्य के कारण हम इस पुस्तक का तीसरा भाग—शब्द खण्ड, प्रकाशित नहीं कर रहे हैं। मुद्रणालय ने जो कार्य इस पुस्तक के मुद्रण में किया है वह पाठकों के सामने है, इस पर कुछ टिप्पणी करना व्यर्थ है। अब यह भाग हमारी दूसरी पुस्तक—"हिन्दी भाषा का लिङ्गानुशासन" के साथ शीघ्र ही प्रकाशित किया जावेगा। इस पुस्तक के लेखन में हमें श्री रमेश चन्द्र अवस्थी, अध्यक्ष—हिन्दी-संस्कृत विभाग, डी०ए०वी कालेज लखनऊ से समय-समय पर विमर्श मिलता रहा है। उन्होंने ही हमें संस्कृत व्याकरण का बहुत कुछ अध्ययन कराया। इस सब के लिये लेखक उनके अत्यधिक अभारी हैं।

ट्रांसपोर्ट फाइनेन्स कारपोरेशन,
३३१, मोतीनगर, लखनऊ—४।
श्रावण पूर्णिमा
रक्षाबन्धन
संवत् २०३१ विक्रमी।

जादव प्रसाद अग्रवाल
प्रतिभा अग्रवाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

सिद्धान्त खण्ड

१. सतत्-सनातन १-६

२. वाङ्मयी सरस्वती ७-११

ब्रह्मावर्त देश—७; मध्य देश—८; सरस्वती नदी या भाषा—९; सरस्वती और त्रिवेणी सङ्गम—१०।

३. सरस्वती भाषा का व्याकरण १२-२५

शब्दों का वर्गीकरण—१२; संज्ञा—१३; विशेषण—१४; अव्यय—१४; लिङ्ग निर्णय—१४; प्रकृति—१५; प्रत्यय—१६; सरस्वती भाषा के शब्दकोश—१७; एक शब्द से अनेक शब्द—१९; कर्मवाचक संज्ञा शब्दों के लिङ्ग—२१; शब्दों की तीन श्रेणियां—२३।

४. साधु शब्द परिज्ञानम् २६-३८

अर्थ—२६; व्याकरण—२९; साधु शब्द के परिज्ञान के मूल आधार—३०; अर्थ परिवर्तन वा भ्रामक व्युत्पत्ति—३१; यौगिक शब्द—३३।

५. विशेषण संज्ञा ३९-४५

मधुर-माहुर—३९; गंवार—४०; बुद्धु—४१।

६. अनेकार्थक शब्द के अनेक रूप ४६-५३

७. हिन्द-हिन्दी ५४-५८

सिन्धु—५४; सप्त सिन्धु—५७।

८. शब्द समूह ५९-८२

आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार शब्दों का वर्गीकरण और परिभाषा—५९; खरी बोली का शब्द समूह—६२; शब्दानुशासन—६३; संस्कृत शब्दानुशासन—६४; सरस्वती शब्दानुशासन—६५; लिङ्गानुशासन—६६; सरस्वती भाषा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के शब्द—६७; शब्दों का वर्गीकरण—७०; रूढ़ शब्द—७१; यौगिक शब्द—७१; शब्द में शब्द जोड़कर—७६; देश्य शब्द—८० ।

९. भारतीय भाषायें ८३-१०४

सरस्वती संस्कृत—८३; ग्रियर्सन का प्रथम प्राकृत—८५; पालि—८८; प्राकृत—९०; अपभ्रंस—९३; भारत की प्रादेशिक भाषायें—९७; समस्त भारत की एक साहित्य भाषा—९९; हिन्दी खरी बोली क्षेत्र—१०१ ।

१०. उच्चारण विपर्यय १०५-१२५

विसर्ग का उच्चारण आ—१०६; अन्त्य न् का लोप—१०९; अन्त्य व्यञ्जनों का लोप—११०; अन्त्य म् का लोप—१११; अन्त्य स्वर 'आ' का निपात—१११; अन्त्य स्वर इ या ई का निपात—११२; आदि स्वर 'अ' 'आ' का निपात—११२; अन्त्य 'ऋ' का उच्चारण 'आ'—११२; महाप्राण का उच्चारण 'ह'—११३; 'ह' का उच्चारण महाप्राण—११४; अ + व का उच्चारण 'ओ'—११४; 'क' का उच्चारण 'ग'—११४; 'ख' का उच्चारण 'ग'—११५; 'य' का उच्चारण 'ज'—११५; 'ज' का उच्चारण 'य'—११५; 'व' का उच्चारण 'ब'—११५; 'ट' का उच्चारण 'ड़'—११६; 'र' का उच्चारण 'ड़'—११७; 'र' का उच्चारण 'ल'—११७; 'ल' का उच्चारण 'र'—११७; 'ष' का उच्चारण 'ख' या 'क'—११७; 'क्ष' का उच्चारण 'श'—११८; 'श' और 'ष' का उच्चारण 'छ'—११८; 'क्ष' का उच्चारण 'छ'–११८; 'क्ष' का उच्चारण 'ख'–११८; 'श्र या शृ' का उच्चारण 'स' या 'स्र'–११९; 'त थ, द, ध' का क्रमशः उच्चारण 'ट, ठ, ड, ढ'—११९; 'ट, ठ, ड, ढ' का उच्चारण 'त, थ, द, ध'—१२०; 'त्स' का उच्चारण 'च्च' या 'ज'—१२०; 'त्य' का उच्चारण 'च', 'द्य' का उच्चारण 'ज' और 'ध्य' का उच्चारण 'झ'—१२०; 'म' का उच्चारण 'भ'—१२१; 'च' का उच्चारण 'क'—१२१; संयुक्त व्यञ्जन—१२१ ।

११. वाक्य विचार १२६-१४८

भाषा के मूल तत्त्व—१२७; वाक्य रचना १३१; पदों का क्रम—१३२; विधेय—१३३; वचन—१३३; शब्द और पद—१३४; कारक और विभक्ति विधान—१३७; तिङन्त पद—क्रिया—१३७; धातु—१३८; नाम धातु—१४१; संस्कृत तथा हिन्दी वाक्य—१४५ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खण्डन काण्ड

१२. भावना ज्योति १५१-१५२

१३. विषय प्रवेश १५३-१६४

विदेशियों की कलुषित मनोवृत्ति—१५३; मैकाले—१५४; मैक्समूलर—१५७; मोनियर विलियम्स—१५९; पादरियों का कुकृत्य—१६२; ग्रियर्सन—१६४।

१४. आर्य १६५-१७२

संस्कृति या जति—१६५।

१६. भारत का भाषा सर्वेक्षण १७३-१८५

सर्वेक्षण का आधार—१७३; आर्य भाषा—१७८; आर्य भाषाओं में द्रविड़ भाषा के शब्द—१८२; आर्य भाषाओं पर मुण्डा भाषाओं का प्रभाव—१८३; उप-संहार—१८४।

१६. सञ्ज्ञा वाची शब्दों के लिङ्ग १८६-२०६

अनर्गल और दूषित विचार—१८६; कामता प्रसाद गुरु—१९१; हिन्दी शब्दानुशासन—१९५; शब्द कोश और लिङ्ग निर्णय—२००; भाषा विज्ञान के गर्हित विचार—२०५।

१७. हिन्दी भाषा के शब्द कोश २०७-२२१

१८. केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय २२२-२२५

आधुनिक हिन्दी भाषा का मूल व्याकरण—२२२।

१९. भाषा-शास्त्र (विज्ञान) २२६-२६४

शब्द अर्थ विचार—२२६; योरोप की भाषायें—२२९; भाषा-विज्ञान—२२९; ब्रील का सिद्धान्त—२३१; विद्यार्थी का धर्म—२३३; प्रामाणि शब्द कोश—२३३; भाषा वैज्ञानिक समज—२३५; गंवार—२४२; दुर्लभ–दूलाह—२४३; असुर–सुर—२४३; साहसिक—२४४; वाटी–बाड़ी–बाड़ो—२४५; दरिया-समुद्र—२४५; ग्लास-गिलास—२४६; दुहितृ–दुहने वाली—२४६; नङ्गा और लुच्चा—२४६; खाद्य–खाद—२४७; महाजन—२४७; भद्र–भद्दा—२४८; उत्ताप–उत्ता-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वला—२४८; महाराज—२४८; लिङ्ग—२४९; पाषण्ड—२४९; डण्डा—२४९; मङ्गला मुखी—वेश्या—२५०; जिन—दैत्य—२५०; धी-ज्ञी—२५०; विमान-वायुयान—२५०; मिठाई—मिट्ठा—२५१; नेत्र-नेतृ—२५१; उष्ट्र-भैंसा—१५१; कलम—२५१; रदन—२५२; बैल—२५२; राजवैद्य-वैद्यराज—२५२; उधार—२५३; मृग—२५३; तैल—२५३; श्रद्धा-श्राद्ध—२५४; मुग्ध—२५४; सत्-असत्—२५५; कुशल—२५५; प्रवीण—२५५; निपुण—२५५; भाई-२५६; कपड़ा—२५६; स्याही—२५६; भार्या—२५७; साहु और सेठ—२५७; मधुर-माहुर—२५७; महत्तर और मेहतर—२५८; गुरु—२५८; डाण्ड—२५९; पुरोहित—२५९; यजमान—२५९; ठाकुर-प्रजा—२६०; स्वयंवर—२६०; गवेषणा—२६१; जुगुप्सा—२६१; चूड़ी फूटना—२६२; स्वर्ग वास होना—२६३; दूकान बढ़ाना—२६३; जड़—२६३।

२०. अलङ्कार, मुहावरा और अर्थ परिवर्तन २६५—२८०

अलङ्कार—२६५; मुहावरा—२६६; सरस्वती माषा के अनेकार्थी शब्द—२६६; सरस्वती के विभिन्न शब्दों का हिन्दी एकात्मक शब्द—२६८; अलङ्कार प्रयोग और अर्थ परिवर्तन के उदाहरण—२६९; बैल—२७०; गधा—२७१; काला नाग—२७२; सरस कहानी—२७२; नीरस काव्य—२७२; मधुर सङ्गीत—२७२; निर्जीव भाषा—२७३; मोम या पत्थर का दिल—२७३; टेढ़ा मनुष्य—२७३; मीठी या कड़ुई बात—२७४; नमकीन स्त्री—२७४; गहरी बात—२७५; रूखी हंसी—२७५; आलू या गन्ने की आंख—२७६; सारङ्गी के कान—२७६; अरे के दांत—२७६; घड़े का मुंह— २७६; बर्तन का पेट—२७६; छन्द का चरण या पद—२७६; अन्धा कुआं—२७७; पहाड़ की चोटी—२७७; लगती बात—२७७; चुभती बात—२७७; नाम करण—२७७; अपशब्द और उर्दू—२७०।

२१. भारतीय विश्वविद्यालयों में भाषा-विज्ञान का इतिहास २८१—२८८

स्वतन्त्र विचार धारा का लोप—१८१; भाषा की एकता का नष्ट—२८२; योरोपीय भाषा वैज्ञानिकों का षड्यन्त्र—२८२; वीर क्रान्तकारी बङ्गाली नवयुवक—२८५; भारत का भाषा सर्वेक्षण के विचार—२८५; अङ्गरेजों के मानस पुत्र—२८५; अङ्गरेजी की जारज पुत्र—२८८।

२२. आगरा विश्वविद्यालय २८९—२९५

सौगन्ध—२९०; पिण्ड—२९२; ज्येष्ठ—२९३; समाचार—२९४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२३. हिन्दी भाषा के इतिहास का प्रमाद — २९६—३०८

भाषा सर्वेक्षण के उपासक—२९८; हिन्दी भाषा का इतिहास ?—२९९; हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास ?—३००; द्रविड़ भाषाओं के शब्द—३०३; कोल भाषाओं के शब्द—३०६ ।

२४. हमारी उत्पत्ति एवं आदि देश — ३०९—३४२

गर्हित कल्पना—३०९; शब्द साम्य एक भ्रम—३११; विचित्र अनुशीलन-आर्य जाति—३१२; उपहासजन्य तर्क—३१५; शब्द अनुरूपता (आकस्मिक)—३१६; (सृष्टि) समाज का प्रादुर्भाव एवं विकास—३१७; नृवंश विभिन्नता—३१९; सम-विषम जाति-भेद—३२०; भारोपीय भाषा परिवार—असत्य तथा काल्पनिक विचार—३२१; ध्वनि साम्यता—३२२; वाक्य-रचान—३२३; देशान्तर गमन मार्ग?—३२७; अवगणस्थान—३३१; दरदस्थान—३३१; पारस देश ईरान या ईरिण—३३२; फारसी शब्द—३३७ ।

२५. देव (नागरी) लिपि — ३४३—३६९

वेद और लिपि—३४३; छन्द—३४७; ब्राह्मण-ग्रन्थ और लिपि—३४९; आरण्यक, उपनिषद् और लिपि—३५१; वेदाङ्ग—३५३; संस्कृत वाङ्मय की विपुलता—३५५; रामायण और महाभारत—३५६; व्याकरण शास्त्र और लिपि—३५७; देव (नागरी) लिपि—३५८; ब्राह्मी लिपि (१)—३५९; देव नागरी लिपि के प्रमाण—३६१; शिला लेखों की लिपि—३६२; खरोष्ट्री लिपि—३६३; देवनागरी वर्णमाला—३६७; स्वर व्यञ्जन—३६८; अल्पप्राण और महा प्राण—३६८; संक्षेपण—३६९ ।

२६. उपसंहार — ३७०—३७६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे

शब्द, शब्दों के अर्थ और उनके परस्पर सम्बन्ध सिद्ध (नित्य) हैं।

सिद्धान्त खण्ड

सत्य दर्शन हेतु युवा वर्ग का नयनोन्मलीन हमारा उद्देश्य है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: १ :

सतत्-सनातन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म सब प्रकार से सदा-सर्वदा परिपूर्ण है। यह दृश्यमान जगत उस पूर्ण परब्रह्म से उत्पन्न हुआ है। परब्रह्म की पूर्णता से यह जगत भी पूर्ण ही है क्योंकि पूर्ण ब्रह्म में से पूर्ण को निकाल लेने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

मनुष्य में बुद्धि की विशेषता है। बुद्धि की सहायता से वह युक्तिपूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। युक्तिपूर्वक तत्त्व ज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न को ही भारत में 'दर्शन' कहते हैं। भारतीय दर्शनों में देश काल का विचार विस्तार से हुआ है। भारतीय दर्शनों में यह एक सादृश्य है कि वे देश तथा काल को अनादि एवम् असीम मानते है। मीमांसा दर्शन भौतिक जगत् को नित्य मानता है। प्रत्यक्ष ज्ञान की यथार्थता के आधार पर मीमांसा जगत और उसके समस्त विषयों को सत्य मानती है। मीमांसा के अनुसार यह जगत् अनादि तथा अनन्त है, यह दर्शन मूल जगत् की सृष्टि तथा प्रलय नहीं मानता है। केवल व्यक्ति उत्पन्न होते रहते हैं तथा विनाश को प्राप्त करते हैं। मीमांसा के अनुसार हमारी इन्द्रियां इस जगत के पदार्थों को जिस रूप में ग्रहण करती अथवा उपलब्ध करती हैं; उसी रूप में जगत् सत्य है।

सृष्टि का आदि-निर्णय नहीं हो सकता, ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि सृष्टि का प्रारम्भ अमुक समय में हुआ। जो भी समय इसके लिये निर्धारित किया जावेगा वही संदिग्ध होगा, क्योंकि उसके भी पूर्व समय की कल्पना की जा सकती है; और तब क्या था यह प्रश्न भी उठ सकता है, और तब कुछ नहीं रहने से शून्य से संसार की उत्पत्ति की कल्पना नहीं की जा सकती है। अतः भारतीय पण्डित सृष्टि क्रम को अनादि मानते हैं। उनके अनुसार वर्तमान सृष्टि से पहले अनेक सृष्टियाँ हुई हैं तथा अनेक प्रलय हुये हैं, किन्तु मीमांसा के अनुसार उपनिषद् आदि की सृष्टि-प्रलय प्रतिपादक वाक्य अर्थवाद मात्र हैं। वे विधियों की स्तुति मात्र करते हैं। स्वार्थ में उनका कोई तात्पर्य नहीं है। ऋग्वेद के मं० १० सूक्त १९० का तीसरा मन्त्र भी इस प्रकार है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च प्रथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।।

अर्थात् परमेश्वर ने जैसे पूर्व कल्प में सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि, अन्तरिक्ष रचे थे वैसे ही इस कल्प अर्थात् इस सृष्टि में रचे हैं और आगे भी वैसे ही रचेगा। परमेश्वर के काम बिना भूल-चूक के सदा एक से ही हुआ करते हैं।

मीमांसा का यह भी मत है कि यह जगत् जैसा इस समय है ऐसा ही बराबर चला आ रहा है। इससे विपरीत अवस्था में कभी था इसे मानने के कोई प्रमाण नहीं हैं, इसी से मीमांसक कहते हैं— 'न कदाचिदनीदृशं जगत्'।

निखिल विश्व में सूर्य एक कण मात्र है और पृथ्वी इस कण के दस लाखवें भाग के बराबर है। विष्णु पुराण के अनुसार यह पृथ्वी एक लोक है। पृथ्वी भौतिक जगत् का एक भाग है और जगत् की भांति यह पृथ्वी भी नित्य हैं। इस पृथ्वी पर भूमि और समुद्र की सीमाऐं भी नित्य हैं। जिस प्रकार महा-सागर कभी अपनी मर्यादा सीमा को नहीं तोड़ता है उसी प्रकार भूमि भी कभी अपने स्थान को छोड़ कर कोई अन्य स्थान ग्रहण नहीं करती है। भूमि अचल है और इसी कारण इसे अचला भी कहते हैं। अतः हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि जो सीमायें पृथ्वी और समुद्र की आज हैं वही कभी पहले भी थीं और अनादि काल से इसी प्रकार चली आ रही हैं। इस पृथ्वी पर जितने महाद्वीप, द्वीप या देश हैं, प्रकृति के अनुसार उन सबकी आज भी वही सीमायें हैं जो कभी प्राचीन काल में थीं।

जब तक इसके विपरीत कोई प्रमाण न हों, हम कह सकते है कि पृथ्वी के पृथक्-पृथक् भागों में जैसे ऋतु आज होते हैं, वैसे ही ऋतु क्रमशः प्राचीन काल में भी होते थे। उत्तर और दक्षिण ध्रुव पर जिस प्रकार आज बर्फ जमी रहती है, उसी प्रकार प्राचीन काल में भी जमी रहती थी। उत्तर और दक्षिण ध्रुव पर जैसे आज छः-छः मास के दिन और रात होते हैं वैसे ही प्राचीन काल में भी क्रमशः होते थे। जिस प्रकार भूमध्य रेखा के पास स्थित सभी देश बहुत गर्म हैं और उनमें दिन और रात का समय लगभग बराबर होता है उसी प्रकार यह स्थिति प्राचीन काल में भी थी। इस पृथ्वी पर जिन-जिन स्थानों पर प्राचीन काल में पहाड़ थे, उन्हीं-उन्हीं स्थानों पर आज भी पहाड़ है। हिमालय और विन्ध्याचल आज भी उसी स्थान पर स्थिर हैं जहां वह प्राचीन काल में थे। नदियों के प्रवाहमार्ग जिस-जिस स्थान पर आज विद्यमान हैं उन्हीं-उन्हीं स्थानों पर प्राचीन काल में भी थे। जिस देश के जिस भाग की भूमि प्राचीन काल में मरुस्थल थी, उसी भाग की भूमि आज भी मरुस्थल ही है। असम देश की भूमि जैसी प्राचीन काल में असम थी आज भी वैसी ही असम् है और इसी कारण इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षेत्र का नाम असम् है। इसी प्रकार कच्छ क्षेत्र की भूमि जैसी प्राचीन काल में कच्छ अर्थात् कीचड़, दलदल या पङ्क भूमि थी, आज भी उसी प्रकार कच्छ है और इसी कारण इस क्षेत्र को कच्छ कहते हैं।

इन आधारों पर हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि भारत वर्ष की प्राकृतिक सीमाएं आज भी वही हैं जो प्राचीन काल में थीं। उत्तर और दक्षिण भारत की भूमि जिस प्रकार आज मिली हुई हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में भी मिली हुई थी, इनके मध्य में न आज समुद्र है और न कभी पहले था। भारत के दक्षिण में जिस स्थान पर आज सिंहल द्वीप अर्थात् लङ्का है, उसी स्थान पर पहले भी था। भारत के उत्तर में जिस प्रकार प्राचीन काल में 'चिपिट-नासिक देश अर्थात् चिपटी नाक वालों का देश था, उसी प्रकार भारत के उत्तर में आज भी चिपटी नाक वालों का देश है। भारत के पश्चिम में जिस प्रकार प्राचीन काल में पारस देश था, आज भी पारस देश उसी स्थान पर स्थित है और जिस प्रकार उस देश की भूमि प्राचीन काल में ईरिण अर्थात् मरुस्थल और बंजर थी आज भी पारस देश की भूमि मरुस्थल और बंजर अर्थात् इरिण है। पारस देश की भूमि ईरिण होने के कारण हम भारतीय पारस देश को ईरिण के नाम से सम्बोधित करते थे और आज भी करते हैं। ईराण शब्द ईरिण का ही विकृत रूप है, ईराण देश का आर्य शब्द से कभी कोई सम्बन्ध न पहले था और न आज है।

भारतवर्ष की सीमाओं का वर्णन भारत के प्राचीन धर्म ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। श्री विष्णु पुराण में भारत की सीमा का वर्णन इस प्रकार दिया है—

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं भारतं नाम भारती यत्र सन्तति ।। ३–१।।

अर्थात्, जो देश समुद्र के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित है वह भारतवर्ष कहलाता है। उसमें भरत की सन्तान बसी हुई है। भारतवर्ष का यही वर्णन अग्निपुराण के ५०-५१ में दिया गया है। मार्कण्डेय पुराण के ४९-५९ में यह बताया है कि भारतवर्ष के पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में धनुषाकार से महासागर घेरे हुए है तथा उत्तर में हिमालय पर्वत है जो धनुष की ज्या के समान फैला हुआ है। भारत का मानचित्र देखने से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष आज भी वैसा ही है जैसा कि इन ग्रन्थों में इसका वर्णन दिया हुआ है।

भारत के मुख्य पर्वतों, प्रधान नदियों तथा जनपदों के नाम भी प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। सभी ग्रन्थों में भारतवर्ष में सात कुलाचल बताए गए हैं— १. महेन्द्र (पश्चिम घाट का उत्तरी भाग) २. मलय (मालाबार पर्वत शृङ्खला,) जहाँ चन्दन के वृक्ष अधिक पाये जाते हैं, ३—सह्याद्रि (जहाँ नर्मदा का समुद्र से सङ्गम हुआ है उसके पूर्व का पहाड़), ४—शुक्तिमान (कुलानिरि, कुलाचल कुलपर्वत),

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

५—ऋक्ष (नर्मदा के पास का पहाड़), ६—विन्ध्य (मध्यदेश की दक्षिणी सीमा का पर्वत) और ७—पारियात्र (पश्चिमीं विन्ध्य पहाड़ की शृङ्खला)। यही सात पर्वत आज भी भारत में विद्यमान हैं।

भारतवर्ष की नदियों तथा जनपदों के नाम विस्तार से महाभारत के भीष्म पर्व के अध्याय ९ में और मार्कण्डेय पुराण के अध्याय ४९ में मिलते हैं। जिन-जिन पर्वतों से यह नदियां निसृत हुई हैं उन-उन के नाम भी मार्कण्डये पुराण में दिये गये हैं। उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि सिन्धु झेलुम (वितस्ता), चुनाव (चन्द्र भागा), रावी (इरावती) वियास (पिपाशा), सतलज (शुतुद्रि), घघर (सरस्वती), मार्कण्डेया (दृषद्वति), यमुना, गङ्गा, रामगङ्गा, गोमती, सरयू (घाघरा), गण्डकी, कोसी (कौशिका), चम्बल (चर्मण्वती), वेतवा (वेत्रवती), नर्मदा. तापती (तापी), महानदी, गोदावरी, कृष्णा (कृष्ण वेणा), तुङ्गभद्रा, कावेरी महानद ब्रह्मपुत्र, और शौण इत्यादि प्राचीन काल में भारत की प्रधान नदियां थी; यही नदियां आज भी भारत की प्रधान नदियां हैं। इन सभी नदियों को परम पुण्य प्रदायिनी एवम् अधिक जल से परिपूर्ण कहा गया है। इन सभी नदियों को विश्व की माता स्वरूप एवम् सम्पूर्ण पापों का हरण करने वाली बताया है। यह भी कहा गया है कि इन नदियों के अतिरिक्त और भी छोटी-छोटी सहस्रों नदियां भारत में हैं उनमें कोई वर्षा काल में बहती है तथा किसी में सदा जल रहता है। यही दशा इन सब नदियों की आज भी है।

भारतवर्ष के किसी विशेष भाग में रहने वालों तथा उनके निवास स्थान के लिए एक विशिष्ट शब्द का प्रयोग किया जाता था; इस शब्द को 'जन पद' कहते थे। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जो मनुष्य निवास करते थे वह भिन्न भिन्न जातियों के नहीं थे। प्राचीन काल में मनुष्यों में कोई जाति भेद नहीं था, सभी भारतीय थे। जो नाम विभिन्न क्षेत्रों में रहने वालों के थे, वह नाम जातियों के नहीं थे अपितु जनपदों के थे। इन जनपदों के नामों का उल्लेख महाभारत के भीष्म पर्व के नवम अध्याय और मार्कण्डेय पुराण के अध्याय ४९ में आता है। इन ग्रन्थों के अध्ययन से हमें यह ज्ञान होता है कि विभिन्न जनपदों के निवास स्थल जहां आज हैं उन जनपदों के निवास स्थल प्राचीन काल में भी उसी-उसी स्थान पर थे।

प्राचीन काल में भारत की जन स्थिति दो प्रकार की थी। एक भाग वन निवासियों का दूसरा भाग पुरवासियों का था। वन में रहने वाले प्राकृतिक, अशिक्षित और असभ्य थे जो पशु-वृत्ति वाले थे और चोरी करते थे। इन्हे अनार्य, बर्बर कहते थे। पुरवासी सभ्य थे और इनको मणिजा कहते थे और यह आर्य नाम से प्रसिद्ध थे। मणिजा या आर्य कर्म के अनुसार चार भागों में विभक्त थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शिल्पकार। ब्राह्मण यज्ञ करते थे और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्यों को यज्ञविधि का ज्ञान कराने के लिये धर्म ग्रन्थों कीरचना करते थे। यज्ञ कर्म का विध्वंस करने वाले जो बर्बर शत्रु थे उनकेमारने वाले शस्त्रधारी क्षत्रिय थे। यज्ञ सामग्री का सम्पादन करने वाले, धन-सम्पत्ति का उपार्जन करने और व्यापार करने वाले वैश्य थे; जो शिल्प-कला में प्रवीण थे वे शिल्पकार कहलाते थे। समस्त भारतवासी इस प्रकार चार वर्णों में विभाजित थे। यही वर्ण व्यवस्था भारतवर्ष में आज भी प्रचलित है।

सभी भारतवासियों के लिये यह सम्पूर्ण भारत एक माता के समान था। अथर्व वेद के द्वादश काण्ड का प्रथम :सूक्त 'भूमि सूक्त' अथवा पृथ्वी-सूक्त' कहलाता हैं, इस सूक्त में मातृमूमि की बड़ी ही मनोहर कल्पना की गई है। इस के मन्त्र १२ में कहा है—'माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः' अर्थात भूमि मेरी माता है और मैं मात्र भूमि का पुत्र हूं। इसी सूक्त के मन्त्र २० में कहा है—'सा नो भूमि विसृजतां माता पुत्राय से पयः' अर्थात, माता द्वारा पुत्र को दूध पिलाने के समान, हे भूमि, दूध के समान सार रूप जल मुझे प्रदान करो। हिन्दुओं के सभी महत्त्व के संस्कार भूमि पूजन से आरम्भ होते हैं। हमारे धर्म-ग्रन्थों में घोषणा की गई है कि भारत-वर्ष के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान में कोई कर्म पाप या पुण्य का कारण नहीं होता और इसी स्थान से स्वर्ग, मोक्ष, मध्यदशा, अन्तकालीन दशा, सबकी प्राप्ति होती है। अन्य किसी भी स्थान में मनुष्य कर्म का अनुष्ठान नहीं करता। सभी लोकों में यह भारत वर्ष ही एक मात्र कर्म भूमि है, इसकी देवता भी सदैव इच्छा किया करते हैं। वे चाहते हैं कि यदि कभी देवत्व से भ्रष्ट हों तो पृथ्वी के मध्य में स्थिति इस भारतवर्ष में ही मनुष्य योनि ग्रहण करें, क्योंकि जिस कार्य के करने में मनुष्य समर्थ है, उस कार्य को देवता या असुर कदापि नहीं कर सकते। इस पवित्र भारत भूमि के गीत देवताओं ने भी गाये हैं—

गायन्ति देवा: किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषा सुरत्वात्॥

अर्थात् देवगण इस प्रकार गीत गाते हैं कि हम देवताओं से भी वह लोग धन्य हैं जो स्वर्ग और अपवर्ग के लिये साधनभूत भारत भूमि में उत्पन्न हुये हैं।

आज भी हिन्दू प्रतिदिन स्नान करते हुए गङ्गा, यमुना से गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा तक और सिन्धु से कावेरी तक पवित्र नदियों का आह्वान करता है—

गंगे च यमुने चैव, गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन सन्निधिकुरु॥

अर्थात हे गङ्गा-यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु तथा कावेरी. तुम्हारा जल मेरे इस स्नान के जल में सम्मिलित हो।

हम भारतीयों के लिये भारत भूमि दिव्य माता के समान है। हमारे लिये इस भारत भूमि से पवित्र और कुछ नहीं हो सकता। इस भूमि की धूलि का एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक कण, जड़ और चेतन प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक काष्ठ, तृण और प्रस्तर, प्रत्येक वृक्ष एवम् नदी हमारे लिये पवित्र है। इस भूमि के जन्मजात शिशुओं के हृदय में यह प्रगाढ़ भक्ति सदैव जीवित एवं जागृत रखने के हेतु ही पूर्व काल में यहाँ इतने विधि-विधानो एवम् लोकचारों की स्थापना हुई थी। नित्य होने वाली विविध धार्मिक क्रियाओं में विशिष्ट स्थान के उल्लेख के साथ भारतवर्ष की समग्र विशालता का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है :—

जम्बू द्वीपे भरतवर्षे भरत खण्डे।

हमारे सभी महत्त्व के धार्मिक संस्कार भूमि पूजन से आरम्भ होते हैं। यह एक प्रथा है कि प्रात: काल में जैसे ही हिन्दू निद्रा को त्यागता है, सर्व प्रथम वह पृथ्वी माता से इस बात के लिये क्षमा याचना करता है कि दिन भर वह उसे अपने पैरों से स्पर्श करने के लिये विवश है।

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्य पादस्पर्शं क्षमस्व में॥

अर्थात्—देवि, समुद्र तुम्हारा परिधान है, पर्वतस्तन मण्डल हैं, जिनका वात्सल्य रस नदियो में प्रवाहित हो रहा है। हे विष्णु पत्नी, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं, मेरे पैरों के स्पर्श होने की धृष्टता क्षमा करना। इस प्रकार के धार्मिक विचार हम भारतवासियों के आज भी वैसे ही हैं जैसे प्राचीन काल में थे।

उपरोक्त आधारों पर हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि प्रकृति के अनुसार जो दशा भारतवर्ष की आज है वैसी ही प्राचीन काल में थी, तथा इसके प्राकृतिक रूप (भौगोलिक स्थिति) में कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ और भारत के प्रत्येक भाग में जो जनपद प्राचीन काल में स्थिति थे आज भी अधिकांश वही जनपद उसी क्षेत्र में स्थित हैं। विगत एक सहस्र वर्षों में जो मनुष्य बाहर से आकर भारत में निवास करने लगे हैं वह भारत के प्राचीन काल के जनपदों में से नहीं हैं। वह लोग भारतवर्ष में आज भी वैसे ही विदेशी हैं जैसे वह कभी उस समय थे जब वह अन्य देशों से भारत में आये थे। शताब्दियों तक यहां रहने पर भी आज यह लोग भारतीय नहीं हैं। भारतवासी केवल वही भारतीय हैं जो भारत की प्राचीन संस्कृति सभ्यता और भाषा को अपनी मानते हैं। जो लोग भारत की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और भाषा को नहीं अपनाते हैं उनको इस कर्म भूमि में वास करने का कोई अधिकार नहीं है, और उनको हम आज भी वैसे ही अभारतीय समझते हैं जैसे वह भारत में आने से पूर्व थे। इन विदेशी अभारतीयों की भाषा के शब्दों से हमारी भाषा का कोई सम्बन्ध नहीं है और आगे हम केवल उसी भाषा और उसके शब्दों का उल्लेख करेंगे जो इस देश की भाषा थी और है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: २ :

वाङ्मयी सरस्वती

भारत के विभिन्न क्षेत्रों अर्थात प्रदेशों के नाम का भारत के प्राचीन धर्म ग्रन्थों से पता चलता है। मनुस्मृति में भारत के जिन देशों के नाम आते हैं उनके कुछ नाम यह है—१—ब्रह्मावर्त देश, २—कुरुक्षेत्रादि ब्रह्मर्षि देश और ३—मध्यदेश। मनुस्मृति में इन देशों का वर्णन इस प्रकार दिया है—

ब्रह्मावर्त देश—

सरस्वतीदृषद्वत्योदेव नद्योर्यदन्तरम् ।तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ।। २/१७ ।।

सरस्वती तथा दृषद्वती; इन दो देव नदियों के मध्य का जो देश है, उसे देव निर्मित (देव-नदी-निर्मित) ब्रह्मावर्त कहते हैं। ऋग्वेद के १०/७५ को नदी सूक्त कहते हैं। इस सूक्त में भी सरस्वती ओर दृषद्वती नदियों का उल्लेख आता है। सरस्वती वैदिक आर्यों की पुण्यतमा तथा ख्यातमा नदी है जिसके किनारे वैदिक याग-विधान का बहुशः उल्लेख आता है। यह नदी यमुना तथा सतलज (शुतुद्री) के बीच में बहती है। आज भी यह नदी प्राचीनकाल के प्रवाह मार्ग पर हरयारणा प्रान्त में वहती है और राजस्थान के मरुस्थल में जाकर लुप्त हो जाती है। 'ताण्डच ब्राह्मण (२५/१०/१६)' में सरस्वती नदी के लुप्त होने के स्थान को 'विनशन' नाम से निर्दिष्ट किया है। दृषद्वती सरस्वती की सहायक नदी है। आज भी यह नदी हरियाणा प्रान्त के अम्बाला क्षेत्र में वहती है और इस नदी को मार्कण्डा भी कहते हैं। ऋग्वेद के ३/२३/४ में अग्नि देवता से प्रार्थना की है कि तुम दृषद्वती आपया और सरस्वती इन तीनों नदियों के निकट वास करने वालों के धरों में धन सहित प्रदीप्त होआ। दृषद्वती नदी का उत्पत्ति स्थान हिमालय के प्रत्यन्त-पर्वत पर है और प्राचीन धर्म ग्रन्थों से यह भी पता चलता है कि इस नदी में कभी पानी बहता था और कभी नहीं भी बहता था, अर्थात यह वर्षावहा नदी है। सरस्वती ओर दृषद्वती के सङ्गम के स्थल पर यज्ञों के अनुष्ठानों का वर्णन भी मिलता है।

कुरुक्षेत्रादि ब्रह्मर्षि देश—

कुरुक्षेत्रं च मत्याश्च पञ्चालाः मूरसेनकाः ।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः ।। २/१९

अर्थात् कुरुक्षेत्र, मतसय, पञ्चाल और शूरसेन देश यह ब्रह्मर्षि देश हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुरक्षेत्र—देहली के उत्तर में यमुना नदी से पूरब में गङ्गा नदी तक और यमुना नदी के पश्चिम में सरस्वती नदी के बीच का जो भाग है उस क्षेत्र का नाम कुरक्षेत्र है। इस क्षेत्र में वर्तमान उत्तर-प्रदेश के देहरादून, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ और बुलन्दशहर जिले और हरियाणा प्रान्त के अम्बाला, करनाल, रोहतक और गुड़गाँवा जिले सम्मिलित हैं, अर्थात देहली के उत्तर में गङ्गा और सरस्वती नदियों के बीच का भाग कुरुक्षेत्र देश है।

पञ्चाल—पञ्चाल देश के दो भाग थे १–उत्तर पञ्चाल तथा २–दक्षिण पञ्चाल। उत्तर पञ्चाल गङ्गा नदी के पूर्व का वह क्षेत्र है जिसमें उत्तर प्रदेश के वर्तमान ज़िले बिजनौर, मुरादाबाद और बदायूं सम्मिलित हैं। दक्षिण पञ्चाल उत्तर पञ्चाल तथा गङ्गा नदी के दक्षिण का वह क्षेत्र है जिसमें उत्तर प्रदेश के वर्तमान ऐटा, फतेहगढ़ और मैनपुरी जिले सम्मिलित हैं। कुछ विद्वान वर्तमान पंजाब को ही पञ्चाल देश बताते हैं। यह उन की भूल है, पञ्चाल देश का वर्तमान पंजाब से कोई सम्बन्ध नहीं था। महाभारत में पश्चिमी पंजाब का नाम वाह्लीक बताया है, जो आर्यों से दूर होने के कारण आर्यों के निवास योग्य भी नहीं माना गया है।

मत्स्य—मत्स्य देश का दूसरा नाम विराट देश भी है। यह क्षेत्र देहली के दक्षिण पश्चिम का भाग है इस क्षेत्र में वर्तमान, भरतपुर करौली, अलवर और धौलपुर ज़िले सम्मिलित हैं। विराट देश की राजधानी सम्भवतः वैराट ही थी जो आजकल जयपुर से ४० मील उत्तर में वैरात के नाम से विख्यात है।

शूरसेन—शूरसेन देश उस क्षेत्र का नाम था जो देहली के दक्षिण में यमुना नदी के समीप का क्षेत्र था। इसमें वर्तमान मथुरा, आगरा, इटावा आदि जिले सम्मिलित हैं।

मध्यदेश—

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥ २।२१॥

हिमालय और विन्ध्याचल के बीच, विनशन (अर्थात सरस्वती नदी के मरुस्थल में अन्तर्धान होने के स्थान) के पूर्व और प्रयाग के पश्चिम का जो क्षेत्र है वह मध्य देश है।

हमारे धर्म ग्रन्थों में कुरु तथा पञ्चाल का नाम सम्मिलित रूप से मिलता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में इस क्षेत्र की विशेष प्रशंसा की गई है। इसका कारण यह है कि यह क्षेत्र सरस्वती तथा आर्य सभ्यता का केन्द्र बिन्दु माना जाता था और इस क्षेत्र के निवासियों की याग-पद्धति सबसे श्रेष्ठ थी। इसी क्षेत्र में महत्त्वशाली ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई थी। उपनिषदों में इस क्षेत्र के ब्राह्मणों की विद्या-बुद्धि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की भूयसी प्रशंसा उपलब्ध होती है। आर्य धर्म, संस्कृति, सभ्यता और भाषा का मूल स्रोत इसी क्षेत्र से प्रवाहित होकर अन्य क्षेत्रों को धार्मिक तथा सदाचारी बनाता रहा। इसी क्षेत्र के वैदिक ब्राह्मणों ने पूर्व तथा दक्षिण के क्षेत्रों में जा जाकर वैदिक संस्कृति तथा भाषा का प्रचुर प्रचार किया। सदाचार का लक्षण मनु महाराज ने मनुस्मृति में इस प्रकार बताया है।

तस्मिन्देशे य आचार: पारंपर्यक्रमागत: ।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ।। २।१८।।

अर्थात ब्रह्मावर्त देश में ब्राह्मणादि वर्ण सङ्कर जातियों का कुलपरम्परागत जो आचार है वही सदाचार कहा जाता है। इसके आगे मनु महाराज कहते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवा: २।२०

अर्थात ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षि देश में उत्पन्न ब्राह्मणों से पृथ्वीपर सब मनुष्य अपने-अपने चरित्रों की शिक्षा ग्रहण करें।

सरस्वती नदी या भाषा ?

हम स्पष्ट दिखा चुके हैं कि ब्रह्मावर्त आर्य मूल भाषा सरस्वती और आर्य संस्कृति का गृह था। हम भारतीय सरस्वती को वाणी और ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी मानते हैं और इसका वर्णन ब्रह्मा की पत्नी के रूप में करते हैं। सरस्वती का अर्थ भाषा, गिरा, वाणी भी हैं। भारत की आदि मूल भाषा सरस्वती है और इस भाषा का मूल स्रोत ब्रह्मावर्त से प्रवाहित होकर वैदिक युग में समस्त मध्य देश में फैला हुआ था। भाषा का प्रवाह नदी के प्रवाह की भांति प्रवाह तो करता है परन्तु नदी की धारा के समान विद्यमान नहीं होता है। भाषा की धारा अदृष्ट रूप से प्रवाहित होती है। यही कारण है कि पौराणिक कथाओं में यह प्रचलित है कि वैदिक युग में मध्य देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक अदृष्ट सरस्वती की पवित्र धारा प्रवाहित होती थी, जिसके तट पर आर्यों का प्रमुख निवेश था। सरस्वी भाषा केवल मध्य देण तक ही सीमित थी। मध्य देश की पूरबी सीमा प्रयाग तक थी, इसी कारण पौराणिकों का यह कहना है कि सरस्वती अदृश्य रूप से आकर प्रयाग में गङ्गा-यमुना में मिल गई। पौराणिक गङ्गा-यमुना के सङ्गम को त्रिवेणी सङ्गम कहते हैं।

पौराणिकों के अनुसार प्रयाग में गङ्गा-यमुना के साथ किसी सरस्वती नदी का सङ्गम होता है, परन्तु इस बात की पुष्टि वेद, महाभारत या किसी अन्य प्राचीन धर्म ग्रन्थ से नहीं होती है। महाभारत भारतीयों का एक आकार ग्रन्थ है, इस में भारतीय भूगोल, इतिहास संस्कृति आदि की अतुलित सामग्री भरी हुई है। महा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत में गङ्गा-यमुना सङ्गम का उल्लेख कई स्थानों पर आता है। वन पर्व का ८४।३५ श्लोक इस प्रकार है—

गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नाति यः संगमे नरः।
दशाश्वमेधानाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत्॥ ८४।३५

अर्थात् जो मनुष्य गङ्गा-यमुना के बीच सङ्गम (प्रयाग) में स्नान करता है, उसे दस अश्वमेघ यज्ञों का फल मिलता है और वह अपने कुल का उद्धार कर देता है। वन पर्व के ८५/७५ और ८५।८५ श्लोक इस प्रकार हैं—

यमुना गङ्गया सार्धे सगता लोकपावनी।
गङ्गायमुनयोर्मध्यं पृथिव्या जघनं स्मृतम्॥ ८५।७५

अर्थात् लोकपावनी यमुना देवी जहाँ गङ्गा जी के साथ मिलती हैं, उसका मध्य भाग पृथ्वी का जघन माना जाता है :

चतुर्विद्ये च यत् पुण्यं सत्यवादिषु चैव यत्।
स्नान एव तदाप्नोति गङ्गायमुनासंगमे॥ ८५।८५

अर्थात् चारों विद्यायों के ज्ञान से जो पुण्य होता है तथा सत्य बोलने वाले व्यक्तियों को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, वह सब गङ्गा-यमुना के सङ्गम में स्नान करने मात्र से प्राप्त हो जाती हैं।

सरस्वती और त्रिवेणी सङ्गम

महाभारत में कहीं भी गङ्गा-यमुना-सरस्वती सङ्गम का उल्लेख नहीं आता है। प्रयाग में केवल गङ्गा-यमुना का सङ्गम ही बताया है। इस बात की पुष्टि इथ प्रकार भी होती है कि गङ्गा-यमुना के सङ्गम को त्रिवेणी संगम कहते हैं। वेणी का अर्थ है बालों की मोठी अर्थात् केशों की गुथी हुई चोटी। वेणी का दूसरा अर्थ जल का प्रवाह भी है। त्रिवेर्गा सङ्गम का अर्थ वह थङ्गम है जहाँ तीन वेणियां मिलती हों। जिस स्थान पर केवल दो नदियों का थङ्गम होता है उसी स्थान को हम त्रिवेणी सङ्गम कह सकते हैं। प्रयाग में प्राचीन काल की भांति आज भी केवल गङ्गा-यमुना का सङ्गम दिखाई देता है और सङ्गम पर तीन वेणिलां स्पष्ट दिखाई हैं—एक वेणी गङ्गा की धारा की दूसरी वेणी यमुना की धारा की और तीसरी वेणी गङ्गा-यमुना की सम्मिलित धारा की। यदि प्रयाग में गङ्गा-यमुना के साथ किसी सरस्वती नाम की नदी का सङ्गम होता तो फिर इस सङ्गम को त्रिवेणी न कह कर चतुर्वेणी सङ्गम कहना पड़ता।

यह बात इस प्रकार भी भली भांति समझ में आ सकती है कि जब एक सड़क में दूसरी सड़क आकर मिलती है तो इस स्थान को दोराहा (द्विपथः) नहीं कहते हैं अपितु तिराहा (त्रपथः) कहते हैं और जब एक सड़क में दो अन्य सड़कें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलती हैं तो हम उस स्थान को (चतुष्पथः) चौराहा कहते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रयाग में केवल गङ्गा-यमुना दो ही नदियों का सङ्गम होता है और अदृष्ट रूप से जिस सरस्वती का प्रयाग में गङ्गा-यमुना के साथ सङ्गम होता है उस का अर्थ नदी नहीं, अपितु सरस्वती भाषा है।

यह बात कि त्रिवेणी सङ्गम पर केवल दो ही नदियों गङ्गा और यमुना का सङ्गम होता है इस प्रकार भी सिद्ध कर सकते हैं। गङ्गा नदी को देवलोक में अलकनन्दा का नाम धारण करती है। जिस स्थान पर अलकनन्दा का दूसरी नदी के साथ सङ्गम होता है उस स्थान को प्रयाग कहते हैं, यथा अलकनन्दा और धौसी नदी के सङ्गम को विष्णु प्रयाग, अलकनन्दा और नन्दाकिनी के सङ्गम को नन्द प्रयाग, अलकनन्दा और पिण्डर के सङ्गम को देव प्रयाग तथा अलकनन्दा और भागीरथी के सङ्गम को देव-प्रयाग कहते हैं। इसी प्रकार केवल गङ्गा और यमुना के सङ्गम को प्रयाग राज कहते हैं। राज का अर्थ है 'सबसे अच्छा'। इस स्थान पर भारतवासियों की दो परम पावनी नदियों गङ्गा और यमुना का सङ्गम होता है। प्रयाग राज की भांति देव-प्रयाग को भी जहां केवल अलकनन्दा और सङ्गम होता है, त्रिवेणी सङ्गम भी कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: ३ :

सरस्वती भाषा का व्याकरण

सरस्वती जन-साधारण की कथ्य भाषा थी और संस्कृत इस भाषा का संस्कार किया हुआ, कृत्रिम रूप से बनाया हुआ या सुसज्जित किया हुआ रूप था। सरस्वती भाषा को केवल 'भाषा' भी कहते थे। भाषा का अर्थ है जिसे जन-साधारण भाषित करें या बोलें। सरस्वती, भारती या भाषा की दृष्टि से नियमबद्ध तो थी, परन्तु उसका व्याकरण संस्कृत की अपेक्षा इतना सरल था कि वह लोक-व्यवहार से ही शीघ्रता से समझ में आ जाता था। इसके सीखने के लिये आचार्य-चरण में शरण लेने की आवश्यकता नहीं थी। संस्कृत भाषा का व्याकरण सरल नहीं था और वह गुरु से शिक्षा प्राप्त किये बिना समझ में नहीं आ सकता था। सरस्वती और संस्कृत दोनों भाषाओं में व्याकरण की दृष्टि से शब्दों का वर्गीकरण एक ही प्रकार का था। दोनों भाषाओं के शब्द एक ही थे और सभी शब्दों को तीन व्याकरण-कोटियों में विभाजित किया गया था अर्थात—(१) संज्ञा, (२) विशेषण और (३) अव्यय। संस्कृत शब्द कोशों में भी शब्दों के व्याकरण के अनुसार यही तीन वर्गीकरण हैं।

संस्कृत शब्द कोशों में धातु भी दिये रहते हैं परन्तु यह धातु शब्द नहीं होते हैं। संस्कृत भाषा में व्याकरण का अर्थ है—शब्द की व्युत्पत्ति करके उसका ठीक-ठीक स्वरूप दिखाना। इस लक्ष को सामने रख कर पाणिन आदि वैयाकरणों ने शब्दों में से ही धातुओं का चयन किया था और उनमें कृत तथा तद्धित प्रत्यय जोड़कर शब्द साधन की प्रक्रिया बनाई थी। संस्कृत व्याकरण में प्रकृति उसे कहते हैं जिसमें प्रत्यय युक्त किया जाता है—प्रत्ययात् पूर्वम् कियत इति प्रकृतिः। कृत और तद्धित प्रत्यय अकेले अर्थवत नहीं होते हैं किन्तु जब प्रकृति से युक्त होते हैं तभी अर्थ वाले होते हैं। इन्द्र, पाणिनि आदि वैयाकरणों ने भाषा-शास्त्र की दृष्टि से यह कार्य किया था परन्तु लोक में इसका व्यवहार नहीं था। जन-साधारण की भाषा में न धातु थे और न कृत और तद्धित प्रत्यय। जन-साधारण की भाषा के अनुसार कोई अर्थहीन प्रत्यय नहीं हो सकता था। सरस्वती भाषा में व्याकरण के अनुसार केवल तीन ही प्रकार के शब्द थे—**संज्ञा, विशेषण** और **अव्यय**।

अब व्याकरण के अनुसार शब्दों की **उप-कोटियों** का वर्णन करते हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संज्ञा

क—संज्ञा शब्द दो प्रकार के होते हैं—(१) प्राणिवाचक और (२) अप्राणिवाचक।

ख—प्राणि वाचक संज्ञाओं के दो भेद होते हैं—

(१) **व्यक्ति वाचक** जैसे बालक, स्त्री, पुरुष, गाय, घोड़ा, हाथी, गधा, ऊण्ट, वृक्ष, लता, वेल इत्यादि।

(२) **समूह वाचक,** जैसे जनता, सेना, सन्तति, लहण्डा, रेवड, प्रजा, वन इत्यादि।

(अप्राणिवाचक संज्ञा शब्दों में व्यक्ति वाचक और समूह वाचक का भेद नहीं होता है)

ग—प्राणी दो प्रकार के होते हैं—(१) जङ्गम और (२) स्थावर। जङ्गम और स्थावर के भेद से सभी प्राणी चार योनियों में विभक्त है—(१) जरायुज, (९) अण्डज. (३) स्वेदज और (४) उद्भिज।

घ—जङ्गम प्राणियों की तीन योनियाँ हैं—

१. जयरायुज—वह प्राणी हैं जो रज-वीर्य के संयोग से गर्भ धारण करने के पश्चात जन्म लेते हैं; यथा मनुष्य, गाय, बकरा, भेड़, घोड़ा, गधा, सिंह, व्याघ्र, वराह, महिष, गज, रीछ, बानर आदि।

२. अण्डज—वह प्राणी हैं जिनका जन्म क्लेद और बीज के संयोग से अण्डे से होता है, जैसे पक्षी, सर्प, मगर, मछली, इत्यादि।

३. स्वेदज—वह प्राणी हैं जो सर्दी और गर्मी के संयोग से जीवन ग्रहण करते हैं, जैसे डांस, मच्छर खटमल, जूं मक्खी, लीख आदि।

ङ—स्थावर प्राणी एक ही योनि के अन्तर्गत आते हैं—उद्भिज।

उद्भिज—बीज तथा शाखा से उगने या लगने वाले स्थावर जीवों को कहते हैं, इनके आठ भेद माने गये हैं—वृक्ष, वनस्पति, औषधि, गुच्छ गुल्म. तृण, प्रतान, बल्ली।

वृक्ष—अर्थात जो फूल लगने के पश्चात फलते हैं, जैसे आम, जामुन, अमरूद, अनार आदि

वनस्पति—वह वृक्ष जो विना फूल लगे फलने वाले होते हैं, जैसे बड़, गूलर, पाकर, पीपल आदि।

औषधि—फल के लगने पर जिनका पौधा नष्ट हो जाता है और जिनमें बहुत फल-फूल लगते है, जैसे गेहूं, चना, आदि

गुच्छ--जड़ से लता समूह वाले जैसे मल्लिका।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: ३ :

सरस्वती भाषा का व्याकरण

सरस्वती जन-साधारण की कथ्य भाषा थी और संस्कृत इस भाषा का संस्कार किया हुआ, कृत्रिम रूप से बनाया हुआ या सुसज्जित किया हुआ रूप था। सरस्वती भाषा को केवल 'भाषा' भी कहते थे। भाषा का अर्थ है जिसे जन-साधारण भाषित करें या बोलें। सरस्वती, भारती या भाषा की दृष्टि से नियमबद्ध तो थी, परन्तु उसका व्याकरण संस्कृत की अपेक्षा इतना सरल था कि वह लोक-व्यवहार से ही शीघ्रता से समझ में आ जाता था। इसके सीखने के लिये आचार्य-चरण में शरण लेने की आवश्यकता नहीं थी। संस्कृत भाषा का व्याकरण सरल नहीं था और वह गुरु से शिक्षा प्राप्त किये बिना समझ में नहीं आ सकता था। सरस्वती और संस्कृत दोनों भाषाओं में व्याकरण की दृष्टि से शब्दों का वर्गीकरण एक ही प्रकार का था। दोनों भाषाओं के शब्द एक ही थे और सभी शब्दों को तीन व्याकरण-कोटियों में विभाजित किया गया था अर्थात—(१) संज्ञा, (२) विशेषण और (३) अव्यय। संस्कृत शब्द कोशों में भी शब्दों के व्याकरण के अनुसार यही तीन वर्गीकरण हैं।

संस्कृत शब्द कोशों में धातु भी दिये रहते हैं परन्तु यह धातु शब्द नहीं होते हैं। संस्कृत भाषा में व्याकरण का अर्थ है—शब्द की व्युत्पत्ति करके उसका ठीक-ठीक स्वरूप दिखाना। इस लक्ष को सामने रख कर पाणिन आदि वैयाकरणों ने शब्दों में से ही धातुओं का चयन किया था और उनमें कृत तथा तद्धित प्रत्यय जोड़कर शब्द साधन की प्रक्रिया बनाई थी। संस्कृत व्याकरण में प्रकृति उसे कहते हैं जिसमें प्रत्यय युक्त किया जाता है—प्रत्ययात् पूर्ववम् कियत इति प्रकृतिः। कृत और तद्धित प्रत्यय अकेले अर्थवत नहीं होते हैं किन्तु जब प्रकृति से युक्त होते हैं तभी अर्थ वाले होते हैं। इन्द्र, पाणिनि आदि वैयाकरणों ने भाषा-शास्त्र की दृष्टि से यह कार्य किया था परन्तु लोक में इसका व्यवहार नहीं था। जन-साधारण की भाषा में न धातु थे और न कृत और तद्धित प्रत्यय। जन-साधारण की भाषा के अनुसार कोई अर्थहीन प्रत्यय नहीं हो सकता था। सरस्वती भाषा में व्याकरण के अनुसार केवल तीन ही प्रकार के शब्द थे—**संज्ञा, विशेषण और अव्यय**।

अब व्याकरण के अनुसार शब्दों की **उप-कोटियों** का वर्णन करते हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संज्ञा

क—संज्ञा शब्द दो प्रकार के होते हैं—(१) प्राणिवाचक और (२) अप्राणिवाचक।

ख—प्राणि वाचक संज्ञाओं के दो भेद होते हैं—

(१) **व्यक्ति वाचक** जैसे बालक, स्त्री, पुरुष, गाय, घोड़ा, हाथी, गधा, ऊण्ट, वृक्ष, लता, वेल इत्यादि।

(२) **समूह वाचक,** जैसे जनता, सेना, सन्तति, लहण्डा, रेवड, प्रजा, वन इत्यादि।

(अप्राणिवाचक **संज्ञा** शब्दों में व्यक्ति वाचक और समूह वाचक का भेद नहीं होता है)

ग—प्राणी दो प्रकार के होते हैं—(१) जङ्गम और (२) स्थावर। जङ्गम और स्थावर के भेद से सभी प्राणी चार योनियों में विभक्त है—(१) जरायुज, (२) अण्डज. (३) स्वेदज और (४) उद्भिज।

घ—जङ्गम प्राणियों की तीन योनियाँ हैं—

१. जयरायुज—वह प्राणी हैं जो रज-वीर्य के संयोग से गर्भ धारण करने के पश्चात जन्म लेते हैं. यथा मनुष्य, गाय, बकरा, भेड़, घोड़ा, गधा, सिंह, व्याघ्र, वराह, महिष, गज, रीछ, बानर आदि।

२. अण्डज—वह प्राणी हैं जिनका जन्म क्लेद और बीज के संयोग से अण्डे से होता है, जैसे पक्षी, सर्प, मगर, मछली, इत्यादि।

३. स्वेदज—वह प्राणी हैं जो सर्दी और गर्मी के संयोग से जीवन ग्रहण करते हैं, जैसे डांस, मच्छर खटमल, जूं मक्खी, लीख आदि।

ङ—स्थावर प्राणी एक ही योनि के अन्तर्गत आते हैं—उद्भिज।

उद्भिज—बीज तथा शाखा से उगने या लगने वाले स्थावर जीवों को कहते हैं, इनके आठ भेद माने गये हैं—वृक्ष, वनस्पति, औषधि, गुच्छ गुल्म. तृण, प्रतान, वल्ली।

वृक्ष—अर्थात जो फूल लगने के पश्चात फलते हैं, जैसे आम, जामुन, अमरूद, अनार आदि

वनस्पति—वह वृक्ष जो बिना फूल लगे फलने वाले होते हैं, जैसे बड़, गूलर, पाकर, पीपल आदि।

औषधि—फल के लगने पर जिनका पौधा नष्ट हो जाता है और जिनमें बहुत फल-फूल लगते है, जैसे गेहूं, चना, आदि

गुच्छ--जड़ से लता समूह वाले जैसे मल्लिका।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुल्म—एक जड़ से अनेक होने वाले, यथा ईख, सरपत्ता, कांस आदि ।

तृण—जैसे घास

प्रतान—सूत के समान पृथ्वी पर फैलने वाले, जैसे कद्दू, काशीफल, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज आदि ।

बल्ली—भूमि से वृक्ष आदि के सहारे चढ़ने वाले, जैसे गुडूची आदि ।

च—अप्राणिवाचक संज्ञा शब्दों के तीन भेद होते हैं—

१. **पदार्थ वाचक-अर्थात् पदार्थ, काल, समय आदि के नाम** जैसे—सड़क, कलम, पुस्तिका, कागज, घर, मार्ग, दिन, रात, वर्ष, आकाश, पृथ्वी, कान, हाथ, बाल, ईण्ट, पत्थर, लकड़ी, आदि ।

२, **भाववाचक**—अर्थात संज्ञा शब्दों का भाव बताने वाले शब्द यथा लम्बाई, चौड़ाई, बचपन, बुढ़ापा, मिठास, क्रोध शान्ति, आदि ।

३, **कर्मवाचक**—अर्थात संज्ञा शब्दों का कर्म बताने बाले शब्द जैसे, चलना, उठना, मारना, पाटना, लिखना, पढ़ना, समझना, रोना, सोना, आदि ।

विशेषण

विशेषण वह शब्द हैं जिनसे संज्ञा शब्दों की विशेषता अर्थात गुण, धर्म आदि का ज्ञान होता है जैसे मीठा, कड़वा, काला, पीला, मोटा, पतला. लम्बा, छोटा, आदि ।

अव्यय

अव्यय शब्द चार प्रकार के होते हैं—

१. उपसर्ग,

२. क्रिया विशेषण,

३. सयोजक या समुच्चय बोधक,

४. विस्मय सूचक य. मनोविकार सूचक ।

(सर्वनाम भी नाम अर्थात संज्ञा ही हैं और वह संज्ञा शब्दों के स्थान पर प्रयोग होते हैं)

सरस्वती तथा संस्कृत में क्रिया नामक शब्दों को व्याकरण कोटी नहीं होती है । संस्कृत में तिङन्त पद ही क्रिया होते हैं जो शब्द नहीं होते है । इसी प्रकार हिन्दी में भी केवल क्रिया पद होते हैं जो शब्द नहीं होते हैं ।

लिङ्ग निर्णय

सरस्वती भाषा में संज्ञा शब्दों का व्याकरणिक लिङ्ग प्रकृति और प्रत्यय के अनुसार निर्धारित किया जाता है, अर्थात जिन संज्ञा के शब्दों के लिङ्ग का प्रकृति के अनुसार बोध नहीं होता है उनका लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार माना जाता है : यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक ऐसा नियम हैं जिसा कोई भी अपवाद नहीं होता है। संज्ञा शब्दों के व्याकरणिक लिङ्ग तिर्धारित करने का ऐसा निश्चित नियम संसार की किसी भी अन्य भाषा में नहीं है। यह ऐक ऐसा सरल नियम है जिसके सीखने के हेतु किसी गुरु की शरण में जाने की आवश्यकता कहीं होती थी।

प्रकृति

इस जगत में जङ्गम और स्थावर के भेद से जो प्राणी हैं उनकी चार योनियां होती हैं १. जरायुज, २. अण्डज, ३. स्वेदज और ४. उद्भिज। अब इन चार योनियों के प्राणियों में नर और नारी के लक्षणों पर विचार करेंगे।

जरायुज :—प्रकृति के अनुसार जरायुज प्राणियों में नर और नारी का भेद होता है। जरायुज प्राणियों में ऐसे चिह्न होते हैं जिनको देखने से उनके नर अथवा नारी होने का बोध हो जाता है। इस प्रकार के चिह्नलिङ्ग, स्तन आदि हैं। जिन जरायुज प्राणियों को देख कर उन के नर अथवा नारी का बोध हो जाता है उन प्राणियों की नर और नारी की संज्ञा के लिए पृथक-पृथक शब्दों का प्रयोग होता है यथा—पुरुष-स्त्री पुत्र-पुत्री, वर-वधू, पति-पत्नी, साण्ड-गाय, बकरा-बकरी, घोड़ा-घोड़ी, गधा-गधी, शेर-शेरनी, हाथी-हथिनी, बन्दर-बन्दरी आदि। व्याकरण में नर प्राणी की संज्ञा को पुल्लिग और नारी प्राणी की संज्ञा को स्त्रीलिङ्ग कहते हैं।

कुछ जरायुज प्राणियों में यद्यपि नर और नारी के चिह्न होते तो हैं किन्तु वह स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देते हैं, अतः उनके नर अथवा नारी होने का बोध नही हो पाता है। इस प्रकार के जरायुज प्राणियों के सम्बन्ध में नर-नारी का वाद-विवाद न हो: इस कारण उन प्राणियों की नर अथवा नारी के संज्ञा शब्दो के लिए एक ही शब्द का प्रयोग होता है और उस शब्द को व्याकरण में एक ही लिङ्ग के अन्तर्गत रखा जाता है' इन शब्दों का लिङ्ग प्रकृति के अनुसार निर्धारित नहीं करते हैं अपितु प्रत्यय के अनुसार निर्धारित करते हैं। इस प्रकार के जरायुज प्राणियों के कुछ नाम यह हैं— चीता, भालू, तेन्दुआ, भेड़िया, लोमड़ी, लकड़बग्घा, ऊदबिलाऊ, ससा, नेवला, गिलहरी, आदि।

अण्डज—प्रकृति के अनुसार अण्डज प्राणियों में भी नर और नरी का भेद होता हैं, किन्तु इन प्राणियों के लिङ्ग या स्तन जैसे चिह्न नहीं होते हैं जिनसे उनके नर अथवा नरी होने का बोध हो सके। केवल कुछ अण्डज प्राणियों के कुछ और प्रकार के चिह्नों को देख कर उनके नर अथवा नरी का बोध हो जाता है—यथा मोर और मोरनी की पूंछ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। चिड़े की गर्दन पर एक काला गोल चिह्न होता है चिड़िया के नहीं होता; मुर्गे के सिर पर शिखा होती हैं, मुर्गी के नहीं होती, कबूतर और कबूतरी के पर भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। अतः इस प्रकार के प्राणियों की संज्ञा के नर और नरी के लिये भिन्न-भिन्न शब्दों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयोग होता है, जो नर है उनकी सज्ञा पुल्लिङ्ग और जो नरी हैं उनकी संज्ञा स्त्रीलिङ्ग होती है। जिन अण्डज प्राणियों में नर और नरी का बोध कराने के लक्षण नहीं दिखाई देते हैं उनकी नर और नरी दोनो सज्ञाओं के लिये केवल एक ही शब्द का प्रयोग होता है और इस शब्द का लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार कुछ प्राणियों के नाम यह हैं--काक, कोयल, चील, सुग्गा, मैना, उल्लू, आदि।

स्वेदज और उद्भिज—इन योनियों के प्राणियों में नर और नारी का कोई भेद दिखाई नहीं देता है अत; उनकी नर और नरी सज्ञाओं के लिये केवल एक ही शब्द का प्रयोग होता हैं और इस शब्द का लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार निर्धारित होता है।

समूह वाचक शब्द—प्राणिवाचक संज्ञा शब्दों का एक भेद व्यक्ति वाचक और समूह वाचक भी होता है। समूह वाचक शब्दों से यह समझा जाता है कि समूह में नर अथवा नारी दोनों प्रकार के प्राणी सम्मिलित हो सकते हैं चाहें किसी समय समूह में केवल एक ही प्रकार के प्राणी हों, यथा—जनता, प्रजा, सेना, सन्तान, लहण्डा (गाय, भेंस आदि पशुओं का समूह), रेवड (भेड़, बकरियों का समूह), वन (उद्भिज प्राणियों का समूह) इत्यादि। समूह वाचक संज्ञा शब्दों के समूह को भी एक ही लिङ्ग के अन्तर्गत रखते हैं और इस लिङ्ग को प्रत्यय के अनुसार निर्धारित करते हैं।

प्रत्यय

सरस्वती अर्थात देववाणी भाषा की वर्णमाला का नाम देवनागरी लिपि हैं, संक्षेप में इसे नागरी भी कहते हैं। संस्कृत भाषा भी इसी लिपि में लिखी जाती है। देवनागरी बर्णमाला के वर्ण दो प्रकार के होते हैं १. स्वर २. व्यञ्जन। स्वर को अच् और व्यञ्जन को हल् भी कहते हैं। सरस्वती भाषा के शब्द भी दो प्रकार के होते हैं। १. स्वरान्त, १. व्यञ्जनान्त। जिन शब्दों के अन्त में स्वर अर्थात अच हों वे शब्द स्वरान्त या अजन्त तथा जिन शब्दों के अन्त में व्यञ्जन अर्थात हल् हों वे शब्द व्यञ्जनान्त या हलन्त कहलाते हैं।

व्यञ्जन के साथ अ लगने पर व्यञ्जन का हल् का चिह्न हट जाता है, यथा क् + अ = क, ख् + अ = ख, ग् + अ = ग इत्यादि। सरस्वती भाषा में व्यञ्जनों में अ लगा रहता है, अतः सरस्वती भाषा में सभी व्यञ्जनों का रूप स्वरान्त हो गया है। इसी कारण व्यञ्जनान्त शब्द भी स्वरान्त हो गये हैं।। जिन शब्दों के अन्त में अ आता है वह अकारान्त, आ आता है वह आकारान्त, इ आता हैं वह इकारान्त, ई आता है वह ईकारान्त, उ आता है वह उकारान्त आदि कहलाते हैं।

विसर्ग सदा किसी स्वर के अन्त में आता है। यह जिस स्वर के पश्चात जुड़ा होता है इसका उच्चारण उसी स्वर के उच्चारण स्थान से होता है। अतः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रत्यय के अनुसार लिङ्ग निर्धारित करते समय यदि किसी शब्द के अन्त में विसर्ग हो तो विसर्ग को ध्यान में नहीं रखते हैं।

सरस्वती भाषा में आ, इ, ई स्त्री प्रत्यय हैं। अतः जो शब्द आकारान्त, इकारान्त और ईकारान्त होते हैं और यदि उन शब्दों का लिङ्ग प्रकृति के अनुसार निर्धारित नहीं हो सकता है तो वह शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। इन शब्दों के अतिरिक्त और सभी शब्द यदि प्रकृति के अनुसार स्त्रीलिङ्ग न हों तो पुल्लिङ्ग होते हैं।

सरस्वती भाषा के शब्दकोष

सरस्वती भाषा केवल कथ्य भाषा थी, सरस्वती भाषा का कोई शब्दकोश उपलब्ध नहीं है। सरस्वती और संस्कृत के शब्द एक ही हैं इसी कारण सरस्वती भाषा के शब्द-ज्ञान के लिये संस्कृत शब्द कोश का प्रयोग हो सकता है। सरस्वती भाषा में धातु नहीं थे, अतः धातुओं को छोड़ कर, संस्कृत भाषा के सभी शब्द सरस्वती भाषा के हैं और इनका ज्ञान संस्कृत शब्द कोशों से हो सकता है। संस्कृत शब्दों की व्याकरण कोटियां और अर्थ भी वही हैं जो सस्वती भाषा में हैं।

व्याकरण के अनुसार संस्कृत में संज्ञा शब्दों के तीन लिङ्ग भेद होते हैं— १. पुल्लिङ्ग, २. स्त्रीलिङ्ग, ३. नपुंसक लिङ्ग। सरस्वती भाषा में शब्दों के केवल दो ही लिङ्ग होते हैं—१. पुल्लिङ्ग, २. स्त्री लिङ्ग।

संस्कृत भाषा के व्याकरण के अनुसार शब्दों के लिङ्ग अनुशासन के नियम कृत्रिम हैं। उनका आधार न प्रकृति है और न प्रत्यय, यथा दाराः शब्द का अर्थ स्त्री है और यह संस्कृत में पुल्लिङ्ग है, शब्द कलत्रम् जिसका अर्थ पत्नी है नपुंसक लिङ्ग में प्रयोग होता है। सरस्वती भाषा में स्त्री वाची शब्द केवल स्त्री लिङ्ग ही हो सकते हैं। शब्द मित्रम् जैसा शब्द भी संस्कृत में नपुंसक लिङ्ग है।

सरस्वती भाषा का लिङ्ग विधान प्रकृति-प्रत्यय के आधार पर बहुत सरल और निश्चित है और इस नियम का एक भी अपवाद नहीं है। संस्कृत कोशों में दिये हुये सभी शब्दों का लिङ्ग सरस्वती भाषा में इसी एक नियम के अनुसार निर्धारित होता है। इस प्रकार संस्कृत शब्द-कोश के सभी शब्दों का लिङ्ग संस्कृत के अनुसार न देख कर, प्रकृति-प्रत्यय के आधार पर निर्धारित करके, संस्कृत शब्द कोशो को सरस्वती भाषा के शब्द कोशों में परिवर्तित किया जा सकता है और प्रयोग में लाया जा सकता है।

संस्कृत कोशों में अनेक शब्द हलन्त दिये होते हैं, इस प्रकार के शब्द पुल्लिङ्ग भी है ओर स्त्रीलिङ्ग भी है। संस्कृत कोशों में जो हलन्त शब्द पुलिङ्ग हैं और वह सरस्वती भाषा में भी पुलिङ्ग हैं, वह सरस्वती भाषा में अकारान्त बन जाते हैं पर जो शब्द स्त्री लिङ्ग हैं और सरस्वती भाषा में भी स्त्रीलिङ्ग है उन शब्दों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को संस्कृत कोशों में आकारान्त बना कर दूसरी बार दिखाया हुआ है। संस्कृत भाषा भी सरस्वती भाषा के इस स्त्रीलिङ्ग आकारान्त रूप का उल्लङ्घन नहीं कर सकी।

भागुरि: आचार्य पाणिनि से पूर्व के आचार्य हो चुके हैं। भागुरि: आचार्य के मत के अनुसार स्त्रीलिङ्ग बोधक हलन्त शब्दों का टाप विधान होता है, अर्थात वह शब्द आकारान्त बना दिये जाते हैं, परन्तु पाणिनि के मत में स्त्रीलिङ्ग बोधक हलन्त शब्दों से 'टाप' अर्थात आकारान्त विधायक कोई सूत्र नहीं है, परन्तु निम्न शब्दों के उदाहरण से भागुरि आचार्य का मत प्रमाणित प्रतीत होता है—

गिर्—गिरा	सीमन्—सीमा	शरद्—शरदा
विदिश्—विदिशा	संविद्—संविदा	त्विष्—त्विषा
दृश्—दृशा	नस्—नसा	मृद्—मृदा
समिध्—समिधा	शुच्—शुचा	दिश् दिशा
सरित्—सरिता	योषित्—योषिता	त्वच् -त्वचा
तडित—तडिता	जोषित्—जोषिता	प्रतिपद - पतिपदा
आपद्—आपदा	दोषस्—दोषा	क्षुत्—क्षुता
तृष्—तृषा	अपसरस्—अप्सरा	उषस—उषा
रुच्—रुचा	विद्युत्—विद्युता	विपद्—विपदा
रुज्—रुजा	मनीष्—मनीषा	निश्—निशा

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि हमें संस्कृत कोशों में ५/६ हलन्त शब्द ऐसे मिले हैं जो संस्कृत में पुल्लिङ्ग हैं, परन्तु वह शब्द सरस्वती भाषा और खरी बोली में आकारान्त या ईकारान्त बनाकर स्त्री लिङ्ग में प्रयोग होते हैं। वह शब्द यह हैं—

गरिमन्—गरिमा	अन्त्रम्—अन्त्री	महिमन्—महिमा
कायम्—काया	ज्योतिस्—ज्योति	देहम्—देही

आत्मा शब्द के सम्बन्ध में लेखकों में मतभेद है। कुछ लेखक इस शब्द को स्त्रीलिङ्ग मानते हैं और कुछ लेखक इस शब्द को पुल्लिङ्ग मानते हैं। हमारी समझ से आत्मा शब्द पुल्लिङ्ग ही होना चाहिये। कारण कि परम् शब्द के उत्तर पद के रूप में आत्मन् शब्द को जोड़ने से परमात्मन् शब्द बनता है, जिसका उच्चारण परमात्मा होता है। परन्तु यह शब्द पुल्लिङ्ग है। परमात्मन् (परमात्मा) शब्द में से परम् का लोप करने से शब्द का जो शेष भाग रहता है, उसका भी वही लिङ्ग होगा जो पूरे शब्द का था। अत: आत्मा शब्द पुल्लिङ्ग है। इसी प्रकार 'महात्मा', धर्मात्मा, पुण्यात्मा, जीवात्मा, मुक्तात्मा आदि शब्द भी पु॰ हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपरोक्त कथन को स्पष्ट करने हेतु हम दो अन्य शब्दों के उदाहरण देते हैं। शब्द 'गन्धः' संस्कृत कोशों में पुल्लिङ्ग दिया हुआ है और यह शब्द प्रत्यय के अनुसार भी पुल्लिङ्ग ही होना चाहिये, परन्तु खरी बोली में यह शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग होता है। उसका कारण यह है कि उद्, पूति, सु, सुरभि के उत्तर पद के रूप में शब्द गन्धः को जोड़ने से यह शब्द बदल कर 'गन्धिः' हो जाता है। यथा–उद्गन्धिः, पूतिगन्धिः, सुगन्धिः सुरभिगन्धिः, कमलगन्धिः आदि। यह सभी शब्द प्रत्यय के अनुसार स्त्रीलिङ्ग है। इन शब्दों में से उद्, पूति, सु, सुरभि, कमल आदि शब्दों का लोप करने पर शेष शब्द का लिङ्ग नहीं बदलेगा। अतः गन्धः शब्द सरस्वती तथा खरी बोली में स्त्रीलिङ्ग है। गन्धिः शब्द का अर्थ गन्धक भी है, अतः शब्द गन्धक भी स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग होता है।

एक शब्द से अनेक शब्द

सरस्वती भाषा में उपसर्ग या प्रत्यय जोड़कर एक शब्द के अनेक शब्द बनाने की साधारण सी रीति है। देवनागरी वर्णमाला के सभी वर्ण सार्थक हैं और यह वर्ण भी उपसर्ग और प्रत्ययों की भांति शब्दों में जोड़े जाते हैं। उपसर्ग और प्रत्ययों का अपना व्यक्तिगत अर्थ होता है और इनको शब्द में जोड़कर जो नया शब्द बनाया जाता है वह शब्द सामूहिक रूप से भी अर्थ देता है। यदि उपसर्ग भी प्रत्यय और शब्द का सामूहिक अर्थ न हो तो उनका परस्पर जोड़ नहीं होता है। सरस्वती भाषा में अर्थहीन उपसर्ग या प्रत्यय नहीं होते हैं। उपसर्ग और प्रत्ययों की सन्धि केवल शब्दों के साथ ही होती है। उपसर्ग और प्रत्यय अपना स्वतन्त्र अर्थ प्रकट करते हैं और शब्दों के साथ सन्धि होने पर यह अपने अर्थ के अनुसार शब्दों के अर्थों में सुधार करते हैं, बढ़ाते हैं और अर्थ में परिवर्तन भी कर देते हैं। उपसर्ग और प्रत्यय सार्थक हैं किन्तु शब्दों की भांति स्वतन्त्र रूप से भाषा में प्रयोग नहीं होते हैं।

इसी प्रकार दो या अधिक शब्दों को जोड़कर एक नया शब्द बनाया जा सकता है, इसको यौगिक शब्द कहते हैं। योग के द्वारा जिन शब्दों का एकीकरण होता है, वे शब्द अपना व्यक्तिगत अर्थ देने के साथ ही सामूहिक अर्थ भी देते हैं। जिस शब्द समूह का सामूहिक अर्थ न हो उनका योग नहीं हो सकता है।

सरस्वती भाषा में उपसर्ग, प्रत्ययों के योग से बने शब्दों का व्याकरण के अनुसार लिङ्ग भी प्रकृति-प्रत्यय के आधार पर ही निर्धारित होता है।

धिः, निधिः, राशिः

सरस्वती भाषा में इकारान्त शब्द प्रत्यय के अनुसार स्त्रीलिङ्ग होते हैं, कुछ ऐसे शब्द हैं जो स्वयम् स्त्रीलिङ्ग हैं, किन्तु इन शब्दों को किसी अन्य शब्द के साथ प्रत्यय करके जो नये शब्द बनते हैं वह सर्वदा पुल्लिङ्ग ही होते हैं। वह हैं–धिः,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निधि:, राशि: । इसका कारण यह है कि इन शब्दों का अर्थ भण्डार है और किसी भी प्रकार का भण्डार सर्वदा पुल्लिङ्ग होता है, यथा––

इषु + धि:	=	इषुधि:	(पु)	तूणीर
उदन् + धि.	=	उदधि:	(पु)	समुद्र
जलम् + धि:	=	जलधि:	(पु)	समुद्र
पयस् + धि:	=	पयोधि:	(पु)	समुद्र
बाल + धि:	=	बालधि:	(पु)	पूंछ
वारि + धि	=	वारिधि:	(पु)	समुद्र
कला + निधि:	=	कलानिधि	(पु)	चन्द्रमा
पयस् + निधि:	=	पयोनिधि:	(पु)	समुद्र
पयस् + राशि:	=	पयोराशि:	(पु)	समुद्र
वारि + राशि:	=	वारिराशि:	(पु)	समुद्र

यहां यह ध्यान रहे कि यदि किसी शब्द के अन्त में धि हो और धि उस शब्द का ही भाग हो, अर्थात शब्द में से धि का लोप करने पर शब्द का शेष भाग सार्थक शब्द न हो तो ऐसी दशा में वह शब्द इकारान्त होने के कारण स्त्रीलिङ्ग ही होगा, यथा––उपाधि:, परिधि:, अवधि:, व्याधि:, विधि:, सन्धि:, समाधि:, आधि:, सुगन्धि:, उपनिधि: आदि ।

पति:

सरस्वती भाषा में 'पति:' शब्द इकारान्त है परन्तु प्रकृति के अनुसार यह शब्द पुल्लिङ्ग है, अत: पति: शब्द को किसी शब्द के अन्त में जोड़ने से जो यौगिक शब्द बनते हैं वह सभी शब्द इकारान्त होते हुये भी पुल्लिङ्ग ही होते हैं यथा पशुपति: (शिव, यहां पशु का अर्थ चौपाया नहीं है अपितु वह उपदेवता हैं जो शिव के अधीन हैं), निशापति: (चन्द्रमा), बृहस्पति: (एक देवता), भूपति: (राजा), भूमिपति: (राजा), मृगपति: (शेर' यहां मृग का अर्थ चौपाया है), सभापति: (सभा का अध्यक्ष), सेनापति: (सेना अध्यक्ष), रमापति: (विष्णु), प्रजापति: (ब्रह्मा), उषापति: (सूर्य), नृपति: (राजा) आदि ।

पाणि

'पाणि:' शब्द का अर्थ है––'हाथ में धारण किये हुये' । यह शब्द जब अन्य शब्दों के अन्त में जुड़कर यौगिक शब्द बनाता है तो वह शब्द इकारान्त होते हुये भी पुल्लिङ्ग ही होते है, यथा—चक्रपाणि: (विष्णु:), सीरपाणि: (बलराम) पद्मपाणि: (विष्णु:) चतुष्पाणि: (विष्णु:) आदि ।

अरि,: अराति:

'अरि:' और 'अराति' शब्दों का अर्थ शत्रु है । इस अर्थ में यह शब्द सर्वदा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुल्लिङ्ग ही माने गये हैं। अन्य शब्दों के अन्त में इन शब्दों को जोड़नी से जो यौगिक शब्द बनते हैं वह शब्द इकारान्त होते हुये भी पुल्लिङ्ग ही होते हैं—यथा सर्पारिः सर्पारातिः (नेवला, मोर, गरुड़ का विशेषण), मृगारिः, मृगारातिः (सिंह, कुत्ता, शेर), वृत्रारिः (इन्द्र का विशेषण), मुरारिः (कृष्ण का विशेषण), देवारिः (राक्षस) आदि।

सरस्वती भाषा में कुछ शब्दों के स्त्रीलिङ्ग रूप उकारान्त है। इस प्रकार के शब्द प्राणिवाचक हैं और उन शब्दों का लिङ्ग बोध प्रत्यय केअनुसार नहीं होता है अपितु प्रकृति के अनुसार होता है, यथा—

(१) सुनु (पुत्र) पु०—सुनू (पुत्री) स्त्री०

(२) करेणुः (हाथी) पु०—करेणूः (हथिनी) स्त्री०

(३) श्वशुरः पु०—श्वश्रूः (सासू) स्त्री०

हमारी भाषा में कुछ ऐसे शब्द भी हैं जो उकारान्त या ऊकारान्त होते हुये भी सर्वदा स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयोग होते हैं—(१) रज्जुः स्त्रीलिङ्ग (खरी बोली में इस शब्द का उच्चारण 'नेज्जु' होता है और इसका अर्थ डोल की रस्सी है)। (२) सरयुः, सरयूः—एक नदी का नाम जिसके तट पर अयोध्या नगरी स्थित है—इस अर्थ में यह शब्द केवल स्त्रीलिङ्ग है। (३) 'जम्बु' शब्द का अर्थ 'जमोया' है जो पुल्लिङ्ग हैं और 'जम्बू' या 'जम्बूकी' शब्दों का अर्थ जामुन का वृक्ष या फल होता है जो स्त्री० लिङ्ग है।

कर्मवाचक संज्ञा शब्दों का लिङ्ग

अंग्रेजी की भांति सरस्वती या संस्कृत भाषा में कोई शब्द क्रिया नहीं होता है। सरस्वती में संज्ञा शब्नों का कर्म बताने वाले शब्द भी संज्ञा ही होते हैं। व्याकरण के अनुसार यह शब्द कर्मवाचक संज्ञा होते हैं। सरस्वती में इन शब्दों के अन्त में णम् या नम् प्रत्यय होता है। खरी बोली में भी इस प्रचार के शब्द कर्म वाचक संज्ञा ही होते हैं। सरस्वती के कर्मवाचक संज्ञा शब्दों के रूपान्तरित शब्दों में खरी बोली में भी ना प्रत्यय होता है। सरस्वती में कर्मवाचक संज्ञा शब्दों में णम् या नम् प्रत्यय होने से यह शब्द पुल्लिङ्ग होते है, खरी बोली में भी यह सभी शब्द पुल्लिङ्ग ही हैं। खरी बोली में कर्मवाचक संज्ञा शब्दों के ना प्रत्यय का लोप करने पर जो शब्द का शेष भाग रहता है, वह शब्द भी कर्मवाचक संज्ञा ही होता है, परन्तु वह कर्मवाचक संज्ञा शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप होता है। स्त्रीलिङ्ग कर्मवाचक संज्ञा शब्दों के ही रूपों से संज्ञा का कर्म बताया जाता है। खरी बोली के कर्मवाचक स्त्रीलिङ्ग संज्ञा शब्दों के समान ही संस्कृत में धातु होते हैं और इसी आधार पर कुछ लोग धातु शब्द को स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकारके कुछ शब्दों के उदाहरण देते हैं—

सरस्वती शब्द	खरी बोली पु० शब्द	खरी बोली स्त्री० शब्द
कुटनम्	कूटना	कूट
कूर्दनम्	कूदना	कूद
गर्जनम्	गरजना	गरज
ग्रन्थनम्	गांठना	गांठ
घर्षणम	घिसरना	घिसर
गुञ्जनम्	गूञ्जना	गूञ्ज
घूर्णनम	घूमना	घूम
चह्निनम्	चीनना	चीन
चुण्टनम्	चूण्टना	चूण्ट
चुक्कनम्	चूकना	चूक
छुटनम्	छूटना	छूट
छोरणम्	छोड़ना	छोड़
ज्ञाननम्	जानना	जान्
जागरणम्	जागना	जाग
जयनम्	जीतना	जीत
योजनम्	जोतना	जोत
दण्डनम्	डाण्टना	डाण्ट
ढुण्ढनम	ढूण्ढना	ढूण्ढ
ताननम	तानना	तान
धोरणाम्	दौड़ना	दौड़
मागनम	मांगना	मांग
मननम्	मानना	मान
मापनम्	मापना	माप
मारणम्	मारना	मार
रटनम्	रटना	रट
रेषणम	रेङकना	रेङ्क
रोधनम्	रोकना	रोक
लङ्घनम्	लाङधना	लाङ्घ
लिखनम्	लिखना	लिख
लुटनम्	लूटना	लूट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लुञ्चनम्	नोचना	नोच
पठनम	पढ़ना	पढ़
परीक्षणम्	परखना	परख
पालनम्	पालना	पाल
पीडनम	पीटना	पीट
प्रच्छनम्	पूछना	पूछ
पोषणम्	पोसना	पोस
स्फुटनम	फूटना	फूट
वण्टनम्	बाण्टना	बाण्ट
विक्रयणम्	वेचना	वेच
विकिरणम्	बखेरना	बखेर
वल्गनम्	भागना	भाग
सम्भालनम्	सम्भालना	सम्भाल
शिक्षणम्	सीखना	सीख
शिङ्घनम्	सूंघना	सूङ्घ
शोचचम्	सोचना	सोच

शब्दों की तीन श्रेणियां

सरस्वती मूल भाषा होने के कारण इसके शब्द नित्य हैं। इन शब्दों के अर्थ और शब्द-अर्थ का सम्बन्ध भी नित्य ही है। यदि यह बात साधु है तो जो शब्द सरस्वती भाषा के थे वही शब्द आज खरी बोली के होने चाहिये। सरस्वती भाषा के आधुनिक रूप को ही आज खरी बोली कहते हैं। खरी बोली के शब्द, शब्दों का अर्थ और शब्द का सम्बन्ध भी वही है जो सरस्वती में था। सरस्वती भाषा में जो शब्द संज्ञा, विशेषण या अव्यय थे, वही शब्द खरी बोली में भी क्रमशः सज्ञा, विशेषण या अव्यय ही हैं। संज्ञा शब्दों के लिङ्ग जो सरस्वती में थे वही खरी बोली में भी हैं।सरस्वती भाषा के अनुसार शब्दोंका लिङ्ग निर्णय का नियम बहुत सरल और निश्चित है जिसका कोई अपवाद नहीं है। सरस्वती में संज्ञा शब्दों का लिङ्ग प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार निर्धारित किया जाता है। प्रकृति के अनुसार शब्दो के लिङ्ग का ज्ञान आज भी उसी प्रकार हो सकता है जिस प्रकार प्राचीन काल में होता था। प्रकृति के अनुसार इस विधान में कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सकता है। सरस्वती भाषा के शब्दों के रूपों का खरी बोली में बहुत परिवर्तन हो गया है और आज इन शब्दों का शुद्ध रूप जानना एक समस्या हो गई है। इन शब्दों के रूप प्रत्यय के अनुसार भ्रष्ट हो गये हैं। खरी बोली में अब संज्ञा शब्दों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार निर्धारित नहीं किया जा सकता है। **प्रत्यय के अनुसार खरी बोली के संज्ञा शब्द का लिङ्ग जानने के लिये हमें उस शब्द के उस रूप अर्थात् अक्षर-विन्यास का ज्ञान करना पड़ेगा जो उस शब्द का सरस्वती में था। शुद्ध रूप का ज्ञान किये बिना हम उस शब्द का प्रत्यय के अनुसार लिङ्ग निर्धारित नहीं कर सकते हैं।**

खरी बोली के शब्द को अक्षर-विन्यास की दृष्टि से तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—१, **शुद्ध**, २. **अशुद्ध**; ३. **भ्रष्ट** ।

शुद्ध शब्द वह हैं जिनके अक्षर-विन्यास खरी बोली में वही हैं जो उन शब्दों के सरस्वयी में थे।

अशुद्ध शब्द वह हैं जिनके अक्षर-विन्यास खरी बोली और सरस्वती भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु लिङ्ग विधान की दृष्टि से उन शब्दों के प्रत्यय खरी बोली और सरस्वती में एक से ही हैं।

भ्रष्ट शब्द वह हैं जिनके अक्षर-विन्यास खरी बोली और सरस्वती में पृथक-पृथक भी हैं और लिङ्ग विधान की दृष्टि से प्रत्यय के अनुसार उन शब्दों का लिङ्ग वह नहीं हो सकता जो उन शब्दों का सरस्वती में था।

कुछ शब्दों के तीनों रूपों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

शुद्ध	अशुद्ध	भ्रष्ट	टिप्पणी
रात्री	रत्ति	रात	ईकारान्त का अकारान्त
अक्षि	अक्खि	आंख	इकारान्त का अकारान्त
स्कन्धः	कन्ध	कन्धा	अकारान्त का आकारान्त
वार्ता	वत्ता	वात	आकारान्त का अकारान्त
ग्रन्थिः	गंठि	गाण्ठ	इकारान्त का अकागान्त
मौक्तिकम्	मुत्तिअ	मोती	मकारान्त का ईकारान्त
घृतम्	घय	घी	मकारान्त का ईकारान्त
पिपासा	—	पियास	आकारान्त का अकारान्त
पक्षिन्	—	पक्षि	नकारान्त का इकारान्त

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि जिन शब्दों के रूप भ्रष्ट हो गये हैं उनके लिङ्ग निर्णय के लिये यह आवश्यक है कि पहले उन शब्दों के शुद्ध रूप ज्ञात किये जावें। खरी बोली के किसी शब्द का प्रत्यय के अनुसार लिङ्ग निर्धारित करने के लिये पहले उस शब्द का शुद्ध रूप ज्ञात करना चाहिये। फिर इस शब्द के शुद्ध रूप का प्रत्यय के अनुसार लिङ्ग निर्धारित करना चाहिये। खरी बोली के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्द का वही लिङ्ग होगा जो उस शब्द का सरस्वती में था। इसके अतिरिक्त खरी बोली के शब्दों का लिङ्ग जानने के लिये और कोई साधन नहीं है।

प्रकृति-प्रत्यय के लिङ्ग-अनुशासन को प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रत्यय के अनुसार केवल उन ही शब्दों का लिङ्ग निर्धारित करना चाहिये जिनका लिङ्ग प्रकृति के अनुसार ज्ञात नहीं हो सकता है। यह भी ध्यान रहे कि एक ही शब्द के प्रकृति और प्रत्यय के अनुसार पृथक-पृथक लिङ्ग भी हो सकते हैं। इसी प्रकार जब सरस्वती के दो शब्दों का विकृत रूप खरी बोली में अनुरूप हों, तो उस शब्द के सरस्वती भाषा के शब्दों के अनुसार भिन्न-भिन्न लिङ्ग भी हो सकते हैं। प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार लिङ्ग अनुशासन को स्पष्ट करने के हेतु कुछ उदाहरण देते हैं—

शब्द पति इकारान्त है किन्तु प्रकृति के अनुसार पति पुरुष वाची ही हो सकता है। अत: यह शब्द पुल्लिङ्ग है। इसी प्रकार देवता, ऋषि:, कवि: मुनि: शब्द भी पुल्लिङ्ग ही हैं।

शब्द वधू ऊकारान्त है किन्तु प्रकृति के अनुसार स्त्री वाची है। अत: यह शब्द स्त्रीलिङ्ग है। इसी प्रकार शब्द स्वसृ (बहिन) ननादृ (नन्द, पति की बहिन), दुहितृ (पुत्री), यातृ (पति के भाई की पत्नी), मातृ (माता), श्वश्रू: (सासू), सूनू (पुत्री) भी स्त्रीलिङ्ग ही हैं।

अग्नि: शब्द के अर्थ आग का देवता भी है और आग भी है। यह शब्द अग्नि देवता के अर्थ में प्रकृति के अनुसार पुल्लिङ्ग और आग के अर्थ में प्रत्यय के अनुसार स्त्रीलिङ्ग है।

वृहस्पति:, शनि: और रवि: इकारान्त है परन्तु ग्रहों के नाम होने के कारण पुल्लिङ्ग हैं। ग्रह गिनती में नौ हैं (१) रवि:, (२) सोम: (३) मङ्गल:, (४) बुध:, (५) वृहस्पति:, (६ शुक्र:, (७) शनि:. (८) राहु:, (९) केतु:।

जब एक ही पदार्थ के कई नाम हों तो वह एक ही पदार्थ अपने नामों के शब्द के प्रत्ययों के अनुसार पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग हो सकता है यथा—आंख (अक्षि) इकारान्त स्त्रीलिंङ्ग, नयन (नयनम्) हलन्त पुल्लिङ्ग, चक्षु (चक्षुस्) हलन्त पुल्लिङ्ग।

मार्ग (सर० मार्ग:) अकारान्त-पुलिङ्ग, सड़क (सृड्का) आकारान्तस्त्रीलिङ्ग।

हिन्दी (खरी बोली) में सरस्बती भाषा के कतिपय शब्दों के स्थान पर म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करने से उर्दू (भाषा ?) बन जाती है। इसको चाहे देवनागरी लिपि में लिखो चाहे फारसी लिपि में। उन शब्दों की वही व्याकरण कोटियां तथा संज्ञा शब्दों के वही लिङ्ग होंगे जो सरस्वती भाषा के उन शब्दों के होते हैं। अत: उर्दू का न व्याकरण है और न लिङ्गानुशासन। हम इस प्रकार के शब्दों पर कोई विचार नहीं करेंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: ४ :

साधु शब्द परिज्ञानम्

कुरुक्षेत्र (ब्रह्मर्षिदेश) की आदि मूल कथ्य भाषा सरस्वती थी, आज इसी क्षेत्र की कथ्य भाषा को 'खरी बोली' अर्थात 'शुद्ध भाषा' कहते हैं। यद्यपि कथ्य भाषा के उच्चारण में सर्वदा परिवर्तन हुआ करता हैं, परन्तु मूल भाषा अपने मूल स्थान से कभी नष्ट नहीं होती है। सरस्वती भाषा के रूप में आज इतना परिवर्तन दिखाई देता है कि यह ध्यान में भी नहीं आता कि हिन्दी खरी बोली ही सरस्वती भाषा का परिवर्तित रूप है। परन्तु यह बात सत्य है कि हिन्दी खरी बोली में आज ी सभी शब्द वही हैं जो सरस्वती भाषा में प्रचलित थे। वार्तिक का व्याख्यान करते हुये पतञ्जलि कहते हैं—'सिद्धे शब्दार्थ सम्ब धे', अर्थात शब्द (शब्दों के) अर्थ और (उनके परस्पर) सम्बन्ध सिद्ध (नित्य) होते हैं। अत: खरी बोली में शब्दों के अर्थ आज भी वही हैं जो उन शब्दों के सरस्वती भाषा में थे। शब्दों के नित्य रहने से ही उन शब्दों की व्याकरण कोटियां, उनकी उपकोटियां, तथा संज्ञा शब्दों के व्याकरणिक लिङ्ग आज भी वही हैं जो उनके सरस्वती भाषा में थे। यद्यपि आज सरस्वती भाषा के शब्दों के अक्षर-विन्यास इतने भ्रष्ट हो गये हैं कि उन शब्दों के साधु अक्षर विन्यासों का ज्ञान होना एक बड़ी समस्या हो गई है, परन्तु शब्दों के अर्थ उनकी व्याकरण कोटियों, उपकोटियों तथा संज्ञा शब्दों के व्याकरणिक लिङ्ग की सहायता से उन शब्दों के साधु रूप का ज्ञान आज भी हो सकता है। इस ज्ञान के करने हेतु केवल एक मौलिक विचार धारा की आवश्यकता है।

अर्थ

शब्द एकमात्र आकाश का गुण हैं, यह कर्णेन्द्रिय से ग्राह्य होता है। शब्द दो प्रकार का होता है। एक ध्वनि स्वरूप जैसे ढोल, नगाड़े, मृदङ्ग आदि का शब्द और दूसरा वर्ण-स्वरूप, जिसमें अर्थ सहित शब्दों का उच्चारण होता है। भाषा में केवल इसी प्रकार के शब्द होते हैं, अर्थात भाषा के सभी शब्द वर्ण-स्वरूप तथा सार्थक होते हैं। अत: भाषा में कोई भी शब्द निरर्थक नहीं होता है। कोई योग्यता के अभाव से उन शब्दों का अर्थ न समझ सके, वह दूसरी बात है। हम कुछ ऐसे शब्दों के उदाहरण देते हैं जो सार्थक हैं परन्तु अज्ञानवश उन्हें निरर्थक समझा जाता है।

गाड़ी चलाने वाला बैलों को हाङ्कते समय तिक्-तिक् बर्र-बर्र कहता है। किसी से पैण्डा छुड़ाने के लिये हम चाहते हैं कि वह हमारे पास से चला ज वे तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम उसे, द्रो-द्रो, प्रे-प्र, मर्र-मर्र आदि शब्द कहते हैं। कभी कभी इसके लिये हम कहते हैं कि तुम टञ्च हो जाओ। माता बच्चे को प्रस्राव कराना चाहती है तो उसकी टाङ्गें उठा कर शि-शि करती हैं। बालक कुत्तों को लड़ाते समय भी कुत्तों को शि शि किया करते हैं। माता शिशु को प्यासा समझ कर उससे पूछती हैं कि मम्, पीना है। बालक को चन्द्रमा दिखा कर कहती है—'वह रहा मामा'। जब किसी बालक को कोई वस्तु नहीं देना चाहती है तो उसे छिपा कर कहतीं है कि को-को (कू कू) ले गई, उसे डराती है तो कह देती है कि जू-जू आ गई।

उपरोक्त प्रसङ्गों में तिक्-तिक्, बर्र-बर्र, द्रो-द्रो, प्रे-प्रे, टञ्च, शि-शि, मम्, मा-मा, कू-कू, जू-जू आदि शब्द ब्रह्मर्षि देश (कुरुक्षेत्र) में वैदिक युग से लाखों वर्ष पूर्व से प्रयोग होते चले आ रहे हैं। यह सभी शब्द आज भी सरस्वती भाषा के अङ्ग हैं और संस्कृत शब्द कोशों में उपलब्ध हैं।

खरी बोली	सरस्वती	अर्थ	शब्द कोश का निर्देश
तिक	तिक्	चलो, जाओ	आप्टे ७४९, मो० वि० ४४६
बर्र	बर्व	चलो, जाओ	आप्टे ११५३, मो० वि० ७२२
द्रो	द्रु	चलो, जाओ	आप्टे ८८४, मो० वि० ५०२
प्र	प्रे	चलो, जाओ	आप्टे ११३७, मो० वि० ७११
मर	मर्व	चलो, जाओ	आप्टे १२४२, मो० वि० ७९१
टञ्च	तञ्च्	चलो, जाओ	आप्टे १६८४, मो० वि० ४६२
शि	शि	सावधान, उत्तेजित हो	आप्टे पृ० १५४९ मो० वि० १०६७
मम	मम्	पानी	आप्टे १२१७, मो० वि० ७७१
मा	मः	चन्द्रमा	आप्टे १२१७, मो० वि० ७७१
को	कूः	पिशाच स्त्री	आप्टे ५९२, मो० वि० २९९
जू	जूः	पिशाच स्त्री	आप्टे ७२४, मो० वि० ४२४

(एक अक्षर वाले शब्दों का अधिकांश दो दो बार उच्चारण किया जाता है)

आप्टे = आप्टे सम्कृत—इङ्गलिश कोश ३ खण्ड, पूना।

मो० वि० = मोनियर विलियम्स संस्कृत—इङ्गलिश कोश, औक्सफोर्ड।

इसी प्रकार के कुछ अन्य शब्दों पर ध्यान दीजिये। (१) मेरा चार रुपये का खून हो गया। (२) इस स्त्री की हथिनी जैसी चाल है। (३) मैंने उसके सड़ाक-सड़ाक तीन डण्डे मारे। (४) किसी बालक को उत्पात करते देख कर कह देते हैं——ससुर बैठ जाओ। (५) किसी स्त्री को खरी बोली क्षेत्र में गाली देते हैं तो उसे '**लङ्का**' कह देते हैं। इन सभी प्रसङ्गों में शब्द '**खून**', 'हथिनी' 'सड़ाक', 'ससुर', और 'लङ्गा' अपने अपने साधु अर्थ में प्रयोग होने हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खरी बोली	सरस्वती	भ्रामक अर्थ	साधु अर्थ
खून	क्षुण्ण; प्राकृत खूण	रक्त, लोहु	अलाभ, हानी
हथनी	हस्तिनी	हथिनी (पशु)	एक वर्ग्य स्त्री०

इस वर्ग्य स्त्री का रतिमञ्जरी में वर्णन इस प्रकार है--

स्थूलाधरा स्थूलनितम्ब बिम्बा स्थूलाङ्गुलिः स्थूलकुचा सुशीला ।
कामेत्सुका गाढरतिप्रिया च नितान्तभोक्त्री खलु हस्तिनी स्यात् ।८

सड़ाक	स्राक	सडाक ध्वनि	शीघ्रता
ससुर	स-असुर	श्वसुर	असुरके समान, राक्षस जैसा
लङ्का	लङ्का	लङ्का नगरी	व्यभिचारिणी स्त्री, वेश्या,

उपरोक्त वाक्यों में रुपयों का खून (रक्त) नहीं हो सकता है; स्त्री हथिनी (पशु) की चाल नहीं चल सकती है; डण्डा सड़ाक की ध्वनि नहीं करता है; बालक जिसके सन्तान भी न हो श्वसुर नहीं बन सकता है तथा स्त्री लङ्का नगरी नहीं हो सकती है। अतः शब्दों के अर्थ उनके प्रयोग के अनुसार वही होंगे जो उन शब्दों के साधु शब्द के सरस्वती भाषा में होते हैं ।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि भाषा में जितने भी शब्द व्यवहार में आते हैं वह सभी सार्थक होते हैं । जिस वाक्य में शब्दों का परिज्ञान नहीं ह पाता है वह वाक्य नगाड़े की ध्वनि के समान उच्चारित होता हैं । अतः शब्दों को साधुत्व और असाधुत्व की व्यवस्था भी अर्थ विशेष में होती है ।

साधु शब्द सीखते समय बालक असाधु शब्द का उच्चारण करते हैं, किन्तु जब कोई बालक असाधु शब्द का प्रयोग करता है तब साधु शब्द समझने वाला विद्वान असाधु शब्द से साधु शब्द का अनुमान कर लेता है और उसी अनुमान के द्वारा अर्थ बोध होता है। परन्तु पार्श्वस्थ बालक को तो बीच के अनुमान का ज्ञान नहीं होता है, वह असाधु (अपभ्रंश) शब्द को ही साधु शब्द मान बैठता है और उसे असाधु (अपभ्रंश) शब्द से ही अर्थ बोध होने लगता है । अतः जो साधु शब्द का प्रयोग करने के स्थान पर अशक्ति अथवा प्रमाद से असाधु (अपभ्रंश) शब्द का प्रयोग करता है, उसे उस असाधु शब्द से जो भी अर्थ प्रतीत होता है वह साधु शब्द के व्यवधान से प्रतीत होता है (अर्थात साधु शब्द अनुमान द्वारा ही प्रतीत होता है) । किन्तु जो साधु शब्द नहीं जानते, उन्हें असाधु शब्द सुनने से साधु शब्द का स्मरण भी नहीं हो पाता, उनके लिये तो असाधु शब्द ही वाचक हो जाता है। इस प्रकार असाधु (अपभ्रंश) शब्द ही वाचक हो जाते हैं किन्तु उनका अर्थ साधु शब्दों के ही अनुसार रहता है। असाधु (अपभ्रंश) शब्दों की उत्पत्ति का कारण साधु शब्द जानने की शक्ति न देना है और उन शब्दों के अनुरूप होने से अर्थ बोध कर लिया जाता है । जैसे प्रत्यय के बदलने पर भी शब्द अर्थ का बोधक होता है, वैसे ही अपभ्रंश शब्द

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थ का बोधक होता है। शब्द के द्वारा अर्थ की प्रेरणा होने से साधु शब्द और असाधु (अपभ्रंश) शब्द के समान अर्थ होते हैं। अतः असाधु (अपभ्रंश) शब्द साधु शब्द के वाचक बन जाते हैं। इस प्रकार खरी बोली के अपभ्रंश शब्दों के वही अर्थ हैं जो उन शब्दों के सरस्वती भाषा में थे।

सरस्वती भाषा का साहित्यिक रूप संस्कृत है। सरस्वती और संस्कृत के सभी शब्द (धातुओं को छोड़ कर) एक ही हैं और उन शब्दों के अर्थ और व्याकरण कोटियाँ भी एक ही हैं, केवल उन शब्दों के लिङ्ग विधान में अन्तर है। सरस्वती भाषा में शब्दों का लिङ्ग प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार हैं। इस प्रकार संस्कृत शब्दों के लिङ्ग प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार जान कर संस्कृत कोश को ही सरस्वती भाषा के कोश के लिये काम में लाया जा सकता है। अतः सरस्वती भाषा के शब्दों के अर्थ संस्कृत कोशों में देखे जा सकते हैं। इस भाषा (संस्कृत) के शब्दों में आदि काल से आज तक कोई भी मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है। यह एक दैवी वाक् अनादिनिधना अजरा अमरा है। संस्कृत भाषा में एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो किसी काल में अन्य रूप में प्रयुक्त होता रहा हो और उत्तर काल में उसमें रूप परिवर्तन होकर भी वह संस्कृत भाषा का ही अङ्ग बना रहा हो। अतः संस्कृत अर्थात सरस्वती भाषा के शब्दों को ही नित्य या साधु शब्द मानना चाहिये।

व्याकरण

यद्यपि अपभ्रंश शब्दों का अर्थ साधु शब्दों के अर्थ के समान ही होता है, तथापि अपभ्रंश शब्दों के अक्षर-विन्यास इतने भ्रष्ट हो गये हैं कि एक अपभ्रंश शब्द किसी अन्य साधु शब्द का ही परिवर्तित रूप प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार उस अपभ्रंश शब्द के अर्थ में भ्रम हो सकता है। साधु असाधु शब्दों का तत्त्व ज्ञान व्याकरण के अभ्यास से हो सकता है। जैसे **कायमल** (रोग) चिकित्सा से दूर होता है, **बुद्धिमल** (राग-द्वेष) अध्यात्म शस्त्र से दूर होता है, उसी प्रकार वाणी का **मल** (अपभ्रंश) व्याकरण द्वारा दूर किया जाता है। अतः चिकित्सा शास्त्र और वेदान्त शास्त्र मनुष्य के जीवन का उपयोगी शास्त्र होने की भांति व्याकरण शास्त्र भाषा के जीवन का उपयोगी शास्त्र है। शब्दों के ज्ञान की सुगमता के लिये व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है, व्याकरण पढ़े बिना किसी सुगम रीति से शब्द ज्ञान शक्य नहीं है। महामुनि पतञ्जलि ने महाभाष्य में कहा है—व्याक्रियन्ते शब्दा अनेनेति शब्द ज्ञान जनकं **व्याकरणम्**, अर्थात जिससे साधु शब्द का ज्ञान हो उसी का नाम व्याकरण है।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में व्याकरण-शास्त्र के विशेषज्ञ तथा अनभिज्ञ व्यक्तियों की तुलना बड़ी ही मार्मिक रीति से की गई है। ऋग्वेद का १०/७१/५ मन्त्र यह है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्ये उशती सुवासाः ।।

अर्थात व्याकरण से अनभिज्ञ व्यक्ति एक ऐसा जीव है जो वाणी को देखता हुआ भी नहीं देख पाता अर्थात वाणी का अध्ययन करने पर भी उसके यथार्थ स्वरूप को जान नहीं पाता है । वैसे ही जो वैयाकरण नहीं है वह उस वाणी को सुनकर भी सुन नहीं पाता (अर्थात उसके लिये वाणी अश्रुत सी रहती है), परन्तु व्याकरण के जानने वाले के लिये वाणी अपने रूप को उसी प्रकार अभिव्यक्त कर देती है जैसे कोई कामिनी स्त्री सुन्दर वस्त्रों द्वारा सजी हुई होने पर भी पति के लिये अपने शरीर को प्रकट कर देती है । अतः वाणी हमारे निकट अपना स्वरूप प्रकट कर दे, इसके लिये व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है ।

साधु शब्द के परिज्ञान के मूल आधार

हमने स्पष्ट शब्दों में बताया है कि हमारी भाषा (हिन्दी खरी बोली) के सभी शब्द वही है जो सरस्वती भाषा में प्रचलित थे । काल तथा व्यक्तिगत उच्चारण के भेद से सरस्वती भाषा के अधिकांश शब्दों के अक्षर-विन्यास अब इतने भ्रष्ट हो गये हैं कि यह ध्यान में भी नहीं आ सकता है कि यह शब्द सरस्वती भाषा के किसी शब्द का ही परिवर्तित भ्रष्ट रूप है । हमारी भाषा में प्रचलित अनेक ऐसे शब्द हैं जिनके अक्षर-विन्यस तो एक ही हैं परन्तु उनके अर्थ तथा व्याकरण कोटियां और लिङ्ग पृथक पृथक हैं और वह विभिन्न सरस्वती शब्दों के भ्रष्ट रूप हैं । अतः केवल ध्वनि सामय के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि हमारी भाषा में प्रचलित कोई शब्द वही है जो सरस्वती भाषा का था । हमारी भाषा में प्रचलित किसी भ्रष्ट शब्द के साधु शब्द परिज्ञान के हेतु हमें उन शब्दों के अर्थ पर ध्यान देना तथा उन शब्दों की व्याकरण से मीमांसा करना अनिवार्य हो जाता है । साधु शब्द के परिज्ञान के हेतु चार मुख्य तत्त्व विचारणीय होते हैं ।

१. **अर्थ**—भ्रष्ट शब्द का वही अर्थ होगा जो साधु शब्द का सरस्वती भाषा में था और जो उस साधु शब्द का संस्कृत शब्द कोशों में दिया हुआ हो ।

२. **व्याकरण कोटी**—भ्रष्ट शब्द की वही व्याकरण कोटी होगी जो साधु शब्द की होगी । अर्थात यदि कोई भ्रष्ट शब्द संज्ञा है तो साधु शब्द भी संज्ञा ही होगा । यदि कोई भ्रष्ट शब्द संज्ञा है तो वह किसी विशेषण शब्द का परिवर्तित रूप नहीं हो सकता है, अतः उस शब्द का साधु शब्द भी संज्ञा ही होगा ।

३. **व्याकरण उपकोटी**—भ्रष्ट शब्द और साधु शब्द दोनों व्याकरश के अनुसार एक ही उपकोटी के होंगे । यह नहीं हो सकता कि कोई भ्रष्ट शब्द संज्ञा—प्राणिवाचक हो और साधु शब्द संज्ञा–अप्राणिवाचक हो ।

४. **व्याकरणिक लिङ्ग**—भ्रष्ट शब्द यदि संज्ञा है तो वह शब्द और साधु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्द दोनों एक ही लिङ्ग के होंगे। यह नहीं हो सकता कि भ्रष्ट शब्द पुलिङ्ग हो और साधु शब्द स्त्री लिङ्ग हो। अर्थात भ्रष्ट शब्द का जो लिङ्ग खरी बोली में प्रचलित हो साधु शब्द का वही लिङ्ग प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार होना चाहिये। यह ध्यान रहे कि अनेक शब्दों के व्याकरणिक लिङ्गों का पूर्वी हिन्दी में अशुद्ध प्रयोग होता है, जैसे 'दही' शब्द का साधु शब्द 'दधि' है ('ध' महाप्राण है जिसका उच्चारण 'ह' होता है)। यह शब्द इकारान्त होने के कारण सरस्वती भाषा में स्त्री लिङ्ग होगा और हमारी भाषा में भी यह शब्द स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयोग होता है, किन्तु पूर्वी हिन्दी में यह शब्द पुलिङ्ग है। यह भूल कामता प्रसाद गुरु और किशोरी दास वाजपेयी ने अपने-अपने व्याकरणों में तथा नागरी प्रचारणी सभा ने अपने शब्द कोश में की है।

उपरोक्त चारों तत्त्वों के अधुसन्धान से यदि यह विदित हो कि भ्रष्ट शब्द तथा साधु शब्द एक ही हैं तभी हमें साधु शब्द का परि ज्ञान हो सकता है। किसी एक भी तत्त्व के सामय न रहने पर दोनों शब्द भिन्न-भिन्न होंगे।

अर्थ परिवर्तन वा भ्रामक व्युत्पत्ति

एक पुस्तक 'हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में अर्थ परिवर्तन' नामक प्राची प्रकाशन मेरठ से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक के प्राक्कथन के अनुसार इसमें लगभग तीन सौ संस्कृत शब्दों में अर्थ परिवर्तन का विवेचन किया गया है। यह कार्य १९५३ से १९५७ तक आगरा विश्वविद्यालय और भारत सरकार की अनुसन्धान वृत्तियों के अधीन किया गया था और इस शोध कार्य पर आगरा विश्वविद्यालय ने पी०एच०डी० की उपाधि दी थी। यदि इस पुस्तक में दिये हुये सभी शब्दों की आलोचना की जाय तो हमें एक पूरी पुस्तक लिखनी पड़ेगी। इस पुस्तक में किस प्रकार शब्दों का अर्थ परिवर्तन दिखाया है उसका एक आदर्श पाठकों के सामने रखते हैं। वह लिखता है कि--

'चुड़ा' शब्द का प्रयोग यद्यपि आधुनिक साहित्यिक हिन्दी में नहीं किया जाता, किन्तु ग्रामीण बोलचाल की भाषा में 'चूड़ा' अथवा 'चूहड़ा' पु० शब्द 'भंगी' अर्थ में प्रचलित है। संस्कृत में चूड़ा' शब्द का यह अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'चूड़ा' स्त्री० शब्द का मौलिक अर्थ है—'चोटी, शिखा'। संस्कृत में चूड़ा' शब्द का प्रयोग मुर्ग या मोर की कलगी, सिर चूड़ाकरण संस्कार, शिखर आदि अर्थों में भी पाया जाता है।

भंगी को 'चूड़ा' (='सिर' अर्थात् 'श्रेष्ठ') उसको आदरार्थ श्रेष्ठ शब्द द्वारा संबोधित करने की भावना से ही कहा गया होगा। आज कल शहरों में भी 'भंगी' को मेहतर (<सं० 'महत्तर') कहा जाता है, जिसका मौलिक अर्थ है—'अधिक बड़ा'।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अब हम चूड़ा और चूहड़ा शब्दों की अपने नियमानुसार मीमांसा करेंगे—

चूड़ा—कोश में इस शब्द के तीन मुख्य अर्थ हैं। (१) शिखर, चोटी, मुर्गे या मोर की चोटी, (२) कलाई का आभूषण, चूड़ी, (३) बालों की चोटी, चुटिया। व्याकरण के अनुसार यह शब्द, संज्ञा, अप्राणी वाचक, और स्त्रीलिङ्ग है।

चूहड़ा—अर्थ मेहतर, व्याकरण के अनुसार संज्ञा, प्राणीवाचक और पु० है।

टिप्पणी :—इस प्रकार का चमत्कार, अप्राणीवाचक को प्राणीवाचक, स्त्रीलिङ्ग को पुल्लिङ्ग क्या विश्व का कोई वैज्ञानिक बनाकर दिखा सकता है ! इन दोनों शब्दों का समाधान इस प्रकार है।

चूड़ा – इस शब्द के तीन मुख्य अर्थों के अनुसार ही तीन स्त्री० शब्द खरी बोली में प्रचलित है, चोटी, चूड़ी और चुटिया।

चूहड़ा—यह सर० चूड़ा शब्द का परिवर्तित रूप नहीं है, इस शब्द की उत्पत्ति इस प्रकार है—

च्यु—अर्थ नीचे गिरा हुआ, फेंका हुआ, बाहर निकाला हुआ, अर्थात कूड़ा, करकट आदि, दूर किया हुआ अर्थात विष्ठा, मल आदि, देखो आप्टे पृ. ७१७, मो० वि० पृ० ४०३ हर:—अर्थात ले जाने वाला, हटाने वाला, दूर करने वाला आदि। च् और य की सन्धि होने से य का लोप हो गया। र का उच्चारण ड़ होता है।

अत: च्यु हर: = चूहड़ा, प्राणीवाचक, पु० इस प्रकार यह दोनों शब्द अपने-अपने अर्थों में सिद्ध होते हैं और भिन्न भिन्न है। इनमें कोई अर्थ परिवर्तन नहीं हुआ है।

महत्तर-मेहतर

अब इन दोनों शब्दों की मीमांसा करते हैं—

महत्तर–सर० महत् + तर। महत् अर्थ बड़ा, तर एक तद्धित है जो तुलनार्थ प्रयोग होता है। महत्तर का अर्थ बड़े से भी बड़ा हुआ। इस शब्द का प्रयोग किसी क्षेत्र के राजा आदि के लिये भी होता है और बड़े के लिये भी, यथा चितराल का महत्तर, महत्ता आदि।

मेहतर—सर० मेह-अर्थ प्रस्राव + तृ अर्थ नष्ट करना पराजित करना, हटाना आदि। मेहतर = मेह + तर: अर्थात पेशाब आदि को नष्ट करने वाला या हटाने वाला दोनों शब्द अपने-अपने अर्थानुसार सिद्ध होते हैं और भिन्न-भिन्न हैं। इनके अर्थों में कोई परिवर्तन नहीं है।

इसी पुस्तक में पृ० ३६६ पर यह भी लिखा है कि 'चूड़ा' शब्द संस्कृत भाषा में द्रविड़ भाषाओं से आया हुआ माना जाता है। उसका कारण यह दिया है कि इसी शब्द चूड़ा से ध्वनि में और समान अर्थ में मिलते हुये शब्द, तमिल, मलयालम और कन्नड़ भाषाओं में भी प्रचलित हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम दिखा चुके हैं कि सरस्वती संसार की आदि मूल भाषा है। इससे पूर्व संसार में और कोई भाषा नहीं थी। अत: सरस्वती भाषा में सभी शब्द अपने ही हैं, इसमें एक भी शब्द किसी अन्य भाषा के होने का प्रश्न ही नहीं उठता। दक्षिण भारत की भाषाओं में इस प्रकार के शब्दों के प्रचलित होने से हमारा कहना और भी दृढ़ हो जाता है कि दक्षिण भारत की भाषाओं की उत्पत्ति भी सरस्वती भाषा से उसी प्रकार हुई थी जिस प्रकार उत्तर भारत की अन्य भाषाओं की। दक्षिण भारत की भाषायें भी वैसी ही आर्य भाषायें हैं जैसी उत्तरी भारत की भाषायें हैं।

यौगिक शब्द

सरस्वती भाषा में शब्द नित्य होता है। इस भाषा में सभी वर्ण, उपसर्ग और प्रत्यय सार्थक होते हैं किन्तु वह शब्क नहीं होते हैं। अत: इनका भाषा में स्वतन्त्र रूप से प्रयोग नहीं हो सकता है। इनको केवल शब्दों में जोड़कर अन्य शब्द बनाये जाते हैं। वर्ण, उपसर्ग और प्रत्यय अपना स्वतन्त्र अर्थ प्रकट करते हैं और शब्दो के साथ सन्धि होने पर वह अपने अर्थों के अनुसार शब्दों के अर्थों में सुधार करते हैं, वढ़ाते हैं और अर्थ में परिवर्तन भी कर देते हैं। दो या अधिक शब्दों को जोड़कर भी अन्य शब्द बनाये जाते हैं। संस्कृत कोशों में भी कोई ऐसा उपसर्ग या प्रत्यय नहीं दिया रहता जो अर्थहीन हो। जो शब्द हमारी भाषा में प्रचलित है अधिकांश वह सभी शब्द संस्कृत कोशों में दिये रहते हैं। फिर भी वहुत से ऐसे शब्द हैं जिनका ज्ञान संस्कृत कोशों से नहीं हो पाता है। इस प्रकार के शब्दों का साधु रूप जानने के लिए स्वतन्त्र रूप से बुद्धि से काम लेना पड़ता है। यदि कोई शब्द कोश में नहीं दिया हो तो पहले उस शब्द के प्रचलित अर्थ पर ध्यान देकर यह देखना चाहिये कि इस शब्द का कौन सा भाग अर्थ के अनुसार शब्द हो सकता है और उस शब्द का विग्रह करके और अवयवों का अर्थ जानकर शब्द सरलता से समझ में आ सकता है। इस प्रकार के कुछ शब्दों के उदाहरण देते हैं। इन शब्दों के अर्थ व्याकरण कोटि और लिङ्ग (प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार) वही होंगे जो उनके खरी बोली के क्षेत्र में लोक व्यवहार में आते हैं।

टूम—सोने का आभूषण, सर० (टु: + मणि:) सं० स्त्री० टु: = सोना, मणि: आभूषण।

महरा—पानी भरने वाला, सर० (मम् + हार:) सं० पु० मम् = पानी, जल, हार: = ले जाने वाला।

कहार—पानी भरने वाला, सर०—(कम् + हार:) सं० पु० कम् = जल हार: = ले जाने वाला।

पायल, पायलया—पैर का आभूषण, सर०—(पाद: + लता) सं० स्त्री० पाद: = पैर, लता = बेल। प्रा० में लता का उच्चारण लया होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्तल—केले के पत्ते का टुकड़ा जिस पर भोजन परोसा जाता है। अब छोटे पत्तों को जोड़कर भी पत्तल बनाते हैं, सं० स्त्री० सर० (पत्रम् + कला) सं० स्त्री० प्रा० में कला का उच्चारण अला होता है, कला = अंश, भाग।

बुक्कल—साड़ी के पल्ले को या चादर आदि को छाती के ऊपर को ओढ़ना, सं० स्त्री०। सर० (बुक्कम् + लता) सं० स्त्री० बूक्कम् = छाती।

बगड़—घेर या अहाता जिसमें कई परिवार रहते हों, सं० पु० सर० (व + गड:) व = निवास, आवास, गड: = घेर, कोट।

छज्जा—छत का वह भाग जो दीवार से आगे निकला रहता है। सं० पु० सर० (छदि + ज:) सं० पु० छदि = छत, ज: = उत्पन्न।

बारजा—घर के फाटक के ऊपर का कमरा, सं० पु०। सर० (वार: + ज:) सं० पु० वार: = फाटक या घर का द्वार, ज: = उत्पन्न।

छुआरा—खजूर की जाति का सूखा फल, सर० (छ + आहार:) सं० पु० छ = शुद्ध, स्वच्छ।

तडका—प्रभात, प्रात:काल, सर०—(तड् + क:) स० पु० तड् = चमकना दिखाई देना, क: = उज्जाला, प्रकाश।

कण्ठला—गले में पहनने का आभूषण, सर०—(कण्ठम् + लय:) स० पु० लय: = लगा हुआ।

तेंदुआ—एक माँसाहारी जानवर जो चीते की जाति का होता है, सर०—(तीक्ष्ण + दंष्ट्रक:) सं० पु०।

मसूड़ा—दान्त के ऊपर का मांस, सर० (मांसम् + ऊढ) सं० पु०।

दन्तोन—दान्त भाञ्जने की पतली लकड़ी, सर० (दन्त: + अवनी) सं० स्त्री० अवनी = अङ्गुली।

कठोता—काष्ठ का बासन जिस में पानी भरा होता है और चमार जूते भिगोता है, सर०—(काष्ठम् + अवत:) स० पु० अवत: = जल कुण्ड।

रेवड़ी—एक प्रकार की गोली के आकार की मिठाई, सर० (रयि + वटी) सं० स्त्री० रयि = भोजन, खाना।

धनदा—व्यवसाय, व्यापार, सर० (धनम् + द:) सं० पु० द: = पैदा करना उत्पादन करना।

बखेड़ा—रहने के स्थान को उलट-पुलट दिशा में डालना, सर० (व + खेटम) सं० पु० व = आवास, निवास, खेटम् = निरानन्द, दु:खित।

कुरुड़ी—विष्ठा मल आदि का ढेर या स्थान, सर० (कु + रुढी) सं० स्त्री० रुढी = विकास, जन्म।

हंसुली—एक आभूषण जो गले में पहना जाता है, सर० (अंस: + ली)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सं० स्त्री०, अंस = गले और कन्धे के बीच की हड्डी।

बीजली—गुठली, सर० (बीजम् + ली) सं० स्त्री०, ली = लगी हुई।

चोकर—आटे का छना हुआ भाग, सर०—(च + अवकर:) सं० पु० च = जिसमें बीज न हो, अवकर = बुहार कर इकट्ठा किया हुआ, गिरा हुआ।

पटाका—सर० (पट: + क:) सं० पु० पट: = कोई सुन्दर बना वस्तु + क: = आग, ध्वनि।

रगड़ना—कर्मवाचक संज्ञा, सर० (र + घर्षनम्) सं० पु० र = शीघ्रता।

रपटना—कर्मवाचक संज्ञा, सर० (र + पतनम्) सं० पु०।

रेवड़—भेड़-बकरियों का समूह, सर० (रै—वार:) सं० पु० रै = सम्पत्ति, धन, वार: = भेड़-बकरीयों का समूह।

खटखा—प्रहार का भय, सर० (खट: + ख:) सं० पु० खट: = प्रहार, ख: = कोई कर्म।

गण्डासा—कुटटी काटने का यन्त्र, सर० (गण्ड: + अस्त्रम्) सं० पु० गण्ड: = गांठ, जोड़।

धरोहर—ऋण के समय वस्तु या आभूषण को बन्धी रखना, जो ऋण चुका कर बापस हो जाती है, सर० (धर + अवहर = धरोहरण का स्त्री) सं० स्त्री. धर = अपने अधिकार में रखना, अवहरणम = वापस देना।

पतङ्ग—सर० (पत्रम् + अङ्गम्) सं० पु०

गुड्डी—पतंग, सर० (ग + उड्डी) सं० स्त्री० ग = जो जाती है, उड्डी = उड़ने को।

खाद—मल, विष्ठा, गोवर, कूड़ा-करकट इत्यादि, सर० (ष: + आदि) सं० स्त्री० ष: = मल, विष्ठ, कूड़ा-करकट, गोबर। संस्कृत में ष: शब्द के स्थान पर पुरीष: अर्थात पुरी का ष: प्रयोग होता है, किन्तु सरस्वती में केवल ष: ही प्रयोग होता है।

खुड्डी—वह स्थान जहां विष्ठा करते हैं सर० (ष: + उड्डि) सं० स्त्री०

लकड़बग्घा—बाघ की जाति का एक माँसाहारी पशु, सर० (लगड—व्याघ्र) सं० पु० लगड = सुन्दर।

बाखर—खाण्ड आदि का उबाला हुआ परिपूर्ण शर्बत जिसे मिठाई बनाने में प्रयोग करते हैं, सर० (व + अक्षरम्) सं० पु०, व = बलवत, परिपूर्ण, अक्षरम् = पानी, जल।

बिस्वांशी—वेधे का बीसवां भाग, (सर० विंश: + अंशि) सं० स्त्री०

ठींकड़ा—टूटे घड़े का गोल टुकड़ा, सर० (ठ: + कटाह:) सं० पु० ठ: = गोलाकार, कटाह = टूटे घड़े का टुकड़ा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहरना—नख काटने का छुरा, सं० पु०, सर० (नखम् + हरण:) सं० पु० ।

धोतती, धोती—पुरुषों का टाँगों में पहनने का कपड़ा, सर० (अध: + अवतति:) सं० स्त्री० । अध: = नीचे, अवतति = फैलाव, प्रसार (स्त्रीयाँ धोती नहीं पहनती हैं, वह अपने शरीर का ऊपर का भाग भी ढकती हैं । उनके इस प्रकार के वस्त्र को साड़ी (सर० शाटी) कहते हैं ।

तियल—स्त्रीयों के चोटी से एड़ी तक के पहनने के पूरे कपड़े, सर० (स्त्री + लता), स० स्त्री० ।

तागडी, तगड़ी—कूल्हे के ऊपर पहनने का आभूषण या तागा जो एक लड़ी के समान होती है, सर० (त: + कटी) सं० स्त्री० त: = कूल्हा, कटी = कड़ी, लड़ी ।

कोर—बाहर को निकला हुआ जोड़, सर० (क + अवरा) स० स्त्री० क = जोड़, अवरा = ओर ।

झांसा—धोखा, सर० (झ + अंस:) सं० पु० झ = नष्ट करना, अंस: = अंश ।

चकमा—धोखा, सर० (च: + कर्मन्) सं० पु० च: = चोर, कर्मन् = काम, कार्य ।

चौकन्ना—चारों ओर ध्यान रखने वाला, सावधान, वि० सर० (चतुर + कर्ण:) वि० चतुर = कुशल, सावधान ।

जलेवी—एक प्रकार की मिठाई जिसमें बाखर भरा रहता है, सर० (जलम् + आपी) सं० स्त्री० आपी = मोटी प्रबल ।

कुश्ती—सर० (कु + क्षति:) सं० स्त्री० कु = थोड़ी, क्षति: = चोट ।

सवेरा—प्रात:काल सर० (सु + वार:) स० पु० सु = अच्छा, वार: = समय ।

कङ्घालना—पानी से धोना, सर० (कम् + क्षालनम्) स० पु० कम् = पानी, क्षालनम = धोना ।

कगर—भीत का सबसे ऊपर आगे निकला हुआ भाग, स० पु० सर० (क: + अग्रम्) सं० पु० क: = जोड़ अग्रम् = प्रमुख, उच्चतम आदि ।

झूमका—कानों में पहनने के आभूषण, सर० (झू + मकर:) सं० पु० झू: = समुदाय, मकर: = कान का कुण्डल या आभूषण ।

बखिया—सिलाई, सर० (व्ये + क्रिया) सं० स्त्री० व्ये = सीना, सिलाई करना ।

अटकल—अनुमान, कल्पना, सर० (अट् + कला), सं० स्त्री० ।

ढपड़ा—एक प्रकार का ढोल जिसमें परदे की भाँति एक ओर चमड़ा लगा रहता है, (ढ: + पट:) सं०, पु० ढ: = एक प्रकार का ढोल ।

समान अक्षर—शब्द पृथक

खरी बोली में बहुत से शब्दों के अक्षर-विन्यास तो परस्पर समान रूपी होते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं किन्तु उन शब्दों के अर्थ, व्याकरण कोटियाँ और लिङ्ग भिन्न-भिन्न होते हैं। यदि इन शब्दों के साधु शब्द ज्ञात किये जायें तो यह प्रतीत होगा कि इन साधु शब्दों के अर्थ, व्याकरण कोटियां और लिङ्ग क्रमश: वही है जो खरी बोली में उन शब्दों के हैं। अर्थात खरी बोली के उन समान रूपी शब्दों के साधु शब्द भी पृथक-पृथक होते हैं। इस प्रकार के कुछ शब्दों की मीमांसा करने से यह पूर्णत: सिद्ध हो जायेगा कि खरी बोली के शब्द सरस्वती भाषा के शब्दों के विकृत रूप ही हैं और खरी बोली कोई नई या स्वतन्त्र भाषा नहीं है।

बाल—स० पु०, केश—(सर० बाल:)
बाल—सं० स्त्री, मञ्जरी—(सर०वल्लरी)

टीका—सं० पु०, तिलक—(सर० तिलक:)
टीका—सं० स्त्री०, टिप्पणी—(सर० टीका)

कल—सं० पु०, आने वाला दिन—(सर० कल्यम्)
कल—सं० स्त्री०, प्रयोगात्मक कला, (सर० कला)
कल—सं० स्त्री०, लड़ाई, झगड़ा, (सर० कलि:)

पीपल—सं० पु०, एक वृक्ष (सर० पिप्पल:)
पीपल—स० स्त्री०, एक औषधी [सर० पिप्पली]

जोत—सं० पु०, हल या गाड़ी के जुए की रस्सी जिसमें बैल को बांध देते हैं, (सर० योक्त्रम्)।
जोत—सं० स्त्री०, जीतने की क्रिया, जैसे यह खेत मेरी जोत में है, (सर० योजनम् का स्त्री० योज)

हार—सं० पु०, गले का आभूषण, हार (सर० हार:)
हार—सं० स्त्री०, पराजय (सर० हारि:)

सार—सं० पु०, निचोड़, रस, सत (सर० सारम्)
सार—सं० स्त्री०, गोट (सर० सारि:, सारी)

तारा—सं० पु०, सितारा, नक्षत्र (सर० तार:)
तारा—स० स्त्री०, आँख की पुतली (सर० तारा)
रास—सं० पु०, एक प्रकार का नाच (सर० रास:)
रास—स० स्त्री०, घोड़े की बाग, मुखरी (सर० रश्मि:)
मत—सं० पु०, सिद्धान्त, उपदेश, (सर० मतम्)

मत—सं० स्त्री०, बुद्धि, योजना (सं० मति:)
जगत—सं० पु०, संसार (सर० जगत्)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जगत—सं० स्त्री०, पृथ्वी, कुएँ की जगत (सर० जगती)

पाद- स० पु०, पैर. पाया, श्लोक का एक चरण (सर० पाद:)

पाद—सं० पु०, अपान वायु छोड़ना (सं० पर्द)

सूप—सं० पु०, रसा, यूष (सं० सूप:)

सूप—सं० पु०, छाज सर० (सूर्प:, शूर्पम्)

कुंड़ा—सं० पु०, बासन के कुण्डे, कढ़ाई के कुण्डे (सर० कर्ण:)

कूँडा—सं० पु०, पानी रखने का मिट्टी का कुण्डा (सर० कुण्ड:)

रसा—सं० पु०, रस, सार (सर० रस:)

रसा—सं० स्त्री०, पृथ्वी, भूमि (सर० रसा)

पौ—सं० स्त्री०, पानी पिलाने की प्याऊ (सं० प्रपा)

पौ—सं० स्त्री, प्रभात, दीप्ति (सर० प्रभा)

पौ—सं० स्त्री०, वह दाव जिससे गोट घर से बाहर निकलती है, (सर० प्रव्रज्या) सं० स्त्री०

खाट—सं० स्त्री०, अर्थी (सर० खट्टि:)

खाट—स० स्त्री, पल्यङ्क (सर० खट्वा, खट्टा)

नाम—सं० पु०, किसी व्यक्ति का नाम (सर० नामन)

नाम—अव्यय, निन्दा, झूठमूठ का कार्य, यथा—तुम मुझे नाम क्यों धर रहे हो (सर० नाम)

अच्छा—(वि) स्वच्छ, निर्मल, (सर० अच्छ)

अच्छा—अव्य०, जैसे अच्छा अब मैं जा रहा हूं, अच्छा तुम मुझे कल मिलना (सर० अच्छ-च्छा) अव्यय

साला—सं० पु०, पत्नी का भाई (सर० श्याल:)

साला—सं० स्त्री०, आवास, घर (सर० शाला)

साध—सं० पु०, जैन साधु (सर० साधु:)

साध—सं० स्त्री० दोहद, गर्भवती स्त्री के लिये उसके माता-पिता के यहाँ से भेजे खाद्य पदार्थ जो उसको बहुत प्रिये लगते थे (सर० श्रद्धा)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: ५ :

विशेषण-संज्ञा

सरस्वती भाषा के अनेक शब्दों के अन्त में विसर्ग या म् संयुक्त रहता है। विसर्ग और म् भी वर्ण ही हैं और इस प्रकार के शब्दों के अक्षर-विन्यास भिन्न-भिन्न होते हैं। संस्कृत शब्द कोशों के अवलोकन से इस प्रकार के शब्दों के पृथक-पृथक होने का ज्ञान हो जाता है। संस्कृत शब्द कोशों में अक्षर-विन्यास की दृष्टि से ऐसे शब्द एक ही शब्द के अन्तर्गत दिये रहते हैं किन्तु उन शब्दों में विसर्ग या म जोड़कर पृथक-पृथक शब्द भी दिये रहते हैं। इस प्रकार के शब्दों की व्याकरण कोटियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं जो उन शब्दों के आगे लिखी रहती हैं जिससे कि इन शब्दों के अर्थ में भ्रम न हो। हिन्दी में इस प्रकार के शब्दों को विसर्ग या म् का लोप करके लिखते हैं। हिन्दी भाषा के आधुनिक विद्वाव जिनको सस्कृत का कुछ भी ज्ञान नहीं है और जो हिन्दी को सस्कृत से पृथक भाषा समझते हैं, इस प्रकार के शब्दों को एक ही समझते हैं, और उनकी व्याकरण-कोटियों पर कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं। इन विद्वानों को व्याकरण का ज्ञान न होने के कारण इस प्रकार के शब्दों में कोई भेद प्रतीत नहीं होता है। अत: उनके लिये मधुर और मधुरम् या ग्रामीग और ग्रामीण: जैसे शब्द एक ही हैं। इस प्रकार के शब्दों में क्या अन्तर है उनकी समझ में नहीं आता है। इस प्रकार के शब्दों को एक ही मानकर वह भ्रमवश हमारी भाषा के सम्बन्ध में भ्रामक विचारों का प्रचार करते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्व ने सत्यार्थ-प्रकाश में लिखा है कि "जो संस्कृत विद्या को नहीं पढ़े वे भ्रम में पड़कर कुछ का कुछ लिखते और कुछ का कुछ बकते हैं।" हमें खेद के साथ लिखना पड़ रहा है कि उनका यह कथन केवल सस्कृत न जानने वाले व्यक्तियों के लिये ही नहीं अपितु उन विद्वानों के सम्बन्ध में भी सत्य है जो पाश्चात्य प्रणाली से शिक्षा ग्रहण करके आज विश्वविद्यालयों के संस्कृत विभागों में अध्यक्ष हैं। एक विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष अपनी एक कृति में शब्द 'मधुर' जिसका अर्थ मीठा (मधुर) है और जो व्याकरण के अनुसार विशेषण है, के सम्बन्ध में लिखते हैं—"माहुर (माधुर) अवधी (भाषा) में विष का अर्थ रखता है, शायद इसीलिये कि सङ्खिया आदि विष मिठाई में मिलाकर दिये जाते रहे हों"[1] एक अन्य विद्वान इसी शब्द 'मधुर' के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखते हैं—"भोजपुरी का एक शब्द

(१) सामान्य भाषा विज्ञान, डा० बाबूराम सक्सेना, सातवां सस्करण पृ २१०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'माहुर' है, जिसका अर्थ 'विष' है। यह देखकर कम आश्चर्य नहीं होता कि यह संस्कृत के 'मधुर' शब्द का ही परिवर्तित रूप है जिसका अर्थ मीठा होता था। यहां अर्थ में इतना अधिक परिवर्तन हो गया है, कि विश्वास भी नहीं पड़ता।''[1]

किसी भी संस्कृत कोश के अवलोकन से ज्ञात हो सकता है कि शब्द मधुर और मधुरम् भिन्न-भिन्न हैं। शब्द मधुर विशेषण और मधुरम् संज्ञा शब्द है। शब्द 'मधुर' (वि) का अर्थ मीठा है और शब्द 'मधुरम्' (संज्ञा) का अर्थ विष है। देखो आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश पृ ७६९, संस्कृत इंगलिश कोश खण्ड २, पृ १२३०, मोनियर-विलयम्स पृ ७८१। हिन्दी में शब्द मधुर भी मीठे के अर्थ में विशेषण और विष के अर्थ में संज्ञा ही है। विष मिठाई में मिलाकर दिया जाता रहा हो या नहीं इसका हमें ज्ञान नहीं है, किन्तु हमें खेद और दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि इस प्रकार के विद्वान न जाने कितने वर्षों से प्रत्येक वर्ष सहस्त्रों विद्यार्थियों को भाषा में विष (मधुरम्) मिलाकर पिला रहे हैं और उनकी मति भ्रष्ट तथा बुद्धि नष्ट कर रहे हैं।

इसी प्रकार के एक और शब्द का उदाहरण देते हैं। एक विद्वान शब्द गंवार का अर्थ परिवर्तन इस प्रकार बताते हैं—''गँवार का शाब्दिक अर्थ है 'गाँव का रहने वाला', पर आजकल इसका प्रचलित अर्थ 'असभ्य' या 'असंस्कृत' है।''[1] फिर यह लिखते हैं कि ''गँवार शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो गया है। परिवर्तन का कारण भी विचारणीय है''। उनके अनुमान से कारण यह ज्ञात होता है कि 'गँवार' का अर्थ पहले 'गांव का रहने वाला था। गांव में अधिकतर लोग असंस्कृत होते ही थे। अतः असंस्कृत होने के कारण सांकेतिक रूप में पहले यह प्रयोग चला होगा और पश्चात में अपने दूसरे अर्थ में यह शब्द रूढ़ि हो गया होगा।[2] इसी शब्द के विषय में एक अन्य विद्वान इस प्रकार लिखते हैं—गँवार शब्द ग्रामीण से बना है, सभी ग्रामवासी गँवार नहीं कहे जाते। मूर्ख व्यक्ति को गंवार कहा जाता है।''[3]

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि शब्द गंवार असभ्य या अशलील के अर्थ में विशेषण है और ग्रामवासी के अर्थ में संज्ञा है। सरस्वती भाषा अर्थात संस्कृत शब्दकोश में ग्रामीण (वि) शब्द का अर्थ असभ्य या अशलील है और ग्रामीण: संज्ञा शब्द का अर्थ ग्रामवासी है। यह दोनों शब्द पृथक-पृथक हैं। गंवार (वि) शब्द संस्कृत शब्द ग्राम्य (वि) का भी परिवर्तित रूप हो सकता है। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश खण्ड २ पृ० ६८१, मोनियर विलयम्स पृ० ३७३।

---

(१) भाषा विज्ञान, डा० भोलनाथ तिवारी, पञ्चम संस्करण पृ २१०।
(२) भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी पृ० ११०
(३) सरल भाषा विज्ञान, डा. मनमोहन गौतम पृ० २५७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्धः — बुद्धू

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी भाषा-विज्ञान विभाग के एक अध्यापक ने इस पुस्तिका के लेखक से कहा कि संस्कृत भाषा के शब्द 'बुद्धः' का ही परवर्तित रूप हिन्दी शब्द 'बुद्धू' है और इस शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो गया है। इस शब्द की ओर श्री सम्पूर्णानन्द ने भी 'हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में अर्थ परिवर्तन' नामक पुस्तिका की प्रस्तावना में उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि —'हिन्दी में संस्कृत के तत्सम और उनसे भी बढ़कर अधिक संख्या में तद्भव शब्द विद्यमान है। साधारणतः हम ऐसा मान लेते हैं कि इन शब्दों के भी हिन्दी में ठीक-ठीक वही अर्थ हैं जो संस्कृत में हैं। कुछ शब्द तो स्पष्ट ही मूल से बहुत दूर चले गये हैं। उदाहरण के लिये, बुद्धू जैसे शब्द से सभी लोग परिचित हैं। संस्कृत से लिये गये शब्दों के सम्बन्ध में जो प्रचलित धारणा है वह नितान्त भ्रान्त नहीं है, परन्तु इसके साथ ही यह भी सत्य है कि शब्दों के अर्थों में काफी (अधिक) परिवर्तन हुये हैं।" हमें खेद है कि उपरोक्त व्यक्तियों को यह भी ज्ञान न हुआ कि शब्द 'बुद्धः' संज्ञा शब्द है जिसका अर्थ है—(१) बुद्धिमान या पण्डित पुरुष, (२) बौद्ध धर्म के प्रवर्त्तक शाक्य सिंह का नाम। हिन्दी शब्द 'बुद्धु' एक विशेषण शब्द है, अतः यह 'बुद्धः' संज्ञा शब्द का परिवर्तित रूप नहीं हो सकता है। इस शब्द का साधु शब्द तो विशेषण शब्द ही होगा और सरस्वती भाषा के वह शब्द हैं—'अबुद्ध' या 'अबुध' जो विशेषण हैं और जिनका अर्थ है—मूर्ख, मूढ, बुद्धू। आप्टे पृष्ठ १६६, मो० वि० पृष्ठ ६०। 'बुद्धः' (संज्ञा) और 'अबुद्ध' (वि०) पृथक-पृथक शब्द हैं जिनके अर्थों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। व्याकरण ज्ञान के अभाव के कारण ही बुद्धिमान भी भ्रमवश बुद्धू जैसी बातें करने लगते हैं।

विश्वविद्यालयों के भाषा विज्ञान के अध्यापक संस्कृत भाषा के विशेषण शब्दों को संज्ञा शब्द बताकर, विशेषण और संज्ञा शब्दों के पृथक-पृथक अर्थ दिखाकर शब्दों के अर्थ परिवर्तन के उदाहरण देते हैं। संस्कृत कोशों के अवलोकन से विदित होता है कि सभी विशेषण शब्दों के समान रूपी संज्ञा शब्द भी होते हैं केवल उनके अन्त में विसर्ग या म् जुड़ा रहता है। कोशों में विशेषण शब्द पहले दिये रहने से वह समझते हैं कि पहले यह विशेषण शब्द था और इस शब्द से संज्ञा शब्द बना। इस प्रकार के संज्ञा शब्द विशेषण शब्दों से नहीं बनते हैं। ऋग्वेद के मं० १० सूक्त ७१ का पहला श्लोक इस प्रकार है :—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठ यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥

अर्थात बृहस्पति प्रथम पदार्थ का नामकरण करते हैं। यह उनकी शिक्षा की प्रथम सीढ़ी है। इनका जो गोपनीय ज्ञान है वह सरस्वती की कृपा से ही उत्पन्न होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे स्पष्ट है कि पहले पदार्थों के नामों का ही निर्माण हुआ और उन पदार्थों के गुणों के आधार पर ही संज्ञा शब्दों से विशेषण शब्दों की उत्पत्ति हुई। विशेषण शब्द संज्ञा शब्दों के भाग है और अक्षर-विन्यास की दृष्टि से कोशों में पहले दिये रहते हैं। संज्ञा शब्द की तुलना संज्ञा शब्द के अर्थ से और विशेषण शब्द की तुलना विशेषण शब्द के अर्थ से करनी चाहिये। ऐसा न करने से यह भाषा-वैज्ञानिक अपने को व्याकरण विद्या से विहीन ही प्रमाणित करते हैं।

इसी प्रकार के कुछ शब्दों का उदाहरण देते हैं जो बहुत रोचक है—

अधर (वि) नीच, दलित; **अधरः** (सं०) ओष्ठ; **अधरम्** (सं०) शरीर का निम्नतर भाग।

अचल (वि) स्थिर, दृढ़; **अचलः** (सं० पु०) पहाड़, चट्टान; **अचला** (सं० स्त्री०) पृथ्वी; **अचलम्** (सं०) ब्रह्म।

उत्तम (वि०) श्रेष्ठ, प्रमुख; **उत्तम** (सं० पु०) विष्णु; **उत्तमा** (सं० स्त्री०) श्रेष्ठ महिला।

उत्तर (वि०) उत्तरीय, अपेक्षाकृत ऊँचा, उच्चतर, श्रेष्ठ; **उत्तरः** (स० पु०) विष्णु, शिव, भविष्यत्काल; **उत्तरा** (सं० स्त्री०) उत्तर दिशा; **उत्तरम्** (सं० पु०) प्रश्न का उत्तर, प्रतिवाद, समास का अन्तिम पद।

काण (वि०) काना, एक आंख वाला; **काणः** (सं० पु०) काकः।

काल (वि०) काला; **कालः** (स० पु०) काला रङ्ग, समय, उपयुक्त समय, ऋतु, यम—मृत्यु का देवता; **काली** (स० स्त्री०) कालिमा, मसी, पार्वती की उपाधि, शिव की पत्नी, रात, काले रङ्ग की स्त्री, काले बादलों की पङ्क्ति; **कालम्** (स०) लोहा।

कराल (वि०) भयानक, भयंकर, कैड़ा; **करालः** (सं० पु०) कोलतार; **कराला** (स० स्त्री०) दुर्गा का प्रचण्ड रूप; **कराली** (सं० स्त्री०) अग्नि की सात जीभों में से एक का नाम; **करालम्** (सं०) एक प्रकार का मसाला।

कुश (वि०) पागल; **कुशः** (सं० पु०) एक प्रकार का घास, राम का पुत्र; **कुशा** (सं० स्त्री०) रास, बाग; **कुशी** (सं० स्त्री०) हल की फाली; **कुशम्** (सं०) पानी।

कुशल (वि०) उचित, योग्य, चतुर, प्रवीण; **कुशलम्** (सं०) कल्याण, गुण **कुशलः** (सं० पु०) शिव की उपाधि।

क्षर (वि०) जङ्गम; **क्षरः** (सं० पु०) बादल; **क्षरम्** (सं०) पानी।

क्षार (वि०) खारा; **क्षारः** (स० पु०) रस, शीरा, कोई खारा पदार्थ, खर, नमक, ठग; **क्षारम्** (सं०) पानी, काला नमक।

खर (वि०) खरदरा, कठोर, निष्ठुर, क्रूर; **खरः** (सं० पु०) गधा, खच्चर, एक राक्षस का नाम।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुरु (वि०) भारी, प्रशस्त, लम्बा, महत्त्वपूर्ण, दुःसाध्य, प्रचण्ड, आदरणीय अभीष्ट, प्रिय, अहंकारी; **गुरुः** (सं० पु०) पिता, आदरणीय पुरुष, शिक्षक, अध्यापक, स्वामी, नये सिद्धान्त का व्याख्याता।

गौर (वि०) गोरा, उज्ज्वल, चमकीला, गुलाबी; **गौरः** (सं० पु०) श्वेत रङ्ग, चन्द्रमा, गोरह अर्थात साण्ड; **गौरम्** (सं०) सोना, केसर।

चण्ड (वि०) चण्ट, प्रचण्ड, उग्र, उष्ण; **चण्डः** (सं० पु०) राक्षस; **चण्डम्** (सं०) क्रोध, उष्णता।

चपल (वि०) चञ्चल, चलचित्त, अस्थिर; **चपलः** (सं० पु०) पारा, चातक पक्षी, मछः; **चपला** (सं० स्त्री०) बिजली, मदिरा, लक्ष्मी, जिह्वा।

चञ्चल (वि०) चलायमान, कम्पमान; **चञ्चलः** (सं० पु०) प्रेमी, वायु; **चञ्चला** (सं० स्त्री०) बिजली **लक्ष्मी**।

चित्र (वि०) उज्वल, चितकबरा; **चित्रः** (सं० पु०) रङ्ग बिरङ्गे रङ्ग का; अशोक वृक्ष; **चित्रम्** (सं०) चित्रकारी, प्रतिमा, धब्बा।

चण (वि०) विख्यात, प्रसिद्ध, कुशल; **चणः** (सं० पु०) चना।

चेतन (वि०) जीवित, दृश्यमान; **चेतनः** (सं० पु०) सचेत प्राणी, मनुष्य, आत्मा, मन, परमात्मा; **चेतना** (सं० स्त्री०) ज्ञान, समझ, जीवन।

चिक्कण (वि०) चिकना; **चिक्कणः** (सं० पु०) सुपारी का वृक्ष; **चिक्कणा** (सं० स्त्री०) सुपारी फल।

जर्जर (वि०) झोझरा, जीर्ण, टूटा-फूटा, खोखला; **जर्जरम** (सं०)झण्डा।

जल (वि०) मूर्ख, जड़, मूढ़, निर्बुद्धि; **जलम्** (सं०) पानी।

ज्येष्ठ (वि०) जेठा, आयु में सब से बड़ा, प्रमुख; **ज्येष्ठः** (सं० पु०) बड़ा भाई, जेठ का महीना; **ज्येष्ठा** (सं स्त्री०) सब से बड़ी बहन, बीच की अङ्गुली; **ज्येष्ठी** (सं० स्त्री०) छिपकली, ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा; **ज्येष्ठम्** (सं०) सब से अच्छा।

धवल (वि०) श्वेत, सुन्दर; **धवलः** (सं० पु०) श्वेत रङ्ग का, अत्युत्तम बैल; धौला बैल, **धवला** (सं० स्त्री०) गोरी स्त्री; **धवली** (सं० स्त्री०) धौले रङ्ग की गाय; **धवलम्** (सं०) श्वेत मिर्च।

नग्न (वि०) नङ्गा, विवस्त्र, वस्त्रहीन; **नग्नः** (सं० पु०) नाङ्गा, नङ्गा भिक्षु, शिव; **नग्ना** (सं० स्त्री०) निर्लज्ज स्त्री वेश्या।

नन्दन (वि०) सुहावना, प्रसन्न करने वाला; **नन्दनः** (सं० पु०) पुत्र, शिव, विष्णु का विशेषण, **नन्दना** (सं० स्त्री०) पुत्री; **नन्दनम्** (सं) आनन्द धाम, इन्द्र का उद्यान।

नील (वि०) नीला; **नीलः** (सं० पु०) नीला रङ्ग, नील मांग, गूलर या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बड़ का वृक्ष, एक वानर का नाम; **नीलम** (सं०) काला नमक, नीला थोथा, विष, सुरमा।

नित्य (वि०) निरन्तर रहने वाला, अटल, नियमित, **नित्यः** (सं० पु०) समुद्र; **नित्यम्** (अव्यय) सदा, प्रतिदिन।

पीत (वि०) पीया हुआ, पीला; **पीतः** (सं० पु०) पीला रङ्ग, पुखराज; **पीतम्** (सं०) सोना, हरताल।

पीतल (वि०) पीले रङ्ग का, **पीतलः** (सं० पु०) पीला रङ्ग; **पीतलम्** (सं०) पीतल।

पीवर (वि०) विशाल, मोटा ताजा, हट्टा-कट्टा; **पीवरः** (सं० पु०) कछुआ; **पीवरी** (सं० स्त्री०) गाय।

पुण्य (वि०) पवित्र, पुनीत, अच्छा, शुभ, सुन्दर, मधुर; **पुण्यम्** (सं०) प्रशस्य कार्य, पवित्रीकरण, शुभकर्म, **पुण्या** (सं० स्त्री०) पवित्र तुलसी।

पुर (वि०) पूरा, भरा हुआ, **पुरम्** (सं०) नगर, दुर्ग, घर, शरीर, चमड़ा, गुग्गुल।

पूर्व (वि०) प्रथम, प्रमुख, पूर्वी, पूर्व दिशा में स्थित, प्राचीन; **पूर्वः** (सं० पु०) पूर्वज, पुरखा; **पूर्वी** (स० स्त्री०) पूरब दिशा, **पूर्वम्** (स०) अगला भाग।

पुराण (वि०) पुराना, प्राचीन; **पुराणम्** (स०) अतीत का वृतान्त, पौराणिक इतिहास।

प्रभु (वि०) बलवान, शक्तिशाली; **प्रभुः** (सं० पु०) स्वामी, अधिपति, राज्यपाल, शासक, अधिकारी, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, पारा।

बालक (वि०) बच्चों जैसा; **बालकः** (सं० पु०) बच्चा, मूर्ख, मन्द बुद्धि; **बालकम्** (सं०) कङ्कण।

भैरव (वि०) भयानक, भीषण; **भैरवः** (सं० पु०) शिव; **भैरवी** (सं० स्त्री०) दुर्गा का एक रूप, एक रागिनी का नाम।

भगबत (वि०) यशस्वी, प्रसिद्ध, सम्मानित, दिव्य, पवित्र; **भगवतः** (सं० पु०) देव, देवता, शिव का विशेषण, विष्णु का विशेषण।

माधव (वि०) मधु जैसा मीठा; **माधवा** (सं०पु०) कृष्ण का नाम, बसन्त ऋतु, इन्द्र का नाम।

मिश्र (वि०) मिला हुआ; **मिश्रः** (सं० पु०) आदरणीय व्यक्ति, एक प्रकार का हाथी; **मिश्रम्** (सं०) मिश्रण, सलजम।

मुखर (वि०) बातूनी, अश्लील भाषी, उपहास करने वाला; **मुखरः** (सं० पु०) मोहरा, काक, **मुखरी** (सं० स्त्री०) वाग, रास।

मुण्ड (वि०) मुण्डा हुआ, नीच, अधम; **मुण्डः** (सं० पु०) मुण्डा हुआ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिर, माथा नाई, पेड़ का तना; **मुण्डम्** (सं०) लोहा, सिर।

रण्ड (वि०) विश्वासघातक, अविश्वास्य, **रण्डः** (सं० पु०) वह पुरुष जो पुत्रहीन मरे, जो वृक्ष फल न दे; **रण्डा** (सं० स्त्री०) वेश्या, विधवा।

रूक्ष (वि०) रूखा, कठोर, निर्दय, नीरस; **रूक्षः** (सं० पु०) वृक्ष; **रूक्षा** (सं० स्त्री०) मधु की शक्कर; **रूक्षम्** (सं०) लोहा।

रूप्य (वि०) सुन्दर, **रूप्यः** (सं० पु०) रुपया।

लोल (वि०) लोटता हुआ, चञ्चल, आतुर; **लोलः** (सं० पु०) लिङ्गम्; **लोला** (सं० स्त्री०) लक्ष्मी, बिजली; **लोली** (सं० स्त्री) लोरी (एक गीतिका)।

लोह (वि०) लाल रङ्ग का; **लोहः** (सं० पु) लोहा।

वर (वि०) श्रेष्ठ, उत्तम, छांटा हुआ, बहुत सुन्दर; **वरः** (सं० पु०) दुलहा, पति, वरदान, भेंट. उपहार, जामातृ, कामुक; **वरम्** (सं०) केसर।

वर्वर (वि०) हकलाने वाला, मुड़ा हुआ; **वर्वरः** (सं० पु०) बर्बर देश का निवासी, मूर्ख, जातिच्युत, **वर्वरी** (सं० स्त्री०) एक प्रकार की मक्खी, भिरड़; **वर्वरम्** (सं०) पीला चन्दन।

सत्य (वि०) सच्च, निष्कपट; **सत्यः** (सं० पु०) ब्रह्मलोक, सत्यलोक, पीपल का वृक्ष, राम, विष्णु का नाम, ब्रह्म; **सत्यम्** (सं०) भद्रता, सद्गुण, शपथ, चारों युगों में पहला युग, सत्युग, पानी।

साधु (वि०) सीधा, उत्तम, श्रेष्ठ, योग्य, गुणी, पुण्यात्मा, सम्माननीय, पवित्रात्मा, कृपालु शुद्ध, पवित्र, भद्र, कुलीन; **साधुः** (सं० पु०) साधु, सन्त, मुनि, जैन साधु, साहु, महाजन, शाह व्यापारी।

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण संस्कृत शब्दकोशों से उपलब्ध हो सकते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: ६ :

अनेकार्थक शब्द के अनेक रूप

कोई समय था जब संस्कृत शब्दों के उच्चारण के तीन भेद ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत होते थे। फिर इन भेदों में भी प्रत्येक के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन-तीन भेद होकर प्रत्येक के नौ-नौ भेद हो जाते थे। इन नो भेदों में भी हर एक के पुनः अनुनासिक और अननुनासिक कर्मों के कारण दो-दो भेद होकर प्रत्येक शब्द का उच्चारण अठारह प्रकार से हो सकता था। उस समय एक ही शब्द का छः, नौ, या अठारह प्रकार से उच्चारण होता था। वैदिक युग तथा उस से भी पूर्व इन उदात आदि स्वरों का प्रयोग लोक में भी किया जाता था। उस समय एक ही शब्द के भिन्न भिन्न अर्थों के अनुसार शब्द का पृथक पृथक उच्चारण होता था। उच्चारण से ही शब्द के उस अर्थ का बोध हो जाता था जिस अर्थ में वह शब्द प्रयोग होता था। इस प्रकार एक ही शब्द के उसके उच्चारण के अनुसार अनेक अर्थ होते थे। कुछ समय पश्चात इन स्वरों का प्रचार लोक में नष्ट हो गया किन्तु शब्द का अर्थ नित्य होने से प्रत्येक शब्द अपने अनेकों अर्थों में प्रयोग होता रहा और इस प्रकार सरस्वती भाषा के बहुत से शब्द अनेकार्थक बन गये।

शब्द शक्ति

कोई अनेकार्थी शब्द किसी प्रसङ्ग में किस अर्थ में प्रयोग हुआ है, उसका बोध शब्द-शक्ति द्वारा होता है। शब्द का अर्थ-बोध कराने वाली शक्ति को ही शब्द शक्ति कहते हैं, यह एक प्रकार का शब्द और अर्थ का सम्बन्ध है। शब्द शक्तियां तीन प्रकार की होती हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना।

अभिधा—शब्द का वह व्यापार है जिससे किसी शब्द के मुख्य अर्थ या साक्षात सङ्केतिक अर्थ का बोध होता है। मुख्य या प्रथम अर्थ का बोध कराने के कारण अभिधा शक्ति को मुख्या या अग्रिमा भी कहते हैं।

लक्षणा – शब्द की वह शक्ति है जिससे उसके साधारण अर्थ से भिन्न और वास्तविक अर्थ प्रकट हो। इसकी परिभाषा इस प्रकार है–मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात् अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपित क्रिया:।

अर्थात, मुख्यार्थ में बाधा होने पर रूढ़ि या प्रयोजन के सहारे, उससे सम्बन्धित, जहां पर शब्द का अन्य अर्थ लक्षित होता है, उसको बोध कराने वाली शक्ति को लक्षणा शक्ति कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यञ्जना—वह शब्द शक्ति है जिससे किसी अनेकार्थक शब्द का वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी अन्य ही अर्थ का बोध होता है। यह अनेकार्थक शब्द के व्यङ्ग्यार्थ के प्रकट करने की प्रक्रिया है—ऐसे शब्द को व्यञ्जक और अर्थ को व्यङ्ग्यार्थ कहते हैं।

कथ्य भाषा में वाच्यार्थ का ही विशेष महत्व होता है, वाच्यार्थ ही अधिक प्रभावकारक होता है। अभिधा के द्वारा अर्थ निश्चित रहता है तथा अभिधा ही मुख्य शक्ति होती है। वाच्यार्थ के महत्व को ध्यान में रखने के कारण, खरी बोली में अनेकार्थक साधु शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थों को स्पष्ट करने के हेतु, साधु शब्द की ध्वनि अर्थात अक्षर-विन्यास में थोड़ा थोड़ा परिवर्तन करके अर्थानुसार अनेक शब्द प्रचलित हो गये हैं। इस प्रकार के किसी एक शब्द का अर्थ साधु शब्द के अनेक अर्थों में से कोई एक अवश्य होता है और खरी बोली के उस शब्द की व्याकरण कोटी वही होती है जो उस साधु शब्द की होती है, तथा इस शब्द का लिङ्ग भी साधु शब्द के प्रकृति-प्रत्यय के लिङ्ग के अनुसार ही होता है। दूसरे शब्दों में यह समझना चाहिये कि एक ही शब्द को उसके अर्थ के अनुसार अनेक रूपी बना दिया है। उस साधु शब्द के उच्चारण में उदात्त आदि स्वरों का प्रयोग न करके, खरी बोली में उस शब्द के अक्षर-विन्यासों में ही थोड़ा थोड़ा परिवर्तन करके उस शब्द की ध्वनियों में अर्थ के अनुसार अन्तर कर लिया हैं। खरी बोली के इन शब्दों में किसी एक शब्द के अक्षर-विन्यास, साधु शब्द के अक्षर-विन्यास के समान भी होते हैं परन्तु शब्द के इस साम्य रूप से यह नहीं समझना चाहिये कि उस साधु शब्द का खरी बोली में केवल एक ही अर्थ शेष रह गया है। अनेकार्थक साधु शब्द की तुलना के लिये खरी बोली में उन सभी शब्दों को मिला कर एक ही शब्द समझना चाहिये। यथा साधु शब्द चक्रम् के खरी बोली में अनेक शब्द अर्थानुसार प्रचलित हैं, भाषा विज्ञान की दृष्टि से इन सभी शब्दों को मिलाकर साधु शब्द चक्रम् ही समझना चाहिये। इस एक शब्द के अर्थानुसार प्रचलित शब्द इस प्रकार हैं—

चक्रम् सं० पु०—(१) भगवान विष्णु का आयुध विशेष (चक्र) (२) कुम्हार का बर्तन बनाने का यन्त्र (चाक), (३) सड़क का गोलाकार घुमाव (चक्कर), (४) गाड़ी का पहिया (चक्का), (५) बालों का गोलाकार आभूषण (चक्क), (६) वर्ष समूह (काल चक्र), (७) वर्तुलाकार सैनिक व्यूह (चक्र व्यूह), (८) सूत कातने का यन्त्र (चरखा), (९) देह के भीतर के चक्र (षट चक्र)।

एक ही शब्द के अनेक रूप देने से वाच्यार्थ स्पष्ट हो जाता है। अनेकार्थक साधु शब्द के प्रयोग से भ्रम हो सकता है, यथा किसी स्त्री की पुत्री का विवाह था, उस स्त्री को अपने केश सजाने के लिये एक चक्क की आवश्यकता थी। उस स्त्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने अपने पति से कहा कि उसको कल एक चक्रम् चाहिये । विवाह के समय कुम्हार के चाक की भी पूजा होती है, उस स्त्री के पति ने समझा कि पूजा के लिये कुम्हार का चाक चाहिये और उस ने दूसरे दिन चाक मंगाकर रख दिया । दूसरे दिन पत्नी ने चक्र मांगा तो उसके पति ने कुम्हार का चाक दिखा दिया जिस से दोनों में झगड़ा हो गया । इसी प्रकार साधु शब्द के प्रयोग से पहेलियाँ बन जाती हैं—यथा

चर्ची के कर्ण चचा के कर्ण नहीं । चाची चतुर सुजान चचा कुछ जाने नहीं ।।

इस पहेली में पदार्थों का नाम न बता कर चची और चचा शब्दों से केवल उन पदार्थों के लिङ्ग का सङ्केत होता है । कर्ण का अर्थ यहाँ कान नहीं है किन्तु कुण्डा है । चची से कढ़ाई और चचा से तवा समझना चाहिये ।

कुछ सरस्वती अनेकार्थक शब्दों के खरी बोली में जो शब्द प्रचलित हैं उन के उदाहरण देते हैं । इन शब्दों के अवलोकन से स्पष्ट हो जायगा कि खरी बोली के शब्द का अर्थ वही है जो साधु शब्द के अनेक अर्थों में कोई एक अर्थ है, और खरी बोली के सभी शब्दों की व्याकरण कोटि और उनके लिङ्ग वही हैं जो सरस्वती शब्द के प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार हैं—

अण्डः, सं० पु०—(१) अण्डा, (२) आण्ड ।

अर्धः, सं० पु०—(१) आधा, (२) अद्धा ।

अवतारः, सं० पु०—(१) अवतार (देवता का भूमि पर पदार्पण (२) उतार (भूमि का ढाल, नाव से उतरने का स्थान)

उद्धारः, सं० पु०—(१) उद्धार (मुक्ति, मोक्ष), (२) उधार (ऋण)

उल्का, सं० स्त्री०—(१) लू (आकाश में रहने वाला दाहक तत्त्व, (२) लौ (दीपक या जलती हुई लखड़ी की ज्वाला)

कटाह, सं० पु०—(१) कढ़ाहा, (२) कट्ड़ा (भेंस का नर बच्चा)

कटाही, सं० स्त्री०—(१) कढ़ाही, (२) कट्ड़ी ।

कङ्कण:, सं० पु०—(१) कङ्गना (विवाह सूत्र), (२) कङ्गन (हाथ में पहनने का आभूषण)

कणिका, सं० स्त्री०-(१) कङ्कर (ईण्ट, पत्थर का छोटा टुकड़ा) (२) कणक (एक प्रकार का चावल या अन्न), (३) किणकी (छोटा टुकड़ा)

करोटिः, सं० स्त्री-(१) खोपड़ी, (२) कटोरी ।

करिका, सं० स्त्री०—(१) खरोञ्च, (२) खूञ्च ।

करकः, स० स्त्री०—(१) करवा (जल पात्र), (२) कड़ाका (ओला), (३) कर, (४) करक (एक पक्षी)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्णः, सं० पु०—१. कान, २. कुण्डा (वर्तन का) ३. कर्ण (समकोण त्रिभुज में समकोण के सामने की रेखा)

कञ्चिका, सं० स्त्री०—१. कमची (लचकदार छड़ी), २. कमान, ३.कमानी

कर्दः, सं० पु०—१. कर्दः, २. गर्दा ।

कर्पटः, सं० पु०—कपड़ा, २. कप्पड़ (जीर्ण वस्त्र)

कलिका, सं० स्त्री०—१. कली (अनखिला फूल), २. कोंपल (अनखिला पत्ता)

कालयेम्, सं० पु०—१. (कलेजा), कालजा २. केसर ।

कालः, सं० पु०—१. काला (काला रङ्ग), २. काल (समय), ३. काल । (मृत्यु का देवता) ४, कलवार (मदिरा बेचने वाला)

कुण्डः, सं० पु०— १. कुण्ड (छोटा तालाब), २. कुण्डा (पानी रखने का बर्तन)

कुण्डिका, कुण्डी, सं० स्त्री०—१. कुण्डी २. कूण्ड ।

कूपः, सं० पु०—कुआं, २. कुप्पा, ३. कूप (भुस भरने का)

कूपी, सं० स्त्री०—कुई, कुईयां, २. कुप्पी ।

कूचिका, कूची, सं० स्त्री०–१. कुञ्जी, २. कूञ्ची ।

कूर्चिका, सं० स्त्री०—१. कुञ्जी, २. कूञ्ची, ३. खुर्चन ।

क्रमः सं० पु०—१. कदम, २. क्रम (मार्ग, ढङ्ग)

क्षुरः, स० पु०—१. छुरा, २. खुरपा, ३. खुर ।

खर्पर, सं० पु०—१. खोपड़ा. २. खप्पर (भिखारी का कटोरा)

गर्भिणी, सं० स्त्री०-१. गर्भिणी (मनुष्य की गर्भवती स्त्री), २. गाभिन (पशु की गर्भवती स्त्री)

गुलिका, सं० स्त्री०– १. गोली, २. गुल्ली ।

गण्डः, सं० पु०—१. गेण्डा, २. गण्डा (चार कौड़ियों के मूल्य के बराबर), ३ गट्ठा (जोड़)

गोलः, सं० पु०—१. गोला, २. गुल्ला ।

गृञ्जनः. सं० पु०—१ गण्ठा (पियांज), २. गाञ्जा ।

ग्रन्थिः, सं० स्त्री०—१. गाण्ठ (रस्सी की गाण्ठ, धोती के आञ्चल की गाण्ठ, गन्ने या बांस या नरकुल की गाण्ठ), २. गठ्ड़ी ।

गाढ, सं० पु०—१. गाढा, २ गारा ।

घटिका, सं० स्त्री०—१. घड़िया (मिट्टी का छोटा घड़ा), २. घड़ी (२४ मिनट का समय)

घाटः, सं० पु०—१. घड़ा, २. घाट नाव आदि से उतरने का स्थान ।

चक्रम्,—सं० पु०—१. चाक (कुम्हार का चाक), २. चक्का, गाड़ी का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहिया, ३. चक्र (एक तीक्ष्ण गोल अस्त्र, भगवान विष्णु का चक्र), ४. चक्कर (सड़क का गोलाकार घुमाव), ५. चक्क (केश में लगाने का गोल आभूषण), ६. चरखा (सूत कातने का यन्त्र)

चूड़ा, सं० स्त्री०—१. चोटी, चुटिया (सिर के बालों की चोटी, २. चोटी (शिखर) ३. चूड़ी (कलाई में पहनने वाला आभूषण)

चणकः, सं० पु०—१. चणक (एक गोत्र का नाम) २. चना ।

चूर्णः, सं० पु०—१. चूरण, २. चूरा, ३. चूना, ४. चून, ५. चूरमा ।

चत्वरम्, सं० पु०—१. चौक (घर का आङ्गन), २. चबूतरा, ३. चौराहा ।

चक्री. सं० स्त्री०—१. चर्खी, २. चकई, ३. चक्की, ४. चरखी ।

चित्रकः, सं० पु०—१. चीता, २. चितेरा (चित्रकार) ३. चिरायता ।

छदिः, सं० स्त्री०—१. छत (घर या गाड़ी की छत) २. छाती (धड़ की छत)

छत्रकः, सं० पु०—१. छत्र, २. छाता, ३. छत्ता ।

जटा, सं० स्त्री०—१. जड़, २. जटा

जालम्, सं० पु०—१. जाल, २. जाला, ३. जादू (जाल)

तलः, सं० पु०—१. तला (नीचे का भाग) २. तलवा (पैर का तला) ३. ताल (एक वृक्ष) ४. ताल (पानी का)

तालः, सं० पु०—१. ताला, २. ताल (ताल वृक्ष)

तुण्डः, सं० स्त्री०—१. टोड्डी, २. टूण्टी, ३. ठूङ्ग, ४. थोपड़ी

तनु, सं० पु०— (मनुष्य का धड़), २. तना (वृक्ष का धंड़)

तर्कुः, सं० पु०—१. तकवा २. तुक्का ।

तुच्छ (वि)—१. टुच्चा (दीन, नीच) २. थोथा (खाली, खोखला)

तुण्डम्, सं० पु०—१. टोड्डा, २. थोपड़ा ।

स्तनः, सं० पु०—१. स्तन (नारी के स्तन), थन (पशुओं की नरी के स्तन)

दण्डः, सं० पु०—१. डण्डा २. डण्ड, ३. डाण्ड (पतवार)

दाढिका, सं० स्त्री०—१. दाढ़ (जाढ़) २. दाढ़ी ।

द्रोणः, सं० पु०—१. दोना, २. डोल ३. धौन (एक विशेष तोल) ४. द्रोण (कौरव पाण्डवों के गुरु का नाम)

दन्तः, सं० पु०—१. दान्त, २. दान्ता ।

धान्यम्, सं० पु०—१. धान, २. धनिया ।

धारा, सं० स्त्री०—१. धार (पानी की धार, दूध की धार, तलवार या किसी अस्त्र की धार) २. धारी, ३. दुल्की (घोड़े की एक चाल)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नस्या, सं० स्त्री०—१. नाक, २. नथ (विवाहित स्त्री का आभूषण), ३. नथनी (अविवाहित स्त्री की नाक का आभूषण) ४. नाथ (नाक के नथुने के छेद में निकाली हुई रस्सी)

नाडिः, नाडी, सं० स्त्री—१. नाड़ी (हाथ या पैर की नवज) २. नाड़ (गर्दन)

नाभिः, सं० स्त्री०—१. नाभि (सुण्डि), २. नेह (गाड़ी के पहिये की नेह)

नीरम्, सं० पु०—१. नीर (पानी) २. नीरा (रस, आसव)

पञ्जरम्, सं० पु०—१. पिञ्जरा, २. पञ्जर (पसली की हड्डी, जिससे भङ्गी विष्ठा और कूड़ा उठाते हैं, झाड़ू-पञ्जर)

पुष्पम्, सं० पु०—१. पुष्प (फूल) २. फोला (आंख का रोग विशेष) ३. पुखराज (पुष्प + राज)

पक्षः, सं० पु०—१. पक्ष, २. पखवाड़ा (चन्द्र मास का अर्ध भाग), ३. पङ्ख, ४ पहलू, ५. पण्ठे (केश पक्ष), ६. पाखा (भाग)

पटकः, सं० पु—१. पटका (सूती कपड़ा) २. पड़ाव।

पत्रम्, सं० पु०—१. पत्ता, २. पत्र, ३. पतरा (किसी धातु का पतला पत्र), ४. पर, पंख (पक्षी का पर) ५. पन्ना (किसी पुस्तक आदि का)

पत्रिका, सं० स्त्री०—१. पत्री (चिट्ठी) २. पाती (ईख या गन्ने के ऊपर का पतला छिलका)

पर्णम, सं० पु०—१. पर, २. पङ्ख, ३. पत्ता ४. पान।

पत्रिन्, सं० पु०—१. पक्षिन् २. पेड़, ३. पहाड़।

पलम्, सं० पु०—१ (समय मापने का मान) २. पला (तरल पदार्थों को मापने का मान)

पर्वन्, सं० पु०—१. पर्व (हर्ष का अवसर), २. पोरा (खण्ड)

पट्टः, सं० पु०—१. पट्डा, २. पट्टा (भूमि का पट्टा, राजकीय अनुदान), ३. पाट (चक्की का पाट, सिंहासन, क्रिरीट) ४. पगड (शिरोवेष्टन), ५. पट्टन (नगर) ६. पाड़ा (नगर का भाग)

पूपः, सं० पु०—१. पूआ, २. पूड़ा।

पटलम्, सं० पु०—१. पल्ला, २. पलड़ा।

पात्रम्. सं० पु०— १. पत्ता, २. प्याला, ३. पात्र (कोई बर्तन, दान पात्र, नाटक का पात्र,)

पादः, सं० पु०—१. पैर, पाया, पांवा, पाद, पांव।

पारः, सं० पु०—१. पारा, २. पार (नदी का दूसरा किनारा)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पिण्ड, सं० पु०—१. पिण्डा (ठोस गोला, ढेला) २. पिन्दा (चरखे का पिन्दा जिसके दोनों ओर पङ्खडियां लगी रहती हैं), ३. पीण्ड (गोबर का पीण्ड), ४. पेड़ा, ५. पिण्ड (श्राद्ध में पितरों को दिया जाने वाला पिण्ड) ६. पेन्दा, ७. पैण्डा (शरीर. शरीरिक ढाञ्चा, जैसे किसी से पैण्डा छुड़ाना)

पिण्डी, सं० स्त्री०—१. पिण्डी, २. पिण्डली।

पुत्रः, सं० पु०—१. पुत्र (मनुष्य का बच्चा), २. पिल्ला (किसी पशु का बच्चा, कुत्ते का बच्चा) ३. पोत्ता (कोई छोटा पदार्थ)

पोतः, सं० पु०—१, पोतड़ा, २. पौधा, पोत (समुद्री नौका) ३. पिल्ला, (किसी भी पशु का बच्चा यथा, मृगपोतः, करिपोतः)

बदरम्, सं० पु०—१. बेर, २. बिनौला।

बूसम्, सं० पु०—१. भुस, २. बूर (छानस)

बाणः, सं० पु०—१. बाण (तीर) २. बाङ्क (गाय, भैंस का एन)

भ्रमरः, सं० पु०—१. भ्रमरा (प्रेमी, लम्पट) २. भौंरा।

भ्रमिः, सं० स्त्री०—१. भंवर (पानी की चक्राकार गति) २. भ्रमि (चकरी, खराद) ३. भौंरी (बालों का घुमाव) ४. भांवर (विवाह के फेरे) ५. भूल।

मकरः, सं० पु०—१. मकर (नाकू) २. मगर (कान में पहनने का आभूषण)

मण्डः, सं० पु०—१. माण्ड, २. मावा।

मञ्चः, सं० पु०—१.मञ्च, २. मचान, ३. मंझा (खाट)

मशकः, सं० पु०—१. मशक (चमड़े का बना पानी भरने का थैला), मशः (मच्छर)

माषः, सं० पु०—१. माष (उड़द) २. माशा (सोने का एक तोल) ३. मस्सा

मुष्टिः, सं० स्त्री०—१. मुट्ठी, २. मूठ।

युक्तिः, सं० स्त्री०—१. जुताई, २. जोड़ी, ३. जुगत, ४. जोत।

युगम्, सं० पु०—१. जुआ (हल या गाड़ी का जुआ) २. जोड़ा (दम्पति), ३. जुग (सृष्टि के युग जो चार माने जाते हैं) ४. जृता,

योगः, सं० पु०—१. योग, २. जोग, ३. जोड़।

रङ्गः, सं० पु०—१. रङ्ग (रोगन) २. राङ्गा ३. रङ्ग (नाच)

रण्डा, सं० स्त्री०—१. राण्ड, २. रण्डी।

रक्षा, सं० स्त्री०—१. रक्षा (बचाव, सुरक्षा) २. राखी, ३. राख (भस्म)

रश्मिः सं० स्त्री०—१. रश्मि, २. रस्सी, रास (बाग)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रसना, सं० स्त्री०—१. रसना (जिह्वा) २. रास. ३. रस्सी ।

लोकः, सं० पु०—१. लोक (संसार) २. लोग (मानव जाति, मनुष्य, प्रजा)

लता, सं० स्त्री०—१. लता, २. लड़, ३. लड़ी ।

लेख्यम्, सं० पु०—१. लेख, २. लेखा ।

लेखा सं० स्त्री०—१. लीख (गाड़ी के पहिये की रेखा), २. लकीर (कोई भी रेखा) ३. लार (पङ्क्ति, डार)

वासः, सं० पु०—१. बासा, २. बसेरा ।

वंशः, सं० पु०—१. वंस, २. बांस ।

वत्सः, सं० पु०—१. बच्चा, २. बछड़ा, ३. बछेरा ।

बल्लरिः, बल्ली, सं० स्त्री०—१. बेल (लता) २. बल्ली, ३. बाल ।

वृश्चिकः, सं० पु०—१. विच्छू, २. बिछुआ ।

विभूतिः, सं० स्त्री०—१. भभूत (ठण्डी राख) २. भूबल (गर्म राख) ३. विभूति (शक्ति, सम्पत्ति आदि)

शृङ्गम्, सं० पु०—१. सीङ्ग, २. सिङ्गारा (एक प्रकार का बाजा जो सीङ्ग का बना होता है) ।

शुद्धिः, सं० स्त्री०—१. शुद्धि, २. सुध ।

शण्डः, सं० पु०—१. साण्ड, २. सण्डा (हिजड़ा)

श्रद्धा, सं० स्त्री०—१. श्रद्धा (आस्था, मन की स्वस्थता, इच्छा), २. साध (दोहद, गर्भवती स्त्री की इच्छा)

सन्धिः, सं० स्त्री०—१. सन्धि (मित्रता) २. सेन्ध (विवर, छेद)

सीवनी, सं० स्त्री०—१. सूई २. सीवन (सिलाई, लिङ्ग के नीचे की रेखा)

सन्ध्या, सं० स्त्री०—१. सन्ध्या (ब्रह्मा की पत्नी), २. सांझ (सांझ की बेला) ३. सांझी (सायंकाल की प्रार्थना)

साधुः, सं० पु०—१. साधु, २. साध, ३ साह, ४. साहु ।

हारकः, सं० पु०—१. हार (गले में पहनने का आभूषण) २. हरकारा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: ७ :

हिन्द—हिन्दी

भारतीय विश्वविद्यालयों के हिन्दी भाषा विज्ञान के अध्यापकों और लेखकों ने अपनी स्वतन्त्र विचार बुद्धि को तिरोहित कर दिया है। वह पाश्चात्य विचारकों के सिद्धान्तों और वचनों को सत्य मानते हैं। हिन्द और हिन्दी शब्दों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी वह पाश्चात्य लेखकों के भ्रामक विचारों का प्रसार करते हैं और स्वयम् अन्धकार में हैं। उनका कहना है कि भारत के किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में हिन्दु शब्द का व्यवहार नहीं किया गया है। उनके अनुसार इन शब्दों की उत्पत्ति भारत पर मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात हुई है। उनका विचार है कि संस्कृत 'स' ध्वनि को फारस के निवासी ह' उच्चारण करते हैं, यथा सप्ताह–हफ्ताह, मास –माह आदि। भारत की पश्चिमी सीमा के साथ-साथ सिन्धु नदी बहती है। जब भारत पर पश्चिमोत्तर की ओर से मुसलमानों ने आक्रमण करने आरम्भ किये तो सबसे पहिले उन्हें सिन्धु नदी को पार करना पड़ा। मुसलमान आक्रमणकारियों ने सिन्धु नदी का उच्चारण हिन्दु किया और इसी नदी के नाम पर उन्होंने इस नदी के पूर्व के प्रदेश को हिन्द कहा। और इसी आधार पर इस प्रदेश के रहने वालों और उनकी भाषा को हिन्दी कहा।

पाश्चात्य लेखकों और भाषा विज्ञान के अध्यापकों के इन विचारों में न कोई सत्य है, न कोई तथ्य है और न कोई तर्क है। कारण कि आज तक भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर बहने वाली सिन्धु नदी को किसी ने भी हिन्दु नदी नहीं कहा है। इस नदी के समीपवर्ती पूर्वी प्रदेश का नाम पञ्चनद देश था, उसको भी उन्होंने पञ्जाब कहा और उस क्षेत्र या प्रदेश के रहने वालों और उनकी भाषा को भी पञ्जाबी कहा। पञ्जाब के दक्षिण-पश्चिम में सिन्धु नदी के चारों ओर के प्रदेश को आज तक भी सिन्ध और उस प्रदेश के निवासियों और उनकी भाषा को सिन्धी कहते हैं।

सिन्धु

पाश्चात्य लेखकों का यह विचार कि हिन्द और हिन्दी शब्द नूतन हैं और विदेशियों द्वारा हमें दिये गये हैं ऐतिहासिक दृष्टि से शुद्ध नहीं हैं। यह तो निःसन्देह कहा जा सकता है कि हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति हिन्द शब्द से हुई है और हिन्द शब्द सिन्धु शब्द का ही प्रतिरूप है। सिन्धु और सप्तसिन्धु शब्द विश्व के प्राचीनतम अभिलेख ऋग्वेद में उपलब्ध हैं। संस्कृत में सिन्धु शब्द का अर्थ है–

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक बड़ी नदी, और इसी अर्थ में सिन्धु शब्द का प्रयोग महाकवि कालिदास ने किया है–'पिबत्यसौ पाययते च सिन्धु रघु०' १३/९, मेघ० ४६, श० ५ २.१ कुमा० ३. ६, ५. ८५ । सिन्धु शब्द का दूसरा अर्थ है सिन्धु नदी के चारों ओर का प्रदेश । यह भली प्रकार ज्ञात है कि संस्कृत का 'स' वर्ण महाप्राण होने के कारण कभी कभी हमारी भाषा में 'ह' में परिवर्तित हो जाता है । केसरिन् शब्द का उच्चारण केहरी हमारी ही भाषा में होता है । इस प्रकार सिन्धु शब्द, जिसका अर्थ सिन्धु नदी के चारों ओर का प्रदेश है, प्रथम हिन्दु शब्द में परिवर्तित हो गया । इसी पुस्तक में हमने यह भी दिखाया है कि शब्दों के अन्तिम स्वर का विशेषकर लोप हो जाता है और उसका उच्चारण नहीं होता है । इस प्रकार सिन्धु शब्द 'हिन्द' में परिवर्तित हो गया किन्तु उसका अर्थ वही रहा अर्थात सिन्धु नदी के चारों ओर का प्रदेश ।

ऋग्वेद के १०/७५ सूक्त को नदी-सूक्त कहते हैं । गङ्गा हिन्दुओं की पवित्र और पुण्य नदी है जिसके तट पर ऋषियों ने वैदिक मन्त्रों का गायन किया । वैदिक ऋषियों ने भाव पूर्ण होकर माता गङ्गा के लिये यह गिरा ध्वनित की है– यत्रा नो पूर्वे पितर: परेयु: । नदी-सूक्त में सिन्धु की भूयसी प्रशंसा उपलब्ध है और इसका वर्णन इतनी ओजस्विनी भाषा में किया गया है कि इस की चञ्चल तुमुल तरङ्गों का दृश्य नेत्रों के सामने झलकने लगता है । नदी-सूक्त के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सिन्धुक्षित्प्रेयमेध: ऋषि ने सिन्धु शब्द केवल गङ्गा के लिये प्रयोग किया । नदी-सूक्त के अध्ययन से पूर्व गङ्गा नदी के सम्बन्ध में कुछ जान लेना आवश्यक है । टेहरी-गढ़वाल क्षेत्र से जो नदियां हिमालय पर्वत से निसृत हुई हैं और जो नदियां गङ्गा का रूप धारण करती हैं उनमें किसी भी नदी का नाम गङ्गा नहीं है । टेहरी क्षेत्र में गङ्गोत्री पर्वत से जो नदी निसृत हुई है उसका नाम भागीरथी है और गढ़वाल क्षेत्र की बड़ी नदी का नाम अलकनन्दा है । टेहरी क्षेत्र की छोटी छोटी नदियां भागीरथी में मिल जाती हैं और गढ़वाल क्षेत्र की नदियां अलकनन्दा में मिल जाती हैं । देवप्रयाग में भागीरथी और अलकनन्दा का सङ्गम होता है और इन दोनों नदियों के सङ्गम से जो धारा आगे बहती है उसका नाम गङ्गा हो जाता है । महाभारत के अदिपर्व १६९/२१, २२ में भी कहा गया है कि आकाश मार्ग से विचरती हुई गङ्गा देवलोक में अलकनन्दा नाम धारण करती है, पितृलोक में वैतरणी होकर बहती है और इस लोक में आकर इसका नाम गङ्गा हो जाता है । देवप्रयाग में भागीरथी और अलकनन्दा के सङ्गम को भी त्रिवेणी सङ्गम कहते हैं । देवप्रयाग से हरिद्वार तक गङ्गा पहाड़ों में बहती है और वहां गङ्गा के बहने से घोर शब्द होता है । पहाड़ों में गङ्गा नदी का पाट बहुत चौड़ा नहीं है किन्तु जब गङ्गा नदी हरिद्वार से आगे बढ़ती है तो इसका पाट बहुत विस्तीर्ण हो जाता है, इसके प्रवाह में स्थिरता आ जाती है और यह सरलता से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गमन करने लगती है। गङ्गा नदी का जल श्वेत है और गङ्गा के आर-पार हरे भरे खेत हैं जिनमें बहुत अन्न उपजता है। गङ्गा नदी अति रमणीय और दर्शनीय तथा मनोहर स्वरूप वाली है। गङ्गा नदी भारत में कल्याणकारी, पुण्यप्रदा मानी जाती है।

ऋग्वेद में गङ्गा नदी का जो वर्णन है अब उसका उल्लेख करते हैं। ऋग्वेद का १०/७५/६ मन्त्र इस प्रकार है—

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रस्या श्वेत्या त्या।
त्वं **सिन्धो** कुभया गोमती क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे॥

अर्थात्, हे सिन्धु नदी तुम पहिले तृष्टामा के सङ्ग चलीं फिर सुसत्तु, रसा और श्वेत्या के साथ हुई। तुमने ही क्रमु और गोमती को कुभा और मेहत्न् से सुसङ्गत किया। तुम इन सब नदियों को मिलकर प्रवाहित होती हो॥

ऋग्वेद का मन्त्र १०/५७/३ इस प्रकार है--

दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना।
अभ्रादिव प्रस्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवतः॥

अर्थात्, सिन्धु नदी का निनाद पृथ्वी से उठकर आकाश तक को गुञ्जाता है। यह नदी अपनी प्रचण्ड लहरों और अत्यन्त वेग के साथ गमन करती है। जब यह नदी वृष के समान गर्जन करती है तो इसके शब्द को सुनकर मन में ऐसा लगता है कि मेघ घोर गर्जन के साथ वृष्टि कर रहा हो।

अगले मन्त्र में सिन्धु का अपनी सहायक नदियों का दृश्य बड़ी रोचक भाषा में प्रस्तुत किया गया है--

अभि त्वा सिन्धो शिशुभिन्नमातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः।
राजेव युध्वा नयास त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि॥

अर्थात्, माता जैसे बालक के पास जाती है और पयस्विनी गौएं अपने बछड़ों के पास रम्भाती हुई दौड़कर जाती हैं, वैसे ही प्रवाहित होती हुई नदियां सिन्धु की ओर गमन करती हैं। जैसे युद्ध में प्रवृत्त राजा अपनी सेना को लेकर सङ्ग्राम भूमि में आगे बढ़ता है, उसी प्रकार तुम भी इन सहायक नदियों को अपने साथ लेकर आगे बढ़ती चली जाती हो।

नदी-सूक्त का दूसरा मन्त्र इस प्रकार है—

प्र तेऽरदद्वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद्वाजाँ अभ्य द्रवस्त्वम्।
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगताभिरज्यसि॥

शर्थात हे सिन्धु नदी जब तुम हरे-भरे प्रदेश की ओर गमन करने लगी तब वरुण ने तुम्हारे प्रवाहित होने के लिये मार्ग को विस्तीर्ण किया। तुम सब नदियों में श्रेष्ठ हो और पृथिवी पर उत्कृष्ट मार्ग से गमन करती हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऋग्वेद के १०/७५ के ७ और ८ मन्त्र इस प्रकार हैं--

ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि।
अदब्धा सिन्धुरपसासपस्तमाश्वा न चित्रा वपुषवि दर्शता ॥७॥
स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता याजिनीवती।
ऊर्णावति युवतिः सीलावत्युताधि वस्त सुभागा मधुवृधम् ॥८॥

अर्थात, श्वेतवर्ण वाली सिन्धु नदी सरलता से गमन करने वाली है सिन्धु नदी सबसे अधिक वेगवाली है और उसका वेगवान जल सब ओर पहुंचता है। यह नदी स्थूल नारी के समान दर्शनीय और अश्व के समान सुन्दर है ॥७॥ सिन्धु नदी सुन्दर, रथ, अश्व, सुवर्ण, अन्नादि से सम्पन्न है। इसके प्रदेश में तृण भी उत्पन्न होते हैं। यह मधुरता के बढ़ाने वाले वृक्षों से ढकी हुई है।

इस प्रकार हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि ऋग्वेद में सिन्धु शब्द भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर बहने वाले सिन्धु नद के लिए प्रयोग नहीं हुआ है अपितु सिन्धु गङ्गा नदी को ही कहा गया है। सिन्धु या हिन्द, मध्यदेश का ही नाम है और मध्यदेश ही भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का केन्द्र था।

सप्त सिन्धु

ऋग्वेद में सप्त सिन्धु शब्द भी उपलब्ध होता है। संस्कृत में सप्त-आतमन शब्द का अर्थ सात आत्मायें नहीं हैं अपितु यह शब्द एक ही ब्रह्म की उपाधि है। सप्तजिह्वः का अर्थ अग्नि है, अग्नि की सात जिह्वाओं के नाम हैं काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, उग्रा और प्रदीप्ता। सप्तद्वीपा का अर्थ पृथिवी है और सप्त ऋषि का अर्थ है मरीचि, अत्रि, अङ्गिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ नामक सात ऋषियों का समुदाय। सप्त धातु का अर्थ है शरीरस्थ सात धातुएँ या शरीर के संयोजक सात द्रव्य अर्थात-रस, रक्त, मांस, वसा, मज्जा, अस्थि और शुक्र। सप्त पातालम् का अर्थ है पृथिवी के सात लोक अतल, वितल, सुतल, महातल, रसातल, तलातल, पाताल। सप्ताह का अर्थ है सात दिनों का समुदाय ओर सप्तमातृ का अर्थ है सात माताओं—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा का समुदाय।

इसी प्रकार सप्त सिन्धु का अर्थ है सिन्धु की सात धाराऐं या वह भूभाग जिसमें सिन्धु (गङ्गा) की सात धारायें प्रवाहित होती है। सप्त सिन्धु और सप्त गङ्गम् पर्याय वाची शब्द हैं। महाभारत के आदि पर्व के अध्याय १६९ में गङ्गा की सात धाराओं के नामों का उल्लेख है, वह नाम हैं—गङ्गा, यमुना, सरस्वती रथस्था (राम गङ्गा), सरयू, गोमती और गण्डकी। इन्हीं सात नदियों के बीच का प्रदेश अर्थात सरस्वती और गण्डकी के बीच के प्रदेश का नाम सप्त सिन्धु है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भविष्य पुराण में सप्तसिन्धु शब्द के स्थान पर हप्त हिन्द शब्द का प्रयोग मिलता है।

मोनियर यिलियम्स के संस्कृत-अङ्गरेजी कोश में भी हिन्दु, हिन्दु-धर्म और हिन्दुस्तान शब्द उपलब्ध हैं। इस कोश में भी हिन्दुस्तान का अर्थ हिन्दुओं का देश या वाराणसी और सतलज से बीच का भूभाग दिया हुआ है। मुसलमान आक्रमण-कारियों ने भी केवल देहली और कन्नौज के राज्यों पर आक्रमण को हिन्द पर आक्रमण करना कहा है। मध्यदेश और हिन्द पर्याय वाची शब्द हैं। इसी मध्यदेश की ही पश्चिमोत्तर सीमा पर बसे हुए नगर का नाम सिरहिन्द है।

हम दिखा चुके हैं कि वैदिक युग में और उससे भी पूर्व मध्यदेश की भाषा का नाम सरस्वती था। मध्य देश का निरन्तर उल्लेख भूगोल सम्बन्धी संस्कृत ग्रन्थों में आता हैं। मध्यदेश का विस्तार उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्य पर्वतमालाओं तक और पश्चिम में सरस्वती नदी के अन्तर्धान होने के स्थान (विनशन) से पूर्व में गङ्गा-यमुना के सङ्गम (प्रयाग) तक था। सरस्वती विश्व की सर्व प्राचीन मूल भाषा थी और उस भाषा का जन्म ब्रह्मावर्त के जन-साधारण की कथ्य भाषा के रूप में हुआ था। ब्रह्मावर्त का समीपवर्ती प्रदेश कुरुक्षेत्र था। यद्यपि सरस्वती मध्यदेश की भाषा थी तथापि यह भाषा शुद्ध रूप से केवल अपने जन्म स्थान ब्रह्मावर्त और उसके समीपवर्ती प्रदेश कुरुक्षेत्र (ब्रह्मर्षिदेश) में ही बोली जाती थी। यही कारण है कि आज भी इसी क्षेत्र की भाषा को शुद्ध भाषा या खरी बोली कहते हैं।

मध्यदेश का दूसरा नाम भरतखण्ड भी है। मध्य देश के निवासियों के सभी महत्त्व के धार्मिक संस्कार भूमि-पूजन से आरम्भ किये जाते हैं और नित्य होने वाली विविध धार्मिक क्रियाओं के आरम्भ में जो सङ्कल्प पढ़ा जाता है, उसमें विशिष्ट स्थान के उल्लेख के साथ भरत-खण्ड की विशालता का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है :—जम्बू द्विपे भरत वर्षे भरत खण्डे ....

भरत खण्ड की जन साधारण की भाषा का नाम भारती भी था। भारती के अर्थ है—१. भाषा, गिरा, वाणीं, २. वाणी और ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती। भारती और **सरस्वती** पर्याय वाची शब्द हैं। भरत-खण्ड अर्थात मध्य देश को जब हिन्द कहने लगे तो इसी प्रदेश की जन साधारण की भाषा का नाम हिन्दी पड़ गया। उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि हिन्द, हिन्दू, हिन्दी हमारे लिये नूतन शब्द नहीं है अपितु हमारी ही भाषा के शब्दों के विकृत रूप हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: ८ :

शब्द समूह

प्रत्येक व्यक्ति अपनी कथ्य भाषा में कुछ अस्पष्ट शब्दों का व्यवहार किया करता है। इस प्रकार के शब्द एक छोटे से समाज में केवल उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित रहते हैं जिनके सम्पर्क में वह आता है। यह शब्द भी कुछ विशेष अर्थों में ही समझे जाते हैं। ऐसे शब्द लोक प्रचलित नहीं हैं और किसी भाषा के अङ्ग मानने योग्य नहीं होते हैं। इस प्रकार के शब्दों के सम्बन्ध में कुछ कहना उचित प्रतीत नहीं होता है और न इन शब्दों पर कुछ ध्यान दिया जा सकता है।

विदेश के रहने वाले जब भारत में आकर रहने लगते हैं तो वह यहां की भाषा धीरे-धीरे सीखते हैं। यहां की भाषा के उचित शब्दों का ज्ञान न होने से, समय-समय पर वह अपना आशय स्पष्ट करने के हेतु, हमारी भाषा में अपनी भाषा के शब्दों का व्यवहार किया करते हैं। उन शब्दों के अर्थानुसार उचित शब्द हमारी भाषा मँ होते हैं, किन्तु विदेशियों को उन शब्दों का पूर्ण ज्ञान न होने से वह उनका प्रयोग नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार के अनेक विदेशी शब्द हमारी कथ्य भाषा में प्रचलित हो गये हैं किन्तु इनका व्यवहार भी कुछ विशेष व्यक्तियों तक सीमित है। भारत के ग्रामवासी इन शब्दों का व्यवहार नहीं करते हैं और न उन शब्दों को समझ पाते हैं। इस प्रकार के शब्द हमारी भाषा के अङ्ग नहीं हैं। इन शब्दों की परिभाषा 'अप शब्द' या 'म्लेच्छ भाषा के शब्द' है।

अस्पष्ट शब्दों, अप शब्दों और म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों को हम अपनी भाषा के व्याकरण के नियमों से सिद्ध नहीं कर सकते हैं, अतः इस प्रकार के शब्द भाषा शास्त्र की दृष्टि से विचारणीय नहीं हैं और उन शब्दों को हम अपनी भाषा का अङ्ग नहीं मान सकते हैं। इस प्रकार के शब्द हमारी साहित्य भाषा में व्यवहार में भी नहीं आते हैं।

उपरोक्त शब्दों को छोड़कर शेष जितने भी शब्द हमारी भाषा में प्रयुक्त होते हैं उन शब्दों के समूह को हम अपनी भाषा का 'शब्द समूह' कहते हैं।

ग्रियर्सन और पाश्चात्य पद्धति से शिक्षित वा दीक्षित भारतीय भाषा-विज्ञान के लेखक, जिन्हें सरस्वती और ब्रह्मर्षि देश की भाषा का कुछ भी ज्ञान नहीं है, जो स्वयम् अन्धकार में हैं तथा जिनके विचारों का मूल स्रोत ग्रियर्सन लिखित भारत का भाषा सर्वेक्षण की भूमिका होता है, हिन्दी भाषा के शब्दों के चार वर्गीकरण करते हैं—(१) **तत्सम**, (२) **तद्भव**, (३) **अर्द्ध तत्सम** और (४) **देश्य**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वे इन शब्दों की परिभाषा इस प्रकार करते हैं—

तत्समः—संस्कृत से उधार लिये गये शब्द तत्सम कहलाते हैं। तत्सम शब्दों का अभिप्राय उन शब्दों से है जो अपने मूल रूप में, विकार रहित स्थिति में हिन्दी भाषा में विद्यमान हैं। तत्सम से वस्तुतः तात्पर्य है, तत् = उसके, सम = समान। तत् का संस्कृत से ही तात्पर्य है।

तद्भवः—तद्भव का मूल अर्थ है, तद् = उससे, भव = उत्पन्न, अर्थात उस (संस्कृत) से उत्पन्न। ग्रियर्सन ने संस्कृत शब्द को भी व्यापक अर्थ में लिया है और इसका (संस्कृत का) तात्पर्य उस प्रथम प्राकृत से बताया है जिसकी एक विभाषा से लौकिक अथवा पाणिनीय संस्कृत का विकास हुआ था। तद्भव शब्द प्रथम प्राकृत से मध्यकालीन भाषाओं—पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं से होकर अपने विकसित या परिवर्तित रूप में हिन्दी में आये हुये बताये जाते हैं।

अर्द्ध तत्समः—उन शब्दों को बताया है जो तत्सम शब्द थे और जो प्राकृत भाषी लोगों के मुख में पड़कर विकृत हो गये थे। किन्तु वास्तव में ये शब्द सस्कृत से उधार लिये हुए ही थे। ग्रियर्सन कहता है कि यह स्पष्ट है कि विकास क्रम की नैसर्गिक गति से, तत्सम शब्दों के परिवर्तन की प्रकृति अर्द्ध-तत्सम की ओर थी और अन्ततः उत्तर काल सें, इन शब्दों के रूप इतने अधिक विकृत हो गये कि इनमें तथा तद्भव शब्दों में भेद करना कठिन हो बया। कुछ लेखक अर्द्ध तत्सम शब्दों से तात्पर्य यह बताते हैं कि जो शब्द न तत्सम हैं और न तद्भव—किन्तु वह शब्द तत्सम के अति निकट हैं। कुछ लेखक उन शब्दों को अर्द्ध तत्सम कहते हैं जो आधुनिक काल में हिन्दी में ग्रहण किये गये संस्कृत शब्दों से विकसित हैं। वास्तव में यह लेखक अर्द्ध तत्सम और तद्भव शब्दों में कोई विशेष अन्तर नहीं बता पाते हैं किन्तु इन लेखकों को अर्द्ध तत्सम शब्द लिखना इस कारण आवश्यक है कि इस विद्याविहीन सम्प्रदाय के गुरु ग्रियर्सन ने इनके कानों में यह मन्त्र फूंक दिया है और अपने गुरु के मन्त्र का समर्थन करना इनका प्रथम धर्म है। इस प्रकार के मूर्ख पण्डितों के सम्बन्ध में—"जैसी नङ्गी देवी वैसे ही ऊत पुजारी" वाली लोक उक्ति पूर्णतः सिद्ध होती है।

देश्यः—जिन शब्दों को ग्रियर्सन देश्य कहता है उनके सम्बन्ध में वह इस प्रकार लिखता है—"देश्य शब्द भारतीय वैयाकरणों के तथाकथित देश्य अथवा स्थानीय शब्द हैं। इस वर्ग के अन्तर्गत वह समस्त शब्द आ जाते हैं जिनके मूल रूपों को भारतीय वैयाकरण सस्कृत में नहीं खोज सके। कोशकारों के अज्ञान के कारण भी इस वर्ग में अनेक शब्द समाविष्ट कर लिये गये हैं। अन्य तद्भव शब्दों की भांति इनमें अधिकांश शब्दों की व्युत्पत्ति आधुनिक विद्वान संस्कृत से दे सकते हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय ऐसे भी शब्द है जो मुण्डा तथा द्रविड़ भाषाओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से लिये गये हैं। इस वर्ग में अधिकांश शब्द तो प्रथम प्राकृत की उस विभाषा से आये हैं जिससे संस्कृत की उत्पत्ति नहीं हुई है। इस प्रकार से वास्तबिक तद्भव शब्द हैं, यद्यपि भारतीय वैयाकरण तद्भय शब्द का अर्थ उस रूप में नहीं लेते, क्योंकि उनके समक्ष प्राचीन प्रथय प्राकृत का कोई अस्तित्व न था। ये देश्य शब्द स्थानीब बोलियों के रूप हैं और जैसी आशा की जा सकती है, ये अधिकतर लौकिक सस्कृत के मूलस्थान मध्यदेश से दूर, गुजरात प्रदेश के साहित्यक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। हम इन्हें तद्भव के समान ही मान सकते हैं।''

ग्रियर्सन सम्प्रदाय के एक अन्य लेखक उदय नारायण के अनुसार देश्य शब्द से तात्पर्य उन शब्दों से है जो भारत के आदिवासियों की भाषाओं तथा बोलियों से वैदिक तथा पाणिनीय संस्कृत एवं प्राकृत तथा मध्य आर्य भाषाओं में समय-समय पर आये हैं। उसके अनुसार ऐसे अनेक शब्द संस्कृत में विद्यमान हैं जो मूलत: द्रविड़ तथा अन्य अनार्य भाषाओं से आये हैं। उसका कथन है कि संस्कृत में इस प्रकार के साढ़े चार सौ शब्द मिल चुके हैं, और जिन शब्दों को वह इस श्रेणी में रखता है उन शब्दों के कुछ उदाहरण यह हैं--काल, कला, पुष्प, पुष्कर, अणु पूजा, वल्गु, नाना, घोटक, पिक, कीचक, तिन्तिड़ी, वटिंगण, मयूर, कदलि, कम्बल तथा वाण आदि।

यह कथन कितना हास्यजनक है। इस प्रकार के शब्दों का अन्य भाषाओं से संस्कृत भाषा में ग्रहण होने का इनके पास कोई प्रमाण नहीं है। उपरोक्त सभी शब्दों का प्रयोग संस्कृत में उस समय के प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं जिस समय तक यह शब्द अन्य भाषाओं में प्रयोग भी नहीं हुये थे। प्रतीत होता है कि इस प्रकार के लेखको की संस्कृत भाषा के प्रति घृणा चरम सीमा तक पहुंच चुकी है और इनके पास सस्कृत भाषा को कलङ्कित करने के अतिरिक्त और कुछ काम नहीं है। यदि भारत के विश्वविद्यालयों में संस्कृत में अन्य भाषाओं से आये हुए शब्दों की खोज के सम्बन्ध में अनुसन्धान कार्य चल रहा है तो हमें पूर्ण विश्वास है कि वह समय दूर नहीं है जब इस प्रकार के नेतृत्व में भारतीय विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा विज्ञान के विभाग विद्यालयों के विभाग न रहकर केवल प्रमादालयों के विभाग बन जावेंगे।

हम अपने पाठकों का ध्यान इस ओर फिर आकर्षित करते हैं कि भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं की उत्पत्ति सरस्वती भाषा से हुई है। दक्षिण भारत के विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित भाषाओं को हम अनार्य (अभारतीय) भाषायें नहीं मानते हैं। द्राविड़, भारत के ही एक जनपद का नाम है द्रविड़ आदि दक्षिण प्रदेशो में रहने वाले वैसे ही भारतीय हैं जैसे अन्य प्रदेशों के निवासी तथा दक्षिण भारत की भाषायें उसी प्रकार सरस्वती भाषा का रूप हैं जिस प्रकार भारत की अन्य प्रादेशिक भाषायें। वास्तव में भारत के अन्य प्रदेशों में प्रचलित भाषाओं की अपेक्षा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिण भारत की भाषाओं में सरस्वती भाषा के शब्दों के साधु रूप अधिक मात्रा में सुरक्षित और प्रचलित हैं।

पाश्चात्य लेखकों का यह कहना कि देश्य शब्द भिन्न-भिन्न प्रदेशों की द्राविड़, मुण्डा आदि अनार्य भाषाओं से लिये गये हैं एक भ्रामक और अनर्गल विचार है, इस में न कोई सत्य है और न कोई तथ्य है। यह सिद्ध करने हेतु कि हमारी भाषा के सभी शब्द सरस्वती भाषा के हैं हमारे पास निम्नलिखित तर्क और प्रमाण हैं :—

१. सरस्वती भारत की सर्वप्राचीन भाषा है, इससे पूर्व भारत में कोई भाषा प्रचलित नहीं थी।

२. सरस्वती और संस्कृत से अधिक समृद्ध कोई भाषा नहीं थी, किसी अन्य भाषा से एक समृद्ध भाषा में शब्द नहीं आ सकते हैं।

३. जब तक यह प्रमाणित न हो कि इन देशी शब्दों का प्रचीन काल में अन्य प्रादेशिक भाषाओं में प्रयोग उपलब्ध है और यह शब्द वर्तमान में भी उन प्रादेशिक भाषाओं में प्रचलित हैं, तबतक यह शब्द उन भाषाओं के नहीं माने जा सकते हैं।

४. दो-चार शब्दों के उन भाषाओं में प्रचलित होने से केवल यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह शब्द भी अन्य शब्दों की भांति सरस्वती भाषा से उन भाषाओं में गये हैं।

खरी बोली का शब्द समूह

विद पाठकों को भली-भांति ज्ञान हो चुका है कि भारत की आदि मूल भाषा सरस्वती थी। सरस्वती भाषा कथ्य भाषा थी और भारत के जिस प्रदेश या क्षेत्र में सरस्वती भाषा साधु रूप में बोली जाती थी उसी प्रदेश में आज खरी बोली बोली जाती है, अर्थात खरी बोली ही सरस्वती भाषा का आधुनिक रूप है। अत: जो शब्द आज खरी बोली में प्रचलित हैं वह सरस्वती भाषा के ही शब्द हैं। सिद्ध शब्दार्थ सम्बन्धे के आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि खरी बोली के सभी शब्दों के अर्थ इन शब्दों की व्याकरण कोटियां और संज्ञा शब्दों के व्याकरण की दृष्टि से लिङ्ग आज भी वही होने चाहिये जो उन शब्दों के सरस्वती भाषा में थे। सरस्वती भाषा कथ्य भाषा थी और उस भाषा का साहित्य में प्रयोग न होने के कारण आज उस भाषा का कोई शब्द कोश उपलब्ध नहीं है। परन्तु हमें यह ज्ञान है कि सरस्वती भाषा का ही संस्कृत रूप संस्कृत भाषा है और संस्कृत भाषा के सभी शब्द सरस्वती भाषा के हैं। संस्कृत भाषा में एक भी ऐसा शब्द नहीं है जो किसी काल में अन्य रूप में प्रयुक्त होता रहा हो और उत्तर काल में उस शब्द के रूप में परिवर्तन होकर भी वह शब्द

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृत भाषा का ही अङ्ग बना रहा हो। अतः संस्कृत कोशों में जो शब्द उपलब्ध हैं वह सभी शब्द सरस्वती भाषा के हैं और उन सभी शब्दों के अर्थ और अक्षर-विन्यास भी वही हैं जो उन शब्दों के सरस्वती भाषा में थे। परन्तु व्याकरण की दृष्टि से सरस्वती और संस्कृत भाषा में कुछ मूल भेद भी हैं। यदि उन मूल भेदों का ध्यान मे रखकर संस्कृत कोशों का सरस्वती भाषा के कोशों की भांति व्यवहार किया जाये तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होगी। इसी कारण पहिले हम सरस्वती भाषा और संस्कृत भाषा के मूल भेदों पर व्याकरण कीं दृष्टि से विचार करेंगे।

सरस्वती और संस्कृत भाषाओं में शब्दों के विषयों में व्याकरश की दृष्टि से दो प्रकार के भेद हैं—१ व्युत्पत्ति भेद अर्थात शब्दानुशासन और २. लिङ्ग भेद अर्थात लिङ्गानुशासन।

शब्दानुशासन

शब्दों के सम्बन्ध में विद्वानों में दो मत प्रचलित हैं—1. **अव्युत्पत्ति पक्ष** और २. **व्युत्पत्तिपक्ष**।

अव्युत्पत्ति पक्षः—इस पक्ष में न कोई धातु और न कोई प्रत्यय माना जाता है—अर्थवद्धातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्। अर्थात धातु, प्रत्यय और प्रत्यान्त को छोड़लर अर्थ वाला शब्द **स्वरूप** प्रातिपदिक सञ्ज्ञक होता है। अव्युत्पत्तिपक्ष के अनुसार किसी वस्तु की सञ्ज्ञा अपने सञ्ज्ञी को समुदाय शक्ति से ही जानती है उसमें अवयवार्थ की कल्पना नहीं करनी चाहिये, यथा 'राम' इस शब्द का अर्थ दशरथ-पुत्र है, यह सञ्ज्ञा समुदाय शक्ति से ही दशरथ पुत्र राम सञ्ज्ञी को प्रकट करती है, इसमें अवयवार्थ की कल्पना नहीं करनी चाहिये।

व्युत्पत्ति पक्षः—संस्कृत व्याकरण लेखकों के अनुसार पहले वाणी अव्याकृत अर्थात समुद्रादि की अव्यक्त ध्वनियों की भांति एकात्मक थी। प्रकृति-प्रत्यय, पद-वाक्य आदि के विभाग उसमें नहों थे। इन्द्र ने देवताओं की प्रार्थना पर इस बाणी को व्याकृत-युक्त किया, अर्थात टुकड़ों में बाण्ट दिया। इसकी कथा इस प्रकार आती है—एक बार इन्द्र जी की इच्छा हुई थी कि सब शब्दों को पढ़ लिया जाये। उन्होंने देवगुरु बृहस्पति को बुलाया और पढ़ने लगे। एक हजार वर्ष बीत गये किन्तु शब्द राशि का अन्त नहीं हुआ, क्योंकि शब्द अनन्त हैं, उनका ज्ञान शब्द कोश के द्वारा होना असम्भव है। इसलिये शब्दों के ज्ञान के लिये कुछ नियम बना लेने चाहिये जिनकी सहायता से थोड़े से समय और परिश्रम से बड़े शब्द सागर को पार किया जा सकता हो। अतः व्याकरण नाम से इस शास्त्र का निर्माण हुआ जो थोड़े से परिश्रम में शब्द राशि का ज्ञान कराता है। इस प्रकार यह व्याकरण शास्त्र शब्द-ब्रह्म के ज्ञान में शीघ्रता कराने वाला है अर्थात थोड़े परिश्रम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में अधिक शब्दों का ज्ञान कराता है। व्याकरण शब्द से हो शब्द-व्युत्पादन या प्रकृति-प्रत्यय विभाग का अर्थ समझा जाता है अर्थात व्याकरणशास्त्र प्रकृति और प्रत्यय विभाग का ही वर्णन करता है।

किसी भी शब्द का खण्ड दो भागों में किया जाता है—प्रकृति और प्रत्यय। जिस खण्ड के पश्चात प्रत्यय लगाये जाने का विधान किया जाये उसे प्रकृति खण्ड कहते हैं, यथा 'राम' शब्द में 'रम्' धातु प्रकृति है और उसमें 'घञ' प्रत्यय हुआ है। 'रम' का अर्थ खेलना और 'घञ' प्रत्यय अधिकार को प्रकट करता है। अर्थात जिसमें योगीजन खेलते हैं वह राम है। यही व्युत्पत्ति पक्ष है। इस प्रकार 'गमन' में गम् प्रकृति और 'अन' प्रत्यय है।

कृत और तद्धित प्रत्ययः—संस्कृत व्याकरण के अनुसार धातु में जिन प्रत्ययों को जोड़कर संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय शब्द बनाये जाते हैं उनको कृत प्रत्यय कहते हैं और उनके द्वारा जो शब्द बनते हैं उनको कृदन्त कहते हैं। कृदन्त शब्द का अर्थ है, ऐसा शब्द जिसके अन्त में कृत हो।

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण में जिन प्रत्ययों को जोड़कर कुछ और अर्थ भी निकाला जाता है, उन प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं।

कृत और तद्धित प्रत्यय अकेले अर्थ वाले नहीं होते हैं, किन्तु जब प्रकृति (जिससे प्रत्यय किया जाये) से युक्त होते हैं, तभी अर्थ वाले होते हैं।

धातुओं में तिङ् प्रत्ययों को जोड़कर जो पद बनाये जाते हैं, उनको तिङन्त पद कहते हैं। तिङन्त पद शब्द नहीं होते हैं और इनको क्रिया पदों के लिये प्रयोग किया जाता है।

अवयवों द्वारा शब्दों के अर्थ करने की रीति बहुत प्राचीन है। वेद में इस पक्ष का बहुत आदर किया जाता है। परन्तु कथ्य लोक भाषा सरस्वती वेद भाषा से बहुत प्राचीन है। लोक भाषा में व्युत्पत्ति पक्ष मान्य नहीं है। कथ्य भाषा में शब्दों के सम्बन्ध में अव्युत्पत्ति पक्ष ही प्रचलित था। लोक भाषा में किसी शब्द की समुदाय शक्ति से ही उस शब्द के सञ्ज्ञी का ज्ञान होता था। उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि शब्दों के सम्बन्ध में व्युत्पत्ति मत, अर्थात प्रकृति और प्रत्यय द्वारा शब्द ज्ञान के हेतु ही संस्कृत भाषा में व्याकरण शास्त्र का निर्माण हुआ था। संस्कृत से प्राचीन भाषा अर्थात लोक कथ्य भाषा सरस्वती में शब्द ब्रह्म है और उसकी व्युत्पत्ति प्रकृति-प्रत्यय के आधार पर धातुओं से मान्य नहीं थी। व्युत्पत्ति और अव्युत्पत्ति मत के आधार पर ही व्याकरण की दृष्टि से संस्कृत और सरस्वती भाषाओं के शब्दानुशासन में कुछ मूल भेद हैं जो इस प्रकार हैं।—

संस्कृत शब्दानुशासन

१, संस्कृत भाषा में शब्दों की व्युत्पत्ति धातुओं से मानी जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धातुओं में कृत प्रत्यय जोड़ कर संज्ञा, विशेषण और अव्यय शब्द बनाये जाते हैं। कृत प्रत्यय द्वारा जो शब्द बनता है उसको कृदन्त कहते हैं।

२. संज्ञा, विशेषण तथा सर्वनाम शब्दों में तद्धित प्रत्यय जोड़कर शब्दों का कुछ और अर्थ निकाला जाता है।

३ संस्कृत भाषा में कृत और तद्धित प्रत्यय अकेले अर्थ वाले नहीं होते हैं, किन्तु जब प्रकृति (अर्थात जिससे प्रत्यय किया जावे) से युक्त होते हैं, तभी अर्थ वाले होते हैं।

४. संस्कृत में एक ही शब्द में विभिन्न उपसर्ग जोड़कर अनेक शब्द बनाने की साधारण सी रीति है, यथा एक ही हार शब्द में विभिन्न उपसर्ग जोड़कर प्रहार, संहार, विहार, आहार, परिहार, उपहार, प्रतिहार आदि शब्दों की व्युत्पत्ति समझी जाती है। इसी प्रकार देश शब्द से अनुदेश, सन्देश, प्रदेश, निर्देश, उद्देश, उपदेश, विदेश आदि शब्द बनते हैं।

सरस्वती शब्दानुशासन

१. सरस्वती भाषा में किसी भी वस्तु की सञ्ज्ञा अपने सञ्ज्ञी को अपने समुदाय शक्ति से ही जानती है। इस भाषा में शब्द में अवयवार्थ की कल्पना नहीं की जाती है, अतः सरस्वती भाषा में धातुओं तथा कृत और तद्धित प्रत्ययों का कोई स्थान नही है।

२. सरस्वती भाषा में सभी वर्ण (अर्थात स्वर और व्यञ्जन) अर्थवत होते हैं। सरस्वती भाषा में वर्णों को शब्दों के पूर्व या पर में (उपसर्ग या प्रत्यय की भाँति) ज़ोड़कर अन्य शब्द बनाये जाते हैं।

३. सरस्वती भाषा में उपसर्ग अर्थहीन नहीं होते हैं। सरस्वती भाषा में अर्थवत उपसर्ग होते हैं और जब किसी उपसर्ग को किसी शब्द में जोड़कर कोई शब्द बनाया जाता है तो वह उपसर्ग शब्द के अर्थ का अपने अर्थ के अनुसार परि-वर्तन कर देता है।

४. सरस्वती भाषा में एक शब्द में विभिन्न (अर्थहीन) उपसर्ग जोड़कर अनेक शब्द नहीं बनाये जाते हैं। अतः जो शब्द इस प्रकार बने हुये प्रतीत होते हैं वह पृथक पृथक शब्द होते हैं।

५. सरस्वती भाषा में न धातु होते हैं और न तिङ् प्रत्यय अतः सरस्वती भाषा में कोई शब्द भी ऐसा नहीं है जिसको व्याकरण की दृष्टि से क्रिया की कोटि के अन्तर्गत रखा जा सके। संस्कृत में भी धातुओं में तिङ् प्रत्यय जोड़कर तिङन्त पद बनाये जाते हैं जो शब्द नहीं होते हैं

६. सरस्वती भाषा में कर्मवाचक संज्ञा शब्द होते हैं। कर्मवाच संज्ञा शब्दों के दो रूप होते हैं, १—पुल्लिग और २—स्त्री लिग। कर्मवाचक संज्ञा शब्द के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्त्री लिङ्ग शब्दों से ही क्रिया पद बनाये जाते हैं।

७. सरस्वती भाषा के कर्मवाचक संज्ञा शब्द केवल संज्ञा की भाँति ही प्रयोग में आते हैं।

८. सरस्वती भाषा के कर्मवाचक संज्ञा शब्दों के मूल अवयव ही संस्कृत भाषा के धातु होते हैं।

लिङ्गानुशासन

संस्कृतः—संस्कृत भाषा में व्याकरण की दृष्टि से संज्ञा शब्दों को तीन लिङ्गों के अन्तरगत रखा जाता है। १. पुलिङ्ग २. स्त्रीलिङ्ग और ३. नपुंसक लिङ्ग। संस्कृत भाषा का यह लिङ्ग भेद न प्रकृति के अनुसार है और न प्रत्यय के आधार पर निर्धारित होता है। शब्दानुशासन और लिङ्गानुशासन के शब्दों "प्रकृति—प्रत्यय" में भेद है। शब्दानुशासन में प्रकृति का अर्थ है जिससे प्रत्यय किया जाये और प्रत्यय का अर्थ है कृत और तद्धित प्रत्यय। लिङ्गानुशासन में प्रकृति का अर्थ हैं जड़जगत, स्वभाविक रूप अर्थात स्त्री या पुरुष की जननेन्द्रिय, योनि, लिङ्ग आदि; और प्रत्यय से तात्पर्य है शब्द का अन्तिम वर्ण। (इस सम्बन्ध में इसी पुस्तिका का व्याकरण अध्याय देखो) संस्कृत भाषा में यह लिङ्ग-भेद किसी स्वाभाविक स्थिति पर निर्भर नहीं है। ऐसा नहीं है कि प्राणाधारियों को प्रत्यक्ष ही नर या नारी देखकर उनके द्योतक शब्दों को पुलिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग माना गया हो। उदाहरण के लिये 'दार', 'स्त्री', और 'कलत्र' तीनों शब्द नारी के द्योतक हैं और इस कारण तीनों शब्दों को स्त्रीलिङ्ग के अन्तर्गत रखना चाहिये, परन्तु शब्द 'दार' पुल्लिङ्ग है, शब्द 'स्त्री' स्त्रीलिङ्ग है, और शब्द 'कलत्र' नपुंसकलिङ्ग है। इसी प्रकार सभी अप्राणीवाचक शब्दों को नपुंसक लिङ्ग के अन्तर्गत नहीं माना गया है। एक ही वस्तु के विभिन्न नामों को विभिन्न लिङ्गों में रखा गया है। यथा 'देह' पुल्लिङ्ग है, 'तनु' स्त्रीलिङ्ग और 'शरीर' नपुंसक लिङ्ग है। संस्कृत भाषा का लिङ्ग भेद प्रत्यय के अनुसार भी नही है। ऐसा नहीं है कि सभी इकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग हों। इकारान्त शब्द पुलिङ्ग भी हैं, नपुंसक लिङ्ग भी हैं और स्त्री लिङ्ग भी हैं, यथा अग्नि, अञ्जलिः आदि शब्द पुल्लिङ्ग हैं, अक्षि, दधि, अस्थि, सक्थि, शुचि, आदि नपुंसकलिङ्ग हैं, और अङ्गुलिः, आवलिः, ओषधि, कोटिः (कोड़ी), दृष्टिः, युक्तिः, योनिः आदि शब्द स्त्री लिङ्ग है। संस्कृत भाषा का यह लिङ्ग भेद कृत्रिम है और इसका ज्ञान करना बहुत कठिन है।

सरस्वतीः—सरस्वती भाषा में संज्ञा शब्दों को केवल दो लिङ्गों के अन्तर्गत रखा जाता है, १-पुलिङ्ग और २. स्त्रीलिङ्ग। प्रकृति के अनुसार प्रत्येक प्राणाधारी या तो नर होता है या नरी। प्रकृति के अनुसार किसी भी प्राणाधारी में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नपुंसक का कोई चिह्न अर्थात लिङ्ग नहीं होता है। सरस्वती भाषा का लिङ्गानुशासन प्रकृति-प्रत्यय पर आधारित है। इसी कारण सरस्वती भाषा में नपुंसक लिङ्ग नहीं होता है। जिन प्राणाधारियों का किसी चिह्न अर्थात लिङ्ग के द्वारा उसके नर होने का बोध हो सकता है वह पुल्लिग होते हैं; और जिन प्राणाधारियों के किसी भी चिह्न या लिङ्ग से नरी होने का बोध होता है वह स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यदि किसी प्राणाधारी में कोई चिह्न या लिङ्ग ऐसा नहीं हो जिससे उसके नर या नरी होने का ज्ञान हो सके तो उन प्राणियों और सभी अप्राणाधारियों का व्याकरण की दृष्टि से लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार निर्धारित होता है। (इस सम्बन्ध में इसी पुस्तिका का व्याकरण अध्याय देखें) प्रकृति के अनुसार 'दार', 'कलत्र' और 'स्त्री' तीनों शब्द नरी के द्योतक है इसी कारण यह सभी शब्द प्रकृति के अनुसार स्त्रीलिङ्ग हैं। इसी प्रकार अग्निः, अञ्जलिः शब्द संस्कृत में पुल्लिङ्ग होते हुये भी सरस्वती में प्रत्यय के अनुसार स्त्रीलिङ्ग हैं। अक्षि, दधि, अस्थि, सक्थि, शुचि आदि शब्द संस्कृत में नपुंसक होते हुये भी सरस्वती में प्रत्यय के अनुसार स्त्रीलिङ्ग हैं।

सरस्वती भाषा के शब्द

हम भारतीय सरस्वती को वाणी और ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी मानते हैं। सरस्वती भाषा संसार की सर्वप्राचीन भाषा है। सरस्वती भाषा से पूर्व संसार में और कोई भाषा नहीं बोली जाती थी। अतः सरस्वती भाषा में सभी शब्द अपने ही हैं और इस भाषा में कोई भी शब्द किसी अन्य भाषा का नहीं हो सकता है। सरस्वती कथ्य भाषा थी और इस भाषा का साहित्य में प्रयोग न होने के कारण, इस का कोई शब्द कोश इस समय उपलब्ध नहीं है। परन्तु हमें यह ज्ञान है कि सरस्वती भाषा का ही संस्कृत रूप संस्कृत भाषा है। भारत का प्राचीन साहित्य इसी भाषा में लिपिबद्ध है। साहित्य भाषा संस्कृत के शब्द कोश इस समय उपलब्ध हैं। हम यह भी जानते हैं कि संस्कृत भाषा में एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो किसी काल में अन्य रूप में प्रयुक्त होता रहा हो और उत्तर काल में उसके रूप या अक्षर-विन्यासों में परिवर्तन होकर भी वह शब्द संस्कृत भाषा का ही अङ्ग बना रहा हो। अतः संस्कृत कोशों में शब्दों के अक्षर-विन्यास आज उसी प्रकार सुरक्षित हैं जो उन शब्दों के सरस्वती भाषा में थे।

हम यह भी बता चुके हैं कि सरस्वती भाषा अव्यकृत अर्थात समुद्रादि की अव्यक्त ध्वनियों की भांति एकात्मक थी। प्रकृति-प्रत्यय आदि के विभाग उसमें नहीं थे। जब इन्द्र जैसे अध्येता को बृहस्पति जैसे अध्यापक से एक सहस्त्र वर्षों तक पढ़ने के पश्चात शब्द राशि का अन्त नहीं हुआ तो देवताओं की प्रार्थना पर इन्द्र ने सरस्वती वाणी को व्याकृति-युक्त किया, अर्थात टुकड़ों में बाण्ट दिया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृत में प्रतिपाद-पाठ का अर्थ है प्रत्येक शब्द का पाठ करके उसका साधुत्व बतलाना। अतः संस्कृत में व्याकरण शब्द से ही शब्द-व्युत्पादन या प्रकृति-प्रत्यय विभाग का अर्थ समझा जाता है। संस्कृत भाषा के वैयाकरणों ने सरस्वती भाषा के शब्दों के टुकड़े करके धातुओं को सरस्वती भाषा के शब्दों में से निकाल कर ही एकत्र किया था। धातुओं का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं हैं। इन धातुओं को व्याकरण की दृष्टि से शब्द के साधुत्व को सिद्ध करने के हेतु ही एकत्र किया गया था। संस्कृत वैयाकरणों का यह मत कि धातुओं से शब्दों की व्युत्पत्ति हुई है एक भ्रामक कथन है। संस्कृत के धातु सरस्वती भाषा के कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्दों के मूल अवयव है। सरस्वती भाषा में कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्दों के अन्त में 'नम' या 'णम्' प्रत्यय होता है। महामुनि पाणिनि ने इस प्रत्यय को ल्युट् कहा है। संस्कृत कोशों में भी 'धातु' शब्द का अर्थ मूल भाग, या अवयव है। सरस्वती भाषा के कर्मवाचक सञ्जा शब्द में से इस प्रत्यय का लोप करने से शब्द का जो भाग शेष रहता है, उसे संस्कृत में धातु कहते हैं, किन्तु सरस्वती में यह कर्मवाचक सञ्ज्ञा का स्त्री लिङ्ग रूप होता है। यथा चलनम् से चल्, मरणम् से मर, संस्कृत में मृ, करणम् से कर, संस्कृत में कृ आदि। संस्कृत कोशों में उपलब्ध शेष सभी शब्द सरस्वती और संस्कृत भाषा में एक ही हैं। सभी शब्दों के अर्थ और व्याकरण कोटियां दोनों भाषाओं में एक ही हैं। सरस्वती और संस्कृत भाषा में व्याकरण की दृष्टि से जो लिङ्ग-भेद है उसे हम पहले ही बता चुके हैं। उपरोक्त बताये हुये भेदों को ध्यान में रखकर संस्कृत कोशों को सरस्वती भाषा के शब्द कोश में प्रयोग किया जा सकता है।

संस्कृत भाषा के प्रमाणिक शब्द कोशों के अवलोकन से हम देखते हैं कि सरस्वती भाषा (आधुनिक खरी बोली) में प्रचलित सभी शब्द संस्कृत कोशों में उपलब्ध नहीं होते हैं। इसके तीन मूल कारण हो सकते हैं। पहला तो यह कि संस्कृत कोशों में केवल वही शब्द उपलब्ध होते हैं जिन शब्दों का संस्कृत साहित्य में प्रयोग हुआ है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि यह कोश इतने सम्पन्न नहीं हैं कि इन में सभी शब्द दे दिये गये हों, और न यह सम्भव हो सकता है कि संस्कृत के सभी शब्द कोशों में दिये जा सकें, कारण कि संस्कृत कोशों में दिये हुये शब्दों से असङ्ख्य मात्रा में अन्य शब्दों का निर्माण हो सकता हैं। तीसरा कारण यह हो सकता है कि अनेक शब्दों का निर्माण लोक में उत्तर काल में हुआ हो। हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि जो शब्द अपने प्रचलित रूपों में संस्कृत कोशों में उपलब्ध नहीं होते हैं वह सभी शब्द सस्कृत कोशों में दिये हुये शब्दों से अर्थ और व्याकरण की दृष्टि से सिद्ध किये जा सकते हैं। अतः सरस्वती भाषा के शब्दों को संस्कृत कोशों की दृष्टि से दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१. वह शब्द जो संस्कृत के प्रमाणिक शब्द कोशों में उपलब्ध हैं।

२. वह शब्द जो संस्कृत कोशों में उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु उन शब्दों को संस्कृत में दिये हुये शब्दों से सिद्ध किया जा सकता है।

खरी बोली में प्रचलित सभी शब्द सरस्वती भाषा के हैं। काल-भेद और व्यक्तिगत-उच्चारण के भेद के कारण खरी बोली में प्रचलित अधिकांश शब्दों के अक्षर-विन्यास आज वह नहीं हैं जो उन शब्दों के सरस्वती भाषा में थे। अनेक शब्दों के अक्षर-विन्यास तो इतने परिवर्तित हो गये हैं कि उनका सम्बन्ध सरस्वती भाषा के शब्दों से जोड़ना असम्भव प्रतीत होता है. परन्तु उन सभी शब्दों के मूल तत्त्व आज भी वही हैं जो उन शब्दों के सरस्वती भाषा में थे, अर्थात उन शब्दों के अर्थ, व्याकरण कोटियां और सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग आज भी वही हैं जो उन शब्दों के सरस्वती भाषा में थे। यदि अक्षर-विन्यास के परिवर्तन के आधारों को ध्यान में रखकर, शब्दों के अर्थ, व्याकरण कोटियों और सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग की सहायता से उन शब्दों के साधु रूप का ज्ञान किया जावे तो शब्द का साधु रूप अर्थात वह अक्षर-विन्यास जो उस शब्दों के सरस्वती भाषा में थे, सरलता से प्राप्त हो सकते हैं।

पाश्चात्य लेखक तथा उनके मानस पुत्र, अर्थात पाश्चात्य प्रणाली से पढ़े हुये हिन्दी भाषा विज्ञान के भारतीय लेखक, खरी-बोली के जिन शब्दों का सम्बन्ध उपरोक्त प्रथम श्रेणी के शब्दों से जोड़ सकते हैं उनको तत्सम या तद्भव कहते हैं। जिन शब्दों के अक्षर-विन्यास आज भी वही हैं जो उन शब्दों के सरस्वती भाषा में थे, वह उन शब्दों को तत्सम और शेष शब्दों को तद्भव कहते हैं। जो शब्द द्वितीय श्रेणी के शब्दों के आधुनिक रूप है, पाश्चात्य लेखक उन शब्दों को अज्ञानता के कारण देश्य या देशी के अन्तर्गत रखते हैं। इसका कारण यह है कि इन लेखकों को सरस्वती भाषा के शब्दों की व्युत्पत्ति का ज्ञान ही नहीं है। वे सरस्वती भाषा के सभी शब्दों की व्युत्पत्ति भी धातुओं से सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, और उस कार्य में असफल रहने पर वह उन शब्दों को देश्य या देशी की सञ्ज्ञा दे देते हैं। अतः अनेक लेखक देश्य शब्द उन शब्दो को कहते हैं जिनकी व्युत्पत्ति प्रकृति-प्रत्यय के आधार पर संस्कृत धातुओं से सिद्ध नहीं होती है। इस प्रकार के लेखक भ्रमवश यह समझ लेते हैं कि यह शब्द भारत की किसी अन्य भाषा से सरस्वती भाषा में गृहीत हुये होंगे।

हेमचन्द्र ने देशी नाम माला में कुछ ऐसे शब्दों का सङ्ग्रह किया है जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत धातुओं से व्याकरण के अनुसार नहीं होती है। पाठकों को यह ध्यान रहे कि वह शब्द गुजरात प्रदेश की कथ्य भाषा में प्रचलित हैं और खरी बोली के क्षेत्र की कथ्य भाषा में वह शब्द व्यवहार में नहीं आते हैं। अतः उन शब्दों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्बन्ध में हम कुछ भी टिप्पणी करना नहीं चाहते हैं। गुजरात के रहने वाले विद्वान ही उन शब्दों की व्युत्पत्ति सरस्वती भाषा के शब्दों से सिद्ध कर सकते हैं।

सरस्वती भाषा में एक भी ऐसा शब्द नहीं है जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत कोशों में दिये हुये शब्दों से सिद्ध न हो सकती हो। यह सिद्ध करने के हेतु कि सरस्वती अथवा संस्कृत भाषा में कोई भी शब्द किसी अन्य भाषा से गृहीत नहीं है, हमारे पास एक प्रमाण और भी है। सरस्वती भाषा में व्याकरण के अनुसार किसी शब्द का लिङ्ग उस समय तक निर्धारित नहीं हो सकता है जब तक कि उस शब्द के साधु रूप का ज्ञान न कर लिया जावे। शब्द के साधु रूप का ज्ञान होने के पश्चात ही प्रकृति-प्रत्यय के आधार पर उस शब्द का लिङ्ग जाना जाता है। अतः सरस्वती भाषा में कोई भी शब्द किसी अन्य भाषा से नहीं आया है और न आ सकता था। जिन लेखकों का यह कथन है कि संस्कृत भाषा में ऐसे अनेक शब्द विद्यमान हैं, जो मूलतः द्रविड़ तथा अन्य अनार्थ भाषाओं से संस्कृत में आये हैं, उनके सम्बन्ध में हम केवल यह कह सकते हैं कि उनको न तो संस्कृत भाषा का ही ज्ञान है और न उनके मन में राष्ट्रीय गौरव ही है। इस श्रणी के लेखकों के मस्तिष्क इतने दूषित हो चुके हैं कि उनकी चिकित्सा अब केवल प्रमादालयों में ही हो सकती है, उनके विचरने के लिये विश्वविद्यालय उचित स्थान नहीं रहे हैं। विश्वविद्यालयों में जिन छात्रों से द्रविड़ तथा अन्य भाषाओं से संस्कृत में आये हुये शब्दों का अनुसन्धान कार्य कराया जा रहा है, उनको हमारा यही उपदेश है कि सत्यासत्य की परीक्षा करके ही विद्या ग्रहण करना विद्यार्थी का परम धर्म है। यदि मति भ्रष्ट और बुद्धि नष्ट करने के पश्चात विश्वविद्यालय की सबसे बड़ी उपाधि भी प्राप्त हो जाये तो उससे कुछ लाभ नहीं हो सकता है। जिन शब्दों को द्रविडीय भाषाओं से संस्कृत में गृहीत होना बताया जाता है उसका यह आधार है कि वह शब्द द्रविडीय भाषाओं के साहित्य में पाये जाते हैं। इसके उत्तर में हम यह बतादें कि वह शब्द संस्कृत साहित्य में (जो द्रविडीय साहित्य से सहस्त्रों वर्ष प्राचीन है) प्रयोग हो चुके थे। अतः वह शब्द सरस्वती भाषा से उन भाषाओं ने लिये हैं। द्रविड़ भारत के ही एक जन पद या प्रदेश का नाम है, द्रविड़ प्रदेश में रहने वाले वैसे ही भारतीय हैं जैसे उत्तर भारत में रहने वाले। और द्रविड़ प्रदेश में प्रचलित भाषा उसी प्रकार सरस्वती भाषा का रूप है जिस प्रकार उत्तर भारत की अन्य प्रादेशिक भाषायें सरस्वती भाषा के रूप हैं।

शब्दों का वर्गीकरण

सरस्वती भाषा के शब्दों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

१. भाषा के मूल या रूढ़ शब्द, २. यौगिक शब्द।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूढ शब्द :—इन शब्दों की व्युत्पत्ति सिद्ध नहीं हो सकती है। रूढ शब्द लोक भाषा में उत्पन्न हुये, प्रचलित हुये, सर्वप्रिय तथा सर्वजनस्वीकृत होकर परम्परा को प्राप्त हुये। व्युत्पत्तिरहिता: शब्दा रूढा आखण्डलादय:, नाम रूढमपि च व्यदपादि, शिशुपाल वध १०-२३; क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्र: क्षत्त्रसय शब्दो भुवनेपु रूढ:, रघुवंश २-५३। रूढ शब्द सरस्वती भाषा के प्रसिद्ध और निश्चित शब्द हैं जिनके निश्चित अर्थ संस्कृत के शब्द कोशों में उपलब्ध होते हैं।

यौगिक शब्द :—वे शब्द हैं जिनकी व्युत्पत्ति सिद्ध हो सकती है और जो रूढ शब्दों में अन्य रूढ शब्द, या देवनागरी वर्णमाला के किसी अक्षर के योग से बनते हैं। देवनागरी वर्णमाला के सभी वर्ण अर्थवत होते हैं। यौगिक शब्दों के अवयव अपने व्यक्तिग अर्थ के साथ ही सामूहिक रूप से भी अर्थ देते हैं।

रूढ़ शब्द

सरस्वती भाषा में रूढ़ शब्दों की व्युत्पत्ति सिद्ध नहीं हो सकती है। संस्कृत की भाँति, सरस्वती भाषा में शब्दों की व्युत्पति धातुओं से मान्य नहीं है। सरस्वती भाषा में अनेक शब्द एक अक्षर के होते हैं, जिनकी व्युत्पत्ति धातुओं से सिद्ध नहीं हो सकती है, यथा मम् (पानी), म: (चान्द), ट: (सोना, कनक), खम् (आकाश) कम् (पानी) आदि। संस्कृत भाषा के धातुओं की व्युत्पत्ति ही सरस्वती भाषा के शब्दों से सिद्ध हो सकती है। संस्कृत शब्द कोशों के अनुसार 'धातु:' शब्द का अर्थ है, मूल भाग, अवयव। सरस्वती भाषा में कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्दों के अन्त में 'नम' या 'णाम' लगा रहता है, यथा चलनम् (चलना), मापनम् (मापना), मारणम् (मारना), ढुण्ढनम् (ढूढना) कूर्दनम् (कूदना), छोरणम् (छोड़ना) आदि। इस प्रकार के सभी शब्द संस्कृत कोशों में उपलब्ध हैं। यह शब्द प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार पुल्लिङ्ग हैं। यदि इन शब्दों के अन्त का णम् या नम् लोप कर दिया जावे तो कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द का जो भाग शेष रहता है, वह सरस्वती भाषा में कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप होता है। कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द के इस मूल अवयव को ही संस्कृत में धातु: कहते हैं। धातु कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप होने के कारण ही धातु शब्द को अनेक विद्वान स्त्रीलिङ्ग समझते हैं, परन्तु यह शब्द प्रत्यय के अनुसार पुल्लिङ्ग है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि चलनम्, मापनम् आदि शब्दों की व्युत्पत्ति चल्, माप् आदि धातुओं से नहीं हुई है, अपितु चल् माप् आदि धातु, कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्दों के ही मूल अवयव होते हैं। अत: सरस्वती भाषा में किसी भी शब्द को धातु नहीं कहते हैं।

सरस्वती भाषा में व्याकरण की दृष्टि से किसी शब्द को भी क्रिया की कोटि के अन्तरगत नहीं रखा जा सकता है, अर्थात व्याकरण कोटि क्रिया का कोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी शब्द सरस्वती भाषा में नहीं होता है। यही कारण है कि संस्कृत कोशों में भी किसी शब्द को क्रिया नाम की व्यकरण कोटि के अन्तरगत नहीं रखा जाता है। हिन्दी व्यकरण के सभी लेखक अङ्गरेजी भाषा के आधार पर चलना, कूदना, भागना, रोना, सोना आदि शब्दों को क्रिया बताते हैं। जो शब्द जिस रूप में शब्द कोशों में दिया होता है उस शब्द का उसी रूप, अर्थ, और व्याकरण कोटि के अनुसार भाषा में प्रयोग होना अनिवार्य होता है। यदि हिन्दी वैयाकरणों के अनुसार चलना, कूदना, भागना, सोना आदि शब्द व्याकरण की दृष्टि से क्रिया हैं तो यह वैयाकरण इन शब्दों को उसी रूप में क्रिया की भाँति भाषा में प्रयोग करके दिखावें। इस प्रकार के शब्दों का अपने वास्तविक रूप में क्रिया की भाँति भाषा में प्रयोग होना असम्भव है। अपितु यह सभी शब्द कर्मवाचक सञ्ज्ञा होने के कारण सञ्ज्ञा की भाँति ही भाषा में प्रयोग होते हैं। हम चलना और कूदना शब्दों को भाषा में सञ्ज्ञा की भाँति प्रयोग करके कुछ उदाहरण देते हैं।

चलना, (कर्मवाचक सञ्ज्ञा):—१ क्या इस बालक पर चलना आता है। २. क्या बालक ने चलना सीख लिया।

कूदना, (कर्मवाचक सञ्या):—१. किस किस बालक पर दो गज़ से अधिक कूदना आता है। क्या पाठशाला में बालकों को कूदना सिखाया जाता है।

पाठक देख सकते हैं कि उपरोक्त वाक्यों में 'चलना' और 'कूदना' शब्द सञ्ज्ञा की भाँति प्रयोग हुये हैं, यदि यह शब्द क्रिया हैं तो इन शब्दों का इसी रूप में क्रिया की भाँति प्रयोग होना अनिवार्य है।

उपसर्ग :—सरस्वती भाषा के रूढ़ शब्दो में उपसर्ग और निपात जोडकर, रूढ़ शब्दों के अर्थ में परिवर्तन करने वाले शब्द बना लिए जाते हैं। उपसर्ग और निपात रूढ़ शब्दों की भाँति भाषा में स्वतन्त्र रुप से प्रयोग नहीं होते हैं। उपसर्ग अपने स्वतन्त्र रूप में प्रयोग नहीं होते है। उपसर्ग अपना स्वतन्त्र अर्थ प्रकट करते हैं और रूढ़ शब्दों में जोड़ने पर वह उन शब्दों के अर्थों में सुधार करते हैं, शब्दों के अर्थ को बढ़ाते हैं और कुछ उपसर्ग शब्दों के अर्थ को विपरीत कर देते हैं। उयसर्ग गिनती में २२ होते हैं, जो इस प्रकार हैं:—अति अधि, अनु, अप, अपि, अभि, अव, आ, उत, उन, दुस्, दुर्, नि, निस्, निर् परा, परि, प्र, प्रति, वि, सम और सु। यह सभी असर्ग सार्थक होते हैं, और एक ही उपसर्ग के अनेक अर्थ भो होते हैं। जो उपसर्ग जिस अर्थ में प्रयोग होता है, उसी अर्थ के अनुसार वह रूढ शब्द के अर्थ में परिवर्तन करता है। उपसर्ग और रूढ शब्द के योग से शब्द का जो रूप बनता है, उसी के अर्थ से उस समय उपसर्ग जिस अर्थ में प्रयोग हुआ है, समझा जा सकता है। कोई उपसर्ग किस किस अर्थ में प्रयोग होता है, वह सभी अर्थ संस्कृत कोशों में दिये हुये हैं। सरस्वती भाषा में भी इनके वही अर्थ होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ शब्दो के अक्षर-विन्यास इस प्रकार के होते हैं कि उनको देखने से यह स्पष्ट नहीं होता है कि वह शब्द रूढ़ शब्द है या किसी रूढ़ शब्द में उपसर्ग जुड़ा हुआ है। इसका ज्ञान शब्द के सामूहिक रूप के अर्थ और अवयवार्थ से हो सकता । जिस शब्द के सम्बन्ध में यह जानना हो, उसके अवयव कर लेने चाहियें। यदि उस शब्द के अवयवों का सामूहिक अर्थ और उस शब्द का अर्थ एक समान ही हो तो हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि वह शब्द रूढ़ शब्द में उपसर्ग जोड़कर बना हुआ है। परन्तु यदि उस शब्द के अवयवों का सामूहिक अर्थ वही नहीं होता है जो उस शब्द का है, तो उस शब्द को रूढ़ शब्द ही समझना चाहिए। अपने कथन को हम एक उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं।

शब्द 'विमान:' के अवयव हैं 'वि' और 'मान:'। वि उपसर्ग शब्द के अर्थ को वैपरीत्य करना है, और 'मान:' शब्द का अर्थ है आदर। इस प्रकार इस शब्द के अवयवों का सामूहिक अर्थ अनादर या अपमान हुआ जो उस शब्द का अर्थ है। अत: हम कह सकते हैं कि 'विमान:' शब्द अनादर के अर्थ में 'मान:' शब्द में 'वि' अपसर्ग जोड़ कर बना हुआ है। परन्तु 'विमान' शब्द में 'वि' और मान अवयवों का सामूहिक अर्थ वायुयान या घोड़ा नहीं होता है। अत: 'विमान' शब्द वायुयान के अर्थ में रूढ़ शब्द है, और इसका साधु शब्द 'विमानम्' है।

निपात:—सरस्वती भाषा में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का बहुत महत्त्व है। बिना अर्थज्ञान के शब्द ज्ञान निरर्थक होता है। जिस प्रकार रूढ़ शब्दों में उपसर्ग जोड़कर शब्द के अर्थ में परिवर्तन कर लिया जाता है, उसी प्रकार रूढ़ शब्दों में निपात जोड़कर भी अर्थ में परिवर्तन कर लिया जाता है। 'न' एक निषेधार्थक निपात है जो संज्ञा, विशेषण और अव्ययों के पूर्व लगाया जाता है। व्यञ्जनादि शब्दों के पूर्व 'न' का 'अ' रूप हो जाता है तथा अऋणिन् शब्द को छोड़कर स्वरादि शब्दों के पूर्व 'न' का रूप 'अन' हो जाता है। 'न' के सामान्यतया छः अर्थ होते हैं:—(१) सादृष्य (समानता या तुल्यता), यथा अब्राह्मण: (ब्राह्मण नहीं, परन्तु ब्राह्मण के समान जनेऊ आदि धारण करने वाला) अत: क्षत्रिय या वैश्य। (२) अभाव (अनुपस्थिति, निषेध, अभाव, अविद्यमानता) यथा, अज्ञानम् (ज्ञान का न होना), इसी प्रकार अक्रोध:, अनङ्ग:, अघट: आदि। (३) भिन्नता (दूसरी वस्तु होना) यथा अपट: (कपड़ा नहीं, कपड़े से भिन्न या अन्य कोई वस्तु)। (४) अल्पता (लघुता, न्यूनता) यथा, अनुदरा कन्या (पतली कमर वाली कन्या)। (५) अप्राशस्त्य (अनुचित, अयोग्यता आदि), यथा, अकाल: (प्रतिकूल समय), अकार्य (अनुचित कार्य)। (६) विरोध: (विरोधी, प्रतिक्रिया, वैपरीत्य) यथा, अनीति: (अनैतिकता), असुर: (देवों का विरोधी अर्थात राक्षस)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'असुर:' शब्द जब देवों का विरोधी अर्थात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राक्षस का अर्थ देता है तो 'असुर:' शब्द में 'अ' एक निपात है और 'स' व्यंजन के पूर्व 'अ' 'न' निपात का रूप है। परन्तु जब असुर: शब्द में 'अ:' निपात नहीं हैं अपितु यह संज्ञा पुलिंग वर्ण है। यहां 'अ:' का अर्थ विष्णु है। पवित्र 'ओम' को प्रकट करने वाली तीन (अ + उ + म्) ध्वनियों में से पहली ध्वनि - अकारो विष्णु-र्हिष्ट उकारस्तु महेश्वर: तो मकारस्तु स्मृतो ब्रह्मा प्रणावस्तु त्रयात्मक: ।। अ: का दूसरा अर्थ है, विष्णु, शिव, ब्रह्मा, वायु, वैश्वानर आदि देवता। इस प्रकार अ: + सुर: = असुर: शब्द का अर्थ देवता सिद्ध होता है। शब्द असुर: (अर्थ राक्षस) में स्वर का बल अन्तिम वर्ण 'र्' पर है और असुर: शब्द (अर्थ देवता) में स्वर का बल 'अ:' वर्ण पर होता है।

यौगिक शब्द

सरस्वती भाषा में किसी रूढ़ शब्द में अन्य शब्द जोड़कर अनेक शब्द बनाने की साधारण सी रीति है। यह परम्परा उतनी ही प्राचीन है जितनी कि हमारी भाषा। सरस्वती भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। देवनागरी लिपि का प्रत्येक अक्षर अर्थात स्वर या व्यञ्जन अर्थवत होता है और इस लिपि के किसी स्वर या व्यञ्जन को भी रूढ़ शब्दों में जोड़कर अन्य शब्द बना लिये जाते हैं। जिन शब्दों का एकीकरण होता है वह शब्द अपना व्यक्तिगत अर्थ देने के साथ ही सामूहिक रूप से भी अर्थ देते हैं। इस प्रकार के शब्दों को यौगिक शब्द कहते हैं।

यौगिक शब्दों की उत्पत्ति सर्वदा शब्दों के सामूहिक अर्थ के आधार पर ही होती है, परन्तु जब एक ही शब्दों के सामूहिक अर्थ से अनेक अर्थों या पदार्थों का बोध हो सकता हो तो यौगिक शब्द का प्रयोग किसी विशेष अर्थ में नियामक लोक-व्यवहार के अनुसार अर्थात प्रवृत्ति के आधार पर ही होता है। अत: साहित्यदर्पण के लेखक ने कहा है कि—अन्यद्धि शब्दानां व्युत्पत्तिनिमित्तम्, अन्यच्च प्रवृतिनिमित्तम्। अर्थात शब्दों का अर्थ सदा व्युत्पत्ति के आधार पर ही नहीं होता, वह मुख्यत: प्रवृत्ति के आधार पर होता है (नियामक लोक व्यवहार) के अनुसार होता है। यथा—पङ्कज एक यौगिक शब्द है, जिसकी व्युत्पत्ति है पङ्क + ज:, अर्थात जिसका जन्म पङ्क में हुआ हो पङ्क में कमल के अतिरिक्त अनेक पदार्थों का जन्म होता है, परन्तु नियामक लोक-व्यवहार के अनुसार अर्थात प्रवृत्ति के आधार पर पङ्कज का अर्थ कमल होता है। पङ्कज शब्द किसी ऐसे पदार्थ का अर्थ कभी नही देगा जिसका जन्म पङ्क में न होता हो। इसी प्रकार पीताम्बर: शब्द की व्युत्पत्ति है—पीत + अम्बर:, जिसका अर्थ है पीले कपड़ों वाला व्यक्ति। लोक-व्यवहार के अनुसार विष्णु और श्रीकृष्ण पीले कपड़े धारण करते हैं। अत: पीताम्बर शब्द विष्णु और श्री कृष्ण के विशेषण का अर्थ देता है। पीताम्बर: शब्द कभी ऐसे व्यक्ति का अर्थ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं देगा जो पीले कपड़े धारण न करता हो।

सरस्वती भाषा में असंख्य यौगिक शब्द बनाये जा सकते है। विष्णुसहस्त्र नाम में विष्णु के और गङ्गा सहस्त्रनाम में गङ्गा के एक एक सहस्त्रनाम दिये हैं। सरस्वती भाषा में एक ही अर्थ को बताने वाले सैकड़ों शब्द किस प्रकार बनाये जाते हैं उनके हम कुछ उदाहरण देते हैं—

रात्री के पर्यायवाची शब्द हैं—निशा, रजनी, शर्वरी, श्यामा. निशीथिनी, त्रियामा, क्षणदा, क्षपा, विभावरी, तमस्विनी यामिनी, तमी, घोरा, याम्या, तुङ्गी, दोषा, वासतेयी, तमा, क्षमा. शताक्षी, क्षणिनी, वासुरा, निषद्वरी, वसति, वायुरोषा, शय्या, यामवती, तारा, भूषा, ज्योतिष्मती, तारकिणी, काली, कलाषिनी, आदि। इन शब्दों में अत्रीशः, ईशः, नाथः पतिः, रत्नम्, केतुः, रमण, आदि शब्द जोड़ कर जो यौगिक शब्द बनते हैं उनका अर्थ चाँद होता है, यथा निशाधीश, निशानाथ, निशापति, निशारत्न निशाकेतु, निशेश, रजनीरमण, आदि।

पृथिवी के पर्यायवाची शब्द हैं—भूमि, भूः अचला, अनन्ता रसा, विश्म्भरा, स्थिरा, धरा, धरित्री, धरणी, क्षौणी, ज्या, वसुन्धरा, गोत्रा, पृथ्वी, क्ष्मा, अवनि, मेदिनी, मही, काश्यपी, क्षिति, सर्वसहा, वसुमती वसुधा, उर्वी, विपुला धात्री, इला, जगती, रत्नगर्भा, रत्नावती, देहिनी, पारा, विपुला आदि शब्द हैं। इन शब्दों में नाथ, पतिः, पालः, भुजः, ईश, ईश्वर, इन्द्रः, शुक्र, आदि शब्द जोड़कर जो यौगिक शब्द बनते हैं उनका अर्थ राजा होता है। यथा भूप, भूपाल भूमेश, पृथ्वीनाथ, पृथ्वीपति, आदि।

इसी प्रकार नदी का अर्थ देने वाले शब्दों में नाथः, पतिः, ईन, ईशः, कान्तः भर्तृ आदि शब्द जोड़ने से जो यौगिक शब्द बनते हैं वह समुद्र का अर्थ देते हैं। यथा, नदीपति. नदीनाथ, नदीकान्त, आदि।

समुद्र का अर्थ देने वाले यौगिक शब्द जल के पर्यायवाची शब्दों में धिः, निधिः, राशिः, इन्द्रः, ईश, ईश्वर आदि शब्दों के जोड़ने से भी बनाये जाते हैं, यथा, जलेन्द्र, जलधिः, जलनिधिः, वारिधिः, वारिनिधिः, तोयनिधि, नीरधिः, जलराशिः अब्धिः, उदधिः, जलेश, जलेश्वर, आदि आदि। जब इन्द्र जैसे अध्येता को वृहस्पति जैसे अध्यापक से एक सहस्त्र वर्ष में भी सभी शब्दों का ज्ञान न हो सका, तो किसी भी कोष में सभी शब्दों का दिया जाना असम्भव है।

सरस्वती भाषा में यौगिक शब्द बनाने की तीन रीतियाँ हैं, जो इस प्रकार हैं —

१. रूढ़ शब्दों में रूढ शब्द जोड़कर,

२. एक अक्षर के शब्द या देवनागरी वर्ण माला के किसी अक्षर में रूढ़ शब्द जोड़कर।

३. रूढ शब्दों में एक अक्षर के शब्द या देवनागरी वर्णमाला का कोई अक्षर जोड़कर।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यौगिक शब्द अधिकांश सञ्ज्ञा या विशेषण ही होते हैं। यौगिक शब्दों के सम्बन्ध में अर्थ के साथ-साथ व्याकरण पर भी विशेष रूप से ध्यान रखना आवश्यक होता है। रूढ शब्दों के पर में विशेषण शब्द जोड़ने से जो यौगिक शब्द बनेगा वह भी विशेषण ही होगा, तथा सञ्ज्ञा शब्द जोड़ने से जो यौगिक शब्द बनेगा वह भी सञ्ज्ञा ही होगा। यौगिक संज्ञा शब्द का लिङ्ग भी उसी संज्ञा शब्द के अनुसार होगा जिसके जोड़ने पर यौगिक शब्द बना हो। अर्थात् प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार जो संज्ञा शब्द जोड़ा गया है वह पुल्लिङ्ग है तो यौगिक शब्द भी पुल्लिङ्ग ही होगा, और यदि वह शब्द स्त्रीलिङ्ग है तो यौगिक शब्द भी स्त्रीलिङ्ग होगा। परन्तु यह ध्यान रहे कि यदि यौगिक शब्द किसी रूढ शब्द में धिः, निधिः, राशिः, पतिः, पाणिः, अरिः, अरातिः, जोड़कर बना हो तो यौगिक शब्द सर्वदा पुल्लिङ्ग ही होता है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहिये कि कर्मवाचक संज्ञा शब्द के दो रूप होते है- १. पुल्लिङ्ग और २. स्त्रीलिङ्ग। कर्मवाचक संज्ञा शब्द के पुल्लिङ्ग रूप के अन्त में 'नम' या 'णम' होता है और पुल्लिङ्ग रूप के अन्त का नम् या णम् लोप करने पर जो उस शब्द का अवयव शेष रहता है, वह शब्द कर्मवाचक संज्ञा स्त्रीलिङ्ग शब्द होता है। इस कर्मवाचक स्त्रीलिङ्ग संज्ञा शब्द का लगभग वही रूप होता है, जिसे संस्कृत में धातु कहते हैं। इस कर्मवाचक स्त्रीलिङ्ग संज्ञा शब्द में रूढ शब्द आदि जोड़कर और रूढ शब्दों में यह शब्द जोड़कर भी यौगिक शब्द बनाये जाते हैं। जिस यौगिक शब्द के अन्त में कर्मवाचक संज्ञा शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप जुड़ा रहता है वह यौगिक शब्द भी स्त्रीलिङ्ग ही होता है। यथा शब्द 'झण्झट' की व्युत्पत्ति है—(ध्यान—झट्), इसमें 'झट' अवयव 'झटनम' कर्मवाचक संज्ञा शब्द का स्त्रीलिङ्ग है। अतः शब्द 'झण्झट' भी स्त्रीलिङ्ग ही है। इसी प्रकार शब्द 'धरोहर' की व्युत्पत्ति है—(धर–अवहर्), इसमें 'अवहर' अवयव कर्मवाचक संज्ञा शब्द 'अवहरणम्' का स्त्रीलिङ्ग है। अतः 'धरोहर' भी स्त्रीलिङ्ग है।

१. शब्द में शब्द जोड़कर

रूढ शब्दों में शब्द जोड़कर जो यौगिक शब्द बनते हैं उनके उदाहरण संस्कृत कोशों में भरे पड़े हैं। अधिकांश वही यौगिक शब्द संस्कृत कोशों में उपलब्ध होते है जिनका प्रयोग संस्कृत साहित्य में हो चुका है। जो यौगिक शब्द खरी-बोली के क्षेत्र में जन-साधारण की कथ्य भाषा में तो प्रचलित हैं परन्तु उन्होने संस्कृत साहित्य में कोई स्थान नही पाया है, संस्कृत कोशों में उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार के शब्दों को संस्कृत कोशों में न पाकर यह नही समझना चाहिये कि यह शब्द सरस्वती भाषा के नहीं हैं। खरी-बोली के क्षेत्र के ग्रामों में केवल सरस्वती भाषा के ही शब्द प्रचलित हैं। म्लेच्छ भाषाओं के शब्द अभी तक भी उस क्षेत्र के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रामवासियों की भाषा में मिश्रित नहीं हुई है। म्लेच्छ भाषा के शब्दों का प्रयोग अधिकांश कचहरियों की भाषा तक ही सीमित रहा है। कचहरियों में प्रयोग होने के कारण ही म्लेच्छ भाषा के शब्द केवल कुछ नगर वासियों की भाषा में ही मिश्रित हुये हैं। सरस्वती भाषा के शब्दों को, जो संस्कृत कोशों में उपलब्ध नहीं होते हैं, संस्कृत के विद्वान संस्कृत शब्दों से इस कारण सिद्ध नहीं कर पाते हैं कि वह उन शब्दों को यौगिक शब्द न समझकर रूढ शब्द समझ लेते हैं। लौकिक संस्कृत के विद्वान व्युत्पत्ति पक्ष के आधार पर शिक्षा ग्रहण करने के कारण उन शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत के किसी धातु से सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। जब वह इस कार्य में असफल रहते हैं तो वह उन शब्दों को देशी की संज्ञा देकर छोड़ देते हैं। विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभाग के अध्यापकों के लिए इन शब्दों का साधुरूप ढूण्ढना असम्भव है, कारण कि उन अध्यापकों को प्रथम तो संस्कृत भाषा का ज्ञान ही नहीं हैं, वह शब्दों की व्युत्पत्ति केवल ध्वनि साम्य के आधार पर ढूण्ढ़ते हैं और वह शब्द के अर्थ, उसकी व्याकरण कोटि और सञ्ज्ञा शब्द के लिङ्ग पर ध्यान ही नही देते हैं।

नागरी प्रचारणी सभा, काशी ने एक हिन्दी कोश प्रकाशित किया है जिसको वह हिन्दी शब्द सागर कहते हैं। इस कोश में खरी-बोली क्षेत्र की कथ्य भाषा में प्रचलित शब्दों का तो अभाव है परन्तु म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का बाहुल्य है। इस शब्द कोश में हिन्दी भाषा के जो थोड़े बहुत शब्द दिये हुए हैं, उनकी व्युत्पत्ति दिखाने का प्रयास किया गया है। शब्दों की व्युत्पत्ति दिखाने का कार्य केवल हास्य जनक ही नही अपितु इस शब्द कोश के सम्पादकों की मूर्खता का दिग्दर्शन है। यदि इस शब्द कोश में दिये हुये सभी शब्दों के सम्बन्ध में भ्रामक विचारों को दिखाया जाय तो हमें एक शब्द सागर उद्धार कोश ही लिखना पड़ेगा। इस शब्द कोश में दिये हुए कुछ शब्दों के उदाहरण इसी पुस्तिका के खण्डन काण्ड के एक अध्याय में दिये हैं। इस शब्द कोश को शब्द सागर की अपेक्षा अपशब्द सागर ही कहना उचित होगा। इस शब्द सागर के कारण हिन्दी के सम्बन्ध में आज इतने भ्रामक विचार फैल गये हैं कि जनता के हृदय से इन भ्रामक विचारों को निकालना दुष्कर और असम्भव प्रतीत होने लगा है। इस अपशब्द सागर का प्रभाव केवल साधारण जनता पर ही नहीं पड़ा अपितु संस्कृत के विद्वान भी इसके भ्रामक विचारों और मूर्खता में फंस गये हैं। चौखम्भा विद्या-भवन ने एक आदर्श हिन्दी-संस्कृत कोश प्रकाशित किया है। इस कोश में शब्दों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में लगभग वही भ्रामक विचार भरे पड़े हैं जो नागरी प्रचारणी सभा के शब्द सागर में दिये हुए हैं। इस शब्द कोश के सम्पादक ने अपनी बौद्धिक प्रतिभा को पूर्ण रूप से कुण्ठित करते हुए नागरी प्रचारणी सभा के कोश का अन्धानुकरण किया हैं जैसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि संस्कृत में लोकोक्ति हैं—मक्षिका स्थाने मक्षिका पातः। हिन्दी भाषा के विद्यार्थियों को खरी बोली के शब्दों के साधु रूप के ज्ञान करने हेतु इस प्रकार के शब्द कोशों में दिये हुए भ्रामक विवादों में नहीं फंसना चाहिए।

अब हम खरी बोली के कुछ ऐसे शब्दों के उदाहरण देते हैं, जो उस क्षेत्र की कथ्य भाषा में साधारणतः प्रचलित हैं, परन्तु वह शब्द अपने वास्तविक रूप में किसी भी संस्कृत कोश में उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रकार के सभी शब्द सरस्वती भाषा के शब्दों अर्थात संस्कृत कोशों में दिये हुये शब्दों से सिद्ध होते हैं। यथा—

हिन्दी शब्द	सरस्वती भाषा का यौगिक शब्द
गुलगुला—	(गुल्य-गोलः) सं० पु०, गुल्य = मीठा।
गुलदाना—	(गुल्य-धान्यम्) सं० पु०।
रेवड़ी—	(रयि-वटी) सं० स्त्री०।
जलेबी—	(जलम्-आपी) (जलम-आवी), सं० स्त्री०।
मोतीपाक—	(मौक्तिकम्-पाकः) सं० पु०।
खण्डबड़ा—	(खण्डः-वटः) सं० पु०।
गुलाबजामुन—	(गुल्य-आपः-जम्बुकी) सं० स्त्री०; गुल्य = मीठा, आपः पानी, जम्बुकी = जामुन।
धोत्ती—	(अधः-अवतितः) सं० स्त्री०, अधः = नीचे का भाग, अवततिः = विस्तृत।
कुरता—	(कु-लक्तः) सं० पु०।
तियल—	(स्त्री-लता) सं० स्त्री०।
पायल, पायलया—	(पादः-लता) सं० स्त्री०।
बुक्कल—	(बुक्कम्-लता) सं० स्त्री०।
पतङ्ग—	(पत्रम्-अङ्गम्) सं० स्त्री०, पत्रम = कागज।
लहंगा—	(लयः-अङ्गम्) सं० पु०।
सायत—	(सम्-आयतिः) सं० स्त्री०।
धरोहर—	(धर-अवहर) सं० स्त्री० अवहर = अवहरणम् का स्त्री लिङ्ग रूप।
धाड़, दहाड़—	(दह्-आरु) सं० स्त्री० आरु = आरुणम् का स्त्रीलिङ्ग।
भपकारा—	(बाष्प-कारः) सं० पु०।
कठौतः—	(काष्ठम-अवतः) सं० पु०।
दन्तौन—	(दन्तः-अवनि) स० स्त्री०।
तुरपाई—	(तुरी-पूर्तिः) सं० स्त्री०।
दुछत्ति—	(द्वि-छदिः) सं० स्त्री०; छदिः = छत।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धुंआला— (धूमः-आलयः) सं० पु० ।
ढकोसला— (ध्या-कुशलम्) सं० पु० ।
कच्चहरी— (कच्चर + हरी) सं० स्त्री० ।
देहलीज— (देहली + ज्या) सं० स्त्री० ।
हंसली— (अंस + ली) सं० स्त्री० ।
पछेली— (पश्च + ली) सं० स्त्री० ।
कुरूढी— (कु + रूढी) सं० स्त्री० ।
लकड़बग्घा— (लगड + व्याघ्र) सं० पु०; लगड = सुन्दर ।
पत्तौड़— (पत्रम् + वटः) सं० पु० ।
झमेला, झैमेला— (ध्या + मेलः) सं० पु०; (ध्यै + मेलः) स० पु० ।
झक— (ध्या + क्षिः) सं० स्त्री०, ध्या = ध्यान, विचार क्षिः = मारना, नष्ट करना ।
झंझट— (ध्यान + झट्) सं० स्त्री०, झट् = झटनस् कर्मवाचक सञ्ज्ञा का स्त्री अर्थ उलझना, सम्भ्रांत होना, आकुल होना ।
कनकव्वा— (कोणः — काकः) सं० पु०, कोणः = कोना, अर्थात कोनों वाला काग (पतङ्ग) ।
कहावत— (कथा-उक्तिः) सं० स्त्री० ।

इसी प्रकार के सहस्त्रों शब्दों के उदाहरण दिये जा सकते हैं ।

२. एक अक्षर के शब्द या देवनागरी लिपि के किसी अक्षर में रूढ़ शब्द जोड़कर ।

३. रूढ़ शब्द में एक अक्षर का शब्द या देवनागरी लिपि का कोई अक्षर जोड़कर !

सरस्वती भाषा में एक अक्षर के अनेक शब्द होते हैं । इस प्रकार के शब्द संस्कृत कोषों में उपलब्ध हैं । इसके अतिरिक्त देवनागरी वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर (स्वर और व्यंजन) अर्थवत होता है । वर्ण संज्ञा भी होते हैं और विशेषण भी होते हैं । वर्ण की व्याकरण कोटि अर्थात संज्ञा या विशेषण के अनुसार उस वर्ण के अर्थ भी पृथक पृथक होते हैं । देवनागरी वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर अनेकार्थक भी होता है और विभिन्न अर्थों में रूढ शब्दों के साथ जोड़कर विभिन्न अर्थ देने वाले यौगिक शब्द भी बनाये जा सकते हैं । किसी यौगिक शब्द में किसी वर्ण का क्या अर्थ है उसका अनुमान यौगिक शब्द के अर्थ से लगाया जा सकता है ।

एक अक्षर के शब्द या देवनागरी लिपि के किसी अक्षर को रूढ़ शब्द के पूर्व या पश्चात जोड़ने से जो यौगिक शब्द बनते हैं वह अधिकांश संस्कृत कोषों में उपलब्ध नहीं होते हैं । इस प्रकार के सभी शब्द सरस्वती भाषा के ही हैं और संस्कृत कोषों में दिये हुए शब्दों से सिद्ध किये जा सकते हैं, परन्तु उन शब्दों की व्युत्पत्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लौकिक संस्कृत के वैयाकरण सिद्ध नहीं कर पाते है। इसका कारण यह है कि सरस्वती भाषा में शब्दों के सम्बन्ध में अव्युत्पत्ति मत प्रचलित है। सरस्वती भाषा में न धातु होते हैं और न ही शब्दों की व्युत्पत्ति धातुओं में प्रत्यय जोड़ने से सिद्ध होती है। लौकिक संस्कृत के विद्वान पाणिनि प्रभृति व्याकरण का अध्ययन करते हैं। लौकिक संस्कृत के वैयाकरणों को शब्दों के सम्बन्ध में व्युत्पत्ति मत मान्य है। यह वैयाकरण प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति किसी न किसी धातु में प्रत्यय जोड़ने से मानते हैं। सरस्वती भाषा के यौगिक शब्दों को वह रूढ़ शब्द समझ कर उन शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत के किसी धातु में प्रत्यय जोड़कर सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। जब यह वैयाकरण इस प्रकार शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध करने में असफल रहते हैं तो वह उन शब्दों को देशी कहकर छोड़ देते हैं। उनकी यह धारणा साधु नहीं है। इस प्रकार के शब्द भी संस्कृत कोशों में उपलब्ध शब्दों की भांति सरस्वती भाषा के ही हैं और उन शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत कोषों में दिये हुये शब्दों से सिद्ध हो सकती है।

देश्य शब्द ?

विश्वविद्यालयों के हिन्दी भाषा-विज्ञान के लेखक व अध्यापक इस प्रकार के शब्दों की व्युत्पत्ति सरस्वती भाषा के शब्दों से सिद्ध नहीं कर पाते हैं। कारण कि वे शब्द के अर्थ शब्द-अर्थ के सम्बन्ध, शब्द की व्याकरण कोटि और उपकोटि, तथा संज्ञा शब्द के लिङ्ग पर ध्यान नहीं देते हैं। यह मडूक प्रवृत्ति के लेखक व अध्यापक ध्वनि साम्य के आधार पर निरर्थक टर्र् टर्र् ही किया करते हैं। वे इन शब्दों को केवल देशी ही नहीं कहते हैं अपितु उनका कथन है कि यह शब्द भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं मे सरस्वती क्षेत्र की भाषा में गृहीत हुए हैं। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह शब्द भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं में न कभी पहले प्रचलित थे और न आज प्रचलित हैं। वह शब्द केवल कुरुक्षेत्र की ही भाषा में प्रयोग होते थे तथा आज भी उसी क्षेत्र की भाषा में उन्ही अर्थों में व्यवहार में आते हैं। यह शब्द वैसे ही सरस्वती भाषा के हैं जैसे कि अन्य शब्द। अधिकांश इसी प्रकार के शब्दों को ग्रियर्सन आदि पाश्चात्य लेखकों ने देश्य कहा है और पाश्चात्य लेखकों के आधार पर ही उनके मानस पुत्र उन शब्दों को देश्य कहते हैं।

अब हम इस प्रकार के कुछ शब्दों का उदाहरण देकर अपने कथन की पुष्टि करते हैं। सरस्वती भाषा के क्षेत्र में एक बहुत प्रचलित शब्द है–'षम्। इस शब्द में ष का उच्चारण ख होता है और म् का उच्चारण नहीं होता है। अतः षम् का उच्चारण ख होता है जिसका अर्थ है मल, विष्ठा गू, आदि। ग्रामों में सभी नर व नारी विष्ठा करने ग्रामों से बाहर खेतों में जाते हैं, परन्तु पुरी में रहने वालों के घरों में विष्ठा करने के लिये खुड्डियाँ बनी होती है। जिस शब्द को सरस्वती भाषा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में षम् (ख) कहते हैं उसी शब्द को संस्कृत में पुरीषम् कहते हैं, जिसकी व्युत्पत्ति है—पुरी + षम् । अतः इस शब्द का अर्थ हुआ पुरी का मल, विष्ठा आदि । लौकिक संस्कृत के विद्वान इस शब्द की व्युत्पत्ति भी किसी धातु से सिद्ध करने का प्रयास करते हैं ।

इस शब्द का साधु रूप षम् (ख) ही है और इसी रूप में यह शब्द सरस्वती भाषा के क्षेत्र में प्रचलित है । ग्रामों में गाली देते समय कहते हैं कि इसके मुंह में 'ख' दे दो । इसी प्रकार गाली का दूसरा रूप है कि तुम 'ख' खाओ । पुरीषम् एक यौगिक शब्द है और उसकी व्युत्पत्ति किसी धातु से सिद्ध नहीं हो सकती है । इन दो शब्दों के उदाहरण से उपरोक्त कथन स्पष्ट हो जाता है—

खाद—सं० स्त्री—(षम्-आदि)—षादि (खादि-खाद) सं० स्त्री० । संस्कृत में यह शब्द 'पुरीषादि' है ।

खुड्डी—सं० स्त्री०—(षम्-उड्डी)—षुड्डी (खुड्डी) सं०, स्त्री० ।

इसी प्रकार के कुछ शब्दों के उदाहरण देते हैं—

खखल—खम्-खलम्, सं०पु०, खम् = आकाश; खलम् = अधिक धूल, अर्थात आकाश पर अधिक धूल ।

टूम—टुः-मणि, सं० स्त्री० । **तागड़ी**—तः-कटी, सं० स्त्री० ।

तडका—तड्-कः, सं० पु० तड् = चमकना, फूटना । कः = प्रकाश ।

पटाका—पटः-कः, सं० पु० । **चकमा**—चः-कर्मन, सं० पु०, चः = चोर ।

झांसा—झ-अंशः, सं० पु० । **धनदा**—धनम्-दः, सं० पु० ।

छपकली—छम्-पल्ली सं० स्त्री०, छम् = घर; पल्ली = गृहगोधा ।

धमाका—धमः-कः, सं० पु०, धमः = यम, मृत्यु का देवता; कः = शब्द ध्वनि ।

काई—कम्-आयतिः सं० स्त्री०, कम् = पानी, जल ।

खडका—खड्-कः सं० पु०, खड् = खण्ड = टूटना, भिद; कः = शब्द, ध्वनि ।

रायता—राज-तः, सं० पु०, राज = बहुत अच्छा, श्रेष्ठ; तः = यूष, झोल, रसा ।

फवार, फुआर—फः-वारि, सं० स्त्री०, फः = वेगानिल, वाताली, प्रचण्ड वायु; वारि = पानी ।

ठेखा—ठः खः सं० पु०, ठः = गोलाकार; खः = खातम्, अर्थात गोलाकार खाता जिसमें व्यापारी गेहूं, सरसों, चना आदि भरकर रखते हैं ।

ढिण्डी-ठः-हण्डी स० स्त्री० ठः = गोलाकार ।

वापू, बाप—व-ऊः, सं० पु०, व = सामर्थ्य, प्रबल; ऊः = रक्षक ।

लगन—ला-अग्निः, सं० स्त्री०, ला = लेना; अग्नि = चिन्ता ।

जनेऊ—जः-निवीतम् = यज्ञोपवीत पहनना; अर्थात जिकी उत्पति यज्ञोपवी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कार द्वारा हुई हो ।

तुक—तः-उक्ति सं० स्त्री० तः = छन्द का अन्तिम चरण ।

झोका—झ्यु-कः सं० पु०, झ्यु = चलना, कः = वायु ।

चन्दा—चःद्-दः, सं०, पु०, चन्द = आनन्द, हर्ष, उल्लास मनाना; दः = प्राप्ति ।

झरना—झरः-नः, सं० पु०, झरः = वारि प्रवाह; नः = उसी प्रकार का ।

मूँगा—मुः-अङ्गम्, सं० पु०, मु० = कपिश या पिंगल रङ्ग; अर्थात जिसका अङ्ग कपिश या पिङ्गल रङ्ग होता है ।

गाद—गूः-आदि, सं० स्त्री०, गूः = मलम्, कर्दमः, घूल ।

गूदड़—गूः-धरः, सं० पु०, धरः = रूई का समूह, अर्थात रुई का समूह जो बहुत मलिन हो गया हो ।

अब कुछ यौगिक कर्मवाचक संज्ञा शब्दों के उदाहरण देते हैं, जो इसप्रकार हैं—

खोजना = (क्षः + अवजिनम्) क्षः = खोना, अन्तर्धान होना, अवजिनम् = पाना ।

कङ्घालना = (कम् + क्षालनम्) कम् = पानी, जल, क्षालनम् = धोना, पवित्र करना ।

रपटना = (र + पतनम्), र = शीघ्रता । **रगड़ना** = (र + घर्षणम्) ।

बुहारना (झाड़ू देना) = (बहु-हरणम्) । **वहोडना** = (वि + होडनम्) ।

बिदकना = (वि + दघनम्), दघनम् = चलना ।

चोपडना = (च्यु + पटनम्) । **तुरपना** = (तरी + पूरणम्) ।

पटकना = (पट् + करणम्) । **कड़कना** = (कड् + करणम्) ।

कूकना = (कू + करणम) । **धुरकना** = (घुर् + करणम्) ।

धिक्कारना = (धिक् + कारणम) । **मुस्कराना** = (मू + स्मिकरणम्) ।

झाड़ना = (झाड़ना फुँकना) (ध्या-हरणम्) **खड़कना** = (खण्ड्-करणम्)

झुल्हसना = (जल्हु-स्नानम्) जल्हुः = आग ।

टपकना (लज्जा करना) = (त्रप्-करणम्)

डपटना—(ड·—पटनम्), **धुतकारना** = (धुत-कारणम्)

निखारना = (नि क्षारणम्) **नुलाना** = (लू-लवनम्)

मडकना = (मर्व्-करणम्)

हिचकना = (हि-चकनम्), हि = त्यागना, वर्जना, चकनम् = प्रतिरोध करना, विरोध करना ।

हुडुकना = (हुडुत्-करणम्), हुडुत = धमकी का शब्द ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: ९ :

भारतीय-भाषायें

हमारी संस्कृति में सनातन एक महाशक्ति है। यहाँ किसी वस्तु का विनाश नहीं होता है भले ही उसके वाह्य रूप में परिवर्तन हो जाय। हमारे यहां ब्रह्म अनादि और सनातन है, जीव अनादि और सनातन है, मृत्यु हमारी संस्कृति और सिद्धान्त में स्वीकार ही नहीं किया गया है—यो न नश्यति न विनश्यति। हमारी संस्कृति में तो स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध भी सनातन ही है। योरोप में दर्शन और विचार की इतनी गहराई नहीं है, वहां तो परमात्मा के भी विविध रूप और विविध स्थान माने जाते हैं, कभी परमात्मा चौथे आकाश पर रहता है तो कभी सातवें पर। योरोप वासी इन्हीं भौतिक विचारों को ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में भी व्यवहार में लाते हैं और इन्हीं विचारों का अनुकरण भारतीय भाषा वैज्ञानिक शिक्षित होते हुये भी अशिक्षित व्यक्तियों की भांति करते हैं।

हमारी भाषा सन्तति परम्परा में सदैव जीवित रहती है, इसी कारण वह सतत और सनातन है। पिता और पुत्र के बीच में भाषा की ही अटूट डोरी चली आ रही है, पुत्र पिता से भाषा सीखता है। आज तक किसी भी व्यक्ति से यह नहीं सुना है कि अमुक पुत्र जो अपने पिता के साथ रहता हो और ज़िसने अपनी मातृ-भाषा अपने पिता से ग्रहण की हो, वह यह कहे कि वह अपनी मातृ-भाषा को उसी मूल रूप से नहीं बोलता है, जिस मूल रूप से उस भाषा को उसके माता पिता बोलते थे।

सरस्वती-संस्कृत

भारत की आदि मूल भाषा सरस्वती है। सरस्वती वैदिक काल और उसके भी पूर्व मध्यदेश प्रचलित जन साधारण की कथ्य भाषा थी। साधारण कथ्य भाषा किसी देश में और किसी काल में भी साहित्य की भाषा से उद्भूत नहीं होती है। साहित्य-भाषा ही उस समय की जन-साधारण की कथ्य भाषा से उत्पन्न होती है। वेद भाषा प्राचीन होने पर भी वैदिक युग में जन-साधारण की कथ्य भाषा नहीं थी, वह ऋषियों की साहित्य भाषा थी। वेद-भाषा उच्चकोटि की प्रौढ़ भाषा है, यह इतनी समर्थवान थी कि इसकी ओज में पद्यात्मक रूप दिया जा सका, इसी कारण इसको छनदस् भी कहते हैं। वैदिक युग की जन साधारण की कथ्य भाषा सरस्वती का कोई संरक्षित रूप इस समय उपलब्ध नहीं है। मौखिक होने के कारण उसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन रूप का सम्पूर्ण लोप हो गया है। वेद-भाषा का सर्व-प्राचीन गद्यात्मक रूप ब्रह्मण-ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। ब्रह्मण-ग्रन्थों की भाषा संहिता की भाषा की अपेक्षा बहुत सरल है और उसमें तत्कालीन जन-भाषा अर्थात कथ्य भाषा का सरल और स्वभाविक रूप स्पष्ट प्रलक्षित होता है। ब्रह्मण ग्रन्थों की भाषा का विश्व विद्यालयों और लोक में अध्ययन न होने के कारण साधारणत: उसका आदर्श भी मिलना दूभर हो गया है। वेद-भाषा अथवा ब्रह्मण-ग्रन्थों की भाषा व्याकरण के नियम वन्धनों में अधिक जकड़ी हुई प्रतीत नहीं होती है। यह मानने में हमें कोई आपत्ति नहीं है कि वैदिक युग में कथ्य भाषा का लगभग वही रूप था जिसका आदर्श ब्रह्मण-ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

वेद-भाषा क्रमश: परिमार्जित होती हुई ब्रह्मण, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि प्राचीन धर्म-ग्रन्थों में और पश्चात् में पाणिनि-प्रभृति के व्याकरण-द्वारा नियन्त्रित होकर लौकिक संस्कृत में परिणत हुई। पाणिनि आदि के पद-प्रभृति के नियम-रूप संस्कारों को प्राप्त करने के कारण ही इस भाषा को सस्कृत कहते हैं। मुख्य रूप से संस्कृत शब्द का प्रयोग इसी भाषा के अर्थ में हुआ है। इस भाषा का वैदिक युग की साहित्य भाषा अर्थात् वेद-भाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध है और यह भाषा वेद-भाषा का ही व्याकरण-नियन्त्रित विकसित रूप है, इसी कारण वेद-भाषा के लिये भी सस्कृत शब्द युक्त होने लगा है। वैदिक युग की कथ्य भाषा का रूप इस समय उपलब्ध नहीं है, अत: वैदिक युग की कथ्य भाषा भी अब सस्कृत ही समझी जाती है। भारतीय बिद्वान भारत की आदि मूल भाषा को सरस्वती न कहकर अब संस्कृत ही कहते हैं। वास्तव में वैदिक-युग की कथ्य भाषा को सरस्वती और साहित्य-भाषा को संस्कृत कहना ही उचित है।

पाणिनि के पशचात् संस्कृत भाषा को साहित्य में परिमार्जित करके व्याकरण के नियम-वन्धन में ऐसा जकड़ा कि संस्कृत भाषा गति-हीन और अपरिवर्तनीय हो गई। पाणिनि के पश्चात् संस्कृत भाषा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। संस्कृत भाषा में ऐसा एक भी शब्द नहीं है जो किसी काल में अन्य रूप में प्रयुक्त होता रहा हो और उत्तर काल में उसके रूप में परिवर्तन होकर भी वह शब्द संस्कृत भाषा का ही अङ्ग बना रहा हो। संस्कृत भाषा में जो परिवर्तन आपातत: प्रतीत होता है उसका कारण शब्दों का रूप परिवर्तन नहीं है अपितु प्राचीन काल की अतिविशाल सरस्वती भाषा, जिसमें अनेक शब्द मिलते जुलते रूप वाले प्रयुक्त थे, में उत्तरोत्तर अवनति के कारण कुछ शब्दों के अविशिष्ट रह जाने और कुछ शब्दों के लोप हो जाने के कारण प्रतीत होती है। यह दैवी वाक् अनादिनिधना अजरा अमरा है। इसी भाषा को हम गीर्वाण वाणी, देव वाणी, अमर भारती भी कहते हैं। आदि मूल कथ्य भाषा अपने मूल स्थान से कभी विनष्ट नहीं होती है। ब्रह्मर्षिदेश कुरुक्षेत्र की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा, जिसको खरी बोली हिन्दी भी कहते हैं, सरस्वती भाषा की जीवनयात्रा की अमर कहानी है ।

ग्रियर्सन का प्रथम प्राकृत

समवत् १९७८-८२ वि० के लगभग भारत में स्थापित अङ्गरेजी शासन ने ग्रियर्सन नामक एक अङ्गरेज के नाम से 'भारत का भाषात्मक सर्वेक्षण' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया था। हमने इस पुस्तिका में अन्य स्थान पर, बिस्तृत अनुसन्धान के पश्चात् यह स्पष्ट किया है कि उस ग्रन्थ की रचना भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए नहीं हुई थी, अपितु वह अङ्गरेजी शासन के षड्यन्त्रों की पूर्ति के हेतु ऐसा हलाहल विष घोलकर रचा गया था जिससे उनके अभिप्रायों की सिद्धि हो सके। उनमें से कुछ अभिप्राय इस प्रकार थे :—

१. भारतीयों के स्वाभिमान और गौरव को नष्ट किया जाय, और यह सिद्ध किया जाये कि भारत के समस्त निवासी अभारतीय हैं, वह यहां के मूल और आदि निवासी नहीं हैं। भारतीय विभिन्न अभारतीय जातियों के हैं जो पूर्ण रूप से विशुद्ध या अभिश्रित नहीं हैं।

२. भारत की आदि मूल धाषा संस्कृत नहीं है, उसका जन्म कहीं मध्य एशिया में हुआ था। आर्य अपनी भाषा और धर्म ग्रन्थों को अपने साथ लाये थे। भारत को एकता में आवध करने वाली संकृत भाषा को मृत और विनिष्ट घोषित की जाये।

३. भारत की प्रादेशिक भाषाओं का जन्म संस्कृत से नहीं हुआ था, वह स्वतन्त्र रूप से अपने अस्तित्व के साथ प्राचीन काल से जीवित हैं, और यह भाषायें संस्कृत की प्रामुखता न होकर अपने स्वयम् अस्तित्व को ऊपर उठावें जिससे भारत के विभिन्न प्रदेशों के निवासियों में फूट डाली जा सके।

उपरोक्त अभिप्रायों की पूर्ति को लक्ष में रखने के कारण ग्रियर्सन को संस्कृत भाषा और सस्कृत शब्द से स्वभाविक घृणा थी। ग्रियर्सन के ग्रन्थ के खण्ड १, भाग १, का हिन्दी अनुवाद उत्तर प्रदेश के सूचना विभाग की हिन्दी समिति ने प्रकाशित किया है। ग्रियर्सन लिखता है कि संस्कृत भाषा का विकास भारत की एक प्राचीन बोली से हुआ था जिसे वह प्रथम प्राकृत कहता है। उसने लिखा है कि "अशोक (२५० ई० पू०) के शिला लेखों तथा महर्षि पतञ्जलि के ग्रन्थों से यह ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व तीसरी शताब्दि में उत्तर भारत में आर्यों की विविध बोलियों से युक्त एक भाषा प्रचलित थी। जनसाधारण की नित्य व्यवहार की इस भाषा का क्रमागत विकास वस्तुतः वैदिक युग की बोलचाल की भाषा से हुआ था। इसके समानान्तर ही इन्हीं बोलियों में से एक बोली से ब्रह्मणों के प्रभाव द्वारा एक गौण-भाषा के रूप में लौकिक संस्कृत का विकास हुआ। कालान्तर में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसने मध्ययुगीन लैटिन की ही भाँति अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। शताब्दियों से भारतीय आर्य-भाषा प्राकृत नाम से पुकारी जाती रही है। प्राकृत का अर्थ है—नैसर्गिक एवं अकृत्रिम भाषा। 'प्राकृत' की इस परिभाषा से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन वैदिक ग्रन्थों की बोलचाल की भाषाएं पश्चात के मन्त्रों की कृत्रिम संस्कृत भाषा की तुलना में वास्तव में प्राकृत (नैसर्गिक) भाषाएँ थी। वस्तुत: इन्हें भारतवर्ष की प्राचीन प्राकृत कहा जा सकता है।"

जब हठता-पूर्ण वाद विवाद करने वाला शब्दों को तोड़-मरोड़ कर, उनका अशुद्ध अर्थ निकालकर प्रतिद्वन्दी पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करता हैं, तो 'न्याय' में उसकी गणना 'छल' में होती है। उपरोक्त उक्ति में न्यायकों की भांति ग्रियर्सन भी 'छल' का व्यवहार करता हैं। संस्कृत, पालि, प्राकृत, हिन्दी, बङ्गाली गुजराती, आदि शब्द भाषा के अर्थ में सञ्ज्ञा शब्द हैं विशेषण नही। किन्तु जिस प्राकृत शब्द का अर्थ नैसर्गिक या अकृत्रिम है, वह शब्द विशेषण हैं सञ्ज्ञा नहीं है। जब प्राकृत शब्द संज्ञा होता है तो उस शब्द के साधु रूप-प्राकृत: (सञ्ज्ञा पु०) और प्राकृतम् (संज्ञा न०) होते हैं। प्राकृत: (सञ्ज्ञा पु०) शब्द का अर्थ है—ग्रामीण या साधारण मनुष्य। यह शब्द इसी अर्थ में मनुस्मृति में भी प्रयोग हुआ है—

> कार्षापणं भवेद्दण्डयो यत्रान्य: प्राकृतो जन:।
> तत्र राजा भवेद्दण्ड्य: सहस्त्रमिति धारणा ।। ८ ३३६

अर्थात जिस अपराध में साधारण मनुष्य एक पणसे दण्डनीय है, उसी अपराध में राजा सहस्त्रपणसे दण्डनीय है।

प्राकृतम् (संज्ञा न०) शब्द में म् का उच्चारण नहीं होता है, अत: इस शब्द का उच्चारण भी प्राकृत होता हैं। संस्कृत कोशों में प्राकृत (संज्ञा न०) शब्द का अर्थ है, एक ग्रामीण या प्रान्तीय बोली जो संस्कृत से व्युत्पन्न तथा उससे मिलती जुलती है। मोनियर विलियम्स पृष्ठ ७०३, आप्टे खण्ड २, पृष्ठ ११२४।

भारतीय वैयाकरणों के अनुसार प्राकृत भाषा की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है, संस्कृत भाषा ही प्राकृत की जननी है। यह वैयाकरण प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति प्रकृति शब्द से करते हैं। प्रकृति शब्द का अर्थ बीज अथवा मूल तत्त्व है। प्रकृति शब्द का निर्वचन है—'प्रक्रियते यया सा प्रकृति:' अर्थात जिस से दूसरे पदार्थों की उत्पत्ति हो। इन वैयाकरणों का कथन है कि 'प्रकृति' का अर्थ हैं संस्कृत भाषा, और संस्कृत भाषा से जो उत्पन्न हुई है वह प्राकृत भाषा है।

हेमचन्द्र अपने व्याकरण सिद्धहेमचन्द्र, अष्टम अध्याय के प्रथम सूत्र में लिखता है—'प्रकृति: संस्कृत, तत्र भवं तत आगतं वा प्रकृतम', अर्थात मूल संस्कृत है और जिसकी उत्पत्ति संस्कृत से हुई है उसे प्राकृत कहते हैं।

मार्कण्डेय ने अपने व्याकरण प्राकृतसर्वस्य के प्रथम पाद के प्रथम सूत्र में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखा है—'प्रकृति: संस्कृतं, तत्र भवं प्राकृतमुच्यते' अर्थात संस्कृत मूल भाषा है और उससे जन्म लेने वाली भाषा को प्राकृत कहते है।

लक्ष्मीधर ने अपने व्याकरण षड्भाषा चन्द्रिका में लिखा है—प्रकृते: संस्कृत यास्तु विकृति: प्राकृतिमता'— अर्थात मूल भाषा संस्कृत से प्राकृत भाषा की उत्पत्ति हुई है।

दशरूपक का टीकाकार धनिक परिच्छेद २, श्लोक ६० की व्याख्या करते हुए लिखता है—'प्रकृते: आगतं प्राकृतम्। प्रकृति: संस्कृतम्'।

एक अन्य वैयाकरण प्राकृत चन्द्रिका में लिखते हैं—प्रकृति: संस्कृतं तत्र भवत्वात् प्राकृतं स्मृतम्' और प्राकृत सञ्जीवनी में लिखा है—'प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनि:'।

वररुचि ने प्राकृत प्रकाश, चण्ड ने प्राकृत लक्षण, और क्रमदीश्वर ने संक्षिप्त सार आदि प्राकृत-व्याकरणो ने भी उपरोक्त मत की पुष्टि की है।

भारतीय वैयाकरणों ने जिस संस्कृत भाषा से प्राकृत भाषा की उत्पत्ति बताई है, उस संस्कृत भाषा का तात्पर्य संस्कृत साहित्य भाषा नहीं समझना चाहिये। यहां संस्कृत से तात्पर्य संस्कृत कथ्य भाषा अर्थात सरस्वती है। हम इसी अध्याय में दिखा चुके हैं कि सरस्वती भाषा भी संस्कृत भाषा ही समझी जाती है। यह निर्विवाद सत्य है कि किसी भी साहित्य भाषा से किसी अन्य भाषा का जन्म नहीं होता है। कुछ लेखकों का विचार है कि यदि प्राकृत भाषा संस्कृत भाषा से उत्पन्न हुई होती तो उसके सभी शब्द संस्कृत से सिद्ध हो जाते, किन्तु ऐसा नहीं होता है। यह विचार भ्रामक और निर्मूल है। अनुसन्धान द्वारा अब विदित होता है कि प्राकृत भाषा के सभी शब्दो की व्युत्पत्ति सरस्वती भाषा के शब्दों से सिद्ध की जा सकती है। इस प्रकार हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि भारत की आदि मूम भाषा सरस्वती है और प्रथम प्राकृत नाम की कोई भाषा किसी काल में भी भारत में नहीं बोली जाती थी। ग्रियर्सन का प्रथम प्राकृत का सिद्धान्त सर्वथा भ्रान्त और अनर्गल है, यह सिद्धान्त एक षड्यन्त्र की पूर्ति के हेतु ही रचा गया था।

एक जर्मन लेखक पिशल ने प्राकृत भाषाओं का व्याकरण नामक एक ग्रन्थ लिखा है। इस लेखक को यह भी साधारण ज्ञान नहीं है कि प्राकृत केवल एक ही भाषा का नाम है, और अनेक भाषाओ का एक ही नाम प्राकृत नहीं हो सकता है। जिन विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं को वह प्राकृत भाषा कहता है, वह उन विभिन्न प्रदेशों की कथ्य भाषाओं के रूप है, वह प्राकृत भाषायें नहीं हैं। पिशल लिखता है कि संस्कृत शिष्ट समाज की भाषा थी और प्राकृत अशिक्षित जनों की। प्राकृत भाषा वह थी जिसे साधारण जन बोला करते थे, और उसी का संस्कार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्पन्न रूप संस्कृत कहलाया। पिशल भारतीय भाषाओं का कोई अधिकारी विद्वान नहीं था। हमें तो प्रतीत होता है कि उसे संस्कृत भाषा अथवा अन्य प्रादेशिक भारतीय भाषाओं का कोई ज्ञान ही नहीं था। यह खेद का विषय है और यह दुर्भाग्य केवल भारत के ही साथ है कि हमारी भाषा और हमारा प्राचीन इतिहास हमें विदेशियों के द्वारा बताया और समझाया जाता है। पिशल भी उसी वर्ग का योरोपीय लेखक है जिस वर्ग के मेक्समूलर और ग्रियर्सन आदि हैं और जिन्होंने सरस्वती और संस्कृत भाषा के गौरव को नष्ट करने के हेतु एक योजना बद्ध षड-यन्त्र को रचा था और जिसके अन्तरगत वह देववाणि अमर भारती सरस्वती भाषा की भी उत्पति किसी प्राकृत भाषा से सिद्ध करते हैं।

पालि

बौद्धों के धर्म ग्रन्थों की भाषा पालि है। कुछ विद्वानों का मत है कि पालि शब्द पङ्क्ति से बना हैं, यथा-पङ्क्ति-पत्ति-पटि्ट पल्लि-पालि। इनके अनुसार 'पालि' का अर्थ मूल ग्रन्थ की पङ्क्ति है। प्राचीन बौद्ध लेखक अपने ग्रन्थ में धर्म-शस्त्र की वचन पङ्क्ति को उद्धृत करते समय पालि शब्द का प्रयोग करते थे। इस प्रकार उत्तर काल में बौद्ध धर्म शास्त्रों की भाषा का ही नाम पालि हुआ। यह सिद्धान्त युक्ति युक्त प्रतीत नहीं होता है। पालि साहित्य में, कहीं भी पालि शब्द ग्रन्थ की पङ्क्ति के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है। पालि शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द पल्लि से हुई है। संस्कृत में पल्लि का अर्थ है छोटा गांव या झोपड़ियों का गांव। महाभारत १२.३२५.२० में भी इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ से हुआ है—पल्लीघोषान् समृद्धांश्च बहुगोकुल संकुलान। कुछ लेखकों का यह कहना, कि पल्लि शब्द वास्तव में संस्कृत का नहीं है, अपितु प्राकृत का है, निर्मूल है। प्राकृत के सभी शब्दों की उत्पत्ति सरस्वती अर्थात् संस्कृत के शब्दों से हुई है और जिस समय यह शब्द बौद्ध धर्म ग्रन्थों की भाषा के लिए प्रयोग हुआ था, उस समय प्राकृत भाषा काजन्म भी नहीं हुआ था।

ज्ञान लाभ करने के पश्चात् बुद्ध ने दूसरों की भी अज्ञानान्धकार से मुक्त करने का निश्चय किया था। गया से वह सारनाथ पहुंचे। उस समय काशी के वैदिक धर्म के विद्वान पण्डितों की भाषा संस्कृत थी। बुद्ध इन पण्डितों से वाद विवाद करना नहीं चाहते थे, इसी कारण बुद्ध काशी में न रहकर सारनाथ में रहते थे। सारनाथ काशी के समीप झोपड़ियों का एक छोटा सा गांव था, जिसमें अधिकांश अशिक्षित कुम्हार रहते थे। सबसे पहिले बुद्ध ने इन्ही कुम्हारों को उपदेश देना आरम्भ किया था।

बुद्ध का जन्म राजकुल क्षत्रीय वंश में हुआ था। अन्य शिक्षित जनों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाँति बुद्ध की मातृ-भाषा संस्कृत (सरस्वती) थी। पूर्व मगध में प्रचलित लोक-भाषा मागधी थी। बुद्ध छः वर्ष तक इसी भाषा के क्षेत्र गया में रहे और वहां वे जन साधारण के सम्पर्क में आए, और वहां उन्हें जन—साधारण के प्रसङ्ग में मागधी भाषा का व्यवहार करना पडा। यह बात भली भाँति समझ में आ सकती है कि जब कोई मनुष्य अपनी मात्र-भाषा के अतिरिक्त कोई अन्य कथ्य भाषा सीखता है तो आरम्भ में वह उस भाषा को अपनी मातृ-भाषा में मिश्रित करके ही बोलता है। बुद्ध भी मागधी भाषा पर अपनी शैली की छाप लगा कर एक कथ्य भाषा का व्यवहार करते थे। बुद्ध के प्रवचनो में शब्दों के रूप (अक्षर विन्यासों की ध्वनि) तो कथ्य भाषा मागधी के ही होते थे, किन्तु इन शब्दों में संस्कृत के अनुसार विभक्तियां जोड़कर वाक्य बने होते थे जिनका आधार संस्कृत के सादृश्य होता था, जिसको जन-साधारण भली-भांति समझ लेते थे।

काशी के वैदिक धर्म के विद्वान पण्डितों को बुद्ध के प्रवचनों की भाषा अत्यन्त अशुद्ध प्रतीत होती थी। अपनी स्वभाविक घृणा को व्यक्त करने के कारण ही वह बुद्ध के प्रवचनों की भाषा को पल्लि भाषा, अर्थात वह भाषा जो पल्लि (झो-पड़ियों के छोटे गांव) में व्यवहार होती थी, कहते थे। काशी के विद्वान ब्राह्मणों द्वारा इस भाषा को पल्लि भाषा, पश्चात में पालि कहने से इस भाषा का यही नाम अधिक प्रसिद्ध हो गया था और तद्पश्चात्त बौद्ध विद्वानों ने भी अपने धर्म ग्रन्थों की भाषा के लिए इसी शब्द का प्रयोग अनुचित न समझा।

बुद्ध के सारे उपदेश मौखिक ही होते थे। यह उपदेश बड़े सरल, सुबोध तथा रोचक कथाओं के रूप में होते थे। बुद्ध के शिष्य उन उपदेशों को कण्ठ कर लिया करते थे। जब किसी भिक्षु को कोई शङ्का होती थी तो वह बुद्ध के पास जाकर अपनी शङ्का निवारण कर लेता था। बुद्ध ने अपने शिष्यों को आदेश दिया था कि वह उनके उपदेश संस्कृत भाषा में न लिखकर मागधी कथ्य भाषा में ही लिखे। इस प्रकार बौद्धों ने संस्कृत भाषा का परित्याग कर उस समय की कथ्य भाषा में धर्मोदेशों को लिपिवद्ध करने की प्रथा प्रचलित की थी। बुद्ध के मरने के पश्चात उनके शिष्यों ने उनके कार्यों और उपदेशों को उनकी ही भाषा में लिपिबद्ध कर डाला। पश्चात् में इन्ही धर्मग्रन्थों का नाम त्रिपिटक पड़ा। त्रिपिटक के तीन भाग हैं—१. विनयपिटक, जिसमें मठों में रहने वाले भिक्षुओं के आचरण-सम्बन्धी नियम हैं, २. सूत्रपिटक, जो बुद्ध के उपदेशों का सङ्ग्रह है, और ३. अभिधर्म्मपिटक, जिसमें दार्शनिक वाद बिवाद हैं।

बौद्धों की यह धारणा है कि बुद्ध को, निर्वाण प्राप्ति के पहले, अनेक बार जन्म लेना पड़ा था। जिन ग्रन्थों में बुद्ध के उन जन्मों की कहानियों का सङ्ग्रह हैं उनको जातक कहते हैं। जिस भाषा में यह बौद्ध धर्म ग्रन्थ लिपि बद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं उस भाषा का नाम पालि है। बुद्ध के जीवन काल में भी मध्यदेश के जन-साधारण की कथ्य भाषा सरस्वती थी जिसका रूप लगभग वेद भाषा के समान-ही था। पालि भाषा का गठन मागधी भाषा के शब्दों को संस्कृत व्याकरण के सरल नियमों द्वारा बान्ध कर हुआ था। यही कारण है कि पालि भाषा का वेद-भाषा के साथ अधिक सादृश्य प्रतीत होता है।

मगध प्रदेश की सीमा के वाहर अशोक की शिलालेखों पर जिस भाषा के निदर्शन पाये जाते हैं, वह पालि भाषा नही है, वह तत्कालीन मागधी भाषा है। मागधी भाषा मगध सम्राटों की राज्य-भाषा थी और इसी कारण उन शिलालेखों पर मागधी भाषा का प्रयोग हुआ था। राज्य-भाषा होने के कारण मागधी भाषा का मगध की सीमा के वाहर भी कुछ प्रयोग हुआ था। पालि भाषा न तो कथ्य भाषा थी और न साहित्य भाषा, यह भाषा केवल बौद्ध धर्म ग्रन्थों की भाषा है। पालि भाषा से किसी भाषा की भी उत्पत्ति नहीं हुई है और पालि भाषा किसी युग या काल में भी मध्य देश के किसी भाग की कथ्य या साहित्य भाषा नहीं थी।

प्राकृत

जैन धर्म बौद्ध धर्म से अधिक प्राचीन हैं। जैनों के २४ तीर्थङ्कर हो चुके हैं, उनमें से तेरहवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ ही प्रथम ऐतिहासिक व्यक्ति प्रतीत होते हैं, जिनका जन्म वि० पू० आठवीं शताब्दि में हुआ था। परन्तु जैन धर्म को व्यापकता प्रदान करने वाले मुख्य प्रवर्तक वैशाली के राजकुमार वर्धमान थे, जिनका जन्म बुद्ध के जन्म से २३ वर्ष पूर्व हुआ था। वर्धमान ने ३० वर्ष की अवस्था में घर वार छोड़ दिया था और १२ वर्ष तक घोर तपस्या करने के पश्चात उनको परमज्ञान की प्राप्ति हुई थी और वह महावीर और जिन (विजयी) कहलाने लगे थे। बुद्ध और महावीर लगभग समकालीन ही थे। उस समय समस्त भारत में धर्म-ग्रन्थों और साहित्य की भाषा संस्कृत थी। जैन और बौद्धों ने संस्कृत भाषा का परित्याग करके उस समय की कथ्य भाषा में धर्मोपदेश लिखने की प्रथा प्रचलित की थी। बुद्ध के धर्म प्रचार का मुख्य क्षेत्र (पूर्व) मगध था और वे अपना धर्मोपदेश मागधी भाषा में देते थे। मध्यदेश और मगध का मध्यवर्ती देश अयोध्या (कोशल-काशी) था जिसको अर्धमगध प्रदेश भी कहते थे। महावीर के धर्म प्रचार का मुख्य क्षेत्र अर्धमगध था और वह अपना धर्मोपदेश अर्धमागधी में देते थे। जैन धर्म का प्रचार कभी साधारण रीति से नहीं हुआ। महावीर के धर्मोपदेश के अनुसार उनके समसामयिक गणधर सुधर्म स्वामी ने आचाराङ्ग सूत्र ग्रन्थों की रचना अर्धमागधी भाषा में की थी, यह ग्रन्थ उस समय लिखे नहीं गये थे, परन्तु शिष्य परम्परा से कण्ठ-पाठ द्वारा संरक्षित होते थे। दिगम्बर जैनों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुसार यह समस्त ग्रन्थ विलुप्त हो गये हैं, परन्तु दिगम्बर जैनों के इस मन्तव्य से श्वेताम्बर जैन सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि लगभग एक सहस्राब्दि तक जैन मुनियों ने अपनी शिष्य परम्परा से मुख पाठ द्वारा आचाराङ्ग सूत्र-ग्रन्थों को सुरक्षित रखा था। अतः इस समय उपलब्ध, वे अपने धर्म ग्रन्थों और उनकी भाषा को प्राचीन ही मानते हैं।

इस समय उपलब्ध जैन अङ्गसूत्रों की अर्धमागधी भाषा में महाराष्ट्र की तत्कालीन कथ्य भाषा का जो प्रभाव लक्षित होता है, उसके कुछ कारण हैं। उल्लेख मिलता है कि महावीर के निर्वाण के लगभग २०० वर्ष पश्चात, चन्द्रगुप्त के राज्य काल में मगध देश में बारह वर्षों तक सुदीर्घ अकाल पड़ने के कारण, जैन साधु अपने निर्वाह के लिये महाराष्ट्र में चले गये थे। वहाँ जाकर उन साधुओं ने महाराष्ट्र प्रदेश प्रचलित कथ्य भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, और उसी भाषा में उपदेश द्वारा जैन धर्म का प्रचार करने लगे थे। इस प्रकार उन साधुओं के कण्ठ स्थित सूत्रों की भाषा पर भी महाराष्ट्री भाषा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। अकाल समाप्त होने के पश्चात पाटलीपुत्र में सङ्घ ने एकत्रित होकर ग्यारह अङ्ग-ग्रन्थों का सङ्कलन किया था। उस सम्मेलन में महाराष्ट्र में रहने वाले उपरोक्त जैन साधु भी उपस्थित हुए थे। उस समय जिस-जिस साधु को अङ्ग ग्रन्थों का जो जो भाग जिस जिस आकार में कण्ठस्थ रहा, उस भाग को उसी रूप में प्राप्त करके ही अङ्ग ग्रन्थों का सङ्कलन हुआ था। उन अङ्ग-ग्रन्थों के अनेक भाग उन साधुओं से प्राप्त हुये थे जो महाराष्ट्र से आये थे। इस प्रकार उन अङ्ग-ग्रन्थों में महाराष्ट्री कथ्य भाषा का प्रभाव पड़ गया था।

महावीर के निर्वाण के लगभग एक सहस्त्र वर्ष पश्चात जैन ग्रन्थों को लिपि बद्ध करने के लिए वलभी (सौराष्ट्र) और मथुरा में जैन मुनि सम्मेलन किये गये थे। इस समय तक भारत के अनेक प्रदेशों में जैन साधुओं का विस्तार हो गया था और विभिन्न प्रदेशों में चिर-काल तक विचरने के कारण उन प्रदेशों की भाषाओं और उन भाषाओं के व्याकरण का कुछ न कुछ अलक्षित प्रभाव उन साधुओं के कण्ठ-स्थित धर्म-ग्रन्थों की भाषा पर भी पड़ गया था। जैन साधु विभिन्न प्रदेशों से अल्पाधिक सङ्ख्या में आकर इन सम्मेलनों में उपस्थित हुये थे और इन साधुओं से जो ग्रन्थ या ग्रन्थ का अंश जिस रूप में प्राप्त हुआ उसी रूप में वह लिपि बद्ध कर लिया गया था। इसके अतिरिक्त इन अङ्गग्रन्थों की रचना जन-साधारण के बोध के हेतु तत्कालीन कथ्य भाषा में हुई थी, और समय के साथ साथ, कथ्य भाषा में अवश्य होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव, कण्ठ पाठ के रूप में स्थित इन सूत्रों की भाषा पर भी पड़ना अनिवार्य ही था। इस प्रकार इन अङ्गग्रन्थों की महावीर के समय की अर्धमागधी भाषा में परिवर्तन अवश्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ है, चाहे वह अज्ञात भाव से ही क्यों न हुआ हो।

अर्धमागधी भाषा के शब्दों को संस्कृत भाषा के सरल नियमों में बान्धकर ज़िस भाषा में महावीर स्वामी अपने प्रवचन देते थे, और महावीर स्वामी के उपदेशों के अनुसार जिस भाषा में सुधर्म स्वामी ने आचाराङ्ग-सूत्र ग्रन्थों की रचना की थी, वास्तव में वही भाषा प्राकृत थी। हम यह भी बता चुके हैं कि दिगम्बर जैनों के अनुसार यह समस्त धर्म ग्रन्थ विलुप्त हो गये हैं। फिर भी उस भाषा का जो भी परिवर्तित रूप आज उपलब्ध है वह समवायाङ्ग सूत्र, व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र, औपपातिक सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र, स्थानाङ्ग सूत्र, और अनुयोगद्वार सूत्र आदि ग्रन्थों में विद्यमान है, आज इसी भाषा को हम प्राकृत कह सकते हैं। इसके अतिरिक्त भारत के किसी भी प्रदेश की और किसी भी काल की कथ्य या साहित्य भाषा को हम प्राकृत नहीं कह सकते हैं।

योरोपीय लेखकों ने प्राकृत शब्द जो भारतवर्ष की विभिन्न प्रादेशिक कथ्य भाषाओं के अर्थ में व्यवहार किया है यथा शौरसेनी, महाराष्ट्री, पैशाची, मागधी और अर्धमागधी आदि वह भाषायें प्राकृत नहीं हैं अपितु वह भाषायें उन प्रदेशों में उस समय प्रचलित कथ्य भाषायें थीं। वह भाषायें भी सरस्वती भाषा के, देश तथा काल के प्रभाव से, विभिन्न अशुद्ध तथा भ्रष्ट रूप थे। सरस्वती भाषा के शब्दों के अशुद्ध तथा भ्रष्ट रूपों में क्या अन्तर है उसे हम आगे चलकर स्पष्ट करेंगे।

जैन सूत्र-ग्रन्थों के अतिरिक्त श्वेताम्बर जैनों के रचे हुए अन्य धर्म ग्रन्थ यथा, पयन्नाग्रन्थ, निर्युक्तियां, पउमचरिअ, उपदेशमाला, वृहत्कल्प-भाष्य, व्यवहार सूत्र, विशेषावश्यक-भाष्य निशीथचूणि, धर्मसङ्ग्रहणी, समाराइच्चकहा, प्रवचन-सारोद्धार, उपदेशपदटीका, सुपासनाहचरिअ, उपदेशरहस्य आदि भी मिलते हैं। इन ग्रन्थों में तीर्थङ्करों और प्राचीन मुनियों के चरित्र, कथायें, दर्शन, स्तुति आदि विषयों का उल्लेख है। इन ग्रन्थों की भाषा पर भी प्राकृत भाषा का अधिक प्रभाव है, किन्तु इन ग्रन्थों की भाषा को हम प्राकृत नहीं कह सकते हैं। इन ग्रन्थों की भाषा जैन धर्म ग्रन्थों की प्राकृत और महाराष्ट्री भाषा का मिश्रित रूप है।

पाली प्राकृत क्या कभी कथ्य भाषायें थीं ?

अब यह प्रश्न विचारनीय है कि क्या पालि या प्राकृत किसी काल में भारत के किसी क्षेत्र की कथ्य या साहित्य भाषायें थीं। इसके उत्तर में विद पाठकों को हम फिर यह बता दें कि बौद्ध और जैन धर्म सम्प्रदायों के आदि प्रर्वतकों ने इन भाषाओं को अपने प्रवचनों में प्रयोग किया था। उन प्रर्वतकों के जो उपदेश हैं वह बड़ी सरल, सुबोध और रोचक कथाओं के रूप में हैं। प्रत्येक स्वतन्त्र भाषा का अपना व्याकरण विकास होता है। इन प्रवर्तकों के प्रवचनों में शब्द तो मागधी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और अर्धमागधी भाषाओं के होते थे परन्तु उन प्रवचनों की भाषा पर संस्कृत व्याकरण के सरल नियमों का प्रयोग होता था। इन भाषाओं का अपना कोई व्याकरण नहीं था। कालान्तर में जब बुद्ध और महावीर के सिद्धान्तों पर दार्शनिक दृष्टि से विचार किया जाने लगा और उनके सिद्धान्त जब अध्ययन का विषय बने तो बौद्ध और जैन धर्म की विवेचना के रूप में जो ग्रन्थ लिखे गये, उनकी रचना पालि या प्राकृत में नहीं हुई अपितु संस्कृत भाषा में हुई। यदि पालि या प्राकृत भाषायें साहित्यिक, समृद्ध और सर्वमान्य भाषायें हो गई होतीं तो उत्तर कालीन कार्य, बौद्ध या जिनत्व ग्रन्थ संस्कृत की अपेक्षा पालि या प्राकृत भाषाओं में ही निबद्ध किये गये होते। अश्वघोश, जिसने अपने को साकेत निवासी लिखा है, ने दो काव्य ग्रन्थों, बुद्ध चरितम् और सौन्दरानन्द की रचना बुद्ध के सम्बन्ध में की है, यह दोनो काव्य ग्रन्थ भी पालि भाषा में नहीं हैं अपितु संस्कृत भाषा में हैं। इसी प्रकार उत्तर कालीन जैन दर्शन ग्रन्थ भी प्राकृत में न लिखकर संस्कृत में लिखे गये हैं। इन्हीं आधारों पर हमारा मत है कि पालि और प्राकृत भाषायें केवल बुद्ध और महावीर के प्रवचनों की भाषायें रही हैं यह भाषायें कभी साहित्यिक भाषाओं के पद पर प्रतिष्ठत नहीं हुई हैं और यह भाषायें किसी काल में भी भारत के किसी क्षेत्र की कथ्य भाषायें या साहित्यिक भाषायें नहीं थीं।

अपभ्रंश

महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में लिखा है—"भूयासोऽशब्दा अल्पीयांसः शब्दाः। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशः", अर्थात अपशब्द बहुत हैं और (शुद्ध) शब्द अल्प हैं क्यों कि एक ही शब्द के अनेक अपभ्रंश हैं। महर्षि पतञ्जलि ने अपभ्रंश शब्द का प्रयोग किसी भाषा विशेष के अर्थ में नहीं किया है, अपितु अपभ्रंश शब्द अपशब्द के अर्थ में ही प्रयोग किया है। यह भी स्पष्ट है कि संस्कृत व्याकरण से असिद्ध शब्द ही अपशब्द हैं। संस्कृत कोशों के अनुसार भी अपभ्रंश शब्द के अर्थ हैं— भ्रष्ट शब्द, अपशब्द, व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध शब्द,या रूप और अर्थ की दृष्टि से भ्रष्ट शब्द। संस्कृत भाषा में किसी भी अपशब्द या अपभ्रंश शब्द के प्रयोग का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है, कारण कि संस्कृत भाषा में ऐसा एक भी शब्द नहीं है जो किसी काल में अन्य रूप में प्रयुक्त होता रहा हो और उत्तर काल में उसका रूप परिवर्तन होकर भी वह शब्द संस्कृत भाषा का ही अङ्ग बना रहा हो। संस्कृत वैयाकरणों के मत में संस्कृत-भिन्न सभी शब्द अपभ्रंश के अन्तर्गत हैं।

अपभ्रंश और असाधु शब्दों में भी अन्तर है। अस्व शब्द दरिद्रता का वाचक है अश्व का वाचक नहीं और गोणी शब्द एकप्रकार के बोरे (गूण) का वाचक है गो का नहीं, इस प्रकार अस्व और गोणी शब्द दरिद्रता और गूण के अर्थ में साधु हैं किन्तु अश्व और गौ के अर्थ में यह दोनों शब्द असाधु हैं, अर्थात जिस शब्द से जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थ प्रतीत होता है, वह शब्द उन उन अर्थों में साधु है। रात्री, रत्तड़ी, रत्ती, रात यह सभी शब्द रात्री के वाचक हैं. रत्तड़ी, रत्ती, रात शब्द किसी अन्य अर्थ में भी साधु नहीं हैं। इस कारण रत्तड़ी, रत्ती, रात शब्द, रात्री अर्थ में अपशब्द हैं, असाधु नहीं हैं।

यह बात ऊपर स्पष्ट हो चुकी है कि संस्कृत भाषा में अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग असम्भव था, अत: अपभ्रंश शब्द केवल जन-साधारण की कथ्य भाषा में ही प्रचलित हुये थे। साहित्य भाषा संस्कृत की भांति कथ्य भाषा सरस्वती का भी व्याकरण था। जो शब्द सरस्वती भाषा के व्याकरण के नियमों के अनुसार साधु नहीं थे, उन्हीं शब्दों को अपशब्द या अपभ्रंश कहा जाता था। आदि मूल कथ्य-भाषा सरस्वती के व्याकरण के अनुसार शब्दों के विषय में अव्युत्पत्ति मत मान्य था, जिसमें न कोई धातु और न कोई प्रत्यय माना जाता था। इस कारण सरस्वती भाषा के व्याकरण से किसी शब्द को संस्कृत के प्रकृति और प्रत्यय के अनुसार सिद्ध नहीं किया जा सकता था, परन्तु सरस्वती भाषा में सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग निर्धारण करने का एक निश्चित और सरल नियम प्रकृति प्रत्यय था जिसका कोई अपवाद नहीं था। यदि किसी शब्द के रूप में इस प्रकार परिवर्तन हो जाता था कि उस रूप के अनुसार उस शब्द का लिङ्ग अशुद्ध होता था तो शब्द के उस रूप को अपभ्रंश कहा जाता था। उपरोक्त कथन को हम कुछ शब्दो के उदाहरण देकर स्पष्ट करेंगे।

निम्न तालिका में एक ही शब्द के तीन तीन रूप दिखाये गये हैं—१. शुद्ध, २. अशुद्ध और ३. भ्रष्ट। शुद्ध रूप का तात्पर्य यह है कि इस शब्द के अक्षर-विन्यास वही हैं जो इस शब्द के सरस्वती भाषा में थे, अर्थात इस शब्द के जो अक्षर-विन्यास संस्कृत कोशो में दिये हुये है। शब्द के इस रूप से प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार इस शब्द का साधु लिङ्ग निर्धारित होता है और जो खरी बोली के क्षेत्र की कथ्य भाषा में प्रचलित है।

२. अशुद्ध रूप:—अशुद्ध रूप में शब्द के अक्षर-विन्यास शुद्ध रूप से भिन्न तो हो जाते है, परन्तु इस शब्द का प्रकृति प्रत्यय के अनुसार साधु लिङ्ग का ज्ञान हो सकता है। शब्द के अशुद्ध रूप को हम असंस्कृत भी कह सकते है यह वह शब्द हैं जिनका व्यवहार ग्रामीण और अशिक्षित जन अपनी भाषा में (शब्द का शुद्ध उच्चारण न कर सकने के कारण) किया करते थे। अत: शब्द के इस रूप को हम प्राकृत भी कह सकते हैं।

३. भ्रष्ट रूप :—भ्रष्ट रूप में शब्द के अक्षर-विन्यास इतने बिगड़े हुये होते हैं कि इन अक्षर-विन्यासों से प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार सञ्ज्ञा शब्द का साधु लिङ्ग निर्धारित ही नहीं हो सकता है शब्द के इस रूप को हम अपभ्रंश कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शुद्ध रूप (सरस्वती)	अशुद्ध रूप (प्राकृत)	भ्रष्ट रूप (अपभ्रंश)
क्षीरी	खीरी	खीर
रात्री, रात्रि:	रातड़ी, रात्ती, रत्तड़ि	रात
तन्त्रि:, तन्त्री	तन्ती	तान्त
सन्देश:	सन्देस	सन्देसा
अक्षि	अक्खी	आङ्ख
जिह्वा	जिब्भा	जीभ
नवनीतम्	णवणीअ	नोनी, नयनी
मौक्तिकम्	मुत्तिअ	मोती
मूर्ति:	मुत्ति	मूरत
स्तम्भ:	खम्भ	खम्भा
स्कन्ध:	खन्ध	कन्धा
भ्रमर:	भमर	भौंरा
लिक्षा, लिख्या	लिक्खा	लीख
भिक्षा	भिक्खा	भीख
मुस्त:, मुस्तम्	मुत्थ	मोथा
मुद्रा	मुद्दा	मोहर
मेल:	मेलय	मेला
मुद्गर:	मोग्गर	मूगरा
गोष्ठि:, गोष्ठी	गोट्ठी	गोठ, गोट्ठ
लेख्यम्	लिक्ख	लेखा
अग्नि:	अग्गि	आग
रक्षा	रक्खा	राख
रश्मि:	रस्सि	रास
वल्गा	वग्गा	बाग
रजनि:, रजनी	रयनी	रयन, रैन
शय्या	सज्जा	सेज
सन्ध्या	सञ्झा	साञ्झ
वन्ध्या	बञ्झा	वाञ्झ
प्रेङ्खा	पेंखा	पेङ्ग
अवश्या	ओसा	ओस
अवसर:	ओसर	ओसरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाटः	वाड	वाड़ा
वार्ता, वार्त्ता	वत्ता, वत्तड़ी, वत्ति	बात
वर्तनी	वट्टी	बाट
वृत्तिः	बाड़ि	वाड
दन्तः – अवनिः	दन्तोनी	दन्तोन
कुल्या	कुल्ला	कूल, गूल
कुक्षिः	कुक्खि	कोख
कूर्चिका	कुच्ची	खूर्चन
कीटः	कीड	कीडा
अवरा	ओरा, ओरी	ओर
अवलीला	आयल्लया	ओलू, औलू
उत्कलिका	उक्कलिया	औकल
शर्करा	सक्करा	सक्कर
दंष्ट्रा	दाढा	दाढ, जाढ
दशा	डसा	डस
दोरः	डोर	डोरा
वर्करः	बक्कर	बकरा
शिंशिया	सीसवा	शीशम
भङ्गा	भंगी	भाङ्ग
भाटम्	भाडय	भाड़ा
शकटः	सकड	छकड़ा
घोटः	घोड	घोडा
हरीतकी	हरडई	हर, हरड
शिक्षा	सिक्खा	सीख
रेखा, लेखा	लेखा	लीख
कुण्डी	कुंडी	कूण्ड
शुण्डा	सुंडा	सूण्ड
शुण्ठी	सुंठी	सूण्ठ
शुद्धिः	सुद्धि	सुध
दूर्वा	दुव्वा, दुरुब्बा	दूब
शुक्तिः	सुत्ति	सीप
तुन्दि	तुंदि	तौन्द
वर्णः	वण्ण	बान्ना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपरोक्त शब्द जिनके उदाहरण हमने प्रस्तुत किये हैं खरी बोली के क्षेत्र में प्रचलित थे और हैं। इसी प्रकार के अन्य सहस्त्रों शब्दों के उदाहरण दिये जा सकते हैं। प्राचीन काल में सरस्वती भाषा में उपरोक्त तालिका की प्रथम पङ्क्ति के शब्दों का प्रयोग होता था और कालान्तर में उन्ही शब्दों के स्थान पर द्वितीय और तृतीय पङ्क्ति के शब्दों का प्रयोग होने लगा। इस तालिका के शब्दों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि कालान्तर में मूल सरस्वती शब्दों के अक्षर विन्यासों में परिवर्तन हुआ और अनेक शब्दों के अक्षर-विन्यास इतने विकृत हुये कि परिर्वतित शब्द का मूल सरस्वती शब्द से कोई सम्बन्ध ही दिखाई नहीं पड़ने लगा, परन्तु शब्दों के मूल तत्त्वों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। लोक में परिवर्तित शब्दों के अर्थ, उनकी व्याकरण कोटियाँ और व्याकरण की दृष्टि से सञ्ज्ञा शब्दों के आज भी वही लिङ्ग प्रचलित हैं जो उन शब्दों के सरस्वती भाषा में थे। इसी आधार पर हम निश्चियत: कह सकते हैं कि शब्दों के रूप परिवर्तन से भाषा के मूल तत्त्वों में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

भारत की प्रादेशिक भाषायें

हमने बताया है कि एक ही सरस्वती कथ्य भाषा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय प्रभाव के भेद से अपने विभिन्न रूपों को धारण किये हुये है। विभिन्न क्षेत्रिय भाषाओं में आज जो विभिन्नता विद्यमान है उसके चार मुख्य कारण हैं—

(१) एक ही शब्द के विभिन्न उच्चारण।

(२) विभिन्न क्षेत्रों में पृथक-पृथक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग।

(३) विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न यौगिक शब्दों का निर्माण।

(४) विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रीति से कारक विभक्तियों तथा क्रिया पदों का निर्माण।

विभिन्न उच्चारण :—जिस प्रकार काल तथा व्यक्तिगत उच्चारण के भेद से कुरुक्षेत्र ब्रह्मर्षि देश में सरस्वती भाषा के शब्दों के अक्षर-विन्यास परिर्वतित हुये और शब्दों के भ्रष्ट या अपभ्रंश रूप बन गये, उसी प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में भी सरस्वती भाषा के शब्दों के रूप भ्रष्ट हुये थे। परन्तु विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में शब्दों के उच्चारण (अक्षर-विन्यास) स्थानीय प्रभाव के कारण विभिन्न प्रकार से भ्रष्ट हुये थे। यही कारण है कि आज एक ही सरस्वती शब्द के विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में पृथक-पृथक शब्द प्रतीत होते हैं। भाषा वैज्ञानिक अज्ञानवश इन सब प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों का समावेश नहीं कर पाते हैं। यदि भारत के विभिन्न क्षेत्रों की भाषाओं के शब्दों के अर्थ, व्याकरण कोटियों, उपकोटियों तथा सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्गों की सहायता से साधु शब्दों का परिज्ञान किया जाये तो यह सिद्ध होगा कि वह सभी शब्द सरस्वती भाषा के ही शब्द हैं। इस वास्त-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विकता को न समझने के कारण आज भारत के विभिन्न क्षेत्रों की भाषायें पृथक-पृथक प्रतीत होती हैं। भारतीय वैयाकरणों ने इन क्षेत्रिय भाषाओं को अपभ्रंश के ही भेदों के अन्तर्गत स्वीकार किया है। प्राकृत चन्द्रिका में अपभ्रंश के जो भेदबताये हैं, वह हैं—ब्राचड़, लाट, वैदर्भ, उपनागर, नागर, बार्बर, अवन्त्य, पाञ्चाल, टाक्क, मालव, कैकय, गौड, ओढ्र, वैवपश्चात्य, पाण्डय्, कोन्तल, सैंहल, कलिग्य प्राच्य, कार्णाटक, कांचय, द्रविड, गौर्जर, आभीर, मध्यदेशीय तथा बैताल, आदि।

उपरोक्त अपभ्रंश के भेदों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत की विभिन्न क्षेत्रिय भाषायें सरस्वती के शब्दों के विभिन्न क्षेत्रिय अपभ्रंश रूपों के कारण ही पृथक-पृथक प्रतीत होती हैं। वास्तव में भारत के प्रत्येक क्षेत्र की भाषा के शब्द अपने-अपने रूपों (अक्षर विन्यासों) में उसी प्रकार प्रवाहित होते चले आ रहे हैं जो स्थानीय प्रभाव के कारण सरस्वती भाषा के शब्दों के हैं।

पर्यायवाची शब्दः—सरस्वती भाषा पर्यायवाची शब्द बाहुल्य थी, अर्थात इसमें एक ही पदार्थ के अनेक सञ्ज्ञा शब्द प्रचलित थे। इसी कारण संस्कृत में पर्यायवाची शब्दों को एक ही स्थान पर एकत्र करने की परिपाटी प्रचलित थी। अमर कोश तथा हलायुध आदि शब्द कोशों में प्रत्येक शब्द के पर्यायवाची शब्द दिये हुये हैं। उदाहरण के लिये शब्द 'जलम्' के पर्यायवाची शब्द है—आपः, वाः, वारि, सलिलम, कमलम्, जलम्, पयः, कीलालम्, अमृतम्, जीवनम्, भुवनम, वनम्, कबन्धम्, कम्, मम्, उदकम, पाथः, पुष्करम्, सर्वतोमुखम्, अम्भः, अर्णः, तोयम्, पानीयम्, नीरम्, क्षीरम्, अम्बु, शंवरम्, मेघपुष्पम्, घनरसः, घृतम, नारम् आदि। इन शब्दों में से भारत के विभिन्न क्षेत्रों में 'जल' के लिए विभिन्न शब्द प्रयोग में आते है और उनके भी भ्रष्ट रूप प्रचलित हैं। सभी पर्यायवाची शब्दों का ज्ञान न होने के कारण वह शब्द विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के शब्द प्रतीत होते हैं।

कुरुक्षेत्र (खरी बोली क्षेत्र) के ग्रामों में प्रातःकाल के लिए शब्द गोस (गोसः) बहुत प्रचलित हैं जो सरस्वती भाषा का साधु शब्द है (आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृ० ६७५)। परन्तु भारत के अन्य क्षेत्रों के निवासी इस शब्द को नहीं समझ पाते हैं। खरी बोली क्षेत्र में ही मूर्ख के अर्थ में किसी नर को 'जला' और नारी को 'जली' कहते है। सरस्वती भाषा में भी यह शब्द 'जल' (वि०) है। पानी के अर्थ में साधु शब्द 'जलम्' है (आप्टे पृ० ७२९)। मूर्ख के अर्थ में 'जला' शब्द भारत के अन्य भागों में प्रचलित नहीं हैं। इसी प्रकार के अनेक शब्दों के उदाहरण दिये जा सकते हैं।

विभिन्न यौगिक शब्द—यदि भारत की विभिन्न क्षेत्रिय भाषाओं से म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का वहिष्कार करके शेष शब्दों के साधु शब्दों का परिज्ञान किया जाये तो यह स्पष्ट होगा कि लग-भग बहु सभी शब्द सरस्वती भाषा के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्द है, अर्थात संस्कृत शब्द कोशों में दिये हुए हैं। जो कुछ थोड़े शब्द संस्कृत शब्द कोशों में उपलब्ध नहीं होते हैं और उनमें विभिन्नता प्रतीत होती है उसका कारण है—विभिन्न क्षेत्रिय भाषाओं में विभिन्न यौगिक शब्दों का निर्माण। भारत की क्षेत्रिय भाषाओं में ऐसे विभिन्न यौगिक शब्द प्रचलित हैं जिनका प्रयोग उसी क्षेत्र तक सीमित है। यद्यपि यह शब्द भी सरस्वती भाषा के शब्दों से उत्पन्न हुये हैं परन्तु इनको अन्य क्षेत्रों के निवासी समझ नहीं पाते हैं। हम यहाँ कुछ ऐसे शब्दों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो कुरुक्षेत्र -ब्रह्मर्षि देश (खरी बोली क्षेत्र) की जन-साधारण की कथ्य भाषा में सामान्य रूप से प्रचलित हैं परन्तु यह शब्द हिन्दी शब्द कोशों तक में उपलब्ध नहीं हैं और उनको अन्य क्षेत्रों के निवासी समझ भी नहीं पाते हैं, यथा—(१) **खखल**—खम्-खलम् सं० पु०, (२) **बुक्कल**—बुक्कम्—लता, सं० स्त्री०; (३) **बाखर**—व-अक्षरम्, सं०पु०; (४) **नाखर**—न-अक्षरा सं० स्त्री० आदि। इसी प्रकार के सैकड़ों शब्दों के उदाहरण दिये जा सकते हैं।

खरी बोली (कुरुक्षेत्र) में प्रात:काल के अर्थ में दो शब्द बहुत प्रयोग में आते हैं—(१) सवेरा, (२) तड़का। इन शब्दों की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

सवेरा—(सु-वार:) सं० पु०, सु = अच्छा, सुन्दर, सुहावना, वार: = समय

तड़का—(तड्–क:) सं० पु०, तड् = चमकना, फूटना, क: = प्रकाश

उपरोक्त दो शब्दों को पूर्वी उत्तर प्रदेश के निवासी नहीं समझ पाते हैं। इस क्षेत्र में प्रात:काल के लिए शब्द 'भीनसार' प्रयोग में आता हैं जिसको पश्चिमी उत्तर प्रदेश के निवासी समझ नहीं पाते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

भीनसार—भम्–ईन:–सु-वार:, सं० पु०; भम्-ईन: = भेन या भीन अर्थात सूर्य। अत: इस शब्द का अर्थ है सूर्य का अच्छा समय।

विस्तार भय से हम यहाँ अन्य शब्दों के उदाहरण नहीं दे रहे हैं।

विभिन्न कारक विभक्तियों तथा क्रिया पदों का निर्माण—यह विषय इतना विस्तीर्ण है कि इस पर कुछ लिखने के लिये इस पुस्तिका में प्रयाप्त स्थान नहीं है। यहां केवल इतना उल्लेखनीय है कि जब भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं के शब्द सरस्वती भाषा के ही हैं तो उन भाषाओं में वाक्य रचना का जो भी थोड़ा थोड़ा भेद है वह स्थानीय प्रभाव के कारण है और उन भाषाओं के व्याकरण के अध्ययन से सरलता से समझ में आ सकता है।

समस्त भारत की एक साहित्य भाषा

यद्यपि भारत के विभिन्न क्षेत्रों की कथ्य भाषाओं में सरस्वती भाषा के ही विभिन्न रूप प्रचलित थे, तथापि समस्त भारत की एक ही साहित्य भाषा थी, सर-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वती का संस्कार किया हुआ रूप-संस्कृत। भारत के सभी क्षेत्रों में धर्म-ग्रन्थों, नाटक-ग्रन्थों और काव्य ग्रन्थों की रचना संस्कृत भाषा में ही होती थी। सबसे पूर्व बौद्धों ने सरस्वती भाषा के मागधी रूप के शब्दों, और जैनियों ने सरस्वती भाषा के अर्ध-मागधी रूप के शब्दों को संस्कृत की विभक्तियां जोड़कर और संस्कृत व्याकरण के आधार पर रचकर अपने अपने धर्म-ग्रन्थों की रचना की थी। इसके पश्चात् कुछ अन्य साहित्यकारों ने भी अपने-अपने नाटक-ग्रन्थों में अशिक्षित वर्गों अर्थात् सेवकों, दासों, परिजनों आदि की भाषा में अपने क्षेत्र में प्रचलित अशुद्ध (उपरोक्त तालिका में द्वितीय पङ्क्ति के) या भ्रष्ट (तालिका में तृतीय पङक्ति के) शब्दों का प्रयोग कराया है। कालिदास के विक्रमोर्वशीयम् नाटक-ग्रन्थ में जो अपभ्रंश के निदर्शन मिलते हैं, वह मालव प्रदेश में प्रचलित भ्रष्ट (अपभ्रंश) शब्दों के हैं। यदि अपभ्रंश नाम की कोई भाषा होती तो इसी भाषा में किसी भी पूरे नाटक-ग्रन्थ या काव्य-ग्रन्थ की रचना हुई होती। आज भी साहित्य-भाषा हिन्दी (खरी बोली) के नाटक ग्रन्थों में अशिक्षित वर्गों के पात्रों के मुख से अवधी, भोजपुरी आदि क्षेत्रों में प्रचलित शब्द बुलवाये जाते हैं, जो कोई साहित्य भाषायें नहीं हैं।

7635

संस्कृत के कुछ नाटक ग्रन्थों या काव्य ग्रन्थों में जो अशुद्ध (प्राकृत) या भ्रष्ट (अपभ्रंश) शब्दों के निदर्शन उपलब्ध हैं, वह भारत के उसी क्षेत्र में तत्कालीन कथ्य भाषा में प्रचलित शब्दों के हैं। केवल संस्कृत नाटक या काव्य-ग्रन्थों में ही अपभ्रंश के निदर्शन उपलब्ध होने से यह सिद्ध है कि अपभ्रंश नाम की कोई भाषा किसी भी काल में और किसी भी क्षेत्र में प्रचलित नहीं थी। विश्वविद्यालयों में अपभ्रंश के नाम से जिस भाषा का अध्ययन कराया जाता है उसके सम्बन्ध में उस विभाग के अध्यापकों को भी यह ज्ञान नहीं है कि वह अपभ्रंश के नाम पर भारत के किस क्षेत्र के और किस काल के शब्दों को पढ़ा रहे हैं, वे शब्द खरी बोली के क्षेत्र में किसी काल में भी जन-भाषा में प्रचलित नहीं थे। इस प्रकार विद्यार्थियों को हिन्दी (खरी बोली) न पढ़ाकर उनका समय नष्ट किया जाता है।

हिन्दी विभागों के अहम् मन्य पण्डित जिन्होंने अपनी शिक्षा अङ्ग्रेज़ों के मानस पुत्रों से ग्रहण की है विद्यार्थियों को ऐसी कुरीति से शिक्षा देते हैं कि जैसे किसी क्षेत्र विशेष के समस्त व्यक्ति रात्री में जिस भाषा को बोलते हुये सोये थे, प्रातःकाल उठने पर उन सभी की भाषा पूर्णतः नष्ट हो गई हो और उन्हें किसी नई भाषा का ज्ञान हो गया हो। इसका एक उदाहरण हम उन्हीं में से एक लेखक की भाषा में प्रस्तुत करते हैं। "संस्कृत, पालि तथा शौरसेनी प्राकृत इस मध्य देश के विभिन्न युगों की भाषा थी। कालक्रम में इसी प्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार हुआ। यह कथ्य (बोलचाल) शौरसेनी अपभ्रंश ही कालान्तर में हिन्दी के रूप में परिणत हुआ। इस पर पञ्जाबी का भी पर्याप्त प्रभाव है। हिन्दु और मुसलमानों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का यह समान रूप से रिक्थ है ।'' इससे अधिक भ्रामक तथा अनर्गल वार्ता यह क्या कर सकते थे । अङ्गरेज़ों के मानस पुत्रों ने इन्हें जो सिखा दिया, उसी को यह लिखते हैं और उन्हीं के स्वरों में यह भारोपीय परिवार के जारज पुत्रों के साथ रेङ्कते हैं ।

हिन्दी खरी बोली क्षेत्र

यह सिद्ध करने के लिये कि सरस्वती कथ्य भाषा के क्षेत्र में आज हिन्दी खरी बोली बोली जाती है. तथा इस क्षेत्र में सरस्वती और हिन्दी काल के बीच में किसी भी समय संस्कृत पालि, प्राकृत या कोई अन्य भाषा कथ्य रूप में प्रचलित नहीं थी हमारे पास एक और भी पूर्ण प्रमाण है और वह प्रमाण है हमारी भाषा (खरी बोली) का लिङ्ग अनुशासन । इसी पुस्तिका के व्याकरण अध्याय में हम दिखा चुके हैं कि सरस्वती भाषा में संज्ञा शब्दों को केवल दो लिङ्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता था—पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग । सरस्वती भाषा के व्याकरण के अनुसार संज्ञा शब्दों के लिङ्ग प्रकृति-प्रत्यय नियम के अनुसार निर्धारित होते थे । आज हिन्दी खरी बोली में अनेक सरस्वती शब्दों के अशुद्ध और भ्रष्ट रूप प्रचलित हैं परन्तु सभी सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग आज भी वही हैं जो उन शब्दों के सरस्वती भाषा में प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार थे । खरी बोली हिन्दी मे भी संज्ञा शब्दों के सरस्वती भाषा के समान केवल दो ही लिङ्ग होते हैं । संस्कृत, पालि और प्राकृत भाषाओं मे संज्ञा शब्दों के तीन-तीन लिङ्ग होते हैं । यदि सरस्वती और हिन्दी काल के मध्य में किसी भी काल में खरी बोली क्षेत्र में संस्कृत, पालि या प्राकृत कथ्य भाषा के रूप में प्रचलित होती तो शब्दों के लिङ्ग-अनुशासन में कोई न कोई भेद होना अनिवार्य था । परन्तु हम देखते हैं कि आज भी खरी बोली के किसी भी संज्ञा शब्द का लिङ्ग उस समय तक निर्धारित नहीं हो सकता जब तक उस शब्द के साधु रूप अर्थात सरस्वती भाषा के शब्द के रूप का ज्ञान न कर लिया जावे और फिर उस शब्द का लिङ्ग प्रकृति-प्रत्यय नियम के आधार पर निश्चित न किया जाये ।

खरी बोली में सभी शब्द सरस्वती भाषा के हैं । हमारी भाषा में एक भी शब्द किसी अन्य भाषा का नहीं है । जिन शब्दों को आज देशी शब्दों की संज्ञा दी जाती है वह सभी शब्द सरस्वती भाषा के यौगिक शब्द हैं और सिद्ध भी हैं । उन सभी शब्दों के लिङ्ग भी प्रकृति-प्रत्यय के आधार पर निर्धारित होते हैं । जो शब्द विदेशियों द्वारा हमारी भाषा में मिश्रित करके बोले जाते हैं वह सभी म्लेच्छ भाषाओं के हैं, हमारी भाषा के नहीं हैं । इस प्रकार के शब्द कभी भी हमारी भाषा का अङ्ग नहीं बन सकते हैं । हमारी भाषा में म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों के प्रयोग के कारण ही दक्षिण भारतीय हिन्दी को राष्ट्र भाषा स्वीकार करना नही चाहते हैं । जब तक म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों को हम अपनी भाषा, और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा के शब्द कोशों से निकाल कर नहीं फेंक देंगे, उस समय तक हिन्दी राष्ट्र भाषा के रूप में समस्त भारतवासियों को स्वीकार नहीं हो सकती है। दक्षिण-भारतीयों के इस कथन में कि सरल संस्कृत ही राष्ट्र-भाषा घोषित की जाय सत्य है, तथ्य है और बल है। दक्षिण भारतीय राष्ट्र भाषा में पिता और माता जैसे शब्दों की तो कल्पना कर सकते हैं किन्तु वालिद और वालदा जैसे शब्दों की नहीं। भारत वासी इस प्रकार के शब्दों को कभी ग्रहण नहीं करेंगे तथा म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का हमें परित्याग करना ही पड़ेगा। यदि (खरी बोली) हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा के पद पर विराजमान होना है तो म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का बहिष्कार करके हमें केवल उन्हीं शब्दों का व्यवहार करना होगा जो सरस्वती भाषा के हैं।

हमने बताया है कि सरस्वती भाषा के कतिपय शब्दों के स्थान पर म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का व्यवहार करके हमारी भाषा को भ्रष्ट करने का प्रयास किया जाता है और इस भ्रष्ट रूप को उर्दू की सञ्ज्ञा दी जाती है। उर्दू का न कोई व्याकरण है और न कोई लिङ्गानुशासन है। व्याकरण की दृष्टि से हमारी भाषा में प्रयुक्त म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों की व्याकरण कोटियां, उपकोटियां तथा सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग वही होते हैं जो सरस्वती भाषा के उन शब्दों के होते हैं जिनके स्थान पर म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया गया हो। अतः उर्दू के उन शब्दों की जो सरस्वती भाषा के शब्द नहीं हैं, व्याकरण कोटी तथा सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग निर्धारित करने का केवल यही एकमात्र उपाय है कि पहिले सरस्वती भाषा के सङ्गत शब्द का ज्ञान किया जाये और जो व्याकरण कोटी और सञ्ज्ञा शब्द का लिङ्ग सरस्वती भाषा के शब्द का होगा वही व्याकरण कोटी और लिङ्ग उर्दू शब्द के होंगे। यथा ऊर्दू का एक शब्द है 'खबर'। इस शब्द का बहुवचन शब्द 'अखबार' है। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि शब्द 'खबर' सञ्ज्ञा स्त्री० है परन्तु 'अखबार' सञ्ज्ञा पु० है। इसका कारण यह है कि शब्द 'खबर' हमारी भाषा में शब्द 'सूचना' के स्थान पर प्रयोग हुआ है और जो लिङ्गानुशासन के नियम प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार स्त्री लिङ्ग है। शब्द अखबार' हमारी भाषा के शब्द 'सूचनापत्र' के स्थान पर प्रयोग हुआ है जो प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार पुल्लिङ्ग है। इसी प्रकार म्लेच्छ भाषा का शब्द 'आब' हमारी भाषा के शब्द 'आपम् या 'जलम्' के स्थान पर प्रयोग होने के कारण पुल्लिङ्ग है और शब्द 'आभा' अर्थ चमक के स्थान पर प्रयोग होने के कारण स्त्री० लिङ्ग है।

किसी भी देश का निवासी धर्म परिवर्तन से अपनी भाषा और संस्कृति से विपर्य नहीं हो सकता है, परन्तु वह किसी विश्वासघातक और देशद्रोही संस्था का सदस्य बनकर विश्वासघाती और देशद्रोही अवश्य बन सकता है। ठीक यही दशा उन व्यक्तियों की है जो भारत के आदि निवासी होकर भी इस देश की भाषा से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिन्न किसी अन्य भाषा और लिपि को अपनी भाषा और लिपि बताते हैं। वास्तव में उर्दू केवल विश्वासघाती और देशद्रोहियों की भाषा है। विश्वासघात और देश-द्रोह के कारण ही इर्दू के अनुयायियों का बङ्ग देश से विनाश हुआ है और वह समय दूर नहीं है जब इसी आधार पर वे भारत से विनष्ट किये जायेंगे। जितनी तीव्रता से वे इस भाषा की स्वीकृति का प्रश्न उठाते हैं उतनी ही शीघ्रता से वे अपने विनाश के दिन निकट ला रहे हैं। उनकी गुप्त भावनाओं का रहस्य अब भारतीयों की समझ में भली प्रकार आ रहा है। हम भारतीयों को अभी तक यह भली प्रकार स्मरण है कि इसी के कारण हमारे देश का विभाजन हुआ था। इसी वर्ग के व्यक्तियों द्वारा हमारी भाषा के गीत 'वन्देमातरम्' की अवहेलना हमारे लिये एक उत्तेजना है।

यदि ऊर्दू कोई भाषा है तो उसका कौन सा शब्दकोश है और उसका क्या व्याकरण है। उर्दू के नाम पर आज जो शब्द-कोश उपलब्ध हैं क्या केवल उन शब्द-कोशों में दिये हुये शब्दों से कोई भाषा बोली जा सकती है। वास्तव में उन शब्द-कोशों में दिये हुये म्लेच्छ भाषाओं के वह शब्द हैं जिनको उपरोक्त षड्यन्त्र के अन्तर्गत हमारी भाषा में प्रयोग करने का प्रयास किया जाता है। केवल उन शब्दों से कोई भी भाषा नही बन सकती है और न कोई विचार व्यक्त किये जा सकते हैं। क्या उर्दू के अनुयायी कोई ऐसी भाषा का निदर्शन उपस्थित कर सकते हैं जिसमें एक भी शब्द सरस्वती भाषा का न हो ?

उपस्थित भारत शासन को एक राजनैतिक सिद्धान्त 'फूट डालो और शासन करो' अङ्गरेजों से रिक्थाधिकार में प्राप्त हुआ था। जिस वर्ग ने भारत का संस्कृति, धर्म और भाषा के आधार पर विभाजन कराया, उसी वर्ग को भारत शासन प्रोत्सा-हन प्रदान कर रहा है। आचार, विचार, संस्कृति और भाषा के अनुसार उपस्थित भारत शासन वैसा ही अभारतीय है जैसा के आज से ३०-४० वर्ष पूर्व था। भारत में विभिन्न अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने के विरुद्ध जो प्रदर्शन होते हैं, उनका मुख्य कारण भारत शासन की भाषा नीति है। आकाशवाणी से हिन्दी भाषा के नाम पर जिस भाषा में समाचार प्रसारित किये जाते हैं, उस भाषा में एक क्रमबद्ध षड्यन्त्र के अन्तर्गत म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का मिश्रण किया जाता है जिससे अहिन्दी भाषी उस भाषा को न समझकर हिन्दी के विरुद्ध आन्दो-लन करें। इस नीति का दूसरा प्रमाण यह है कि भारत शासन के हिन्दी निदेशालय ने हिन्दी भाषा के नाम पर एक व्याकरण की पुस्तिका प्रकाशित की है जिसको वे "आधुनिक हिन्दी का मूल व्याकरण" कहते हैं। इस व्याकरण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस व्याकरण के लेखकों को हिन्दी भाषा का अल्प ज्ञान भी नहीं था। इस व्याकरण में म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों को हिन्दी भाषा का अङ्ग बनाने और अङ्गरेजी भाषा के व्याकरण का हिन्दीकरण करने का पूरा पूरा प्रयास किया गया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है । उसके लेखकों को हिन्दी भाषा के सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्गानुशासन के निश्चित नियम तथा शब्द और पद के भेद तक का ज्ञान नहीं हैं । उस व्याकरण के सम्बन्ध में हम विस्तार से इसी पुस्तिका के खण्डनम् काण्ड में लिखेंगे ।

भारत शासन अल्प सङ्ख्यक वर्गों की संस्कृति, धर्म, और भाषा की सुरक्षा के नाम पर भारत में एक भयङ्कर उपद्रवी जनता का निर्माण तथा सङ्घट्टन करा रहा है । इसका किसी उचित समय पर ऐसा विस्फोट होगा कि यह केवल शासन का नहीं अपितु समस्त देश का विनाश कर देगा । इससे देश सर्वदा के लिये नष्ट हो जायेगा और फिर कभी राष्ट्र गौरव प्राप्त न कर सकेगा । देशवासियों को इस ओर पूर्ण सावधान रहने की आवश्यकता है ।

हमारा कर्तव्य है कि भाषा के सम्बन्ध में हम राजनैतिक नेताओं के छल और कपट से दूर रहें । राष्ट्र भाषा तथा राष्ट्र गौरव के प्रति उनके मनों में फेर और मस्तिष्क में अन्धेर है । यह दैवी वाक् सरस्वती भाषा अनादिनिधना अजरा अमरा म्लेच्छों द्वारा भ्रष्ट न हो, इसके हेतु यह आवश्यक है कि हम अपनी वाणी में अपनी ही भाषा के शब्दों का प्रयोग करें तथा हम अपने शब्द कोशों से म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का वहिष्कार और परित्याग कर दें । जहां तक हो सके साहित्य भाषा में हम सरस्वती भाषा के साधु शब्दों का व्यवहार करें जिससे समस्त भारत की भाषा को एकता केसूत्र में निबद्ध किया जा सके ।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों के निवासियों को यह बात विस्मरण नहीं करनी चाहिये कि भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं का एक ही आत्मन् सरस्वती भाषा है । हम सब भारतवासियों के हृदय में अपनी मातृभूमि के प्रति वही श्रद्धा भाव जीवित रहें जिनका उल्लेख अथर्वा ऋषि ने अथर्ववेद के द्वादश काण्ड अर्थात भूमिः सूक्त में किया है ।

यास्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवि कृणोतु ।।
अथर्व, काण्ड १२, सूक्त १, मन्त्र ४१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: १० :

उच्चारण विपर्यय

सरस्वती भाषा अर्थात देववाणी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। पाश्चात्य लेखकों के आधार पर हिन्दी भाषा-विज्ञान के लेखकों का कहना है कि देवनागरी लिपि का उद्‌भव आज से लगभग एक सहस्त्र वर्ष पूर्व हुआ था। यह विचार भ्रामक तथा निर्मूल है, इन लेखकों के विचार में न कोई सत्य है और न कोई तथ्य है। यह विचार उसी प्रकार दूषित है जैसा कि उनका यह कहना कि भारतीय भारत के रहने वाले ही नहीं हैं। देवनागरी लिपि उतनी ही प्राचीन है जितनी प्राचीन सरस्वती भाषा है। संस्कृत भाषा में व्याकरण शास्त्र का जितना और जैसा सूक्ष्म, तर्कपूर्ण एवम् विस्तृत विवेचन हुआ है, उतना और वैसा विवेचन विश्व की किसी अन्य भाषा में दुर्लभ है। 'मुखं व्याकरणं स्मृतम्' के अनुसार व्याकरण वेद भगवान का मुख है। वेदों के सम्यक अध्ययन, उनके अर्थ-बोध और व्याख्या के लिये वेदाङ्गों का ज्ञान आवश्यक बताया है। वेद के अङ्गों में व्याकरण शास्त्र की यह महत्ता है कि उसके ज्ञान से शब्द के वास्तविक रूप और उसके अर्थ का यथावत बोध होता है।

यह निर्विवाद सत्य है कि महामुनि पाणिनि का आविर्भाव गौतम बुद्ध से सहस्त्रों वर्ष पूर्व हो चुका था। पाणिनि जैसा वैयाकरण संसार में फिर उत्पन्न नहीं हुआ। पाणिनि की रचना अष्टाध्यायी है। पाणिनि से पूर्व बहुत से वैयाकरण हुये किन्तु सामग्री की पूर्ण सुविधा न होने के कारण उनके ग्रन्थों की सुरक्षा न हो सकी। उनके नामों का उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी में मिलता है। आपिशलि, काशकृत्सन, शाकल्य, शाकटायन, इन्द्र आदि वैयाकरणों के नामों का उल्लेख पाणिनि ने अष्टाध्यायी में किया है। संस्कृत व्याकरण के अध्ययन से यह बात पूर्णत: समझ में आ सकती है कि संस्[illegible]ण का आधार केवल देवनागरी लिपि ही हो सकता है, संसार क[illegible]र लिपि के आधार पर संस्कृत व्याकरण की रचना हो ही नहीं स[illegible] है। सरस्वती भाषा वेद भाषा से बहुत प्राचीन है अत: देवनागरी लिपि वैदिक युग से भी प्राचीन है। जिस प्रकार प्राचीन काल में सरस्वती भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाती थी, उसी प्रकार खरी बोली भी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। देवनागरी लिपि की यह विशेषता है कि जिस प्रकार हम शब्द का उच्चारण करते हैं उसी प्रकार उस शब्द को लिखते हैं तथा जिस प्रकार किसी शब्द को लिखते हैं उसी प्रकार उसको पढ़कर उच्चरित करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम अनेक बार बता चुके हैं कि खरी बोली में वही शब्द प्रचलित है जो सरस्वती भाषा में प्रचलित थे। सरस्वती-भाषा के शब्दों के अर्थ, व्याकरण कोटियां, उपकोटियां और सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्गों में आज तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। किन्तु हम देखते हैं सरस्वती भाषा के शब्दों के अक्षर-विन्यास अब इतने परिवर्तित हो चुके हैं कि उनके साधु रूपों का ज्ञान करना बहुत दूभर हो गया है। यह बात सत्य ही है, व्यक्तिगत उच्चारण, काल भेद और अज्ञानता के कारण कथ्य भाषा में शब्दों के रूप बदला ही करते हैं। यदि ध्वनि की अपेक्षा, शब्दों के अर्थ, व्याकरण कोटि, उपकोटि और सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्गों को भी लक्ष में रखकर साधु शब्द का ज्ञान किया जाये तो शब्दों के साधु रूपों का ज्ञान सरलता से हो सकता है।

शब्दों के ध्वनि परिवर्तन का मूल कारण अज्ञान ही है। जिन व्यक्तियों को शब्दों के निश्चित अक्षर-विन्यास का ज्ञान नहीं होता है, अधिकांश उन्हीं के द्वारा शब्दों का अशुद्ध उच्चारण होता है। शब्दों के ध्वनि परिवर्तन के कोई नियम नहीं बनाये जा सकते हैं कारण कि नियम का अपवाद नही होता है। ध्वनि परिवर्तन के जो भी नियम बनाये जायें उनके अपवाद अवश्य मिलते हैं। परन्तु कुछ ऐसे आधार अवश्य हैं जिनके प्रयोग से अक्षर-विन्यासों के परिवर्तन की दिशा का ज्ञान हो सकता है और इस प्रकार साधु शब्द के ज्ञान होने में सहायता मिल सकती है। हम अपने पाठकों को फिर सावधान करा दें कि केवल ध्वनि के आधार पर साधु शब्द का ज्ञान कभी नहीं हो सकता है, ध्वनि के साथ-साथ शब्द के अर्थ, व्याकरण कोटि और लिङ्ग पर ध्यान रखना आवश्यक होता है।

ध्वनि परिवर्तन के कुछ आधार इस प्रकार हैं—

१—विसर्ग का उच्चारण 'आ'

सरस्वती भाषा में आकारान्त शब्द प्रत्यय के अनुसार स्त्रीलिङ्ग होते हैं, परन्तु हिन्दी (खरी बोली) में अनेक आकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द प्रचलित हैं। उसका कारण यह है कि सरस्वती भाषा में अनेक अक[illegible] के अन्त में विसर्ग लगा रहता है। इस प्रकार के कुछ शब्दों में विसर्ग क[illegible]हीं होता है, परन्तु कुछ शब्दों के अन्तिम विसर्ग का उच्चारण 'आ' के सदृश होता है। हिन्दी शब्दानुशासन[1] के लेखक का कथन, कि हिन्दी ने अपनी जो पुंविभक्ति 'आ' बनाई है, वह जहां हागी, वहां तो पुंवर्गीयता या पुल्लिङ्गता निश्चित ही है, भ्रामक और निर्मूल है। सरस्वती तथा हिन्दी (खरी बोली) में 'आ' स्त्री प्रत्यय है, तथा आकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं यथा—दया, विद्या, आभा, निशा, लज्जा, सन्ध्या, आशा,

(१) किशोरी दास वाजपेयी-हिन्दी शब्दानुशासन, पृष्ठ १७९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिक्षा, विभा, बाहा, सुधा, आदि। जिन शब्दों के अन्तिम विसर्ग का उच्चारण 'आ' हो गया है, केवल वही आकारान्त शब्द पुल्लिङ्ग होते हैं, जिनके कुछ उदाहरण इस प्रकार है—

अङ्गार:	अङ्गारा	अङ्गुष्ठ:	अङ्गूठा
अण्ड:	अण्डा	अन्धकार:	अन्धेरा
अर्ध:	अद्धा	अड्ड:	अड्डा
अवसर:	ओसरा	अट्ट:	अट्टा
आलय:	आलया, आला	खडक:	खडका
कुक्कुर:	कुत्ता	क्षुर:	छुरा
क्षुरप:	खुरपा	कुष्माण्ड:	कुम्हड़ा
कुठार:	कुहाड़ा	कुण्ड:	कुण्डा
करञ्ज:	करञ्जुआ	कोल:	कौला
कोष्ठ:	कोट्ठा	कच्छप:	कछवा
कङ्कण:	कङ्गणा, कङ्गना	कण्टक:	काण्टा
कदल:	केला	स्कन्ध:	कन्धा
करक:	करवा	कलस:	कलसा
काग:	कागा	कीट:	कीडा
कूप:	कुप्पा	कोण:	कोणा
क्षार:	झारा	खटख:	खटखा
गर्दभ:	गधा, गदहा	गल:	गला
गोल:	गोला	गण्डक:	गेण्डा
गण्ड:	गण्डा	गुम्फ:	गुम्फा
घट:	घड़ा	घोट:	घोड़ा
चक्रवाक:	चकवा	चिपुट:	चिउड़ा
चण:	चणा	चित्रक:	चीता
चूर्ण:	चूना	चोल:	चोला
चषक:	चषका, चसका	चपेट:	चपेटा, चपाटा
चन्द्र:	चन्दा	जीर:	जीरा
जन:	जना	डोर:	डोरा
तान:	ताना	तार:	तारा
ताल:	ताला	तुम्ब:	तुम्बा
तोल:	तोला	त्रिकोण:	तिकोणा
त्रिपुर:	त्रिपुरा	तुम्बर:	तम्बूरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तोद:	तोदा	दण्ड:	डण्डा
दीप:	दीवा	दोल:	डोला
द्रोह:	धोखा	दोर:	डोरा
धवल:	धौला	धुर:	धुरा
धूम:	धुँवा	धर्तूर:	धतूरा
नकुल:	नेवला	नग्न:	नङ्गा, नाङ्गा
नील:	नीला	नाल:	नाला
पल:	पला	पतङ्ग:	पतङ्गा
पट:	पटा, पट्टा	पटक:	पटका
पोत:	पोतड़ा	पौण्ड:	पौण्डा
पोतक:	पौधा	पुलक:	प्याला
पार:	पारा	पक्ष-वार:	पखवाड़ा
पाश:	पांसा	प्रणाल:	प्रणाला
पौत्र:	पोत्ता	प्राघूर्ण:	पाहूणा
फण:	फणा	बुद्बुद:	बुलबुला
बन्ध:	बन्धा	बलाक:	बगला
वर्कर:	बक्करा	बीजन:	बीजना
बान:	बाना	विंश:	बिस्सा
भ्रातृज:	भतीजा	भ्रमर:	भौंरा
भूघर:	भूहरा, भोहरा	मरुव:	मरुवा
मधूक:	महुआ	माष:	माषा
मुख्य:	मुख्या	मुद्गर:	मोगरा
मूष:	मूषा	मूसल:	मूसला
मुस्त:	मोथा	मेण्ढ:	मेण्ढा
मेघ:	मेहा	योध:	योधा
रद:	रद्दा	रस:	रसा
राज:	राजा	लटक:	लट्टा
लेख:	लेखा	लोल:	लोला
लोह:	लोहा	लक्तक:	लत्ता
विष्टर:	विस्तरा	वास:	बासा, बसेरा
वण्ट:	बिण्टा	वत्स:	बच्चा
वर्तुल:	बलोता	वर:	बनरा, बनड़ा
वलय:	बाला	वहेडुक:	बहेड़ा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वनम्-जारः	बनजारा	शकटः	छकड़ा
शशः	शशा, ससा	शिवालयः	शिवाला
श्यामलः	सांवला	शेखरः	सेहरा
श्वशुरः	ससुरा	षण्डः	सण्डा
सन्देशः	सन्देसा	संयानः	साञ्चा
स्फारः	अफारा	स्वप्नः	सुपना
स्फोटः	फोड़ा	स्कन्धः	कन्धा
हिङ्कारः	हुङ्गारा	हिमालयः	हिमालया
हिन्दोलः	हिण्डोला	हीरः	हीरा
हस्तः	हत्था		

२. अन्त्य न् का लोप

सरस्वती भाषा में इकारान्त और ईकारान्त शब्द प्रत्यय के अनुसार स्त्रीलिङ्ग होते हैं, परन्तु खरी बोली में अनेक इकारान्त तथा ईकारान्त शब्द पुल्लिङ्ग प्रचलित हैं। इसका कारण यह है कि सरस्वती भाषा के जिन शब्दों के अन्त में न् होता है, उस न् का खरी बोली में उच्चारण नहीं होता है, और अन्तिम ह्रस्व स्वर का दीर्घ स्वर हो जाता है, यथा—

अंशिन्	अंशी	अंसिन्	अंसी
अधिकारिन्	अधिकारी	अनुयायिन्	अनुयायी
अस्वामिन्	असामी	अपराधिन्	अपराधी
आडम्बरिन्	आडम्बरी	आगामिन्	आगामी
अत्-इथिन्	अतिथि	कामिन्	कामी
कामरूपिन्	कामरूपी	कारिन्	कारी
कलापिन्	कलापी	केसरिन्	केसरी
गामिन्	गामी	चिरञ्जीविन्	चिरञ्जीवी
ज्ञानिन्	ज्ञानी	तैलिन्	तेली
धनिन्	धनी	धर्मिन्	धर्मी
निवासिन्	निवासी	पट्टकारिन्	पटवारी
पूजाकारिन्	पुजारी	पापिन्	पापी
पक्षिन्	पक्षी	प्रतिवेशिन्	पड़ोसी
परदेशिन्	परदेशी	पर-उपकारिन्	परोपकारी
परगामिन्	परगामी	परद्रोहिन्	परद्रोही
परिद्वेपिन्	परिद्वेषी	प्रतिवादिन्	प्रतिबादी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बालिन्	बाली,	ब्रह्मचारिन्	ब्रह्मचारी
भागिन्	भागी	भोगिन्	भोगी
भेदिन्	भेदी	भण्डारिन्	भण्डारी
भाग्यशालिन्	भाग्यशाली	मन्त्रिन्	मन्त्री
योगिन्	जोगी		
रूपिन्	रूपी	रोगिन्	रोगी
लोभिन्	लोभी	विहारिन्	बिहारी
वक्रिन्	बक्की	वादिन्	वादी
वर्धकिन्	बाढी	विजयिन्	विजयी
व्यभिचारिन्	व्यभिचारी	व्यपारिन्	व्यापारी
शास्त्रिन्	शास्त्री	शरणार्थिन्	शरणार्थी
साक्षिन्	साक्षी	स्नेहिन्	स्नेही
स्पर्धिन्	स्पर्धी	स्वामिन्	स्वामी
हलिन्	हली, हाली	हस्तिन्	हाथी

उपरोक्त शब्दों में 'न्' का लोप होने के पश्चात इकारान्त शब्दों (ह्रस्व स्वर) का उच्चारण ईकारान्त (दीर्घ स्वर) हो गया।

इसी प्रकार कुछ आकारान्त शब्द भी पुल्लिङ्ग हैं, यथा—

ब्रह्मन्	ब्रह्मा	पापात्मन्	पापात्मा
आत्मन्	आत्मा	परमात्मन्	परमात्मा
राजन्	राजा	धर्मात्मन्	धर्मात्मा
दुरात्मन्	दुरात्मा	महात्मन्	महात्मा

उपरोक्त शब्दों में 'न्' का लोप होने के पश्चात अकारान्त शब्दों (ह्रस्व स्वर) का उच्चारण आकारान्त (दीर्घ स्वर) हो गया।

३. अन्त्य व्यजनों का लोप

सरस्वती भाषा के अन्तिम व्यञ्जनों के लोप के कारण भी खरी बोली में ईकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द प्रचलित हैं, यथा—

नवनीतम्	नवनी	यात्रिकः	यात्री
जीवः	जी	मौक्तिकम्	मोती
पानीयम	पानी	नापितः	नाई
गन्धिकः	गन्धी	मोचिकः	मोची
घृतम	घी		

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४. अन्त्य म् का लोप:

सरस्वती भाषा के अनेक शब्दों के अन्त में म् होता है। संस्कृत में यह शब्द अधिकांश नपुंसक लिङ्ग होते हैं। खरी बोली में इस प्रकार के शब्दों के म् का उच्चारण नहीं होता है, तथा यह सभी शब्द प्रत्यय के अनुसार पुल्लिङ्ग होते हैं, यथा—

अन्नम्	अन्न	अङ्गम्	अङ्ग
आश्रमम्	आश्रम	आमिषम्	आमिष
कारणम्	कारण	कङ्कणम्	कङ्गण
किरीटम्	कीरीट	खखलम्	खखल
गीतम्	गीत	जलम्	जल
दुग्धम्	दुग्ध	धनम्	धन
नखम्	नख	नगरम्	नगर
नक्षत्रम्	नक्षत्र	पापम्	पाप
पृष्ठम्	पृष्ठ	फलम	फल
बलम्	बल	बुसम्	भुस
मुखम्	मुख	मलम्	मल
वनम्	बन	वचनम्	बचन
स्वर्णम्	स्वर्ण	हलम्	हल

५. अन्त्य स्वर 'आ' का निपात:

सरस्वती भाषा में आकारान्त शब्द प्रत्यय के अनुसार स्त्रीलिङ्ग होते हैं। खरी बोली में सरस्वती भाषा के अनेक शब्दों के अन्तिम आ का उच्चारण नहीं होता है, जिसके कारण वह शब्द अकारान्त या व्यञ्जनान्त दिखाई पड़ते हैं, परन्तु वह सभी शब्द खरी बोली में भी स्त्रीलिङ्ग ही होते हैं, यथा—

सन्ध्या	साञ्झ	लेखा	लीख
बन्ध्या	बाञ्झ	जिह्वा	जीभ
वल्गा	बाग	नासिका	नाक
खट्वा	खाट	ऊर्णा	ऊण
टङ्गा	टाङ्ग	अट्कला	अटकल
जङ्घा	जाङ्घ	खण्डा	खाण्ड
भङ्गा	भाङ्ग	लिक्षा	लीख
लज्जा	लाज	शर्करा	शक्कर
पिपासा	पियास	तृषा	तिस
बाट्टा	बांट्ट	धारा	धार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आशा	आस	लाला	लार
भिक्षा	भीख	अवरा	ओर

६. अन्त्य स्वर 'इ' या 'ई' का निपात:

सरस्वती भाषा में इकारान्त या ईकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। खरी बोली में अनेक शब्दों में अन्तिम इ या ई का उच्चारण नहीं होता है, परन्तु वह शब्द खरी बोली में भी स्त्रीलिङ्ग ही हैं, यथा—

हट्टी	हाट	रीति:	रीत
तन्त्रि:	तान्त	भित्ति	भीत
वल्लरी	बाल	प्रीति:	प्रीत
खनि:	खान	योनि:	जून
जनी	जान	धरणि:	धरण
ग्रन्थि:	गाण्ठ	मति:	मत
हारि:	हार	सारी	सार
अग्नि:	आग	रात्री	रात
खली	खल	क्षीरी	खीर
तरवारि:	तलवार	रश्मि:	रास
लङ्गनी	लाङ्ग	कीलिका	कील
राशि:	रास	दामनी	दमैन
उद्वाहनी	उद्वाहन, अद्वान	जाति:	जात
दाति:	दात	सुचि	सुच
विधि:	विध	विभूति:	भभूत

७. आदि स्वर 'अ' 'आ' का निपात:

अभद्र (वि)	बुरा (वि)	अबुद्ध (वि)	बुद्धू (वि)
अभ्यञ्जनम्	भीजना	अभ्यन्तर	भीतर
अदूर	धोरे	अध्याय	झाय, झा
अटहास	ठट्ठा	अरघट्ट	रहट्ट
अमावश्या	मावस	अप्सरा	परी
आचार्य	चारज	आटोप:	टोपा, टोप
अध-अवतति:	धोती	अङ्गुष्ठ:	गुण्ठा

८. अन्त्य ऋ' का उच्चारण 'आ' होता है

इस प्रकार के सभी शब्द प्रकृति के अनुसार पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्येतृ	अध्येता	कर्तृ	कर्त्ता
क्रेतृ	क्रेता	गणयितृ	गणयिता
गन्तृ	गन्ता	छेतृ	छेत्ता
योक्तृ	जोत्ता	जेतृ	जेता
जनितृ	जनिता	ज्ञातृ	ज्ञाता
तरितृ	तरिता	दातृ	दाता
द्रष्टृ	द्रष्टा	धातृ	धाता
नेतृ	नेता	पठित	पठिता
विधातृ	विधाता	भर्त्त	भर्त्ता
रचयितृ	रचयिता	वक्तृ	वक्ता
श्रोतृ	श्रोता	स्रष्टृ	स्रष्टा
हर्त्तृ	हर्त्ता	भ्रातृ	भ्राता
मातृ	माता	पितृ	पिता
स्वसृ	स्वसा	योद्धृ	योद्धा
लिखितृ	लिखिता		

९. महाप्राण का उच्चारण 'ह' होता है:—

देवनागरी वर्णमाला में ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, श, ष, स, ह, महाप्राण हैं।

अभीर:	अहीर	अट्ट:-घर:	अट्टाहरा
इच्छा	चाह	कथा—नी	कहानी
कथनम्	कहना	कुठार:	कुहाड़ा
कुम्भकार	कुम्हार	खण्ड—घर:	खण्डहर
गर्दभ:	गद्हा	खलधान्यम्	खलहान
गोधा	गोह	गोरथ:	गोरहा
गोधूम	गेहूं	घात:	हात
जम्भिका	जम्हाई	तैलधनम्	तैलहन
दधि	दहि	नखम्—हरणम्	नहहरणा
दुख—आयति	दुहाई	धट:	धड़ा, हाड़ा
पितृ—घर:	पिहर	प्राघूर्ण:	पाहूना
पठ:—र:	पहाड़ा	बोधनी	बोहनी
बधिर (वि)	बहिरा (वि)	भू:—घर:	भूहरा, भौहरा
मुखम्	मुह	मुखम्—अरणि:	मुहारणी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुखम्-आस:	मुहासा	मुखम्-आन:	मुहाना
मधुरम्	महुर, माहुर	मुखरा:	मोहरा
मुखरी	मोहरी	मधूक:	महुआ
माघ:	माह	मेघ:	मेह
मध्य—धार:	मझहार	यूथी	जूही
लभनम्	लहना	वधू:	बहू
शेखर:	सेहरा	शोधनी	सूहनी
शिरधानय	सिराहना	शम्—घर:	शहर
शोभन (वि)	सोहना (वि)	सौभाग्यम्	सुहाग
सुभग:	सुहागा	सुभानम्	सुहाना
साधु:	साहु	भवनम्	होना
द्वि—लाभ:	दुलाह	मास	माह
सिन्धु:	हिन्दु	अरघट्ट:	अरहट्ट
केसरिन्	केहरी	सखी—ली	सहेली
पौष:	पोह	अस्मि	हम

१०. 'ह' का उच्चारण महाप्राण भी होता है—

अट्टहास	ठट्ठा	गुहा	गुफा
पद्—हति:	पद्धति:	सिंह	सिंघ
सिंहासन	सिंघासन	सिंह-द्वारम्	सिंघद्वार
द्रोह:	धोखा		

११. (अ + ब) का उच्चारण 'ओ' होती है—

दन्त:—अवनि:	दन्तोनि, दन्तोन	काष्ठ-अवत:	कठोता
अवलीला	ओलू	अवकलिका	ओकल
घर-अवहर	घरोहर	अवश्या	ओस
अवरा	ओर	अवसर:	ओसरा
च + अवकर:	चोकर	अवजिनम्	ओजना
क्ष:-अवजिनम्	खोजिना	भा—अवरा	भोर
छ:—अवरा	छोर	क:—अवरा	कोर

१२. 'क' का उच्चारण 'ग होता है:

शाकम्	साग	विकार:	बिगाड
कर्द:	गर्दा	लोक:	लोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पल्यङ्क	पलङ्ग	पङ्क्तिः	पङ्गत
प्रकट	प्रगट	कङ्कालम्	कङ्गाल
कङ्कणः	कङ्गना	कुङ्कुमम्	कुङ्गू
तः–कटी	तागड़ी	मकरः	मगर
कन्दुकम्	गेन्दू	हुङ्कारः	हुङ्गारा
शकुनः	शगुन	काण्डः	गाण्डा

कुछ शब्दों में ग का उच्चारण क हो जाता है

गल्लः	कल्ला	लगड–व्याघ्रः	लकड–बग्घा
मातृ–गृहम्	मायकह, मायका,		

१३. 'ख' का उच्चारण 'ग' होता है

लङ्खनी	लाङ्ग	प्रेङ्खा	पेङ्ग

१४. 'य' का उच्चारेण 'ज होता है

योक्त्रम्, योत्रम्	जोत्त	योगः	जोग
यमः	जम	यशस्	जश
युगम्	जुग	यौवनम्	जोबन
यूथी	जूही	यानम्	जाना
अयि	अजि	शय्या	सज्जा, सेज
कार्य	कारज	यत्नः	जतन, जतन
युधः	जुध	योधः	जोधा
युधिष्ठिरः	जुधिष्ठिर	यूका	जूं
योगिन्	जोगी	योषणा	जोषणा
यमुना	जमुना	यन्त्रम्	जन्त्र
यकृत्	जिगर	योनिः	जून
यमनम्	जमना	यामः	जाम

१५. 'ज' का उच्चारण 'य' होता है:—

रजनी	रयनी, रैन	जारः	यार
राज–तः	रायता	राजी	रायी, राई
वाणिजः	वाणियः, बाणिया	वणिजः	बणियः, वणिया

१६ 'व' का उच्चारण 'व' होता है:—

वीर	बीर	वर्तनम्	बर्तन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वारः	बार	वर्ती	बत्ती
वधूः	बहू	वर्धमान	बर्धमान
वरः	बर	वर्षम्	बरस
वरी	बरी	वर्षणम्	बरसना
वाणी	बाणी	वलयः	बाला
देवी	देबी	वल्कलम्	बक्कल
विश्वेश्वर	बिशेशर	वल्गा	बग्गा, बाग
वर्करः	बकरा	वशम	बंस
बर्गः	बरगा	वस्ती	बस्ती
विद्या	बिद्दा	वसन्तः	बसन्त
वंशः	वंस, वांस	वहनम्	बहना
वंशी	बंशी	वाटः	बाड़ा, बाट
वचनम्	बचन	वाणः	बाण
वज्रम	बज्र	वानरः	बन्दर
वटिका	बटी	वार्ता	बात
वड्र (वि)	बड़ा (वि)	वालुका	बालू
वण्टनम्	बाण्टना	विक्री	बिक्री
वत्स·	बच्चा	विग्रहः	बीधा
वननम्	बनना	विदारणाम्	बिनारना
वधः	बध	विबश	बेबश
वनम्	बन	वनस्पतिः	बनस्पति
वन्दना	बन्दना	वरणम्	बरना
वर्जनम	बर्जना		

१९ 'ट' का उच्चारण 'ड़' होता है—

शाटी	साड़ी	वटः	बड़ा
कोटिः, कोटी	कोड़ी	कटाहः	कड़ाहा
कटी	कड़ी	व-खेटः	बखेड़ा
कीटः	कीड़ा	पक्व-वटः	पकौड़ी
राटिः	राड़	शृङ्गाटः	सिंघाड़ा
झटिः	झड़ी	घटः	घड़ा, हाड़ा
पाटः	पाड़	स्फोटनम्	फोड़ना
पाटकः	पाड़ा	कपाटम्	किवाड़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खेट:	खेड़ा	घटी	घड़ी
पात्रट:	पोतड़ा	मर्कटी	मक्कड़ी
चटिका	चिड़िया	कर्कटी	कक्कड़ी
कट:	कड़ा	त:-कटी	तागड़ी
भ टम्	भाड़ा	भ्राष्ट:	भाढ़
घोट:	घोड़ा	घोटी	गोड़ी
वाट:	बाड़ा	स्फोट:	फोड़ा
घट:	घड़ा	घटनम्	घड़ना
शकट:	छकड़ा	भाटकम्	भाड़ा
पर्पटी	पप्पड़ी	पर्पट:	पापड़
रयि—वटी	रेवड़ी		

१८ 'र' का उच्चारण 'ड़' होता है :—

झरी	झड़ी	प्रतिवेशिन्	पड़ोसी
हरणम्	हड़ना	हरीतकी	हड़
च्यु + हर:	चुहड़ा	वारिन्	बाड़ी (बङ्गाली)
रै—बार:	रेवड़	विकार:	बिगाड़
खरी (वि)	खड़ी (वि)	व-अगारम्	बगड़
धर-अबह८	धरोड़, धरोहड़	धोरणाम्	दौड़ना
चञ्चरी	चीञ्चड़ी	पक्ष:—वार:	पखवाड़ा
हरिताली	हड़ताल	हर—ताली	हड़ताल

१९ 'र' का उच्चारण 'ल' होता है :—

त्वरा	तावल	तरवारी	तलवार
हरिद्रा	हलदी	रेखा	लीख
भेरी	भेली	तूरी	तूली
भद्र (वि)	भला (वि)	छि:—नारी	छिनाल

२० 'ल' का उच्चारण 'र' होता है:—

लोली	लोरी	लाला	लार
शृगाल	सियार	लोष्ट:	रोड़ा
वन्दन—माला	वन्दनवार		

२१ 'ष' का उच्चारण 'ख' या 'क' होता है :—

षम्	ख	षम्-आदि	खादि, खाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

षम्-उड्डी	खुड्डी	वर्षा	बरखा
रेषणम	रेकना, रेङ्कना	ऋषिराम	रिखीराम
ऋषभदास	रिखभदास	ऋषभदेव	रिखबदेव

२२ 'क्ष' का उच्चारण 'श' होता है :—

क्षान्तिः	शान्ति	क्षी	श
क्षीरम्	शीर (दूध)	क्षी-कार	शीकार
क्षी-कारिन्	शीकारी	क्षतिः	किश्त

२३ 'श' और 'ष' का उच्चारण 'छ' होता है:—

शकटः	छकड़ा	षष्	छ
षष्-कटी	छकड़ी	षः—अवरा	छीर
शिक्यम्	छिका, छिङ्का		

२४ 'क्ष' का उच्चारण 'छ' होता है—

क्षेत्रम्	छेत्र	लक्ष्मी	लछ्मी
लक्ष्मण	लछ्मण	क्षुरः	छुरा
क्षुरी	छुरी	क्षिजननम	छीजना
क्षमा	छमा	क्षत्रिन्	छत्री
क्षणम्	छण	क्षत्रपतिः	छत्रपति
लक्षण	लछण, लच्छण	क्ष्वेडणम्	छेड़ना
क्षीणता	छीड़	क्ष्वेड	छेड़
क्ष्	छ्	क्षतनम्	छेतना
क्षपः	छप	ऋक्षः	रीछ

२५. 'क्ष' का उच्चारण 'ख' होता है—

लक्ष (वि)	लाख [वि]	लक्षा	लाख
दक्षिण	दक्खिन	लक्षण	लक्खन
क्षारः	खार	क्षुरः	खुर
क्षुर—पः	खुरपा	क्षीरी	खीर
लिक्षा	लीख	भिक्षा	भीख
क्षेपणम	खेपना	क्षुण्ण	खूण
क्षुधा	खुद्दा (भूख)	क्षुद्र (वि)	खुद्रा (वि)
शिक्षा	सीख	पक्षः—वारः	पखवाडा
पक्षकः	पङ्खा	कुक्षिः	कोख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुभुक्षा	भूख	बुभुक्षु (वि०)	भुक्खा (वि०)
मक्षिका	मक्खी	अक्षि	आंख, अक्खि
लक्ष्मी	लक्खी	रक्षा	राख
रक्षी	राखी	विलक्ष (वि)	बिलख (वि)
रक्षणम्	रखना		

२६. 'श्र' या 'शृ' का उच्चारण 'स' या 'स्र' होता है—

श्री	स्री	श्रेष्ठः	सेठ
श्रेष्ठिन्	सेठी	श्रद्धा	साध
श्राद्धम्	स्राद्ध	श्रु	सु
निश्रेणी	निसेनी	शृङ्खला	सङ्कल
शृङ्गम	सीङ्ग	शृङ्गाटः	सिङ्घाड़ा
मिश्रः	मिस्रा	शृगालः	सियार
श्वश्रूः	सासू	मिश्री	मिस्री
श्रीवास्तवः	स्रीवास्तवा	श्रवण कुमार	स्रवण कुमार
शृङ्गारः	सिङ्गार	श्रङ्कणम्	सरकना
श्रावणः	सावन	श्रावणी	सावनी
श्रावस्ती	सरावस्ती		

२७ त, थ, द, ध का क्रमशः ट, ठ, ड, ढ उच्चारण होता है :

तन्त्रम्	टण्डीरा	त्रुटिः	टूट
त्रोटी	टोंटी, टूण्टी	तुण्डी	टोडी
त्रोटकम	टोटका	चित्तिः	चिट्टी, चिट्ठी
र + पतनम्	रपटना	स्थापकः	ठप्पा
स्थित	ठिया	स्थाणु	ठूण्ठ, ठाण
स्थगः	ठग	स्थगनम्	ठगना
स्थानम्	ठाण	र—स्थानम्	रठाण
दंशः	डङ्क	दण्डः	डण्डा
दभ्रः	डबड़ा	दरः	डर
द्वारी	ड्योढी	दशा	डस (तराजू की डस)
दाडिमी	डाडिमी	दंसः	डांस
दंष्ट्रा	डाढ	दुन्दुभि	डुगडुगी, डुग्डी
द्रोणः	डोङ्गा	द्रोणी	डोङ्गी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दस्युः	डाकू	दोरः	डोरा
दोलः	डोला	दोली	डोली
दंशनम्	डसना	द्वयर्द्ध	डेढ
दर्भः	डाभ	मन्द [वि]	भुण्डा [वि]
ध्वँ—कुशलम्	ढकौसला	धरः	ढेर
धूः—अङ्गम	ढौङ्ग	ध्वस्त	ढुण्ड
वर्धनम्	बढ़ना	धे–कलिका	ढेंकली धे = खीञ्च लेना, घूण्ट भरना, पीना

ट, ठ, ड, ढ का उच्चारण क्रमशः त, थ, द, ध भी हो जाता है। सरस्वती भाषा में ऐसे शब्द जिनमें ट, ठ, ड, ढ होता है बहुत थोड़े हैं, इसी कारण इस प्रकार के उदाहरण भी थोड़े ही मिलते हैं, यथा—

चपटः	चपत	ढौकनम्	धोकना

२८ 'त्स' का उच्चारण 'च्च' 'च्छ' और 'ज' होता है :—

मत्सः	मच्छ	मत्सी	मच्छी
उत्सवः	उच्छाव	उत्सदः	उजाड़
उत्साह	उच्छाह	मत्सरः	मच्छर
उत्सुक (वि)	उच्छुक	वत्सः	बच्चा
वत्सतरः	बछड़ा	सत्य (वि)	सच्च (वि)
वत्सिमन्	बचपन	वत्सराज	बच्छराज
वत्सनाग	बच्छनाग		

२९ 'त्य' का 'च', 'द्य' का 'ज' और 'ध्य' का 'झ' उच्चारण होता है :

सत्य	सच	नृत्यम्	नाच
वाद्यः	बाजा	खाद्यम्	खाजा
विद्युत + ली	बिजुली	अन्नाद्यम्	अन्नाज
अद्य	आज	द्युतः	जुआ
अध्यायः	अझाय, झा,	उपाध्याय	ओझा
ध्यात	झात	ध्या-रोकम्	झरोका
मध्य-धारः	मझहार	सन्ध्या	सञ्झा, साञ्झ
बन्ध्या	बाञ्झ	स + अर्घ्य	साझा
ध्यान-वरी	झांवर	ध्या-हरणाम्	झाड़ना, (फूंकना)
ध्या-मेलः	झमेला	सम ध्यानम्	समझाना
ध्म-ध्यात्वम्	समझौता	ध्या-गरणम्	झगड़ना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्या—क्षि:	झक ध्या = विचार, ध्यान, क्षि: = नष्ट करना		
ध्यान-झट्	झानझट, झञ्झट	ध्या-दण्ड:	झण्डा
ध्या-कूटम्	झूट	ध्यान-करणम्	झाङ्कना

३०. 'म' का उच्चारण 'भ' होता है—

महिष:	भैंसा	महिषी	भैंस, भैंसी
मेषी	भेड़	मेष:	भेड़ा
मज्जम्	भेजा	मन्द (वि)	भुण्डा, भद्दा
मार्गणम्	भागना	मातङ्ग	भङ्गी

३०. 'च' का उच्चारण 'क' भी होता है—

पचनम्	पकना	वचनम्	बकना

संयुक्त व्यञ्जन

हमारी लिपि अर्थात वर्णमाला में दो प्रकार के अक्षर हैं। एक तो अ, आ, इ, ई, उ आदि स्वर, दूसरे क्, ख्, ग्, घ्, आदि व्यञ्जन या हल्। स्वर वह वर्ण हैं जिनका उच्चारण बिना किसी अन्य वर्ण की सहायता के किया जा सकता है, परन्तु व्यञ्जनों का उच्चारण स्वरों को मिलाये बिना नहीं हो सकता है। पतञ्जलि ने महाभाष्य में लिखा है—'स्वयं राजन्ते स्वरा अन्वग् भवति व्यञ्जनमिति।' जब एक व्यञ्जन दूसरे व्यञ्जन में जुड़ जाता है तो उसको संयुक्त व्यञ्जन कहते हैं। संयुक्त व्यञ्जन का उच्चारण भी स्वर की सहायता के बिना नहीं हो सकता है। हिन्दी भाषा विज्ञान के कतिपय लेखकों का कथन है कि व्यञ्जन के उच्चारण के लिए स्वर की सहायता अनिवार्य नही है, यथा शब्द स्वर में स् के साथ कोई स्वर नहीं मिला है, परन्तु उसका उच्चारण होता है। उनका यह भ्रामक विचार है। शब्द स्वर में स्व एक संयुक्त व्यञ्जन है स्व में अकार युक्त है और इसी कारण स् और व का उच्चारण हो पाता है।

हिन्दी के अध्यापक अकार युक्त व्यञ्जन को पूरा तथा हल् को आधा व्यञ्जन कहते हैं। विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभाग में छात्रों को शिक्षा देने का जो प्रमाण है, उसका एक आदर्श हम पाठकों के सम्मुख रखते हैं। इस पुस्तिका के लेखक के प्रश्न करने पर विश्व-विद्यालय के अनेक छात्रों ने जो हिन्दी साहित्य तथा भाषा विज्ञान में एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर चुके थे, बताया कि 'प्रकाश' तथा 'अर्थ' दोनों शब्दों में 'र' आधा होता है। जब उन छात्रों से यह प्रश्न किया गया कि यदि दोनों शब्दों में 'र' आधा है तो इन शब्दों में 'र' के रूप भिन्न भिन्न क्यों है, तो उन्होंने उत्तर दिया कि हिन्दी में इस प्रकार लिखने की रीति है और यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयोग के अनुसार इस प्रकार लिखा जाता है। हिन्दी में एम० ए० की उपाधि प्राप्त किये हुए विद्यार्थियों का इस प्रकार के उत्तर देना कितने खेद की बात है। सत्य तो यह है कि इसमें इनका कोई दोष नहीं है। विश्व-विद्यालयों के अध्यापक ही कुरीति से शिक्षा देते हैं।

यह ज्ञात करने के लिए कि किसी शब्द के संयुक्त व्यञ्जन में कौन सा व्यञ्जन आधा अर्थात हल् है, और कौनसा व्यञ्जन पूरा अर्थात अकार युक्त है, एक साधारण नियम है। देवनागरी लिपि वैज्ञानिक लिपि है। विद् पाठक भली प्रकार जानते हैं कि यदि जल में जल से भारी वस्तु डाला जाय तो वह नीचे जाता है, और यदि हलका डाला जाय तो वह जल के ऊपर ही रहता है। इसी प्रकार जो हल् अर्थात अकार रहित व्यञ्जन होता हैं वह हलका होने के कारण दूसरे व्यञ्जन के ऊपर रहता है, तथा अकार युक्त व्यञ्जन भारी होने के कारण सर्वदा नीचे लगता है। अतः व्यञ्जन के रूप पर ध्यान न देकर उस व्यञ्जन का स्थान देखना ही उचित होता है। यदि यह नियम छात्रों को बता दिया जाय तो वह कभी भ्रम में नहीं पड़ सकते हैं। यह ध्यान रहे कि संयुक्त व्यञ्जन में पूर्व व्यञ्जन हल् होता है और पर व्यञ्जन अकार युक्त होता है या उसमें कोई अन्य स्वर युक्त रहता है।

सरस्वती भाषा संयुक्त व्यञ्जन बाहुल्य भाषा है, अर्थात इसके अनेक शब्दों के अक्षर विन्यासों में संयुक्त व्यञ्जन होते हैं। जन-साधारण को इस प्रकार के शब्दों के अक्षर-विन्यासों का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण, वह इन शब्दों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते हैं। यह देखने में आता है कि जन-साधारण इस प्रकार के शब्दों का उच्चारण करते समय संयुक्त व्यञ्जन में एक व्यञ्जन का उच्चारण नहीं करते हैं और दूसरे व्यञ्जन को द्वित्व कर देते हैं। यह बात बहुत मनोरञ्जक और रुचिकर है कि यद्यपि इस परिवर्तन के आधारों के कुछ अपवाद भी मिलते हैं तथापि यह परिवर्तन बहुत कुछ नियमित ही होता है।

संयुक्त महाप्राण—संयुक्त व्यञ्जनों के ध्वनि परिवर्तन के नियमों पर ध्यान देने के पूर्व हम पाठकों को यह बता दें कि किसी भी संयुक्त व्यञ्जन में दो महा-प्राण एक साथ नहीं जोड़े जा सकते हैं। यदि किसी संयुक्त व्यञ्जन में दो महा-प्राण एक साथ आ जाते हैं तो संयुक्त व्यञ्जन का पूर्व व्यञ्जन अपने से पूर्व का अल्पप्राण व्यञ्जन हो जाता है। यथा ख्ख का क्ख, घ्घ का ग्घ, छ्छ का च्छ, झ्झ का ज्झ, ठ्ठ का ट्ठ और ध्ध का द्ध आदि रूप हो जाते हैं।

३१ यदि किसी संयुक्त व्यञ्जन में पर व्यञ्जन, य, व, म हो तो य, व, म

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का उच्चारण नहीं होता है, और पूर्व व्यञ्जन वर्ण का उच्चारण द्वैध होता है, यथा :—

विद्या	विद्दा	लक्ष्मण	लक्खन
लक्ष्मी	लक्खी	बर्व	बर्र
शिष्य	शिख्ख, शिक्ख, सिख	श्याल:	श्शाला, साला
कार्य	कार्र, कार	भार्य	भार्र, भार
चर्म	चम्म, चाम	कुल्या	कुल्ला, कूल
शर्वरी	शब्बरी, शब्ब	रश्मि	रश्शि, रस्सी
शाल्वण	शाल्लण, सालण	बाल्यम्	बाल्ला
जाड्यम	जाड्डा		

३२ यदि किसी संयुक्त व्यञ्जन में पर व्यञ्जन वर्ण य, व, म और र के अतिरिक्त कोई अन्य व्यञ्जन वर्ण हो तो संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व व्यञ्जन वर्ण का उच्चारण नहीं होता है और पर व्यञ्जन वर्ण का उच्चारण द्वैध होता है। यथा:—

खर्पर	खप्पर	मिष्ठ:	मिठ्ठ, मिट्ठा
कर्पट:	कप्पट:, कपड़ा	लक्त:	लत्त:
गोष्ठम्	गोठ्ठ, गोट्ठ	दुग्धम्	दुद्ध, दुद्ध, दूध
काष्ठ	काठ्ठ, काट्ठ	रक्तिका	रत्ति
सक्तु	सत्तु	मुष्ठि	मुठ्ठि, मुट्ठि
वल्कल	बक्कल	कर्ण:	कण्ण, कान
कान्यकुब्ज	कान्यकुज्ज, कन्नौज	मर्कटी	मक्कटी, मकड़ी
मर्कट:	मक्कट:, मर्कडा	कायस्थ:	कायथ्थ, कायत्थ
कार्तिक	कात्तिक	कार्य:	काज्ज. काज
गर्दः	गोद्दा, गुद्दा	कर्पासी	कप्पासी, कप्पास
कर्कटी	कक्कठी, कक्कड़ी	ओष्ठ	ओठ्ठ, ओट्ठ, होट्ठ
वर्करा	बक्करा	वर्त्तिः	बत्ति
वल्गा	बग्गा, बाग	षष्ठी	षट्ठी, छट्ठी, छठ
शर्करा	शक्करा, शक्कर	कर्ष	कष्ष, कस
ज्येष्ठ	जेठ्ठ, जेट्ठ	योत्रम्	जोत
खर्जूरी	खज्जूरी, खजूर	युक्त	जुत्ता
पर्ण:	पण्ण:, पन्ना	योक्त्रम्]	जोत्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मदार	मद्दार	कूर्द	कूद्द, कूद
कर्पूरम्	कप्पूर	चर्पट:	चप्पट: चप्पाटा
कलावस्तु:	कलाबत्तु	पिष्टिका	पिट्ठी
फाल्गुन	फाग्गुन	प्रस्तर:	पत्तरा
खर—उष्ट्री	खरोष्टी		

३३. किसी संयुक्त व्यञ्जन में य, व, म को छोड़कर र चाहे पूर्व व्यञ्जन हो या पर व्यञ्जन हो, दोनों दिशाओं में र का उच्चारण नहीं होता है।

प्राघूर्ण	पाहूणा	प्रेङ्खा	पेङ्ग
उष्ट्र:	उटट, ऊट	घ्या-उष्ट्र:	झोट्टा
भ्राष्ट्रम	भाड़	प्रसार:	पसारा
श्वश्रू:	सासू	निश्रेणी	निसेनी
श्रेष्ठः	सेटठ	श्रद्धा	साध
श्रु	सु	गर्दभ:	गदहा
अर्ध:	आधा	मूत्रम्	मूत
पत्रम्	पत्ता	चक्रम्	चक
चुक्रम्	चूक	आम्र:	आम
व्याघ्र	बाघ	पुत्र:	पूत
पौण्ड्र:	पौण्डा	गर्गरी	गगरी
प्रस्तर:	पत्तरा	कर्पूर	कपूर
कूर्द	कूद	शीर्षम	शीप
ग्राम	गाम	मार्गणम्	भागना
धत्तूर:	धतूरा	तर्कु:	तकुआ
चर्पट:	चपत	सूत्रम्	सूत
मूत्रम्	मूत	शूर्पम्	सूप

खरी बोली के अनेक शब्दों में द्वैध व्यञ्जन वर्णों का उच्चारण होता है, जो कि खरी बोली के क्षेत्र की एक विशेषता है। अन्य क्षेत्रो के रहने वाले इस प्रकार के शब्दों के उच्चारण को गंवार और असाधु समझते हैं। आधार ३१ तथा ३२ के अनुसार जिन सरस्वती शब्दों में संयुक्त व्यञ्जन वर्ण होते हैं, उन शब्दों का खरी बोली में द्वैध व्यञ्जन वर्णों का उच्चारण ही साधु प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त सरस्वती भाषा के बहुत से शब्दों में द्वैध व्यञ्जन वर्ण होते ही हैं, अत: उन शब्दों का भी खरी बोली में द्वैध व्यञ्जन वर्णों के साथ उच्चारण होना साधु ही है। यथा :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पित्तलम्	पित्तल	अत्र—अवततिः	धोत्ती
मिष्ठम्	मिट्ठा	दुग्ध	दुद्ध
काष्ठम्	काट्ठ	युक्त	जुत्ता
लोष्टः	लोट्टा	वर्करः	बक्करा
कार्तिक	कात्तिक	मर्कटी	मक्कड़ी
शर्करा	शक्कर	पिप्पलः	पिप्पल
पर्पटः	पाप्पड़	पृच्छनम्	पूच्छना, यथा

पुच्छा था, पुच्छा है, पुच्छूँगा आदि ।

अभ्यन्तर	भित्तर	पिष्टिका	पिट्ठी
अष्टमी	आट्ठें	सप्तमी	सात्तें
षष्ठी	छट्ठ	मौक्तिकम्	मोत्ती
वृद्ध	बुड्ढा	रिक्त	रित्ता
जाड्यम्	जाड्डा	ज्येष्ठ	जेट्ठा
पिप्पलिः	पिप्पल		

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: ११ :

वाक्य विचार

भाषा जन्मजात वस्तु नहीं है, कोई भी मनुष्य भाषा सीखकर जन्म नहीं लेता है। मनुष्य में भाषा ग्रहण करने की नैसर्गिक शक्ति होती है और वह भाषा सीख सकता है। मनुष्य जिस समाज में रहता है उसी की भाषा कानों से सुनकर और मुख से उच्चारण करके सीखता है। जो मनुष्य जिस भाषा के क्षेत्र में रहता है, वह उस भाषा को सरलता से सीख लेता है। भाषा एक सामाजिक वस्तु है और इसका यह अनिवार्य परिणाम है कि जो व्यक्ति जिस समाज में उत्पन्न होगा और रहेगा वह उसकी भाषा को ग्रहण करेगा। सौभाग्य है कि अति प्राचीन काल से आज तक हमारा देश सदैव हरा भरा और मानस-समुदाय पूरित रहा है। कभी ऐसा नहीं हुआ कि इस पुनीत भूमि पर एक सन्तति समूह नष्ट हो गया हो और सहस्त्रों वर्षों तक यह भूखण्ड मानव शून्य रहा हो तथा फिर नवीन जातियां यहाँ आकर बसी हों। हमारे देश में अति प्राचीन काल के ऋषियों से लेकर आज तक उन्ही की सन्ततियां चल रही हैं और इसका प्रमाण हमारे अन्दर प्राचीन काल के ऋषियों के नाम पर प्रचलित गोत्र प्रथा है। प्राचीन काल से इस काल के बीच सहस्त्रों सन्ततियां हुई हैं और पिता से पुत्र भाषा सीखता और बोलता हुआ वही क्रम धारण किये है। 'मनुष्य के समान भाषा भी सतत प्रवहमान अविछिन्न धारा है। जिस प्रकार उद्गम-स्थल से लेकर समुद्र-पर्यन्त नदी की धारा अविछिन्न होती है, वह कहीं भी सूखती या टूटती नहीं है, उसी प्रकार जब से भाषा आरम्भ हुई तब से आज तक चली आ रही है और जब तक मानव-समाज रहेगा तब तक उसी प्रकार चलती रहेगी। भाषा की यह गतिशीलता समाज में ही रहती है—व्यक्ति उसे अर्जित कर सकता है, उसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन भी कर सकता है किन्तु न तो उसे उत्पन्न कर सकता है और न तो उसे समाप्त कर सकता है। वह उस विशाल कालजयी प्रवाह का एक नगण्य बिन्दु-मात्र है जो चाह कर भी अपनी सत्ता पृथक नही कर सकता है, पृथक करने के प्रयास में उसी की सत्ता मिट जायगी।'[1]

संसार की प्रत्येक कथ्य भाषा का उद्गम और विकास जन-साधारण की कथ्य भाषा के रूप में होता है। सरस्वती भारत की आदिमूल कथ्य भाषा है।

---

(१) भाषा विज्ञान की भूमिका पृ० ४१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि सरस्वती की ज्योति किस काल में पवित्र भारत की पुण्य भूमि ब्रह्मावर्त को आलोकित कर उठी थी। यह दैवी वाक अनादिनिधना अजरा अमरा है। जिस पवित्र भूमि पर प्राचीन काल में सरस्वती भाषा बोली जाती थी उसी भूमि पर बोली जाने वाली भाषा को आज हिन्दी खरी बोली कहते हैं! वास्तव में सरस्वती और खरी बोली भाषायें एक ही हैं। व्यक्तिगत उच्चारण और काल भेद के कारण भाषा का रूप सर्वदा बदला ही करता है। परिवर्तन कथ्य भाषा का अनिवार्य क्रम है। एक ही क्षेत्र की एक युग की कथ्य भाषा दूसरे युग की कथ्य भाषा से भिन्न प्रतीत होती है, परन्तु भाषा के दोनों युगों के प्रचलित रूप की विश्लेषित परीक्षा करने से स्पष्ट हो सकता है कि भाषा के मूल तत्त्व और भाषा की आदि परम्परा न कभी बदलती है और न कभी नष्ट ही होती है।

भाषा के मूल तत्त्व हैं भाषा से प्रचलित शब्द और भाषा की आदि परम्परा है इस भाषा की **वाक्य रचना या वाक्य विन्यास**।

भाषा के मूल तत्त्व

शब्द—वाक्य ऐसे शब्दों का समूह है जो विशेष प्रकार से क्रमबद्ध रहते हैं। वाक्य का अर्थ है शब्दों का एक विशेष क्रम से विन्यास। वाच्य विषय ही शब्द का अर्थ हैं। वाक्य बोध होने के लिये शब्द बोध होना आवश्यक हैं। तर्क सङ्ग्रह में कहा है—"वाक्यार्थज्ञानं शाब्दज्ञानम्। तत्करणं तु शब्दः।। अर्थात वाक्य के अर्थ को समझना ही शब्द ज्ञान है। उस शब्द ज्ञान (शाब्द बोध) का कारण शब्द है। शब्द ही शब्द का प्रमाण है। वास्तविक शब्द हमारे कण्ठ से स्फुटित होता है, उत्पन्न नहीं होता है। वास्तविक शब्द अनादि होने के कारण नित्य है। अतएव शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य और स्वाभाविक है, आधुनिक या सांकेतिक नहीं है। शब्द के द्वारा अर्थ की प्रेरणा होने से शुद्ध शब्द और अपभ्रंश शब्द में समान अर्थ होता है।

सरस्वती भाषा के शब्दों के साधु अर्थ का ज्ञान उस भाषा के शब्द कोश से हो सकता है। जो शब्द जिस रूप में शब्द कोश में दिये रहते हैं, उन शब्दों को उसी रूप, उन्हीं अर्थों तथा उन्हीं व्याकरण कोटियों में भाषा में प्रयोग होना अनिवार्य होता है। यदि किसी शब्द का उसी रूप में भाषा में प्रयोग नहीं हो सकता है तो उस शब्द को उस भाषा का शब्द ही नहीं माना जा सकता है। कतिपय हिन्दी भाषा विज्ञान के लेखकों का कथन है कि सार्थक हो जाने से ही शब्द में प्रयोग-योगता नहीं आ जाती है। कोश में ऐसे सहस्त्रों शब्द होतें हैं जिनका उसी रूप में भाषा में प्रयोग नहीं हो सकता है। भाषा में प्रयोग करने के लिए उन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्दों में कुछ परिवर्तन करना होता है। यथा कोश में पढ़ना शब्द मिलता है और वह सार्थक भी है किन्तु प्रयोग के लिये 'पढ़ना' रूप ही पर्याप्त नहीं है। उनका कहना है कि शब्द 'पढ़ना' के रूप बनाकर ही इस शब्द को भाषा में प्रयोग किया जा सकता है, यथा, पढ़ा है, पढ़ा था, पढ़ेगा, पढ़ता है आदि। इन लेखकों के इस प्रकार के विचार अनर्गल और भ्रामक है। उसका कारण यह है कि लेखकों को न सरस्वती भाषा अर्थात खरी बोली का कुछ ज्ञान है और न उसके व्याकरण का। इस प्रकार के लेखक नागरी प्रचारिणी सभा के कोश के आधार पर समझते हैं कि जो कुछ भी नागरी लिपि में लिख दिया वह हिन्दी भाषा (खरी बोली) हो गई।

खरी बोली का 'पढ़ना' शब्द सरस्वती भाषा के शब्द 'पठनम्' का ही परिवर्तित रूप है। अत: शब्द 'पढ़ना' का वही अर्थ और वही व्याकरण कोटि है जो 'पठनम्' शब्द का अर्थ तथा व्याकरण कोटि है। किसी भी संस्कृत कोश या व्याकरण से ज्ञात हो सकता है कि शब्द 'पठनम्' क्रिया नहीं है अपितु कर्म वाचक सञ्ज्ञा है। अत: 'पढ़ना' शब्द हमारी भाषा (खरी बोली) में भी सञ्ज्ञा की भांति ही प्रयोग हो सकता है और होता है, यथा :—

(१) क्या इस बालक पर कुछ पढ़ना आता है।
(२) बालक ने अपना पाठ पढ़ना आरम्भ कर दिया।
(३) आपको पढ़ना लिखना सीखना चाहिये।
(४) दूसरे का पत्र पढ़ना अनैतिक हैं।
(५) पढ़ना मानव का प्रथम कर्तव्य है।

उपरोक्त सभी वाक्यों में शब्द 'पढ़ना' पुल्लिङ्ग कर्मवाचक सञ्ज्ञा की भांति प्रयोग हुआ है। 'पढ़ना' शब्द क्रिया नहीं है, अत: यह शब्द क्रिया की भांति भाषा में प्रयोग हो ही नहीं सकता है। सरस्वती भाषा के शब्द कोश (संस्कृत शब्द कोश) या खरी बोली के शब्द कोश में दिया हुआ कोई भी शब्द व्याकरण की दृष्टि से क्रिया की व्याकरण कोटि के अन्तरगत नहीं रखा जा सकता है।

आना, जाना, चलना, भागना, कूदना, दौड़ना, मारना, काटना, जागना, आदि शब्द भी क्रिया शब्द नहीं है अपितु सञ्ज्ञा है, तथा भाषा में सञ्ज्ञा की भांति प्रयोग में आते हैं। इस सम्बन्ध में विस्तार के साथ इसी अध्याय में आगे विचार किया गया है।

हम यह दिखा चुके है कि सरस्वती भाषा के वही शब्द हैं जो संस्कृत कोशों में उपलब्ध होते हैं। व्याकरण की दृष्टि से यह शब्द केवल तीन व्याकरण कोटियों में विभक्त किये जाते हैं। यद्यपि खरी बोली में इन शब्दों के अक्षर-विन्यासों में बहुत परिवर्तन हो गया है। परन्तु जो शब्द संस्कृत कोशों में उपलब्ध होते हैं वही शब्द खरी बोली में भी प्रचलित हैं, और खरी बोली में भी उन शब्दों के वही अर्थ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और वही व्याकरण कोटियां हैं जो उन शब्दों के संस्कृत में हैं। हम यह भी दिखा चुके हैं कि संस्कृत में व्याकरण की दृष्टि से सञ्ज्ञा शब्दों को तीन लिङ्गों के अन्तर्गत रखा जाता है, परन्तु सरस्वती और खरी बोली में सञ्ज्ञा शब्दों को केवल दो लिङ्गों के अन्तर्गत रखा जाता है। सरस्वती और खरी बोली में सञ्ज्ञा शब्दों का लिङ्ग प्रकृति और प्रत्यय के आधार पर निर्धारित होता है, तथा दोनों भाषाओं में शब्दों के लिङ्ग एक ही होते हैं। इस प्रकार यह पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि सरस्वती भाषा और खरी बोली के मूल तत्व अर्थात शब्द एक ही हैं।

वाक्य—पदों के उस समूह को वाक्य कहते हैं जिससे कोई पूर्ण भाव, अर्थ या विचार व्यक्त होता है। वाक्य-रचना में वाक्य के विभिन्न पदों को यथा स्थान रखने की पद्धति पर विचार होता है। वाक्य रचना में तीन बातें आती हैं—(१) पदों का परस्पर सम्बन्ध, (२) कारक, और (३) क्रम। सरस्वती, संस्कृत तथा खरी बोली में वाक्य-रचना में प्रथम दो पर ही विचार होता है। सबसे पूर्व हम 'पद' के अर्थ पर विचार करेंगे।

पद—संस्कृत में संज्ञा तथा बिशेषण शब्द के मूल रूप को जिसके साथ विभक्ति नहीं लगी है, प्रातिपदिक कहते हैं। इस सार्थक शब्द के साथ ही विभक्ति लगती है। प्रत्येक शब्द का कुछ न कुछ अर्थ होता है, परन्तु संस्कृत व्याकरण के अनुसार जब तक किसी शब्द में प्रत्यय लगाकर पद न बना लिया जाये, तब तक उस शब्द का अर्थ नहीं समझा जा सकता। अतः केवल एक विचार मात्र की अभिव्यक्ति को पद कहते हैं। संस्कृत में दो प्रकार के प्रत्यय होते हैं—सुप् और तिङ्। शब्द के उस रूप को जिसमें सुप् या तिङ् प्रत्यय जुड़े रहते हैं पद कहते हैं—सुप्तिङन्तं पदम्। विभिन्न कारकों को प्रकट करने के लिये प्रतिपादकों में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उन्हें सुप कहते हे। तथा विभिन्न काल की क्रियाओं का अर्थ प्रकट करने के लिये धातुओं में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उन्हें तिङ् कहते हैं। इन्हीं सुप् और तिङ् प्रत्ययों को बिभक्तियां कहते हैं। विभक्तियों का ज्ञान शब्द कोशों के द्वारा नहीं होता है, अपितु व्याकरण के अध्ययन से होता है।

कारक—वाक्यों में शब्दों के व्याकरणात्मक मेल को सम्बन्ध कहते हैं। शब्द की उस शक्ति को सम्बन्ध कहते हैं जिसके द्वारा वह किसी सञ्ज्ञा या सर्वनाम शब्द के कारक की व्यवस्था करता है। वाक्यों में प्रायः सभी सञ्ज्ञायें और सर्वनाम क्रियाओं से सम्बद्ध रहते हैं। वाक्य में सञ्ज्ञा (सर्वनाम भी नाम ही हैं) तथा क्रिया के बीच जो सम्बन्ध रहता है, उसे कारक कहते हैं—क्रिया जनकं कारकम्। कारक का अर्थ है वह वस्तु जिसका क्रिया के सम्पादन में उपयोग हो। अतः क्रिया के साथ जिसका सीधा सम्बन्ध है, उसी को कारक कह सकते हैं। जिन शब्दों का क्रिया के साथ कोई भी सीधा सम्बन्ध नहीं होता, उनके बीच चाहे जो भी सम्बन्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो, वह कारक नहीं कहलायेगा। जैसे इस वाक्य में, 'राम ने लक्ष्मी के पुत्र मोहन को पीटा' पीटा क्रिया का सीधा सम्बन्ध मोहन (जिसको पीटा) और राम (जिसने पीटा) से है। 'पीटा' क्रिया का कुछ भी सम्बन्ध 'लक्ष्मी' से नही है। इस वाक्य में लक्ष्मी का सम्बन्ध मोहन से है, परन्तु 'पीटा' क्रिया के सम्पादन में लक्ष्मी का कोई उपयोग नहीं है। इस कारण 'लक्ष्मी के' को कारक नहीं कह सकते हैं। एक और वाक्य का उदाहरण देकर अपने कथन को स्पष्ट करते हैं—'राम ने लङ्का में निशाचरों के राजा रावण को बाण से मारा'। इस वाक्य से 'मारा' क्रिया के सम्पादन के लिये जिन जिन वस्तुओं का उपयोग हुआ है, तथा जिनका 'मारा' क्रिया से सीधा सम्बन्ध है, वह कारक होंगे। किसको मारा—रावण को, किसने मारा—राम ने, कहाँ मारा—लङ्का में, किससे मारा—बाण से, यह सब कारक हुये। निशाचरों का सम्बन्ध रावण से है, किन्तु मारा क्रिया के सम्पादन में निशाचरों का कोई उपयोग नहीं होता है। अतः इस वाक्य में 'निशाचरों के' को कारक नहीं कह सकते हैं।

संस्कृत में छः कारक होते हैं, जिनके नाम और परिभाषा इस प्रकार है—(१) कर्ता, (२) कर्म, (३) करण, (४) सम्प्रदान, (५) अपादन, (६) अधिकरण।

१. क्रिया के करने वाले को कर्ता कारक कहते हैं।

२. क्रिया के द्वारा जो आक्रान्त हो उसे कर्मकारक कहते हैं।

३. क्रिया के करने का जो सर्वप्रधान उपाय है, उसे करण कारक कहते हैं।

४. जिसको कुछ दिया जाता है, उसे सम्प्रदान कारक कहते हैं।

५. जिससे कोई वस्तु अलग हो, उसे उपादान कारक कहते हैं।

६. कर्ता और कर्म के आधार को अधिकरण कहते हैं। आधार तीन प्रकार होते हैं। (१) ऐकदेशिक, (२) वैषयिक (३) अभिव्यापक।

कारक-विभक्ति—सञ्ज्ञा (तथा सर्वनाम) और क्रिया के बीच जो सम्बन्ध है, उसी के आधार पर कारक नाम दिया गया है। कारक के आधार पर होने वाली विभक्ति को कारक-विभक्ति कहते है। अतः कारक-विभक्ति उसे कहते हैं जो किसी सञ्ज्ञा या सर्वनाम का सीधा सम्बन्ध किसी क्रिया के साथ बतावे।

संस्कृत में सात विभक्तियां होती हैं। (१) प्रथमा, (२) द्वितीया, (३) तृतीया, (४) चतुर्थी, (५) पञ्चमी, (६) षष्ठी और (७) सप्तमी। संस्कृत मे छः कारक होने से इनमें से छः विभक्तियाँ कारक विभक्ति होती हैं। छः कारकों को बोध कराने वाली छः विभक्तियाँ क्रमशः इस प्रकार होती है—(१) कर्ता कारक में प्रथमा, (२) कर्मकारक में द्वितीया, (३) करण कारक में तृतीया, (४) सम्प्रदान कारक में चतुर्थी, (५) अपादान कारक में पञ्चमी और (६) अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

षष्ठी विभक्ति कारक-विभक्ति नहीं मानी जाती है। यह विभक्ति सम्बन्ध में होती है। षष्ठी विभक्ति का एक ही मुख्य अर्थ है, और वह है सम्बन्ध का अर्थ। षष्ठी विभक्ति से सञ्ज्ञा या सर्वनाम का उपर्युक्त कारक वाले किसी पद से सम्बन्ध रहता है। इस विभक्ति से वाक्य के अन्तर्गत सञ्ज्ञा शब्दों के अन्दर विद्यमान सम्बन्ध को प्रकट किया जाता है, अर्थात यह विभक्ति किसी वाक्य में प्रयुक्त एक सञ्ज्ञा शब्द का दूसरे सञ्ज्ञा शब्द के साथ सम्बन्ध बताती है। यथा—'दशरथ के पुत्र राम ने ताड़का को मारा'। इस वाक्य में 'मारा' क्रिया का कोई सम्बन्ध 'दशरथ' से नहीं है। 'दशरथ का सम्बन्ध राम से है। अतः 'दशरथ के पुत्र' में 'के' विभक्ति सम्बन्ध अर्थात षष्ठी विभक्ति है जो दशरथ का सम्बन्ध राम से प्रकट करती है। मारा क्रिया का सीधा सम्बन्ध ताडका (जिसको मारा) और राम (जिसने मारा) से है। अतः इस वाक्य में 'को' और 'ने' विभक्तियाँ कारक विभक्तियाँ हैं।

वाक्य रचना

अब तक पाठकों की समझ में यह बात भली भान्ति आ गई है कि सरस्वती संस्कृत तथा खरी बोली के एक ही शब्द हैं। संस्कृत भाषा सरस्वती भाषा का व्याकरण के कृत्रिम नियमों में बन्धा हुआ सुसज्जित रूप है और खरी बोली सरस्वती भाषा का साधारण और स्वाभाविक परिवर्तित रूप है। संस्कृत और खरी बोली में अपने अपने व्याकरण के अनुसार विभक्तियाँ लगती हैं, परन्तु उनकी पद्धति में कोई अन्तर नहीं है। अब हम यह सिद्ध करेंगे कि संस्कृत तथा खरी बोली की वाक्य-रचना की पद्धति भी एक ही है। इन दोनों भाषाओं में विभक्तियों के रूपों में कुछ अन्तर प्रतीत होता है। जिसका कारण इन दोनों भाषाओं का व्याकरण है। यदि विभक्तियों के रूपों पर अधिक ध्यान न दिया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि प्राचीन काल से आज तक संस्कृत और खरी बोली में कोई अन्तर नहीं है।

वाक्य-रचना में वाक्य में विभिन्न पदों को यथास्थान रखने की पद्धति पर विचार होता है। वाक्य-रचना में तीन विषयों पर ध्यान दिया जाता है—(१) वाक्यों का परस्पर समन्वय, (२) कारक और (३) क्रम। विभक्ति-प्रधान भाषाओं में वाक्य रचना में प्रथम दो विषयों पर विचार होता है। विभक्तिहीन भाषाओं में मुख्यता तीसरे विषय पर ही विचार होता है। संस्कृत तथा खरी बोली जैसी विभक्ति प्रधान भाषाओं में क्रम का कोई विशेष महत्व नहीं होता है। विभक्ति-निष्पन्न पदों से स्वयम् ही स्पष्ट हो जाता है कि वाक्य में एक शब्द का दूसरे शब्द से क्या सम्बन्ध है। वाक्य रचना में साधारण क्रम का पालन न करने से वाक्य में कोई अशुद्धि नहीं होती है, और क्रम परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन नहीं होता है। परन्तु अङ्गरेजी तथा अन्य योरोपीय विभक्तिहीन भाषाओं में क्रम ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्वोत्तम महत्त्व का विषय होता है। उन भाषाओं में क्रम परिवर्तन करते ही अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ हम अङ्गरेजी का एक वाक्य लेते हैं-- Gopal taught Deodutt. (गोपाल टौट देवदत्त)। यदि इस वाक्य में गोपाल के स्थान पर देवदत्त और देवदत्त के स्थान पर गोपाल लिखदें तो अर्थ में पूर्ण परिवर्तन हो जायगा। इसके विपरीत खरी बोली में यही वाक्य इस प्रकार होगा —'गोपाल ने देवदत्त को पढ़ाया'। इस वाक्य में यदि पदों के विन्यास का स्थान बदल दें तो भी अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा यथा—(१) गोपाल ने देवदत्त को पढ़ाया, (२) देवदत्त को गोपाल ने पढ़ाया, (३) पढ़ाया देवदत्त को गोपाल ने, या (४) पढ़ाया गोपाल ने देवदत्त को। इन चारों वाक्यों में पद-क्रम परिवर्तन होने से अर्थ में कोई अन्तर नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में जो दशा खरी बोली की है, वही दशा संस्कृत में भी हैं। यही वाक्य सस्कृत में इस प्रकार होंगे—(१) गोपाल: देवदत्तं अपाठयत्, (२) देवदत्तं गोपाल: अपाठयत्, (३) अपाठयत् देवदत्तं गोपाल:, (४) अपाठयत् गोपाल: देवदत्तं।

पदों का क्रम

यद्यपि संस्कृत में पदों का क्रम विशेष महत्त्व नहीं रखता है, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वाक्य रचना में शब्दों या पदों को किसी भी स्थान पर रख देते हैं। संस्कृत साहित्य का अधिकांश भाग पद्य-बद्ध है। कविता में वाक्यात्मक रचना के नियमों का पालन नहीं होता है। संस्कृत के किसी भी गद्य–ग्रन्थ के अवलोकन से हम शब्दों का कोई विशेष क्रम अवश्व पाते हैं। गद्य को सुगम तथा सुबोध बनाने के कुछ नियम अवश्य हैं। प्रत्येक वाक्य में दो भाग होते हैं–उद्देश्य तथा विधेय। जिसके विषय में कुछ कहा जाता है, उसे उद्देश्य कहते हैं। उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाता है, वह विधेय होता है। वाक्य में शब्दों का विन्यास इस प्रकार किया जाता है कि एक विचार दूसरे विचार के पीछे अपने प्राकृतिक क्रम से आता है। अत: आश्रित शब्द उन शब्दों के पूर्व आते हैं जिन पर वह निर्भर होते हैं या जिनके द्वारा वह शासित होते हैं। इस प्रकार विशेषण और उसका विशेष्य, सकर्मक क्रिया और उसका कर्म, क्रिया विशेषण तथा क्रिया एक दूसरे के समीप रक्खे जाते हैं। सामान्य गद्यात्मक वाक्य-रचना में पदों का क्रम प्राय: इस प्रकार होता है :—

(१) सबसे पूर्व कर्ता और कर्ता के विशेषण रक्खे जाते हैं।

(२) उस के पश्चात कर्म और कर्म के विशेषण रक्खे जाते हैं।

(३) उसके पश्चात क्रिया विशेषण और अन्य अव्यय रक्खे जाते हैं।

(४) सबके अन्त में विधेय या क्रिया पद आते हैं। विधेय सर्वदा वाक्य के अन्त में रक्खा जाता है। वाक्य के द्वारा विवक्षित भाव को वह पूरा कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देता है। अतः विधेय का सर्वोत्तम स्थान अन्त में ही होता है।

संस्कृत में वाक्य-रचना में पदों के क्रम का खरी बोली वाक्य-रचना में पदों के क्रम के साथ तुलना करने पर यह बातें स्पष्ट होती हैं—

(क) गद्यात्मक वाक्य रचना में पदों का क्रम जो संस्कृत भाषा में है, वही क्रम खरी बोली में भी प्रचलित है।

(ख) जिस प्रकार संस्कृत पद्य-रचना में वाक्य-रचना के पदों के क्रम का पालन नहीं किया जाता है, उसी प्रकार खरी बोली का कविताओं में भी पदों के क्रम का पालन नहीं किया जाता है।

अब हम संस्कृत के वाक्य-रचना के कुछ अन्य नियमों की हिन्दी वाक्य-रचना के नियमों से तुलना करेंगे।

विधेय

संस्कृत में यह आवश्यक नहीं है कि विधेय तिङन्त क्रिया ही हो, अपितु कोई कृत्प्रत्ययान्त या सञ्ज्ञा अथवा विशेषण शब्द उसका स्थान ले सकता है। संस्कृत में जब विशेषण या सञ्ज्ञा-शब्द का विधेय के रूप में प्रयोग होता है तो उसके साथ अस् या भू धातु का कोई रूप प्रयुक्त होता है अर्थात अनुमित रहता है।

इस विषय में भी जो पद्धति सस्कृत भाषा में है, वही पद्धति खरी बोली में भी प्रचलित हैं। संस्कृत का 'अस्' खरी बोली में 'है' है। और संस्कृत 'भू' धातु संस्कृत शब्द 'भवनम' का अवयव है। खरी बोली में भी जब कोई सञ्ज्ञा या विशेषण शब्द विधेय की भान्ति प्रयोग होता है तो उसके अन्त में भी 'है' या 'होना' का कोई रूप जोड़ते हैं। उदाहरणार्थ अब हम संस्कृत के वाक्य और उस वाक्य के खरी बोली में भाषान्तर वाक्य को देकर अपने कथन को स्पष्ट करेंगे।

सुभृत्यः दुर्लभः = अच्छा भृत्य (नौकर) दुर्लभ है।

वचन

संस्कृत में तीन वचन होते हैं। एक व्यक्ति या वस्तु के लिए एक वचन, दो के लिए द्विवचन और दो से अधिक के लिये बहुवचन। खरी बोली में केवल दो वचन होते है—एक वचन और बहुवचन। संस्कृत द्विवचन के स्थान पर खरी बोली में बहुवचन का प्रयोग होता है।

१. सस्कृत में पूजा या आदर अर्थ की सूचना के लिये प्रायः एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग होता है। संस्कृत के समान ही खरी बोली में भी यही पद्धति है। यथा—

इति श्रीशङ्कराचार्याः = श्री शङ्कराचार्य जी ऐसा कहते हैं।

इति आचार्यपादाः = पूज्यनीय आचार्य जी भी यह मानते है।

२. विशिष्ट व्यवित और विशिष्ट लेखक प्रायः उत्तम पुरुष के एक वचन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के स्थान पर उत्तम पुरुष बहुवचन का प्रयोग करते हैं। संस्कृत की भान्ति खरी बोली में भी यही पद्धति है। यथा—

वयमपि भवत्यौ किमपि पृच्छाम = हम आपसे कुछ पूच्छते हैं।

अब हम एक ही अर्थ, पूर्ण भाव या विचार को प्रकट करने वाले छोटे छोटे तथा लम्बे लम्बे संस्कृत वाक्यों और उनके रूपान्तर खरी बोली के वाक्यों के उदाहरण देते हैं। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायगा कि जो शब्द जिस स्थान पर, जिस अर्थ और जिस व्याकरण कोटि में सस्कृत वाक्य में प्रयोग हुआ है, वही शब्द उसी स्थान पर, उसी अर्थ उसी व्याकरण कोटि में खरी बोली में भी प्रयोग हुआ है। अतः संस्कृत तथा खरी बोली के वाक्यों में विभक्तियों के रूपो के अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं है। संस्कृत तथा खरी बोली की विभक्तियों के रूपो का अन्तर संस्कृत व्याकरण की कृत्रिमता और जटिलता के कारण होता है। यदि संस्कृत में विभक्तियां लगाने की पद्धति को सरल कर दिया जावे तो संस्कृत और खरी बोली के वाक्यों में कोई अन्तर नहीं रहेगा। हिन्दी खरी बोली को भारत की राष्ट्रीय भाषा बनाने का केवल एक ही उपाय है कि संस्कृत भाषा में सुबन्त तथा तिङन्त पद बनाने की पद्धति को सरल कर दी जाय और हिन्दी के शब्द कोशो तथा पुस्तकों से म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का परित्याग कर दिया जाय। हिन्दी खरी बोली में म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का व्यवहार निषेध तथा पाप समझा जाने लगे। भारतीय अहिन्दी प्रान्त वालों और विशेष रूप से दक्षिण भारतीयों की यही मांग है, जिसमें सत्य है, तथ्य है तथा बल है। जब तक ऐसा नहीं होगा भारत की सार्वलौकिक भाषा का प्रश्न समाप्त नहीं होगा।

शब्द और पद

प्रत्येक शब्द का कुछ न कुछ अर्थ होता है, परन्तु संस्कृत व्याकरण के अनुसार जब तक किसी शब्द में प्रत्यय लगाकर पद न बना लिया जाय, तब तक उस शब्द का अर्थ नहीं समझा जा सकता है। यदि किसी शब्द के अर्थ का बोध कराना हो तो उसमें प्रथमा विभक्ति लगा देते हैं। संस्कृत में अनेक शब्दों का एक नियत लिङ्ग नहीं है, कभी एक शब्द पुल्लिङ्ग, कभी स्त्रीलिङ्ग और कभी नपुंसक लिङ्ग होता है। इस प्रकार के शब्दों का लिङ्ग भी प्रथमा से जाना जाता है। यथा तटः, तटी, तटम्। तटः शब्द से यह ज्ञात होता है कि यह शब्द पुल्लिङ्ग है और इसका अर्थ किनारा है। तटी शब्द स्त्रीलिङ्ग है और इसका अर्थ किनारा है। तटम् शब्द का अर्थ भी किनारा है परन्तु यह नपुंसक लिङ्ग है। लिङ्ग भेद अव्यय शब्दों में नहीं होता है। यथा उच्चैः, नीचैः, आदि। संस्कृत में जिन शब्दों का लिङ्ग निश्चित रहता है, यथा वृक्षः (जो शब्द केवल पुल्लिङ्ग ही होता है), कन्या (जो शब्द केवल स्त्रीलिङ्ग ही होता है) और जलम् (जो शब्द केवल नपुंसक ही होता है) को और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अव्यय शब्दों को छोड़कर शेष सभी शब्दों के लिङ्ग और अर्थ दोनों का ज्ञान प्रथमा विभक्ति के द्वारा ही होता है। अतः प्रातिपदिक का अर्थ और लिङ्ग प्रकट करने के लिए प्रथमा विभक्ति का प्रयोग केवल उन्हीं शब्दों में होता है जिन शब्दों का लिङ्ग निश्चित नहीं होता है। संस्कृत में शब्दों का लिङ्गानुशासन कृत्रिम है, जिसका आधार न प्रकृति है और न प्रत्यय है।

हम भली प्रकार जानते हैं कि सरस्वती तथा खरी बोली में सञ्ज्ञा शब्दों का लिङ्ग निश्चित होता है, जो प्रकृति और प्रत्यय के अनुसार जाना जाता है। अतः सरस्वती या खरी बोली में किसी भी शब्द का लिङ्ग और अर्थ जानने के लिये प्रथमा विभक्ति की आवश्यकता नहीं होती है। शब्द के वास्तविक रूप से ही शब्द के अर्थ और लिङ्ग का बोध हो जाता है। सरस्वती तथा खरी बोली में शब्द और प्रातिपदिक में कोई अन्तर नहीं हैं।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार सञ्ज्ञा (तथा सर्वनाम) शब्दों का रूप वाक्य और शब्दों के सम्बन्ध में बदलता रहता है। शब्दों में लिङ्ग और वचन के अनुसार विभक्तियां जोड़कर शब्दों के रूपों में परिवर्तन कर लिया जाता है। रूप चलाने की सुविधा के लिये प्रथम शब्दों को दो भागों में विभवित किया गया है——

(क) वह शब्द जिनके अन्त में अच् अर्थात स्वर हों—अजन्त

(ख) वह शब्द जिनके अन्त में हल् अर्थात व्यञ्जन हों—हलन्त

अजन्त और हलन्त के भेद से शब्द दो प्रकार के हुये। यह शब्द पुनः तीन लिङ्गों के भेद से छः प्रकार के हो जाते हैं। (१) अजन्त पुल्लिङ्ग, (२) अजन्त स्त्रीलिङ्ग, (३) अजन्त नपुंसक लिङ्ग, (४) हलन्त पुल्लिङ्ग, (५)हलन्त स्त्रीलिङ्ग और (६) हलन्त नपुंसकलिङ्ग। इन छः प्रकार के शब्दों में भी अन्तिम स्वर या व्यजञ्न के अनुसार भद होता है। यथा अजन्त पुल्लिङ्ग भी अकारान्त, आकारान्त इकारान्त, उकारान्त आदि और ककारान्त, चकारान्त, तकारान्त आदि हो सकते हैं। इसी प्रकार अजन्त स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग शब्दों में भी भेद होता है। इस प्रकार के सभी शब्दों के रूप पृथक पृथक चलते हैं।

संस्कृत में तीन वचन होते है—एक वचन, द्विवचन, बहुवचन। वचनो के अनुसार भी शब्दों के रूपों मे भेद होता है। तीन वचन और सात विभक्तियों के कारण एक ही शब्द के इक्कीस रूप होते हैं।

इस प्रकार संस्कृत में शब्दों के रूप चलाने की विधि बहुत जटिल हैं जिसका ज्ञान व्याकरण की सहायता के बिना नही हो सकता है। इन रूपों की सङ्ख्या भी इतनी है कि सामान्य बुद्धि वाले व्यक्ति के लिये इस पर अधिकार पाना बहुत कठिन है। यह स्थिति जन-साधारण की कथ्य भाषा में नहीं हो सकती थी। सरस्वती जन-साधारण की कथ्य भाषा थी, जिसका आधुनिक रूप खरी बोली है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन कथ्य भाषाओं में केवल दो वचन होते हैं। संस्कृत का द्विवचन खरी बोली में बहुवचन ही होता है। कथ्य भाषा सरस्वती तथा खरी बोली में विभक्तियों के योग से शब्दों के रूपों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। कथ्य भाषा में शब्दों का लिङ्ग तो नियत ही रहता है, वचन का बोध कराने के लिए शब्द के रूप में ही परिवर्तन कर लिया जाता है। जो भी विभक्ति शब्द में लगानी होती है वह शब्द के आगे ही रखी जाती है। शब्द में लिङ्ग तथा वचन का भेद होने पर भी विभक्ति का रूप एक ही रहता है। यथा बालक ने, बालकों ने, बालिका ने, बालिकाओं ने, इन सभी पदों में एक ही विभक्ति 'ने' है। इस प्रकार कथ्य भाषा में शब्दों में विभक्ति जोड़ने की विधि अत्यन्त सरल है जिसके सीखने के लिये व्याकरण की सहायता की आवश्यकता नहीं होती है।

पद—संस्कृत व्याकरण के अनुसार विभक्ति प्रातिपदिक में जोड दी जाती है। जिसके कारण प्रातिपदिक के रूप में परिवर्तन हो जाता है। संस्कृत में विभक्ति युक्त प्रातिपदिक 'पद' होता है। खरी बोली में विभक्ति शब्द (प्रातिपदिक) के साथ नहीं जोड़ी जाती है, अपितु शब्द के आगे लगा दी जाती है। खरी बोली में शब्द और विभक्ति दोनों को मिलाकर भी 'पद' ही होता है। संस्कृत और खरी बोली दोनों भाषाओं से पदों को जोड़कर वाक्य बनाये जाते हैं। संस्कृत में विभक्ति पद में जुड़ी रहने के कारण वह प्रातिपदिक से अलग नहीं होती है। खरी बोली में भी वाक्य बनाते समय विभक्ति को उस शब्द से अलग नहीं रख सकते हैं। दोनों भाषाओं में यह विधि एक समान ही है।

सम्बोधन—वक्ता का श्रोता को अपनी बात सुनने के लिए अपनी ओर आकृष्ट करने को सम्बोधन कहते हैं। सम्बोधन शब्द का अर्थ है भली प्रकार समझना। यह उसी समय हो सकता है कि जब श्रोता वक्ता की ओर पूर्ण सावधान हो, तथा ऐसा तभी सम्भव है जब श्रोता को ज़ोर से पुकारा जाय। यही कारण है कि सम्बोधन पद को उच्च स्वर से बोला जाता है। संस्कृत में सम्बोधन प्रथमा का ही एक रूपान्तर माना जाता है। यह द्विवचन और बहुवचन में प्रथमा के समान ही होता है। अतः सम्बोधन में विभक्ति चिह्न पृथक नहीं होता है। सम्बोधन एक वचन में कहीं शब्द का मूल रूप रहता है, कहीं पर प्रथमा वाला रूप रहता है और कहीं पर सर्वदा भिन्न रूप भी बनता है।

सम्बोधन के लिये संस्कृत में सञ्ज्ञा शब्दों के पूर्व अव्यय लगाये जाते हैं। उसी प्रकार खरी बोली में भी सम्बोधन में सञ्ज्ञा शब्दों के पूर्व अव्यय लगाये जाते हैं। जो अव्यय संस्कृत में सञ्ज्ञा शब्दों के पूर्व आते हैं, वही अव्यय खरी बोली में भी उसी प्रकार शब्दों के पूर्व आते हैं। यथा, अयि (अजि), अरे, ऐ, ओ आदि। खरी बोली में सम्बोधन के लिए शब्दों के पूर्व अव्यय लगाने से भी शब्दों में कोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिवर्तन नहीं होता है ।

कारक और विभक्ति विधान

उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत में छः कारक और सात विभक्तियाँ होती हैं । संस्कृत में छः कारक और सात विभक्वियों का यह विधान कथ्य भाषा सरस्वती के ही अनुसार है । खरी बोली में छः कारक और सात विभक्तियाँ होती हैं । षष्ठी विभक्ति न संस्कृत में कारक विभक्ति है और न खरी बोली में कारक विभक्ति है । जिस प्रकार संस्कृत में षष्ठी विभक्ति से वाक्य के अन्तर्गत सञ्ज्ञा शब्दों के अन्दर विद्यमान सम्बन्ध को प्रकट किया जाता है, उसी प्रकार षष्ठी विभक्ति का प्रयोग खरी बोली में भी होता है । सम्बोधन में सञ्ज्ञा शब्दों के पूर्व जो अव्यय संस्कृत में लगाये जाते हैं, वही अव्यय खरी बोली में सञ्ज्ञा शब्दों के पूर्व जोड़े जाते हैं । यह सभी अव्यय शब्द संस्कृत कोशों में उपलब्ध हैं, अतः सरस्वती भाषा के ही शब्द हैं ।

अब हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि कारक, विभक्ति और सम्बोधन का जो विधान सरस्वती भाषा में था, वही विधान संस्कृत में है और वही विधान खरी बोली में भी है । अतः हमारी भाषा मे प्राचीन काल से आज तक कारक विभक्ति और सम्बोधन की परम्परा में कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । सस्कृत और खरी बोली में शब्दों के रूपों में जो भेद प्रतीत होता है, वह संस्कृत के व्याकरण की कृत्रिमता और जटिलता के कारण ही है । वास्तव में पदों के वाक्यों में प्रयोग और अर्थो में कोई भेद नहीं है । यदि संस्कृत के पदों के रूपों पर विशेष ध्यान न दिया जाय तो यह स्पष्ट होगा (जैसा हम आगे दिखायेगे) कि जो भाषा हम वैदिक युग से पूर्व बोलते थे, वही भाषा हम आज भी उसी क्षेत्र में बोलते हैं ।

तिङन्त पद—क्रिया

सरस्वती भाषा के सभी शब्द व्याकरण की दृष्टि से तीन कोटियों में विभक्त होते हैं—(१) सञ्ज्ञा, (२) विशेषण, (३) अव्यय । सरस्वती भाषा का कोई भी शब्द क्रिया नामक व्याकरण कोटि के अन्तर्गत नहीं रखा जाता है । हम अनेक बार बता चुके हैं कि संस्कृत कोशों में उपलब्ध सभी शब्द सरस्वती भाषा के हैं । उन सभी शब्दों के वही अर्थ और वही व्याकरण कोटियां हैं जो उन शब्दों की सरस्वती भाषा में थीं । संस्कृत मे भी सभी शब्द सञ्ज्ञा, विशेषण या अव्यय ही होते हैं। संस्कृत कोशों में दिया हुआ कोई भी शब्द क्रिया नहीं होता हैं ।

संस्कृत कोशों में सञ्ज्ञा, विशेषण और अव्यय के अतिरिक्त धातु भी दिये होते हैं । संस्कृत कोशों के अनुसार ही 'धातु' शब्द का अर्थ है—अवयव, मूल भाग । इस अर्थ से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत शब्द कोशों में जो धातु दिये होते हैं वह शब्दों के मूल भाग या अवयव होते हैं । हम इसी अध्याय में यह सिद्ध कर चुके हैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि भाषा का प्रत्येक शब्द जो शब्द कोशों में उपलब्ध होता है, उसी रूप, उसी अर्थ तथा उसी व्याकरण कोटि में भाषा में प्रयोग होना अनिवार्य होता है। संस्कृत शब्द कोशों में दिए हुये किसी भी धातु को उसी रूप में संस्कृत भाषा में प्रयोग नहीं किया जा सकता है। संस्कृत के वैयाकरणों ने हमारी भाषा के शब्दों में से ही धातुओं को छाण्ट छाण्टकर सङ्ग्रह किया था। संस्कृत के वैयाकरणों ने धातुओं से शब्दों की उत्पत्ति दिखाकर शब्दों के साधुत्व का ज्ञान कराने के हेतु धातुओं का सङ्ग्रह किया था। धातुओं का अस्तित्व स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता है। यह धातु किन शब्दों के अवयव या मूल भाग होते हैं हम इस पर विचार करेंगे।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार विभिन्न काल की क्रियाओं का अर्थ प्रकट करने के लिये धातुओं में जो विभक्तियों होती हैं उन्हें तिङ् कहते हैं और तिङ् युक्त पद को 'तिङन्त पद' कहते हैं। हम यह बात फिर स्पष्ट शब्दों में बता रहे हैं कि 'तिङन्त पद' शब्द नहीं होते हैं अपितु पद होते हैं जिनका ज्ञान शब्द कोशों से नहीं हो सकता है, अपितु व्याकरण के द्वारा होता है।

धातु

संस्कृत की भांति खरी बोली का भी कोई शब्द क्रिया नामक व्याकरण कोटि के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है। खरी बोली मे धातु नहीं होते हैं। परन्तु खरी बोली में विभिन्न काल की क्रियाओं का अर्थ प्रकट करने के लिए क्रिया पद बनाने की पद्धति संस्कृत के ही समान है। खरी बोली में कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्दों के अन्त में 'ना' होता है। ना-युक्त शब्द कर्मवाचक सञ्ज्ञा का पुल्लिङ्ग रूप होता है। इस प्रकार के शब्दों मे से 'ना' का लोप करने से उस शब्द का जो अवयव या मूल भाग शेष रहता है, वह कर्मवाचक सञ्ज्ञा का स्त्रीलिङ्ग रूप होता है। कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द के स्त्रीलिङ्ग रूप मे ही व्याकरण के अनुसार विभक्तियाँ जोड़कर क्रिया पद बनाये जाते हैं।

सस्कृत मे भी कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द के अन्त में 'नम' या 'णम्' लगा रहता है। कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द का 'नम' या 'णम्' का लोप करने से उस शब्द का जो शेष भाग रहता है उसी को धातु कहते हैं। कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द का ही अवयव या मूल भाग धातु होता है। सरस्वती तथा खरी बोली में धातु शब्द प्रत्यय के अनुसार पुल्लिङ्ग शब्द है, परन्तु कुछ वैयाकरण और कोश सम्पादक धातु शब्द को स्त्रीलिङ्ग बताते हैं। उसका कारण यही है कि खरी बोली में कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप ही संस्कृत के धातु के समान होता है। इन लेखकों का यह विचार कि धातु शब्द स्त्रीलिङ्ग है, भ्रामक है। जिस प्रकार संस्कृत में धातु में तिङ् विभक्तियाँ जोड़कर तिङन्त पद बनाये जाते हैं, जो सर्वदा क्रिया होते हैं, उसी प्रकार खरी बोली में कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्दों के स्त्रीलिङ्ग रूपों में विभक्तियाँ जोड़कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो पद बनाये जाते हैं वह क्रिया होते हैं। संस्कृत के तिङन्त पद संस्कृत के शब्द कोशों में उपलब्ध नहीं होते हैं, और उनका ज्ञान व्याकरण के द्वारा ही होता है, उसी प्रकार खरी बोली में भी क्रिया पदों का ज्ञान शब्द कोशों से नहीं, अपितु व्याकरण से होता है। अब हम कुछ शब्दों के उदाहरण देकर यह स्पष्ट करेंगे कि संस्कृत के धातु और खरी बोली के कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्दों के स्त्रीलिङ्ग रूप एक ही होते हैं।

संस्कृत		हिन्दी खरी बोली	
कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द	धातु	कर्मवाचक सञ्ज्ञा का पुल्लिङ्ग रूप	कर्मवाचक सञ्ज्ञा का स्त्रीलिङ्ग रूप
कूर्दनम्	कूर्द्	कूदना	कूद
कुटनम्	कुट्	कूटना	कूट
कूजनम्	कूज्	कूजना	कूज
गर्जनम	गर्ज्	गरजना, गर्जना	गरज, गर्ज
गुञ्जनम्	गुञ्ज्	गूञ्जना	गुञ्ज
चक्षणम्	चक्ष्	चखना	चख
चुक्कनम्	चुक्क्	चूकना	चूकना
चलनम्	चल्	चलना	चल
चुण्टनम्	चूण्ट्	चूण्टना	चूण्ट
जागरणम्	जागृ	जागना	जाग
क्ष्वेडनम्	क्ष्वेड्	छेड़ना	छेड़
ढुण्ढनम्	ढुण्ढ्	ढूण्ढना	ढूण्ढ
तोडनम्	तुड्	तोड़ना	तोड़
दण्डनम्	दण्ड्	दाण्डना	दाण्ड
ताननम्	तान्	तानना	तान
ताडनम्	ताड्	ताड़ना	ताड़
धोरणम्	धोर्	दौड़ना	दौड़
पेलनम्	पेल्	पेलना	पेल
पालनम्	पाल	पालना	पाल
पोषणम्	पुष्	पोसना	पोस
पेषणम्	पिष्	पीसना	पीस
पीडनम्	पीड्	पीड़ना	पीड़
स्फुटनम्	स्फुट्	फूटना	फूट
मारणम्	मृ	मारना	मार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मापना	मा	मापना	माप
माननम्	मान्	मानना	मान
वर्जनम्	वृज्	बरजना	बरज
ढौकनम्	ढौक्	धोकना	धोक
निमन्त्रणम्	निमन्त्र्	नौतना	नौत
शिक्षणम्	शिक्ष्	सीखना	सीख
लुटनम्	लुट्	लूटना	लूट
हठनम्	हठ्	हठना	हठ

इसी प्रकार के अनेक शब्दों के उदाहरण दिये जा सकते हैं। वास्तव में सरस्वती, संस्कृत तथा खरी बोली के इस प्रकार के सभी शब्द एक ही हैं, इन शब्दों में प्राचीन काल से आज तक कोई भेद नहीं पड़ा है।

उपरोक्त सूची में पहिली पङ्क्ति के शब्द संस्कृत में भी सञ्ज्ञा की भान्ति प्रयोग होते हैं। यथा—

(१) उषाकालीन गमनम शुभम् अस्ति।
(२) मेघ गर्जनम् वृष्टि सूचना अस्ति।
(३) उर्वशी नर्तनम मुग्धकारी भवति।
(४) सरिता तटे बाल क्रीडनम् सुन्दरम् अस्ति।
(५) देवदत्तस्य वेद पठनम् मधुरम अस्ति।

लौकिक संस्कृत में धातुओं में तिङ् विभक्तियाँ जोड़कर तिङन्त पद अर्थात क्रिया बनाने के नियम जटिल हैं, जिनका ज्ञान व्याकरण की सहायता के बिना नहीं हो सकता है। संस्कृत व्याकरण दुरुह है तथा विद्वानों की धारणा है कि सामान्य बुद्धि वाले व्यक्ति के लिए उस पर अधिकार प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। यही कारण है कि अपने व्याकरण की दुरुहता और कृत्रिमता के कारण लौकिक संस्कृत कभी जन-भाषा का रूप धारण नहीं कर सकी।

संस्कृत में किसी धातु से क्रिया बनाते समय उसके कालों को प्रकट करने के लिये उस धातु के रूप दस लकारों में चलाते हैं। यह लकार विभिन्न कालों के वाचक हैं। इन लकारों के नाम हैं—लट्, लृट्, लङ्, लुङ्, लिट्, लोट, विधिलिङ्, लुट्, आशीलिङ्, लृङ्। इस प्रकार धातुओं में लकारों के अनुसार लगाई जाने वाली प्रथम १० विभक्तियाँ हुई।

विभक्तियों में तीन पुरुष होते हैं—प्रथमपुरुष, मध्यमपुरुष, उत्तमपुरुष।

प्रत्येक पुरुष में तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन, बहुवचन।

सब विभक्तियाँ दो भागों में विभक्त हैं—परस्मैपद, आत्मनेपद। कुछ धातुओं के रूप केवल परस्मैपद में, कुछ के केवल आत्मनेपद में और कुछ के दोनों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पदों में चलते हैं। पुरुष और वचन को लेकर प्रत्येक विभक्ति के अठारह रूप होते हैं। परस्मैपद में नौ और आत्मनेपद में नौ। इस प्रकार परस्मैपद में नब्वे और आत्मनेपद में नब्वे रूप होते हैं। इनमें से प्रत्येक को भी विभक्ति कहते हैं, इस प्रकार कुल १८० विभक्तियाँ होती हैं।

केवल इतना ही नहीं, धातुओं का रूप चलाने की दृष्टि से संस्कृत के सब धातु दस श्रेणियों में विभक्त है। प्रत्येक श्रेणी को गण कहते हैं, जिनके नाम इस प्रकार है—(१) भवादि, (२) अदादि, (३) जुहोत्यादि, (४) दिवादि, (५) स्वादि, (६) तुदादि, (७) रुधादि, (८) तनादि, (९) क्रयादि, (१०) चुरादि। प्रत्येक गण के धातुओं के रूप दूसरे गण के धातुओं के रूपों से पृथक होते हैं।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत में धातुओं में तिङ विभक्तियाँ जोड़कर तिङन्त पद अर्थात क्रिया बनाने की पद्धति बहुत जटिल और दुरुह है। खरी बोली में क्रिया पद बनाने के नियम बहुत सरल हैं और उनके रूपों की सङ्ख्या भी बहुत थोड़ी है। दोनों भाषाओं में क्रिया बनाने का ज्ञान व्याकरण के द्वारा होता है। दोनों भाषाओं के व्याकरण में अधिक भेद है। अतः संस्कृत और खरी बोली में क्रियाओं के रूपों में विभिन्नता होनी अनिवार्य ही है। परन्तु हम यह पूर्णतः सिद्ध कर चुके हैं कि कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्दो से क्रिया बनाने की जो पद्धति सरस्वती भाषा में थी, वही पद्धति संस्कृत में है और वही पद्धति खरी बोली में भी प्रचलित है। सहस्त्रों वर्षो के पश्चात भी इस परम्परा में न कोई परिवर्तन हुआ है और न यह परम्परा नष्ट हुई है।

नाम–धातु ?

भाषा विज्ञान के कतिपय अहम्–मन्य पण्डित हमारी भाषा के कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्दों के सम्बन्ध में एक भ्रामक तथा दूषित विचार को प्रसारित करते हैं। उनका कहना है कि सञ्ज्ञा पद तथा विशेषण जब क्रिया पद बनाने के लिये धातु रूप में प्रयुक्त होते हैं, तब उन्हें नाम धातु कहते हैं। इन लेखको के अनुसार नाम धातु सञ्ज्ञा तथा विशेषण शब्दों के अन्त में 'ना' जोडने से बनाये जाते हैं। यदि ऐसा हो सकता तो इस प्रकार के विद्या-विहीन लेखक हमारी भाषा में न जाने क्या क्या शब्द घड़ डालते। सुनने के अर्थ में कान + ना = कानना, सूँघने के अर्थ मे नाक + ना = नाकना, देखने के अर्थ में आँख + ना = आँखना आदि शब्दों की उत्पत्ति करना तो इनके भाषा विज्ञान का एक चमत्कार हो जाता। हमें खेद के साथ लिखना पड़ता है कि हिन्दी के कतिपय वैयाकरण भी इस प्रकार के भ्रामक और दूषित विचारों में फँस गये।

भाषा विज्ञान के लेखकों के अनुसार संस्कृत के कतिपय सञ्ज्ञा तथा विशेषण पदों के तत्सम या अर्धतत्सम रूपों में भी हिन्दी मे नाम धातु बने हैं। हिन्दी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के कुछ नाम धातुओं के उदाहरण जो उन्होंने दिये हैं इस प्रकार हैं—

(१) उग + ना — सं० उद्गत
(२) खो + ना — सं० क्षय
(३) गाड़ + ना — सं० गर्त
(४) घोल + ना — सं० घूर्ण
(५) गांठ + ना — सं० ग्रन्थि
(६) चुरा + ना — सं० चौर
(७) चीन्ह + ना — सं० चिह्न
(८) छीन + ना — सं० छिन्न
(९) जोत + ना — सं० युक्त
(१०) जम + ना — सं० जन्म
(११) ताक + ना — सं० तर्क
(१२) थाम + ना — सं० स्तम्भ
(१३) हथिया + ना — सं० हस्त
(१४) दुखा + ना — सं० दुःख
(१५) पक + ना — सं० पक्व
(१६) पैठ + ना — सं० प्रविष्ट
(१७) पीट + ना — सं० पिष्ट
(१८) फाँस + ना — सं० पाश
(१९) बतिआ + ना — सं० वार्ता
(२०) बखान + ना — सं० व्याख्यान
(२१) मांग + ना — सं० मार्ग
(२२) मूत + ना — सं० मूत्र
(२३) सूख + ना — सं० शुष्क

उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि इन लेखकों को न तो संस्कृत भाषा का ही ज्ञान है और न इन्होंने इन शब्दों को अर्थ के अनुसार संस्कृत के शब्द कोशों में ही देखने का प्रयास किया है। यह लेखक केवल ध्वनि के आधार पर ही जो इनके मन में आता है बका करते हैं। संस्कृत में नाम धातु क्या होता है उसके सम्बन्ध में हमें यहाँ प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी हम यह बता दें कि संस्कृत में प्रातिपदिकों में कुछ प्रत्यय लगाकर नाम धातु बनाये जाते हैं। नाम धातुओं का अधिक प्रचार नहीं है। यह प्रत्यय सञ्ज्ञा शब्द के द्वारा उक्त अर्थ के अनुकूल आचरण या व्यवहार करने के अर्थ में होते हैं। कभी-कभी प्रत्यय सञ्ज्ञा-शब्द के द्वारा उक्त अर्थ को चाहने के अर्थ में भी होते हैं।

अब हम यह दिखायेंगे कि जिन शब्दों को यह भाषा विज्ञान के लेखक और हिन्दी भाषा के वैयाकरण नाम-धातु बताते हैं, वह सभी शब्द सरस्वती भाषा के (संस्कृत शब्द कोशों में उपलब्ध) कर्मवाचकसञ्ज्ञा शब्दों के रूपान्तर हैं। इस प्रकार इन लेखकों के इस कथन का कि हिन्दी (खरी बोली) में सञ्ज्ञा और विशेषण शब्दों में 'ना' जोड़ने से नाम-धातु बनाये जाते हैं, भरपूर खण्डन हो जाता है। तथा इससे यह भी सिद्धि हो जायगा कि उनका यह कथन भ्रामक और असत्य है। खरी बोली में केवल वही शब्द कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द हैं और हो सकते हैं जो शब्द सरस्वती भाषा में कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द हैं, तथा जो शब्द संस्कृत शब्द कोशों में उपलब्ध हैं।

(१) उगना — सर० उद्गमनम् , अर्थात अङ्कुरित होना, भूमि के भीतर से ऊपर निकलना, फूटना सर० उदयनम् , अर्थात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकट होना, जैसे सूर्य का उगना आदि ।

(२) खोना — सर० क्षयणम्-√क्षि, क्षैणम्—√क्षै

(३) गाड़ना — सर० गुहनम् , निगुहनम् (श्मशाने-भूमौ)

(४) घोलना — सर० घूर्णनम्

(५) गाण्ठना — सर० ग्रन्थनम् ग्रथनम्

(६) चुराना — सर० चुरणम्

(७) चीन्हना— सर० चिह्नम्

(८) छीनना — सर० आच्छेदनम्

(९) जोतना — सर० योजनम्

(१०) जमना — सर० यमनम्

(११) ताकना — सर० तकनम्

(१२) थामना — सर० स्तम्भनम् , स्थापनम् ।

(१३) हथियाना- सर० हस्तेकरणम्

(१४) दुखाना — सर० दुःखनम् दुखना का परस्मैपद

(१५) पकना — सर० पचनम्

(१६) पैठना — सर० प्रवेशनम् (पैठना शब्द खरी बोली क्षेत्र में प्रचलित नहीं है) ।

(१७) पीटना — सर० पीडनम् , यह शब्द अनेक अर्थों में प्रयोग होता है (१) कष्ट देना, पीडित करना, (२) अनाज पीटना अर्थात गाहना, (३) कपड़े धोना आदि । पीडनम् शब्द के यह सभी अर्थ संस्कृत कोशों में उपलब्ध हैं ।

(१८) फांसना — सर० पशनम् , पषनम्, । फांसना शब्द फंसना का ही रूप है । देखो पाशनम् , पांशनम् ।

(१९) बतिआना— सर० वर्णनम् । खरी बोली में बतिआना शब्द प्रचलित नहीं है, इस शब्द का साधु रूप बताना है ।

(२०) बखानना- सर० व्याख्यानम्

(२१) मांगना — सर० मार्गणम् अर्थात याचना करना, प्रार्थना करना, निवेदन करना, विवाह के लिये मांगना आदि ।

(२२) मूतना — मूतना का सरु शब्द मेहनम् है जिसका धातु मिह् है ।

(२३) सूखना — सर० शुषनम् । यह शब्द भी अनेक अर्थों में प्रचलित है । (१) सूखना, शुष्क होना, कपड़े सूखना, पानी सूखना, (२) मुर्झा जाना, जैसे पौदों का सूखना आदि, (३) बच्चों का सूख जाना आदि ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दी के एक वरिष्ठ व्याकरण लेखक ने अपने हिन्दी शब्दानुशासन में कुछ नाम धातु शब्दों के उदाहरण दिये हैं। यह व्याकरण नागरी प्रचारणी सभा, काशी के द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित हुआ है। यह व्याकरण काशी-कौशल तथा छत्तीस गढ़ के हिन्दी साहित्यकारों का एक आदर्श हिन्दी जगत के सामने है। इस व्याकरण में हिन्दी (खरी बोली) सम्बन्धी केवल भ्रामक विचार ही नहीं भरे पड़े हैं, अपितु इस व्याकरण के तृतीय अध्याय, जिसमें हिन्दी शब्दों का लिङ्ग भेद दिखाया है, के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि इस व्याकरण को प्रकाशित करके नागरी प्रचारणी सभा, काशी ने हिन्दी (खरी बोली) व्याकरण शास्त्र को जनता के सम्मुख उपहासजनक बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। नागरी प्रचारणी सभा के द्वारा प्रकाशित शब्द सागर के सम्बन्ध में हम अपना अभिमत पहिले ही लिख चुके हे। नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित शब्द सागर और व्याकरण के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक हम इसी पुस्तिका के खण्डन अङ्क में प्रकाश डालेंगे। यहाँ हम केवल उन्हीं शब्दों के सम्बन्ध में लिखेंगे जिनको इस व्याकरण में नाम-धातु कहा गया है। अब हम सरस्वती के कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्दों को बताते हैं जिनके रूपान्तर यह नाम धातु शब्द हैं।

शब्दानुशासन के विद्वान लेखक का कहना है कि हिन्दी की नाम धातुओं में 'आ' प्रत्यय लगता है, और फिर 'ना' जोड़ने से क्रिया बन जाती है। जिन शब्दों के उदाहरण दिये गये हैं वह यह हैं—

(१) मण्डल	—	मण्डलाना,	(२) लाज	—	लजाना
(३) कड़वा	—	कड़वाना,	(४) चक्कर	—	चकराना
(५) छछुन्दर	—	छुछु–छुछुआना,	(६) मिट्टी	—	मिटाना

इन उदाहरणों में कड़वाना और छुछुआना कोई शब्द ही नहीं हैं और न यह खरी बोली में प्रचलित हैं। अन्य शब्दों के सरस्वती भाषा के कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द इस प्रकार हैं—

(१) मण्डलाना—(सं०) मण्डलीकरणम्, आपटे पृष्ठ १२२४।

(२) लजाना— (सं०) लज्जनम्, खरी बोली में इसका साधु रूप लज्जना है, जैसे तुम्हारे असत्य बोलने के कारण मुझे उसके सामने लज्जना पड़ा। लज्जना आत्मनेपद में है। इसी शब्द का परस्मैपद लज्जाना है।

(३) चकराना—(सं०) चक्रीकरणम्, आपटे पृष्ठ ६९१।

(४) मिटाना—(सं०) मार्जनम् सभी अर्थों में यह शब्द प्रयोग होता है।

अब हम कुछ संस्कृत वाक्यों और उनके रूपान्तर हिन्दी (खरी बोली) वाक्यों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जायगा कि संस्कृत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा हिन्दी (खरी बोली) के शब्द एक ही हैं तथा वाक्य-विन्यास के नियमों के अनुसार उन वाक्यों में विभक्तियों के रूपों के अतिरिक्त और कोई भेद नहीं है। हिन्दी भाषा का यही वह रूप अथवा वाक्य शैली है जो समस्त भारत को भाषा की एकता के सूत्र में आबद्ध कर सकती है।

संस्कृत वाक्य	हिन्दी खरी बोली वाक्य
शारदा शब्दस्य अर्थम् सरस्वती' अस्ति ।	शारदा शब्द का अर्थ सरस्वती है।
सरस्वती मानवम् सबुद्धिं ददाति।	सरस्वती मानव को सुबुद्धि देती है।
सरस्वती भाषा भारतस्य आदिमूल भाषा अस्ति।	सरस्वती भाषा भारत की आदि मूल भाषा है।
सरस्वती भाषायां लिङ्ग-निर्धारणं नियमं अत्यन्तं सरलं अस्ति।	सरस्वती भाषा में लिङ्ग-निर्धारण का नियम अत्यन्त सरल है।
सरस्वती भाषायां लिङ्ग निर्धारणस्य किमपि अपवादं नास्ति।	सरस्वती भाषा में लिङ्ग निर्धारण का कोई अपवाद नहीं है।
सरस्वती भाषाया: लिङ्ग निर्धारणं प्रकृति-प्रत्ययानुसारेण भवति।	सरस्वती भाषा का लिङ्ग निर्धारण प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार होता है।
यदि सरल सम्कृत भाषाया: वार्तालापे प्रयोगं भवति तदा अर्थ ग्रहणे किमपि कष्टं न भवति।	यदि सरल संस्कृत भाषा का वार्तालाप में प्रयोग होता है तो अर्थ ग्रहण में कोई कष्ट नहीं होता है।
विद्या शुद्ध ज्ञान प्राप्तस्य साधनं अस्ति।	विद्या शुद्ध ज्ञान प्राप्ति का साधन है।
विश्वे भारतीय संस्कृति अति प्राचीन: अस्ति।	विश्व में भारतीय संस्कृति अति प्राचीन है।
सत्यासत्यस्य परीक्षा विद्यार्थिनां परम धर्मम् अस्ति।	सत्यासत्य की परीक्षा विद्यार्थियों का परम धर्म है।
कालिदास: भारतस्य महा कवि आसीत्।	कालिदास भारत का महा कवि था।
चाणक्य: चन्द्रगुप्तस्य मुख्य-मन्त्री आसीत्।	चाणक्य चन्द्रगुप्त का मुख्य मन्त्री था।
राम: हवन कुण्डे आहुति ददाति।	राम हवन कुण्ड में आहुति देता है।
प्राचीन काले काशमीरे केवला. गन्धर्वा: च अप्सरा: बसन्ति स्म।	प्राचीन काल में काशमीर में केवल गन्धर्व और अप्सरा बस्ते थे।
काशमरीस्य अप्सरसाणाम् पुराणे	काशमीर की अप्सराओं का नाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्णनं अस्ति ।	पुराणों में वर्णन है ।
भारतस्य संस्कृति च भाषा अजरा-अमरा अस्ति ।	भारत की संस्कृति और भाषा अजरा-अमरा है ।
भारतस्य संस्कृति कदापि विनष्टम् न भविष्यति ।	भारत की संस्कृति कभी भी विनष्ट न होगी ।
मनुष्यः स्व प्रारब्ध कर्मानुसारेण योनि प्राप्नोति एवं प्रारब्ध कर्माणाम् फलं भुज्यते ।	मनुष्य अपने प्रारब्ध कर्मानुसार योनि प्राप्त करता है । और प्रारब्ध कर्मों का फल भोगता है ।
मैक्समूलरः भारतस्य संस्कृतेः शत्रुः आसीत् ।	मैक्समूलर भारतीय संस्कृति का शत्रु था ।
मैक्समूलरः एको उन्मादी ईसाई धर्म प्रचारकः आसीत् ।	मैक्समूलर एक उन्मादी ईसाई धर्म प्रचारक था ।
मैक्समूलरः मैकालस्य क्रीत दासो आसीत् ।	मैक्समूलर मैकाले का क्रीत दास था ।
मैक्समूलरस्य उद्देश्यः भारतीय धर्मस्य एवं संस्कृतेः विनष्ट करणं आसीत् ।	मैक्समूलर का उद्देश्य भारत का धर्म और संस्कृति विनष्ट करना था ।
मैक्समूलर कृतं पवित्रं वेदानाम् अनुवादं अशुद्धं अस्ति ।	मैक्समूलर कृत पवित्र वेदों का अनुवाद अशुद्ध है ।
मैक्समूलरः संस्कृतस्य विद्वान् ना असीत् ।	मैक्समूलर संस्कृत का विद्वान नहीं था ।
ग्रियर्सनः भाषा माध्यमेन भारतीयानां मध्ये विद्वेषं एवं कलहं प्रसारितु आरब्धवान् ।	ग्रियसेन ने भाषा के माध्यम से भारतीयों के मध्य द्वेष और कलह को प्रसारित करना आरम्भ किया ।
मैक्समूलरस्य एवं ग्रियर्सनस्य भारतीय धर्मं एवं संस्कृति प्रति द्वेष पूर्ण भावना आसीत् ।	मैक्समूलर और ग्रियसेन की भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रति द्वेष पूर्ण भावना थी ।
भारतीयाः एषाम् छद्म वेषी विदुषां सत्य रूपस्य ज्ञान करणे असमर्था आसन् ।	भारतीय इन छद्म वेषी विद्वानों के सत्य रूप का ज्ञान करने में असमर्थ रहे ।
भारतवर्षे होलिकायाः उत्सवं फाल्गुन मासस्य पूर्णिमायाः रात्रौ भवति ।	भारतवर्ष में होलिका का उत्सव फाल्गुन मास की पूर्णिमा की रात्रि को होता है ।
होलिकायाः उत्सवं भारतस्य प्रसिद्धं उत्सवं अस्ति ।	होलिका का उत्सव भारत का प्रसिद्ध उत्सव है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभिमन्यु: अर्जुनस्य वीर: पुत्र: असीत्।

अभिमन्यु अर्जुन का वीर पुत्र था।

भारतवर्षे गङ्गा नदी अति पवित्रा अस्ति, एवं कथ्यते अस्या उत्पत्ति: ब्रह्म कमण्डलात् स्वर्गे अभवत् तत्रत: भूलोक मध्ये भगवान शङ्करस्य जटासु स्थित्वा आगतवती।

भारतवर्ष में गङ्गा नदी अति पवित्र है एवं कहते हैं इसकी उत्पत्ति ब्रह्मकमण्डल से स्वर्ग में हुई वहां से भूलोक के मध्य में भगवान शङ्कर की जटाओं में स्थित होकर आई।

अस्माकं देशे चैत्र वैसाख मासे अन्नस्य उत्पत्ति भवति कृषका: आनन्द मग्नो भूत्वा अन्न राशि स्व गृहं नयन्ति एवं सर्वत्र आनन्द प्रवाहेन इदम् ऋतुं मधु ऋतु इति कथयति।

हमारे देश में चैत्र वैसाख मास में अन्न की उत्पत्ति होती है कृषक आनन्द मग्न होकर अन्न राशि स्व घर लाते हैं और सर्वत्र आनन्द प्रवाह से इस ऋतु को मधुऋतु कहते हैं।

अद्य दिल्ली नगर मध्ये विज्ञान भवने समस्त भारतवर्षीय संस्कृत विद्द् जनानां सम्मेलनम् अस्ति न केवलं भारतीया: अपितु विभिन्न विदेशीया: अत्र उपस्थिता: सन्ति।

आज दिल्ली नगर के मध्य विज्ञान-भवन में समस्त भारतवर्ष के संस्कृत विद्वान जनों का सम्मेलन है न केवल भारतीय ही अपितु विभिन्न विदेशीय यहां उपस्थित हैं।

राम: स्व पितु आज्ञां स्वीकार्य वशिष्ठेन सह विद्यार्जनाय जगाम् च कालान्तरे मिथिलामध्ये शङ्करस्य पुरातनं धनुं भग्नं कृत्वा राजाजनकस्य पुत्रीं सीतया सह विवाहं कृतवान्।

राम स्व पिता की आज्ञा स्वीकार कर के वशिष्ठ के साथ विद्या अर्जन को गये और कालान्तर में मिथिला के मध्य शङ्कर के पुरातन धनुष को भग्न करके राजा जनक की पुत्री सीता को विवाहित किया।

'सत्यमेव जयते' इति श्रुति वाक्य अस्ति। असत्यस्य विजयं न भवति। महाभारत युद्धे कौरवा: असत्य पक्षी आसन् तथैव तेषां पराजयोऽभूत्।

'सत्य की जय होती है' यह श्रुति वाक्य है। असत्य की विजय नही होती है। महाभारत युद्ध में कौरव असत्य पक्षी थे तथा उनकी पराजय हुई।

रुकमण्या: सन्देशं स्वीकार्य श्रीकृष्ण: मगध राज पुत्रीं वरणाय रुकमाङ्गदपुरम् गतवान् तत्र रुकमण्या: हरणं कृत्वा च विरोधीं शिशुपालं बन्दी कृत्वा निर्वर्तितवान्।

रुकमणी के सन्देश को स्वीकार करके श्रीकृष्ण मगध राज पुत्री का वरण करने को रुकमाङ्गदपुर गये वहां रुकमणी का हरण करके व विरोधी शिशुपाल को बन्दी करके निर्वर्तित हुये।

दयानन्द सरस्वती स्वाधीन विचारचेता ऋषिरासीत्। अनृत विचाराणां खण्डनं

दयानन्द सरस्वती स्वाधीन विचारचेता ऋषि थे। अनृत विचारों का खण्डन करके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृत्वा विशुद्ध वैदिक ज्ञानानुसारेण प्रवर्तनाय जनानामुपादिशत्। 'सत्यार्थ-प्रकाश' अस्य ऋषेः प्रसिद्धिकृतिः अस्ति।

भारतवर्ष महान राष्ट्रमस्ति। अत्रैका संस्कृति समस्त देशमध्ये विराजयति च देववाणी संस्कृत भाषा पूर्ण रूपेण व्याप्नोति समस्त भारतीय जनानां दैनिक जीवन संस्कारेषु। केवलाः कतिपयाः स्वार्थचेताः पुरुषाः भाषाविवादम् प्रगटीकृत्य वैमनस्यमुत्पादयन्ति।

ते पुरुषाः धन्याः ये स्वराष्ट्रं प्रति, भाषां प्रति च स्व संस्कृति प्रति अनुरागवन्ताः सन्ति तेषाम् जन्मं सार्थकं अस्ति

वयं भारतीयाः शान्तोपासिनः स्मः, न वाञ्छायामः अन्यं कष्टयितुम् परन्तु यदा कश्चित अस्माकम् अनायासेन कष्टं प्रदानाय चेष्टां करोति तदा वयं कालरूपो भूत्वा तान् पूर्णरूपेण विनष्टं कुर्मः इति अस्माकं सिद्धान्तम् अस्ति।

विशुद्ध वैदिक ज्ञान के अनुसार प्रवर्तन होने का जनों को उपदेश दिया। सत्यार्थ प्रकाश इस ऋषि की प्रसिद्ध कृति है।

भारतवर्ष महान राष्ट्र है। यहाँ की संस्कृति समस्त देश में विराजती है व देववाणी संस्कृत भाषा पूर्ण रूप से व्याप्त है समस्त भारतीय जनों के दैनिक जीवन के संस्कार में। केवल कुछ स्वार्थचेता पुरुष भाषा विवाद को प्रकट करके वैमनस्य को उत्पादित करते हैं।

वे पुरुष धन्य हैं जो स्वराष्ट्र के प्रति, भाषा के प्रति व स्व संस्कृति के प्रति अनुराग रखते हैं उनका जन्म सार्थक है।

हम भारतीय शान्ति के उपासक हैं, नहीं चाहते हैं अन्य को कष्ट देना, परन्तु यदि कोई हमको अनायास कष्ट प्रदान की चेष्टा करता है तब हम कालरूप होकर उसको पूर्णरूप से विनष्ट करते हैं इति हमारा सिद्धान्त है।

(१) त्वं इदम् पाठं पठनम् अस्ति (१) तुम्हें यह पाठ पढ़ना है।

(२) कृष्णं द्रष्टुं गमनम् अस्ति (२) कृष्ण को देखने जाना है।

अन्तिम दो वाक्यों में 'पढ़ना' और 'जाना' शब्द क्रिया नहीं हैं अपितु सञ्ज्ञा हैं। संस्कृत रूपान्तर में भी इन शब्दों के स्थान पर 'पठनम्' और 'गमनम्' सञ्ज्ञा शब्द प्रयोग हुये हैं। उपरोक्त वाक्यों के उदाहरणों से पूर्णतया सिद्ध होता है कि अनादि काल से आज तक हमारी भाषा के शब्दों तथा वाक्य पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय ।।

हे परमात्मन् ! मुझे असत्य से सत्य की ओर तथा अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो।

खण्डन-काण्ड

सत्य-दर्शन हेतु युवा वर्ग का नयनोन्मीलन हमारा उद्देश्य है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्या:" जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है वैसे ही विदेशियों द्वारा लिखित हमारी संस्कृति तथा भाषा सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। जब कोई मिथ्या ग्रन्थ से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले लिपट जाय, इसी कारण "असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति", अर्थात् असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे ही छोड़ देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को।

(सत्यार्थ प्रकाश)

× × ×

× × ×

भारत के विश्वविद्यालयों में पाश्चात्य लेखकों द्वारा जो शिक्षा-पद्धति प्रचलित की गई उसमें मौलिक चिन्तन का हनन किया जाता है, अर्थात् स्वयम् चिन्तन की धारा विद्यार्थियों में जन्म नहीं ले पाती है। विदेशी लेखकों द्वारा जो सिद्धान्त निर्धारित किये गये उन्हीं को सर्वाङ्ग सत्य मानकर कण्ठाग्र कर लेना ही शिक्षा की इतिश्री समझी जाती है। यदि मति भ्रष्ट तथा बुद्धि विनष्ट होने पर विश्वविद्यालय की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त हो जाय तो वह लाभदायक नहीं हो सकती है। स्वतन्त्र विचार-धारा से विद्या ग्रहण करना विद्यार्थी का परम धर्म है।

सा विद्या या विमुक्तये । सा वाणी या विमृश्यते ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: १२ :

भावना ज्योति

अङ्गरेजों ने छल, कपट और मायावी प्रपञ्च से भारत को अपने अधिकार में करने के पश्चात् अपने शासन को चिरजीवित रखने के हेतु भारतीयों के धर्म, दर्शन, संस्कृति, भाषा तथा राष्ट्रीय चेतना को विनष्ट करने की एक सुनियन्त्रित क्रमबद्ध योजना बनाई थी और इसकी पूर्ति के हेतु उन्होंने भाषा-विज्ञान का आश्रय लिया था। कितने कौतूहल का विषय है कि भारतीय भाषा-विज्ञान तथा व्याकरण के पाश्चात्य लेखक उन्मादी ईसाई धर्म-प्रचारक हैं। उन लेखकों ने भारतीय भाषा सम्बन्धी जिन सिद्धान्तों का निरूपण किया उनमें कोई सत्य नहीं है। यह सिद्धान्त भारतीयों के प्रति उनके कलुषित मनो भावनाओं के प्रतिबिम्ब हैं। तत्कालीन भारत में अङ्गरेजी शासन ने उन सिद्धान्तों और विचारों को मान्यता प्रदान करने के हेतु, ईसाई धर्म प्रचारकों के सहयोग से, 'लिङ्ग्विस्टिक सर्वे आव् इण्डिया' नामक ग्रन्थ की रचना लण्डन में कराई थी। इसी षड्यन्त्र के अन्तर्गत उन विचारों और सिद्धान्तों का पुष्टिकरण भारतीयों के मुख से भी कराया गया। खेद है कि जिस शास्य-श्यामला वङ्ग-भूमि को देश-भक्त और बलिदानी सुपुत्रों ने गौरान्वित किया उसी सुनीतिपूर्ण प्रदेश से भाषा-विज्ञान की कुनीति कलङ्क-कालिमा भी प्रवाहित हुई। कलकत्ता विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा-विज्ञान की स्थापना की गई और इस विभाग में शिक्षित भारत के विभिन्न प्रदेशों के विद्यार्थियों द्वारा यही कुनीति विचार कालान्तर में भारत के विश्वविद्यालयों के भाषा-विज्ञान विभागों में प्रचलित हुए। इसी विभाग के अध्यापक ईसाई धर्म प्रचारक लेखकों की गति और ताल पर समवेत स्वर में मतवाले होकर नृत्य कर रहे हैं, तथा जो अनर्गल सिद्धान्त विदेशियों ने हमारी भाषा सम्बन्धी निर्धारित किये उन्हीं की पुष्टि में अब हमारी भाषा में भूर्खता पूर्ण उदाहरणों को ढूण्ढने का प्रयास किया जाता है।

उत्तरी यूरोप के देशों में अपनी कोई मूल-भाषा नहीं है और उन भाषाओं का भाषा-विज्ञान सम्बन्धी अध्ययन दो सौ वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है। इस प्रकार की भाषाओं के सिद्धान्तों का भारत की आदि मूल-भाषा के सिद्धान्तों से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता है। आज से केवल ३५००-४००० वर्ष पूर्व उत्तरी यूरोप में यूराल पर्वत से अटलाण्टिक महासागर तक मनुष्य प्राकृत अवस्था तथा नग्न रूप में बन्दरों के समान वृक्षों पर और पशुओं के समान गुफाओं में रहा करते थे। किसी संस्कृति और सभ्यता की क्षीण रेखा उनके पास तक नहीं पहुंची थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उस समय भारत की पाठशालाओं में पाणिनि आदि वैयाकरणों के व्याकरण शास्त्र का अध्ययन होता था। व्याकरण शब्द से ही शब्द-व्युत्पादन या प्रकृति-प्रत्यय विभाग का अर्थ समझाया जाता था। शब्दों की नित्यता बताने के हेतु 'सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे' जैसे सूत्रों की रचना हो चुकी थी। उससे भी सहस्त्रों वर्ष पूर्व भारत में भाषा-शास्त्र चरम सीमा तक पहुंच चुका था।

भारत में प्रत्येक विषय और ज्ञान पर अपनी एक अनादि कालीन मौलिक विचार धारा है जिसके अन्तर्गत ब्रह्मसे लेकर जड पार्थिवभूत प्रत्येक पदार्थ गृह्य हैं। शब्द तथा भाषा सम्बन्धी जो भारतीय विचार धारा है, विश्वविद्यालयों के भारतीय भाषा-विज्ञान में उसका कोई प्रतिनिधित्व नहीं हैं। यही कारण है कि भारतीय भाषाओ के सम्बन्ध में आधुनिक भाषा-विज्ञान की शिक्षा पूर्ण रूप से अनर्गल और असत्य है। जिन व्यक्तियों को हमारी भाषा का स्वल्प ज्ञान भी नहीं है, विश्वविद्यालयों में वही व्यक्ति भाषा-विज्ञान की शिक्षा देते हैं तथा सरस्वती और संस्कृत भाषा से शून्य–अज्ञानी हमारी भाषा-विकास पद्धति को समझाते हैं।

आधुनिक भाषा विज्ञान के लेखक वह कुपुत्र हैं जो वेदों के दृष्टा ऋषियों, दर्शनों के स्रष्टा मुनियों, व्याकरण शास्त्र के समीक्षकों, विचारकों, चिन्तकों तथा पुण्यशील पूर्वजों की अवहेलना तथा अपमान करते हुये शुभ्र–ज्ञान मण्डिता अपनी भारत जननी को, विदेशी षड्यन्त्रकारों के इङ्गित पर, स्वयम् निःवस्त्र करते हैं। इसी प्रकार के दुर्बुद्धियों से दुःखी और पीडित होकर किसी विद्वान ने बड़े ही मार्मिक तथा आहत हृदय से कहा है—

नोलूको पश्यति दिवा, नक्तं न च वायसः।
अपूर्वः कोऽपि दुर्बुद्धि नक्तं दिवा न पश्यति ॥

अर्थात उलूक (उल्लू) दिन में नहीं देख पाता है और वायस (काक) रात्री में नहीं देख पाता है, परन्तु दुर्बुद्धि व्यक्ति ऐसे अपूर्व होते हैं जो दिन में देख पाते हैं और न रात्री में देख सकते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: १३ :

विषय प्रवेश

किसी भी देश की संस्कृति उस देश के निवासियों के आचार विचार उस देश की भाषा में समाहित रहते हैं। आचार विचार कभी कभी काल वश शिथिल हो सकते हैं, परन्तु भाषा देश की वह सतत प्रवाहित पयस्विनी है जिसमें संस्कृति के कण कभी नष्ट नहीं होते हैं, अपितु गत शीलता के साथ प्राचीन मनीषियों की मानस भावनाओं को नव सन्तति के प्रति प्रदान किया करती है। सहस्त्रों वर्षों पूर्व हमारे देश की गोरबमयी संस्कृति जो वैदिक ऋचाओं में अवतरित हुई, भाषा के ही माध्यम से आज भी जीवित है और हमें उसका सम्यक ज्ञान प्राप्त होता है। अत: भाषा ही किसी देश का वह सुरक्षित कोश है जिसमें देश की संस्कृति, मनीषियों की उक्तियाँ, वीरों का शौर्य, बलिदानियों की आत्म आहुति तथा माताओं का वात्सल्य संरक्षित रहता है। हमारी सरस्वती और संस्कृत भाषा में वेदों का ज्ञान गरिमा, उपनिषदों का अध्यात्म चिन्तन, महाकाव्यों में बाल्मीकि और वेदव्यास की ओजस्वी वाणी, गीता में कर्म एवं ज्ञान का सामञ्जस्य और बिखरे पुराण ग्रन्थों में देश का प्राचीनतम इतिहास, हमारी श्रद्धा और विश्वास के स्वप्न सर्वत्र मिलते हैं।

विदेशियों की कलुषित मनोवृत्ति

योरोप में अट्ठारवीं शताब्दी के मध्य से एक नव जागरण की चेतना लहराती हुई उन्नीसवीं शताब्दी तक विकसित हुई। जहां एक ओर योरोप के देश विशाल एशिया पर अपने साम्राज्य के स्वप्न देखने लगे और यत्र-तत्र सफलता भी प्राप्त करने लगे, वहीं योरोप के कतिपय बुद्धिचेता विद्वानों ने हमारे देश की संस्कृति, भाषा एवं साहित्य के अर्जन के प्रति जागरुकता प्रकट की। इन विद्वानों को अल्प ज्ञान के ही क्षेत्र में यह पूर्ण रूप से भासित हो गया कि भारत अस्त्र से जीता जा सकता है, परन्तु वह उस समय तक अविजित रहेगा, जब तक भारत की संस्कृति का पूर्णतया उन्मूलन न किया जाय। हमारा दुर्भाग्य है कि योरोप के देशों की सेनायें जहाँ भारत भूमि पर अधिकार प्राप्त करने के लिए क्रियाशील हुईं, उसीके साथ ही हमारी संस्कृति और धर्म को शिथिल और विलीन करने के लिये प्रचुर धन राशि के सहारे ईसाई धर्म-प्रचारकों के रूप में पादरियों की एक छद्मवेशी और मायावी सेना भी यहां पहुंची। अत: दोनों ओर से शस्त्र और शास्त्र पक्षों से भारत पर निर्मम प्रहार आरम्भ किया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैकाले

किसी भी देश के निवासियों में हीनत्व भावना उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि वहां की भाषा और उसकी उच्चता को नष्ट किया जाय और वहां के निवासियों के मस्तिष्क में यह पूर्ण रूप से परकीलित कर दिया जाय कि तुम्हारी संस्कृति असभ्य और अशिक्षित जनों की एक कहानी है। यही सब कुछ योरोप और विशेषकर इङ्गलैण्ड के निवासियों ने भारत के साथ किया। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में तीन पादरियों ने जिनके नाम कैरी, मार्शमेन और वार्ड थे, कलकत्ते के पास श्रीरामपुर में एक कौलिज स्थापित किया। सन् १८१८ ई० में उन्होंने 'समाचार-दर्पण' नाम का एक समाचार-पत्र निकाला। सन् १८२० ई० में अलेक्जेण्डर डफ ने कलकत्ते में एक कौलिज की स्थापना की। परन्तु उस समय तक तत्कालीन भारत सरकार (ईस्ट इण्डिया कम्पनी) ने अङ्ग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार नहीं किया था। इस विषय पर जनता में बड़ा मतभेद था। भारतीय भाषाओं के पण्डित तो भारतीय भाषाओं द्वारा शिक्षा देना चाहते थे, परन्तु अङ्गरेज अङ्गरेजी भाषा द्वारा शिक्षा देने पर बल देते थे। इसके पश्चात एक फिरङ्गी टामस बेबिङ्गटन मैकौले नामक गवर्नर-जनरल की परिषद का सदस्य भारत आया। मैकौले एक उन्मादी ईसाई था, जिसे हिन्दुओं, वेद और वैदिक धर्म के प्रति पूर्ण घृणा तथा द्वेष था। मैकौले ने सर्व प्रथम यह योजना बनाई कि हिन्दुओं को विश्व के सम्मुख अपमानित और पतित किया जाये और यहां तक कि भारतीय अपने सम्बन्ध में भी ऐसी ही धारण बना लें। मैकौले की योजना अङ्गरेजी शिक्षा को प्रचलित करने की इसी उद्देश्य से थी कि हिन्दू अपने धर्म और संस्कृति से विमुख हो जायें। अङ्गरेजी भाषा के प्रचलन का समर्थन करते हुये उसने अत्यन्त निम्न कोटि के रूप में भारतीय भाषा और संस्कृति की निन्दा की और इसके सम्बन्ध में अधिक से अधिक अपमानित और गर्हित भावों को उपस्थित किया मौकैले ने अङ्गरेजी शिक्षा के समर्थन में एक षड्यन्त्र रचा और ७ मार्च सन् १८३५ ई० को गवर्नर-जनरल की परिषद ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसका आशय यह था कि शिक्षा के लिये जो धनराशि स्वीकृत की जाय वह केवल अङ्गरेजी शिक्षा पर व्यय की जाय। उस समय से तत्कालीन भारत सरकार (ईस्ट इण्डिया कम्पनी) की शिक्षा सम्बन्धी नीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया। मैकाले का मूल मन्त्र था कि "हमें भारत में एक ऐसे समाज के निर्माण की आवश्यकता है जिसके व्यक्ति रक्त तथा वर्ण से तो भारतीय हों परन्तु विचार और भावना से अङ्गरेज हों"। अतः इस एक सुनियोजित षड्यन्त्र की रचना हुई जिस से श्वेताङ्ग जातियां अनादि काल तक भारत में साम्राज्यवादी शोषण कर सकें।

मैकाले ने १२ अक्तूबर सन् १८३६ ई० को अपने पिता के नाम एक पत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रेषित किया जिसके द्वारा उसके मस्तिष्क की समस्त दूषित और द्वेष पूर्ण भावनायें प्रकट होती हैं जो उसके द्वारा अङ्गरेजी शिक्षा को प्रचारित करने के पीछे थीं। वह लिखता है—"मेरे प्रिय पिता—हमारे अङ्गरेजी स्कूल बड़े आश्चर्यजनक रीति से उन्नति कर रहे हैं और अङ्गरेजी शिक्षा का प्रभाव हिन्दुओं के ऊपर पूर्ण रूप से आकर्षक है। कोई भी हिन्दू जिसने अङ्गरेजी शिक्षा ग्रहण की है अपने धर्म के प्रति निष्ठवान नहीं रह सकता है। कुछ व्यक्ति तो केवल किसी नीति के कारण हिन्दू रहते हैं और शेष ईसाई धर्म को ग्रहण कर लेते हैं। मेरा ऐसा दृढ़ विश्वास है कि यह हमारी अङ्गरेजी शिक्षा की योजना यदि चलती रही तो आज से तीस वर्षों के भीतर ही बङ्गाल के प्रतिष्ठित हिन्दू जातियों में एक भी मूर्ति पूजक व्यक्ति नहीं बचेगा और यह हमारे प्रयास का परिणाम होगा कि बिना ईसाई धर्म का प्रचार किये, और बिना किसी भी प्रकार की धार्मिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप किये, स्वाभाविक गति से ही शिक्षा के प्रभाव के कारण हो जायगा। मैं अपनी इस सफलता पर हृदय से अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम्हारा अत्यन्त प्रिय—टी० बी० मैकोले"

इसाई धर्म के द्वारा हिन्दुत्व को विनष्ट करने के लिये यह क्रमित प्रयास एक दूसरे ईसाई धर्म प्रचारक (मिशनरी) के इस उल्लेख से जो उसने अपनी पुस्तिका—"भारत में दैनिक जीवन और कार्य" में लिखा है और भी स्पष्ट हो जाता है वह लिखता है—"यदि वेदों से ईश्वरीय भावना सम्बन्धित विश्वास नष्ट कर दिया जाये तो ऐसी आशा की जा सकती है कि फिर यहाँ की जनता बिना किसी विरोध किये ईसाई धर्म सम्बन्धित मानताओं और विशवासों को सुनने तथा विश्वास करने लगेगी ... ... इसी प्रमुख उद्देश्य से ईसाई स्कूलों की स्थापना की गई थी"। हिन्दु धर्म को विनष्ट करने की इस योजना में ईसाई धर्म प्रचारकों को अङ्गरेजी सरकार का पूर्ण सहयोग तथा समर्थन प्राप्त था।

योरोप की श्वेत जातियों ने जब भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना की तो उन्होंने अपने साम्राज्य को दृढ़ करने तथा अपनी प्रभुता को प्रदर्शित करने के लिए एक दूर दर्शक नीति का अनुसरण किया, और वह था कि भारत के निवासियों में आत्मगौरव, स्वाभिमान और अपनी महान धरोहर के प्रति कोई भाव जागरित न हो सकें और यह भारत की जाति सदैव हीनत्व और दासता के भाव में जकड़ी रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु योरोप के लेखकों ने हमें असभ्य, अशिक्षित, रूढ़िवादी सिद्ध करने का प्रयास किया। साम्राज्य वादियों की यह एक दूषित चाल थी कि वह अपनी आधीनत जनता के सम्बन्ध में पतित और गर्हित रूप को प्रस्तुत करें और उनके सम्बन्ध में जितना नीचतापूर्ण और लज्जाविहीन चित्र प्रस्तुत किया जा सके चित्रित करें। इनका मुख्य उद्देश्य केवल यह था कि शासित जनता में दासत्व की भावना निरन्तर बनी रहे और उन्हें संसार के अन्य देशों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीयों की स्वतन्त्रता और अधिकार उपहरण सम्बन्ध में नैतिक समर्थन प्राप्त होता रहे। किसी भी फिरङ्गी ने, भारतीयों के सम्बन्ध में इतिहास में, भाषा के क्षेत्र में तथा सामाजिक आचार विचारों पर जब भी ग्रन्थों की रचना की तो उनका एक ही उद्देश्य था कि वस्तु विषय पर कम विचार करना अपितु भारतीयों को असभ्य और हीन अधिक प्रचारित करना। भारत की भाषा के सम्बन्ध में लिखने वाले अधिकांश लेखक ईसाई धर्म प्रचारक (मिशनरी) थे। यह लेखक उपरोक्त उद्देश्य को अपने लक्ष में रखते थे और उनका यह उद्देश्य विशेष चिन्तन की दृष्टि से जब हम अध्ययन करते हैं तो उनकी रचनाओं में स्वयम् झलक उठता है।

"पाश्चात्त्य लेखकों ने केवल सरस्वती (तथा संस्कृत) भाषा के इतिहास सिद्ध सर्व प्राचीनत्व सिद्धान्त को ही नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया, अपितु संस्कृत साहित्य, विशेष करके वैदिक वाङ्मय की प्रमाणिकता और पुरातनता के विरुद्ध भी घोर प्रयत्न किया है। इस कार्य के लिये उन्होंने बहुत चातुर्य पूर्ण मार्ग अपनाया है। भारतीय विद्वान इनके अन्तर्निहित भावों को जान न जायें इसके लिए उन्होंने भारतीय वैदिक और लौकिक वाङ्मय के अनेक ग्रन्थों के उत्तम सस्करण प्रकाशित किये, अङ्ग्रेजी, जर्मन आदि भाषाओं में उनके अनुवाद किये, तत्सम्बन्धी ग्रन्थ वा निबन्ध लिखे, कहीं कहीं सस्कृत वाङ्मय की वा किसी ग्रन्थ की प्रशंसा भी की। इन चातुर्य पूर्ण प्रयत्नों से भारतीयों को अपने शुद्ध हृदय वा सहृदयता का परिचय देकर भ्रान्त करने का प्रयत्न किया। निस्सन्देह यह पाश्चात्त्य लेखक अपने इस प्रयत्न में कुछ सफल भी हुये"।[१]

यह एक निर्विवाद सत्य है कि ईसाई तीन देवताओं—भगवान पिता (गॉड) भगवान पुत्र (क्राइस्ट) और भगवान पवित्र भूत (होली घोस्ट) में श्रद्धा और विश्वास रखते हैं। ईसाई गौरव के साथ कहते हैं कि यह तीनों केवल पृथक-पृथक ही नहीं अपितु महिमा और शक्ति में भी तुल्य ही है। ईसाईयों की धर्म पुस्तिका न्यु टेस्टामेण्ट का धर्म बहुमूर्ति पूजक है जिसे हम त्रिदेववाद कह सकते हैं। दो अङ्ग्रेज पादरी डेविड और रीड अपनी पुस्तक ईसाई विश्वास (क्रिश्चियन फेथ) में इस प्रकार लिखते हैं—"त्रिदेववाद को हम ईसाई केवल धर्म और पाठ में ही स्वीकार नहीं करते हैं, अपितु त्रिदेववाद का निरन्तर उल्लेख उनकी प्रार्थनाओं, स्तुतिगीतों और आशीर्वादों में आता हैं। हम ईसाई चर्च अङ्गीकार तथा नामकरण संस्कार (बेप्टिज्म) करते हैं पिता के नाम पर, पुत्र के नाम पर और पवित्र भूत के नाम पर। हम ईसाई महिमा गाते हैं पिता की, पुत्र की, और पवित्र भूत की। हम ईसाई पूजा और स्तुति करते हैं भगवान पिता की, भगवान पुत्र की और भगवान

---

(१) व्याकरण महाभाष्य, प्रस्तावना।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पवित्र भूत की"।

जब ईसाई भारत में वेदों के सम्पर्क में आये तो उन्हें एक ईश्वरवाद का ज्ञान हुआ और इस खोज ने ईसाई धर्म प्रचारकों में असन्तोष उत्पन्न कर दिया जिससे ईसाईयों में एक विशेष प्रकार की हीनता की भावना ने जन्म लिया और यह हीन भावना हिन्दुओं तथा उनके वेदों के प्रति घृणा की भावना के रूप में परिवर्तित हो गयी।

ब्रिटिश साम्राज्य की निर्लज्जता पूर्ण कुचालों में से एक यह भी थी कि प्राधीन जाति के व्यक्तियों का एक ऐसा चित्र प्रस्तुत किया जाय कि वह विश्व के सम्मुख विशेष रूप से अपमानित हो सकें। उनका यह भी उद्देश्य था कि पराधीन जाति के व्यक्तियों में हीनत्व और दासत्व की भावना का उदय हो और निरन्तर बना रहे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी (तत्कालीन भारत में ब्रिटिश सरकार) के अधिकारियों में मैकाले जैसा विक्षिप्तचित्त और उन्मादी ईसाई था। मैकाले हिन्दु, हिन्दु धर्म और पवित्र वेदों के प्रति घृणा से परिपूर्ण था और उसकी योजना थी कि भारत की महान सस्कृति विश्व के सम्मुख पतित और उपहासनीय हो जाय और यहाँ तक कि भारतीय भी उसे हेय समझने लगे। वह चाहता था कि हिन्दुओं में हीनत्व की भावना आ जाय और अपने इस घृणित कार्य के लिये उसने यह निश्चित किया कि वेदों के अध्ययन को नष्ट-भ्रष्ट किया जाय। इङ्गलैण्ड में उस समय कोई व्यक्ति संस्कृत जानने वाला नहीं था, परन्तु जर्मनी में एक पादरी (ईसाई धर्म प्रचारक) फ्रेडरिक मैक्समूलर नामक था जिसे संस्कृत का थोड़ा सा ज्ञान था। मैकाले ने अपने घृणित कार्य की पूर्ति के लिये ईस्ट इण्डिया कम्पनी से धन की सहायता लेकर फ्रेडरिक मैक्समूलर को नियुक्त किया और उसे यह कार्य सौंपा कि वह पवित्र वेदों का ऐसा अशुद्ध और असत्य अनुवाद करे जिससे उनका प्रभाव नष्ट हो।

मैक्समूलर

फ्रेडरिक मैक्समूलर जिसको कुछ हिन्दु, भ्रमवश हिन्दु संस्कृति का हितैषी समझते हैं एक जर्मन पादरी और मैकाले का क्रीत दास था, जिसको कि मैकाले ने एक निन्दनीय और अधम कार्य के लिये इङ्गलैण्ड बुलाया था। मैक्समूलर ने अपने कर्तव्य का पूर्ण निर्वाह किया और मैकाले की पतित भावना को यथा शक्ति पूरा करने का प्रयास किया। मैकाले के आदेश अनुसार सायण-भाष्य-समन्वित ऋग्वेद का प्रथम मुद्रित संस्करण मैक्समूलर के सम्पादकत्व में इङ्गलैण्ड में प्रकाशित हुआ। मैक्समूलर के सम्पादकत्व में ऋग्वेद पर सायण-भाष्य का अङ्गरेजी अनुवाद पूर्णतया अनर्गल, भ्रामक और अशुद्ध है, तथा हिन्दुत्व को विनष्ट करने की पापात्मक और दुष्टात्मक नीति को लक्ष में रख कर किया गया था। हिन्दुत्व और भारतीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृति के विरुद्ध विक्षिप्त चित्त और उन्मादी ईसाई पदारियों के इस प्रकार के दुर्बुद्धि, नीच और अधम विचारों को प्रसारित करने में इन्हें तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्य का पूरा समर्थन प्राप्त था। ब्रिटिश सरकार ने ऋग्वेद का यह अशुद्ध अङ्गरेजी अनुवाद स्कूल और कालिजों में पाठ्य पुस्तक के रूप में पढ़ना नियमित कर दिया।

मैक्समूलर कितना दुर्बुद्धि, धूर्त और छद्मवेशी था, यह उसकी इस बात से ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कृति का हितैषी दिखाने के लिये सायण-भाष्य सहित ऋग्वेद के संस्करण में जो उसके सम्पादकत्व में छपा था, वह अपने को शर्मण्य निवासी मोक्षमूलर भट्ट लिखता है। उसने जर्मन शब्द को संस्कृत रूप देने के लिये शर्मण्य लिखा है। 'भट्ट' भारत में विद्वान ब्राह्मणों के नामों के साथ लगने वाली उपाधि है। मैक्समूलर ने कभी संस्कृत भाषा में कोई रचना नहीं की है, उसने जो कुछ भी लिखा है वह अङ्गरेजी भाषा में लिखा है। मैक्समूलर के सम्पादकत्व में ऋग्वेद का जो अनुवाद प्रकाशित हुआ है उसके अध्ययन के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति दृढ़ता पूर्वक कह सकता है कि मैक्समूलर की बुद्धि और मानसिक दशा उस व्यक्ति के तुल्य है जो समस्त रामायण के अध्ययन के पश्चात् यह जानना चाहे कि राक्षस रावण था या राम। कारण कि ऋग्वेद के अनुवाद के पश्चात भी उसको ऋग्वेद में एक ईश्वरवाद का अनुभव न हो सका।

योरोप के तथाकथित संस्कृत प्रेमी लेखकों और विद्वानों ने संस्कृत वाङमय, विशेषकर वैदिक वाङ्मय के प्रति इतना प्रयत्न क्यों किया इसका कारण स्पष्ट करने के हेतु हम योरोप के कुछ संस्कृत के विद्वानों के वचन उदधृत करते हैं। सबसे प्रथम सबस प्रसिद्ध वेदज्ञ मैक्समूलर के ही शब्द ध्यानपूर्वक विचारनीय हैं—

(अ) सन् १८६६ में अपनी पत्नी को लिखे हुए एक पत्र में मैक्मूलर लिखता है—

वेद का अनुवाद और मेरा यह संस्करण उत्तरकाल में भारत के भाग्य को बहुत कुछ निर्धारित करेगा। वेद उनके (भारतीयों के) धर्म के आदि स्रोत हैं और उनको यह बताकर कि वह स्रोत क्या हैं, मुझे विश्वास है कि प्राचीन तीन सहस्त्रों से जमी हुई भावना और विश्वास को इसी प्रकार नष्ट किया जा सकता हैं।

(ख) मैक्समूलर अपने पुत्र को एक पत्र में लिखता है—

संसार की सब धर्म पुस्तकों में से ईसा की बाइविल (न्युटेस्टामेण्ट) उत्कृष्ट है। इसके पश्चात् कुरान को, जो आचार की शिक्षा में नई प्रतिज्ञा का रूपान्तर है, रक्खा जा सकता है। इसके पश्चात पुरातन प्रतिज्ञा (ओल्ड टेस्टामेण्ट), दक्षिणत्य बौद्धपिटक, वेद और अवेस्ता आदि हैं।

(ग) विक्षिप्त चित्त और उन्मादी पादरी मैक्समूलर को इतने से शान्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न हुई, वह वेद के विषय में अपनी पुस्तक 'चिप्स फ्रोम ए जर्मन वर्कशौप' में लिखता है कि वैदिक सूक्तों की एक बड़ी संख्या, बालिश, जटिल, अधम और साधारण हैं।

मोनियर विलियम्स:—मोनियर विलियम्स ओक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत का बोडन अध्यापक था, परन्तु इसे संस्कृत का विशेष ज्ञान नहीं था। इसने संस्कृत-जर्मन कोश के माध्यम से एक संस्कृत इङ्गलिश कोश की रचना की है। इस कोश का प्रकाशन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अध्यक्षों (डाइरेक्टर्स) द्वारा हुआ था। इस कोश में शब्द 'आर्य' का अर्थ—एक जाति का नाम जो मध्य एशिया से आर्यवर्त में आई", लिखा है। इस कोशकार के इस प्रकार के अधम और दुष्ट विचारों का कारण हम उसके उन शब्दों में उद्धृत करते हैं, जो उसने अपने द्वारा रचित कोश की भूमिका में लिखे हैं।

मुझे इस स्थिति की ओर अपना ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है कि मैं बोडन अध्यापक पद पर दूसरा व्यक्ति हूं। इसके संस्थापक कर्नल बोडन ने अपने स्वीकार पत्र में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि उसके उदार रिक्थप्रदान का उद्देश्य-विशेष यह था कि ईसाई धर्म ग्रन्थों का संस्कृत में अनुवाद किया जाय, जिससे अङ्गरेजों को भारतीयों को ईसाई बनाने की योजना में सफलता प्राप्त हो सके।

भारतीयों की धर्म पुस्तकों रामायण तथा महाभारत के सम्बन्ध में वाकर-नागल, रैपसन, विण्टरनिट्ज आदि लेखकों ने अपमानित भाषा में जो अपने अश्लील और अधम विचार प्रकट किये हैं उनको हम यहाँ उद्धृत करना अनुचित और अनावश्यक समझ कर छोड़ते हैं। इसके पश्चात योरोप के अन्य लेखकों ने, जो अधिकांश पादरी थे, भारतीय संस्कृति तथा भाषा के सम्बन्ध में जो रचनायें की हैं, उनमें उन लेखकों की विचार धारा वही रही हैं, जो उपरोक्त लेखकों की थी।

"पाश्चात्त्य विद्वानों की इस दुरभिसन्धि को सर्व प्रथम अशेषशेमुषीसम्पन्न स्वामी दयानन्द सरस्वती (वि० सं० १९३१–४०) ने समझा और उन्होंने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा ऋग्वेद भाष्य में पदे पदे मैक्समूलर, विलसन प्रभृति द्वारा किये गये ऋग्वेद के तथाकथित व्याख्याओं का बलपूर्बक खण्डन किया। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में इन पाश्चात्त्य विद्वानों के संस्कृत ज्ञान के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्या का आर्य्यवर्त्त देश में है उतना किसी अन्य देश में नहीं है। जो लोग कहते हैं कि जर्मन देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा यह बात कहने मात्र है, क्योंकि "यस्मिन्देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते," अर्थात जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता उस देश में एरण्ड ही को बड़ा मान लेते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं, वैसे ही योरोप देश में संस्कृत विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोगों और मोक्षमूलर साहब ने थोड़ा सा पढ़ा वही उस देश के लिये अधिक है। परन्तु आर्य्यवर्त्त देश की ओर देखें तो उनको बहुत न्यून गणना है क्योंकि मैं ने जर्मनी देश निवासी एक 'प्रिन्सिपल' के पत्र से जाना कि जर्मन देश में संस्कृत चिट्ठी का अर्थ करने वाले भी बहुत कम हैं और मोक्षमूलर साहब के संस्कृत साहित्य और थोड़ी सी वेद की व्याख्या देख कर मुझको विदित होता है कि मोक्षमूलर साहब ने इधर उधर आर्य्यवर्त्तीय लोगों की की हुई टीका देखकर कुछ कुछ यथा तथा लिखा है जैसा कि "युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि (ऋ १/६/१) इस मन्त्र का अर्थ घोड़ा किया है। इससे तो जो सायणचार्य्य ने सूर्य अर्थ किया है सो अच्छा है, परन्तु इसका ठीक अर्थ परमात्मा है सो मेरी बनाई ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका में देख लीजिये। उसमें इस मन्त्र का यथार्थ अर्थ किया है। इतने से जान लीजिये कि जर्मन देश और मोक्षमूलर साहब में संस्कृत विद्या का कितना पाण्डित्य है।

परम खेद का विषय तो यह है कि भारत के स्वतन्त्र होने पर भी हमारा शासन उन ग्रन्थों के पुनः प्रकाशन और प्रसार में भारी सहयोग दे रहा है, जो प्रायः भारतीय इतिहास साहित्य और संस्कृति को नष्ट करने के उद्देश्य से लिखे गये थे। आज भारतीय सरकार भारतीय संस्कृति को एक मिश्रित संस्कृति बताकर भारतीय संस्कृति को विनष्ट कर रही है। भारतीय सरकार के शिक्षा मन्त्रियों की एक लम्बी परम्परा उन व्यक्तियों की है, जो भारतीय संस्कृति, संस्कृत विद्या और सरस्वती भाषा से परिचित भी नहीं थे। भारतीय भली प्रकार जानते हैं कि भारत के शिक्षा मन्त्री पद पर अबुल कलाम, हुमायूं कबीर, मुहम्मद भाई करीम भाई छागला और नूरुल हसन जैसे व्यक्ति ही नियुक्त किये जाते हैं।

वेदों के अशुद्ध अनुवाद, भारतीय, संस्कृति और धर्म पर प्रहार अङ्गरेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर भारतीय भाषाओं को विनष्ट करने की योजना और ईसाई धर्म के झूठे प्रचार द्वारा फिरङ्गी उस दिन का स्वप्न देखने लगे थे, जिस दिन कि भारत के प्रत्येक भवन पर ईसाई धर्म का चिह्न (क्रौस) स्थापित होगा। सौभाग्य से अङ्गरेजी शासन की स्थापना के कुछ ही काल पश्चात देश में ऐसी प्रवृत्तियां उदय होती रहीं जो अङ्गरेजी शासन को निष्कासित करने का स्वप्न देखती थी तथा देश की अखण्डता और एकता को चिरजीवित रखना चाहती थी। इस प्रकार दोनों शक्तियां एक दूसरे के समानान्तर आयी। देश की अखण्डता को विनष्ट करने की शक्ति अङ्गरेजी साम्राज्य द्वारा पोषित थी और उसके प्रतिकूल भारत एक है, इसकी राष्ट्रीयता अखण्ड है, इस धारा के समर्थक देश के राष्ट्रीय बलिदानी बीर थे। समवत् १९३२ वि० के लगभग दयानन्द सरस्वती ने वैदिक संस्कृति, संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के प्रसार और प्रचार पर बल दिया। उन्होंने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने घोषणा की कि विदेशी शासन चाहे जितना सुखकारी हो, स्वदेशी शासन की अपेक्षा निकृष्ट और हेय है। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के लिए यह बात एक भीषण चोट थी। आर्य समाज द्वारा वैदिक धर्म प्रचार से मैक्समूलर कृत वेदों के अशुद्ध अनुवाद का भारतीयों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा अपितु यह अनुवाद भारतीय विद्वानों के प्रति उपहास जनक बनकर रह गया।

जर्मन शासन ने पवित्र भारत के आठ नगरों में 'गोथे इन्स्टीट्यूट' की शाखा के नाम पर आठ पुस्तकालय स्थापित कर रखे हैं जिनके नाम 'मैक्समूलर भवन' हैं। मैक्समूलर जैसे षडयन्त्रकारी, घृणित, नन्दनीय तथा उन्मादी ईसाई धर्म प्रचारक के नाम पर उन भवनों की स्थापना हमारी भावनाओं पर प्रहार है। भारत भू पर यह वह आठ कलङ्क केन्द्र हैं, जिनका अस्तित्व मैक्समूलर के नाम पर भारतीय कभी सहन नहीं करेंगे। हम जर्मन शासन को चेतावनी देते हैं कि भारत में अभारतीय विचारधाराओं का शासन सर्वदा नहीं रहेगा। जर्मन शासन को उचित है कि अभी से उन भवनों का नाम 'गोथे इन्स्टीटयूट' परिवर्तित कर दे।

न्यूटेस्टामेण्ट (ईसाईयों के धर्म पुस्तक का नया नियम् अर्थात् यीशु का सुसमाचार) में एक भी शब्द यीशु का लिखा हुआ नहीं है। इस प्रकार के व्यक्ति ने संसार में कभी जन्म नहीं लिया और यीशु केवल काल्पनिक व्यक्ति है। उपरोक्त पुस्तिका का अध्याय--यूहन्ना का प्रकाशित वाक्य, अर्थात वह भविष्यत्-वाणी जिसको परमेश्वर ने अपने स्वर्ग दूत को भेज कर यूहन्ना को बताई, ही भारतीयों के पढ़ने योग्य है। इस अध्याय का मूल विषय है—मैं (यीशु) बहुत शीघ्र आ रहा हूं। कौतूहल का विषय है कि दो सहस्त्र वर्षों तक भी वह शीघ्र समय नहीं आया और न कभी भविष्य में आयेगा। उस अध्याय के पठन से स्पष्ट हो जाता है कि वह पुस्तिका कब लिखी गई, कहां लिखी गई और क्यों लिखी गई। परन्तु ईसाई जगत इस अध्याय के सम्बन्ध में घोषणा करता है कि इसमें वह अन्धकारमय कल्पनायें हैं जिनको समझने के साधन उनके पास नहीं हैं तथा उनका सत्य अर्थ उस समय तक स्पष्ट नहीं हो सकता है जब तक यीशु पुन: संसार में न आ जावे (जो कभी नहीं होगा) मैक्समूलर के लिए तो यह उचित था कि पवित्र वेदों का अशुद्ध और असत्य अनुवाद करने की अपेक्षा वह उपरोक्त 'भविष्यत वाणी' पर प्रकाश डालता। सत्य तो यह है कि जब उस भविष्यत्-वाणी का सत्य-अर्थ संसार की समझ में आ जावेगा उसी समय ईसाई धर्म स्वयम् विनष्ट हो जायेगा। चार्ल्स स्मिथ का कथन है कि यदि संसार की अधार्मिक, अश्लील और अभद्र पुस्तिकायें जलाई जायें तो अग्निदाह में सबसे बड़ी सङ्ख्या बाइबिल की होगी। डीन फर्रार का कहना है कि बाइबिल एक अशिष्ट, असभ्य और अशलील पुस्तिका है जो अशिष्ट, असभ्य काल में असभ्य अश्लील जातियों के लिये लिखी गई थी। हमारी पुस्तिका का विषय बाइ-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिल न होने के कारण हम इस सम्बन्ध में अधिक लिखना उचित नहीं समझते हैं।

पादरियों का कुकृत्य

यदि हमारे अन्दर वैदिक और उपनिषदिक विचार धारा की चिरन्तन सर्जनशील शक्ति न होती तो इस्लाम और इसाई आक्रमणों के सम्मुख हम भी उसी प्रकार नष्ट और लुप्त हो जाते जैसे पारस और दूसरे देश इन विदेशी झञ्झावातों में नष्ट हो गये। भारत में अङ्गरेजों की ईसाई धर्म प्रसार की सभी कुचालें विफल रहीं। पादरियों ने कुछ निम्न वर्गों के व्यक्तियों को धन और पद का लोभ देकर ईसाई बना लिया, परन्तु उनके प्रति भारतीयों के सामाजिक बहिष्कार के कारण वह अछूत ही समझे जाते रहे। कुछ द्विज जाति के व्यक्ति जो ईसाई बने वह भी सामाजिक बहिष्कार के कारण अछूतों की ही श्रेणी में आ गये। ईसाई धर्म प्रसार की विफलता पर अङ्गरेज पादरियों ने भाषा और भाषा विज्ञान का आश्रय लेकर एक नये षड्यन्त्र की रचना की। अभी तक पादरियों की मनोवृत्ति संस्कृत भाषा और हमारे धर्मग्रन्थों के सम्बन्ध में दूषित और भ्रामक विचारों को प्रसार करने की थी, परन्तु अब उन्होंने जन साधारण और उनकी भाषाओं के सम्बन्ध में भी भ्रामक और दूषित विचारों का प्रसार आरम्भ कर दिया। भारत में पादरियों ने भारतीय भाषाओं के व्याकरण प्रकाशित कर डाले, उनमें से कुछ के नाम यह हैं—

१. बिशप कौल्डवेल का—द्रविड़ भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण।
२. जौन बौम्स का—भारतीय आर्य भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण।
३. पादरी केलौग का—हिन्दी भाषा का व्याकरण।
४. हौर्नली का—पूर्वी हिन्दी का तुलनात्मक व्याकरण।

इस पुस्तिका में हम केवल पादरी केलौग के हिन्दी भाषा के व्याकरण में व्यक्त किये गये भ्रामक और मूर्ख विचारों का खण्डन करेंगे। कितनी उपहास जनक बात है कि हमारी भाषा के व्याकरण का ज्ञान हमें अर्धशिक्षित विदेशियों और वह भी पादरियों द्वारा कराने का प्रयास हुआ है।

इङ्गलैण्ड के पादरियों ने निर्लज्जता पूर्वक यह दिखाने का प्रयास किया कि कई सहस्त्र वर्ष पूर्व मध्य एशिया में किसी स्थान पर एक जन-समूह रहता था जिसको उन्होंने भारत-योरोपीय (भारोपीय) परिवार कहा है। मध्य एशिया से वह जन-समूह दो दिशाओं में गया। सबसे पूर्व योरोपीय शाखा अलग हो गई थी। यह दल पश्चिम की ओर गया। कैस्पियन सागर तक तो यह दल एक ही रहा, परन्तु वहां से इस दल की अनेक शाखायें होकर समस्त योरोप में फैल गईं। दूसरा दल जो पूर्व-दक्षिण की ओर गया, वह बहुत समय तक पारस में एक साथ रहा। पश्चात में इसकी एक शाखा पारस में रह गई जो अरब, मिश्र आदि की ओर बढ़ गई। दूसरी शाखा काबुल नदी के साथ होती हुई भारत में आ गई। उस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जन-समूह के व्यक्तियों को जो भारत में आया, आर्य कहते हैं। आर्यों के समूह वर्षों तक पश्चिम की ओर से आ आकर भारत में बसते रहे हैं। आर्यों ने यहां के मूल निवासियों को मार मार कर भगा दिया और स्वम भारत में रहने लगे। यह आर्य अपनी भाषा और और अपनी धर्म ग्रन्थों को भी अपने साथ भारत में लाये थे। इस प्रकार पादरियों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि भारत के निवासी अभारतीय हैं, इनकी भाषा और धर्म भी विदेशी है। यह विचार सर्वप्रथम पादरी मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक "शब्दों का जीवन वृतान्त और आर्यों का आदि देश" में प्रकाशित किये थे। मैक्समूलर की इस पुस्तक और उसके विचारों पर हम अग्रिम पृष्ठों पर विचार व्यक्त करेंगे।

इसके अतिरिक्त अङ्गरेजों ने भारत का अपमानित करने और अपनी महानता को प्रकट करने के लिये भारत का एक और चित्र संसार के सामने रखने का प्रयास किया वह था कि—

(१) भारतीय एक असभ्य, अर्द्धशिक्षित, रूढ़िवादी और प्रगतिविरुद्ध जाति है।

(२) सारा भारत विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों, रीतियों, प्रथाओं में विभक्त है और सारे देश को एकता के सूत्र में बान्धने वाली न कोई भाषा है, न:कोई धर्म, न कोई संस्कृति, न कोई विचार धारा।

(३) छोटे छोटे प्रदेशों में विभक्त भारत आज जो सङ्घटित दिखाई पड़ता है उसके पीछे अङ्गरेजी शिक्षा और अङ्गरेजी भाषा का प्रसार है। अङ्गरेजी शिक्षा, सिविल सर्विस, और उनकी बनाई हुई दण्ड प्रणाली समस्त भारत को एकता के सूत्र में बान्धे हुये हैं।

अङ्गरेजों ने यह भी घोषित किया कि भारत में उनकी सत्ता, सत्ता की प्यास के लिए नहीं अपितु उनकी सत्ता भारत में उपकार वृत्ति के लिए है। भारत में उनका आगमन बाइबिल की उक्ति "अन्धकार को दूर करो, प्रकाश को बढ़ाओ," इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हैं।

उपरोक्त सिद्धान्त जो अङ्गरेजों ने निर्धारित किये उनमें सत्यता तो लेश-मात्र भी नहीं थी, अपितु राजनैतिक अधिकार की लिप्सा को उत्तम रीति से परो-पकार दिखाते हुये प्रकट किये गये थे। इनके विपरीत स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द ने घोषणा की कि काशमीर से कन्या कुमारी तक भारत अखण्ड है तथा देश के विभिन्न भाषा भाषियों की बहुसन्तान वाली एक माता संस्कृत है। पञ्जाब, बङ्गाल और महाराष्ट्र—भारत के तीन विभिन्न कोणों से लाजपत राय, विपिन्न चन्द्रपाल और बाल गङ्गाधर तिलक एक नवीन शक्ति के साथ भारतीय क्षितिज में उदय हुये। इनके विचारों में, अङ्गरेजी का बहिष्कार, 'स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है', की ओजमयी घोषणा की गई। इसके साथ ही देश में एक आ-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न्दोलन स्वराष्ट्र-स्वधर्म का प्रबल हो उठा। राष्ट्रीय आन्दोलन में पञ्जाबी न पञ्जाबी था, बङ्गाली न बङ्गाली था और दक्षिणी न दक्षिणी था, अपितु सब एक भारत माता के पुत्र थे और उनका रूप था—माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः (अथर्व १२/१) अर्थात, मेरी माता भूमि है और मैं मातृ-भूमि का पुत्र हूं।

ग्रियर्सन

ब्रिटिश साम्राज्य के लिए देश में उभरती हुई उपरोक्त विचारधारा चुभ रही थी। अङ्गरेजी शासन ने इस भावना को विनष्ट करने के हेतु षड्यन्त्रों की खोज की, और उन्होंने एक नई नीति—'फूट डालो और शासन करो' के सिद्धान्त को अपनाया। उनकी समझ में आया कि काशमीर से लेकर रामेश्वरम् तक एक ही शिव की उपासना करने वाले इन भारतीयों को भाषा की विभिन्नता का एक काल्पनिक जाल फैला कर परस्पर पृथक की भावना को जन्म दिया जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु ब्रिटिश सरकार ने एक अङ्गरेज सिविलियन जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन को यह कार्य सौंपा कि वह भारत का भाषात्मक सर्वेक्षण (लिङ्ग्विस्टिक सर्वे आव् इण्डिया) प्रस्तुत करे और उस सर्वेक्षण का जो प्रारूप हो उसमें वह हलाहल विष घोला जाये कि समस्त भारत विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के आधार पर खण्डित हो जाये। ग्रियर्सन ने अपने कर्तव्य को यथा शक्ति पूरा करने का प्रयास किया था। भारतीयों तथा भारतीय भाषाओं के विषय में जिस पटुता के साथ विष-वमन किया गया है उसका अनुमान उसकी भूमिका के अध्ययन से ही हो सकता है। जिस उद्देश्य को लक्ष में रखकर यह ग्रन्थ लिखा गया है उसकी झलक इस भूमिका में स्पष्ट दिखाई देती है। परम खेद का विषय तो यह है कि भारत के स्वतन्त्र होने पर भी पाश्चात्य पद्धति के शिक्षित व दीक्षित भारतीय भाषा विज्ञान के लेखक तथा फिरङ्गियों के मानस पुत्र, ग्रियर्सन के अधम, पतित और गर्हित विचारों का अन्धानुकरण कर रहे हैं, और उन विचारों को ब्रह्मवाक्य मान कर ही आगे चलते हैं। कितने दुःख की बात है कि उत्तर प्रदेश शासन के सूचना विभाग की प्रकाशन शाखा ने इस ग्रन्थ के कतिपय भागों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है। अब समय आ गया है कि प्राचीन परम्परानुसारी भारतीय विद्वान पाश्चात्य लेखकों और उनके मानस पुत्रों से भारतीय संस्कृति और इतिहास की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हों। जिस ढङ्ग से पाश्चात्य लेखकों ने भारतीय भाषा, संस्कृति और इतिहास को नष्ट करने का आयोजन किया था, उसी ढङ्ग से उनका निराकरण किया जाये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: १४ :

आर्य

संस्कृति या जाति

भारत में किसी भी काल में और किसी भी क्षेत्र में आर्य (आर्य्य) नाम की जाति निवास नहीं करती थी। इस नाम की कोई जाति आज भी भारत में नहीं है,और भारत का कोई भी व्यक्ति अपने को आर्य जाति का नहीं कहता है। प्राचीनः काल में भारत की जनता में कोई भी जातिगत विभेद नहीं था। अब्से केवल दो सहस्त्र वर्ष पूर्व भारत देश दो भागों में विभाजित माना जाता था—पञ्चगौड़ और पञ्चद्रविड़। विन्ध्यपर्वत से उत्तर के भाग को पञ्चगौड़ और दक्षिण के भागको पञ्चद्रविड़ कहते थे। संस्कृत कोशों में द्रविड़ शब्द का अर्थ है—पञ्च-द्राविड़ ब्राह्मणों में से कोई एक। स्कन्द पुराण में पञ्चद्राविड़ की व्याख्या इस प्रकार है-कर्णाटाश्चैव तैलङ्गा गुर्जरा राष्ट्रवासिन:। आन्ध्राश्च द्राविड पञ्ज विन्ध्यदक्षिण वासिन:। संस्कृत कोशों में भी 'द्रविड़' शब्द का अर्थ इस प्रकार है—आन्ध्र, कर्नाटक, गुर्जर,तैलङ्ग और महाराष्ट्र देश के निवासियों का सामूहिक नाम। अत: द्रविड़ भारत के उन निवासियों को कहते थे जो विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में रहते थे। द्रविड़ शब्द जाति अभिधान नहीं है अपितु प्रादेशिक है। भारत में आर्य शब्द सदैव संस्कृति को बोधक रहा है जाति का नहीं। दक्षिण भारत के निवासी भी वैसे ही भारतीय हैं जैसे कि उत्तर भारत के निवासी। भारत में जातीय प्रधानता नहीं थी अपितु संस्कृतीय प्रधानता थी। जिस प्रकार उत्तर भारत का कोई निवासी आर्य जाति का नहीं है, उसी प्रकार दक्षिण भारत का कोई निवासी द्राविड़ जाति का नहीं है।

आर्य समाज—दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज को जन्म दिया जो आगे चल कर एक संस्था के रूप में विकसित हो गया। आर्य समाज वैदिक विचारधारा की एक समुचित विचारधारा है। आर्यसमाज के संस्थापक दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म और आर्य (आर्य्य) शब्द के गौरव की ओर ध्यान आकर्षित किया और उसके पश्चात् ही आर्यसमाज से सम्बन्धित व्यक्ति आर्य धर्म तथा संस्कृति में निष्ठावान् होने के कारण अपने को आर्य कहने लगे। इस देश में कभी भी 'आर्य' शब्द जाति वाचक अर्थ में प्रयोग नहीं हुआ है और पाश्चात्य लेखकों के जातिवाचक (Racial) शब्द के अनुसार आर्य नाम की कोई विशिष्ट जाति इस संसार या भारत में न कभी थी और न आज है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन संस्कृत कोशों में 'आर्य' शब्द के साधु अक्षर-विन्यास 'आर्य्य' दिये हुए हैं, यह दोनों शब्द एक ही हैं। आर्य शब्द का प्राचीनकाल से हमारे धर्म ग्रन्थों और संस्कृत साहित्य में निरन्तर प्रयोग हुआ है। इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद, रामायण, महाभारत, स्मृतियों आदि धर्म ग्रन्थों और संस्कृत महाकाव्यों, नाट्य तथा गद्य साहित्य में मिलता है। हमारी भाषा में किसी शब्द के जितने भी अर्थ होते हैं वह सभी अर्थ संस्कृत के प्रमाणिक शब्द कोशों में दिये रहते हैं। भारतीय विद्वानों द्वारा सम्पादित संस्कृत के प्राचीन और प्रामाणिक अनेक शब्द कोश आज भी उपलब्ध हैं, यथा अमर कोश, मेदिनी कोश, हलायुध कोश, शब्द रत्नावली शब्दार्थ कल्पतरु, शब्द कल्पद्रुम, वाचस्पत्यम् आदि। 'आर्य' शब्द जिस जिस प्रकरण से प्रयोग हुआ है उसके उदाहरण भी इनमें से कुछ शब्द कोशों में दिये हुये हैं। शब्द 'आर्य' वि० है, आर्यः सञ्ज्ञा पु० है, आर्या सं० स्त्री है और आर्यम् सं० न० है। इन शब्दों के अर्थ संस्कृत कोशों में इस प्रकार दिये हुये हैं —

आर्य, वि०—(१) योग्य, (२) आदरणीय, (३) सम्माननीय, (४) कुलीन (५) अत्युत्कृष्ट, (६) मनोहर, (७) श्रेष्ठ, (८) उच्चपदस्थ।

भारतीय भाषा और संस्कृति में आर्य शब्द सम्बोधन की आदरपूर्ण पद्धति है; यह शब्द प्रायः नाटकोपयोगी भाषा में सम्मान सूचक विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है, यथा आर्यचाणक्य; आर्या अरुन्धती। साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने पारस्परिक रूप में सम्बोधित करने के हेतु आर्य शब्द के चार नियम निर्देशित किये हैं—

(१) वाच्यौ नटीसूत्रधारावार्यनाम्ना परस्परम्, अर्थात् नटी सूत्रधार को आर्य शब्द से सम्बोधित करे।

(२) व्यस्यत्युत्त मैर्वाच्यो मध्यैरार्येति चाग्रजः अर्थात् अनुज अग्रज को आर्य शब्द से सम्बोधित करे।

(३) (वक्तव्यो) अमात्य आर्येति चेतरैः अर्थात् अमात्य तथा विशिष्ट अधिकारी वर्गों को आर्य शब्द से सम्बोधित किया जाय।

(४) स्वेच्छया नामभिर्विप्रैर्विप्र आर्येति चेतरैः, अर्थात एक शिक्षित व्यक्ति दूसरे शिक्षित व्यक्ति को आर्य शब्द से सम्बोधित करे।

आर्य : सं० पु०—(१) जो व्यक्ति अपने देश के धर्म तथा आचार के प्रति निष्ठावान हो—कर्तव्यमाचरन् कार्यमकर्तव्यमनाचरन्। तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः ॥ (२) पहले तीन वर्णों का नाम, (३) सम्माननीय या आदरनीय पुरुष, प्रतिष्ठित व्यक्तिवृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया—महाभारत; परमार्यः परमां कृपां बभार—बुद्धचरितम् ५.६। (४) श्रेष्ठकुलोत्पन्न पुरुष, सत्कुलोत्पन्न पुरुष, (५) सच्चरित्र पुरुष, उदारचित, शान्तचित्त, (६) स्वामी, (७)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आचार्य, अध्यापक, गुरु, (८) वैश्य, (९) श्वसुर (जैसे 'आर्यपुत्र' में) (१०) मित्र, (११) बुद्धदेव ।

आर्या, सं० स्त्री—(१) गौरी, पार्वती (२) श्वश्रू (३) आदरणीय महिला यत्रार्य रुदती भीता पाण्डवानिदमब्रवीत, महाभारत ३.१२.८७ (४) एक छन्द का नाम, (५) जो सत्य को उत्पन्न हो—आराद् याता तत्त्वेभ्य इति आर्या ।

आर्याम्, सं० न०—(१) धर्म, पुण्य, सदाचार, पवित्रता, नहि दुष्टात्मनामार्यभावसत्यालये चिरम्, रामायण ३,५०,१२, (१) विवेक, विज्ञान, विचारणा कोपमार्येण यो हन्ति स वीरः पुरुशोत्तमः, रामायण ४,३१,६ ।

हमारी भाषा में 'क' एक तद्धित प्रत्यय है, जो सञ्ज्ञा शब्दों के अर्थ को स्पष्ट भी करता है, अतः आर्यः और आर्यकः, आर्या और आर्याका एकार्थक शब्द हैं । संस्कृत शब्द कोशों में इन शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं—

आर्यकः—(१) सम्माननीय या आदरनीय पुरुष, (२) पितामह ।

आर्यका, आर्यिका—सम्मानीय या आदरनीय महिला ।

आर्य्य शब्द में अन्य शब्दों के योग से अनेक यौगिक शब्द बनते हैं । इस प्रकार के शब्द हमारी भाषा में निरन्तर प्रयोग होते चले आ रहे हैं । इन सभी शब्दों के अर्थ संस्कृत कोशों में दिये हुये हैं । जो इस प्रकार हैं—

आर्य-आवर्तः (आर्यावर्तः)—कुलीन, अभिजात, विशिष्ट, उत्तम, श्रेष्ठ, गुणवत व्यक्तियों के रहने का भूभाग, पुण्यभूमि—आर्यावर्तः पुण्यभूमिमध्यं विन्ध्यहिमालयो, अमरकोश, २.१.८ ।

आर्यगणः—माननीय और आदरनीय वर्ग ।

आर्यगुणः—महानुभाव, उदारचरित्, विशिष्टगुणः

आर्यगृह्य वि०—श्रेष्ठ पुरुषों से सम्मानित, श्रेष्ठ पुरुषों का मित्र, श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा उपगम्य ।

आर्य-दुहितृ— श्रेष्ठ और आदरनीय व्यक्ति की पुत्री ।

आर्य-देशः—जिस देश में कुलीन और श्रेष्ठ व्यक्ति रहते हों ।

आर्य-धर्मः—श्रेष्ठ तथा आदरनीय व्यक्तियों का कर्तव्य ।

आर्य-निवासः—माननीय तथा आदरनीय व्यक्तियों का निवास स्थान ।

आर्य-पथः—सदाचार ।

आर्य-पुत्रः— (१) आदरनीय व्यक्ति का पुत्र, (२) आध्यात्मिक गुरु का पुत्र (३) बड़े भाई के पुत्र का सम्मान सूचक पद, (४) पत्नी का पति के लिए सम्मान सूचक पद, (५) सेनापति आदि अधिकारियों का राजकुमार के लिए सम्मान सूचक पद ।

आर्य प्राय (वि)—सम्मानीय व्यक्तियों से सङ्कीर्ण, श्रेष्ठ जनों से परिपूर्ण ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्य-बुद्धिः—महानुभाव, उदारचरित, महामनस् ।
आर्य- ब्राह्मणः—कुलीन ब्राह्मण, सत्कुलजात ब्राह्मण ।
आर्य-भावः—माननीय तथा आदरनीय विचार ।
आर्य-मतिः—उदात्त प्रज्ञा, उदार बुद्धि ।
आर्य-मार्गः—सदाचार, सच्चरित ।
आर्य-मिश्रः—सम्मानीय और आदरणीय व्यक्ति, प्रतिष्ठित व्यक्तियों के लिए आदर सूचक पद ।
आर्य-वाक—शिष्ठ वागि—म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः मनुस्मृति १०,४५ ।
आर्य-वृत्त (वि)—धार्मिक, धर्मशील, पुण्यात्मन् ।
आर्य-वेश (वि)—आदरनीय वेश धारण किये हुये ।
आर्य-शील (वि)—सच्चरित, सत्यवृत, सत्यवादिन् ।
आर्य श्वेतः—श्रेष्ठ तथा आदरनीय व्यक्ति ।
आर्य-सत्यम्—महान सत्य, अत्युत्कृष्ट और अलौकिक सत्य ।
आर्य-हृद्य (वि)—जो श्रेष्ठ व्यक्तियों को रूचीकर हो ।

वैदिक धर्म ग्रन्थों और संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त 'आर्य' (आर्य्य) शब्द प्राकृत साहित्य अर्थात जैन धर्म ग्रन्थों में भी प्रयोग हुआ है । प्राकृत में 'आर्य्य' शब्द 'अज्ज' बनता है । प्राकृत शब्द कोश पाइअ-सद्द-महण्णवों में अज्ज शब्द के अर्थ इस प्रकार दिये हुये हैं—

अज्ज — (१) उत्तम, श्रेष्ठ, (२) मुनि, साधु, (३) सत्य कार्य करने वाला, (४) पूज्य, मान्य, (५) मातामह, (६) पितामह, (७) एक ऋषि का नाम, (८) गोत्र-विशेष, (९) जैन साधु, साधवी और उनकी शाखाओं के पूर्व में यह शब्द प्रायः लगता है, जैसे अज्जवइर, अज्जचंदणा, अज्जपोमिला ।

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि भारत में आर्य (आर्य्य) शब्द किसी काल में भी किसी विशिष्ट जाति के अर्थ में प्रयोग नहीं हुआ है । अतः आर्य नाम की कोई जाति किसी काल में भी भारत या इस संसार में नहीं थीं । 'अनार्य' शब्द से भी किसी अनार्य जाति का बोध नहीं होता है, यह शब्द भी संस्कृत साहित्य में निरन्तर प्रयोग हुआ है जिसके अर्थ संस्कृत कोशों में इस प्रकार दिये हुये हैं—

अनार्य (वि०)—अप्रतिष्ठित, नीच, अधम, असभ्य, दुर्जन, दुश्शील, अकुलीन, दुष्ट । अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात मनुस्मृति १०,६६ । शकुन्तलायामनार्यमाचरितं तेन राज्ञा—अर्थात राजा ने शकुन्तला से दुश्शील व्यवहार किया ।

अनार्यः सं० पु०—म्लेच्छ, अकुलीन जाति का व्यक्ति ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनार्यता—नीचता, अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मा । पुरुषं व्यञ्ज-
यन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ।। मनुस्मृति १०, ५८ ।

भारतीय संस्कृति के अनुसार 'राजा' को स्वामी और 'सन्यासी' को महात्मा कहते थे। इन दोनों के अतिरिक्त समाज के अन्य व्यक्तियों को आर्य (आर्य्यं) तथा आर्या (आर्य्या) शब्द से सम्बोधित किया जाता था। हमारी संस्कृति में 'आर्य' एक आदर सूचक शब्द है और समाज में आज भी इस शब्द को इसी अर्थ में प्रयोग किया जाता है। हमारी भाषा के अन्य शब्दों की भान्ति इस शब्द के भी अक्षर विन्यासों में परिवर्तन होकर यह शब्द भी भ्रष्ट हो गया है। आर्य्य शब्द प्राकृत में 'अज्ज' बनता है और इस शब्द का भ्रष्ट रूप हमारी भाषा में 'जी' हो गया है। किसी व्यक्ति को आदरपूर्वक सम्बोधित करने के हेतु 'जी' शब्द को उस व्यक्ति के नाम के पश्चात् अब भी लगाया जाता है और कभी कभी बोलते समय केवल 'जी' शब्द ही प्रयोग में आता है।

'अनार्य' शब्द का भ्रष्ट रूप 'अनाड़ी' है तथा इस शब्द से आज भी असभ्य या अप्रतिष्ठित व्यक्ति का बोध होता है। वर्णों तथा शब्दों का अशुद्ध उच्चारण करना ही म्लेच्छ अर्थात् अनार्य है तथा शुद्ध उच्चारण करना आर्य है।

हम दिखा चुके हैं कि पाश्चात्य ईसाई धर्म प्रचारकों और लेखकों ने भारतीयों (हिन्दुओं) के धर्म, देश प्रेम और राष्ट्रीय गौरव को विनष्ट करने का एक षड्यन्त्र रचा था जिसका प्रारम्भ मैकाले ने भारत में अङ्गरेजी भाषा के प्रचलन से किया था। मैकाले ने ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी से धन की सहायता लेकर एक जर्मन पादरी फ्रेडरिक मैक्समूलर को अपने घृणित कार्य की पूर्ति के लिए नियुक्त किया था और इस पादरी ने मैकाले की पतित भावना को पूरा करने के हेतु ऋग्वेद का एक अनर्गल, भ्रामक और अशुद्ध अनुवाद प्रकाशित किया था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के हेतु मोनियर विलयम्स ने एक संस्कृत-अङ्गरेजी कोश सम्पादित किया था, जिसकी भूमिका में वह अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखता है कि इस कोश की रचना का उद्देश्य यह है कि इससे अङ्गरेजों को भारतीयों को, ईसाई बनाने की योजना में सफलता प्राप्त हो सके। इस षड्यन्त्र की रचना से पूर्व संस्कृत-जर्मन शब्द-कोश, डा० विलसन के द्वारा सम्पादित संस्कृत-इङ्गलिश शब्द सागर और मैकडानल का प्रैक्टीकल संस्कृत-इङ्गलिश कोश प्रकाशित हुये थे। इन कोशों में 'आर्य्य' शब्द के वही अर्थ दिये हैं जो भारतीय विद्वानों द्वारा सम्पादित संस्कृत कोशों में दिए हुए हैं। सबसे पहले मोनियर विलयम्स ने दुर्बुद्धि और दुष्टाशय से आर्य्य (आर्य) शब्द का एक अर्थ यह भी लिखा—"एक जाति जो मध्य एशिया से भारत में आई थी।" मोनियर विलयम्स ने ही 'आर्य' शब्द के अन्त में 'न' जोड़कर 'आर्यन' शब्द को घड़ा जिससे इस शब्द का सम्बन्ध ईरान से जोड़ा जा सके। इसके पश्चात् जिन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोश सम्पादकों ने मोनियर विलयम्स के संस्कृत-अङ्गरेजी कोश का अन्धानुकरण करके संस्कृत-अङ्गरेजी कोश सम्पादित किये, उन्होंने आर्य शब्द का अर्थ यह भी लिख दिया—'हिन्दु का नाम या ईरान के रहने वालों का नाम।' इसके पश्चात् ही आर्य शब्द हिन्दु जाति का और हिन्दु का पर्यायवाची शब्द समझा जाने लगा।

यहां यह उल्लेखनीय है कि यदि आर्यः शब्द का अर्थ आर्य जाति का पुरुष हो तो आर्या शब्द का अर्थ आर्य जाति की महिला होगा। परन्तु हम दिखा चुके हैं कि 'आर्या' शब्द के अर्थ (१) गौरी, पार्वती, (२) श्वश्रू और (३) सम्मानीय या आदरनीय महिला ही हैं। किसी भी कोश सम्पादक ने आर्या शब्द का अर्थ आर्य जाति की स्त्री नहीं लिखा है।

आर्य्य शब्द का प्रयोग संसार के प्राचीनतम् ग्रन्थ वेदों में हुआ है।

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो वर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ऋग्वेद मं० १, सूक्त ५१, मन्त्र ८॥ उत शूद्रे उतार्ये। अथर्व० कां० १९। सूक्त ६२, मन्त्र १॥

आर्य्य नाम धार्मिक विद्वान आप्त पुरुषों का और इनसे विपरीत जनों का नाम दस्यु, डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान है। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजो का नाम आर्य और शूद्र का नाम अनार्य्य अनाड़ी है। जब वेद ऐसे कहता है तो दूसरे विदेशियों के कपोलकल्पित को बुद्धिमान लोग कभी नहीं मान सकते। देखो सत्यार्थ प्रकाश अष्टमसमुल्लास।

ऋग्वेद में 'आर्य' शब्द का उल्लेख अन्य स्थानों पर भी मिलता है, परन्तु इसका अर्थ कहीं भी जातिवाचक नहीं है।

स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्य सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्रः॥
मं० १, सूक्त १०३, मन्त्र ३।

आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः॥
मं० ६, सूक्त २५, मन्त्र ३॥

ब्रह्म गामश्व जनयन्त ओषधी वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वतां अपः।
सूर्य दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्याव्रता विसृजन्तो अधिक्षमि॥
मं० १०, सूक्त ६५, मन्त्र ११॥

यह बात निश्चित है कि वेद में, वैदिक शास्त्र में और विराट संस्कृत साहित्य में आर्य जाति का कोई संकेत मात्र भी नहीं है।

मार्कण्डेय पुराण में भी 'आर्य' अनार्य शब्दों का प्रयोग उपरोक्त अर्थों में हुआ है। राजा हरिश्चन्द्र की रानी शैव्या ने विश्वामित्र से कहा—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुंच आर्य मुंच तावन्मां यावत् पश्याम्यहं शिशुम् ।
दुर्लभं दर्शनम् तात पुनरस्य भविष्यति ।। ८/५९

अर्थात्—हे आर्य ! मुझे तनिक देर के लिये अपने पुत्र को प्यार कर लेने दो, फिर मैं इसे कहाँ देख सकूँगी ।

विश्वामित्र राजा हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध में कहते हैं—

अथवा किम् मम् ऐतेन साम्ना प्रोक्ते नकारणम् ।
अनार्ये पाप संकल्पे क्रूरे च आनृत वादिनि ।। ८/४३

अर्थात्—जाने दो, मुझे अनार्य पापी, क्रूर, मिथ्यावादी राजा को समझाने बुझाने की आवश्यकता ही क्या है ।

आर्य और अनार्य शब्दों के यही अर्थ बताने वाले सैकड़ों उदाहरण प्राचीन संस्कृत साहित्य से उद्धृत किये जा सकते हैं ।

भारत के जो व्यक्ति भारतीय संस्कृति, आस्था एवं परम्परा को ग्रहण नहीं करते हैं, भारतीयों को उनके देश प्रेम और राष्ट्रीयता पर भ्रम और सन्देह होता है । भारत की आस्था और परम्परा पर विश्वास न रखकर जो व्यक्ति अपने को हिन्दुस्तानी कहते हैं वह पूर्ण रूप से छल और प्रपञ्च का प्रयोग करते हैं । इन व्यक्तियो के नाम न तो भारतीयता के अनुकूल हैं और न विशाल भारत की भूमि के एक कण के प्रति भी इन्हें प्रेम या श्रद्धा है । वे व्यक्ति अपने नामों तक में अरब और इस्राइल के नामों का अन्धानुकरण करते हैं तथा अपने आचार-व्यवहार भेष-भूषा और साज-सज्जा में अरब और इस्राइल के भावों को प्रदर्शित करते हैं । वे हमारे देश की बोली तो बोलते हैं, परन्तु अपने को और अपनी बोली को भारतीयो से भिन्न रखने हेतु हमारे देश की बोली में कतिपय विदेशी शब्दों का प्रयोग करके, उस बोली को अभारतीय लिपि फारसी या रोमन में लिखते हैं । इस प्रकार के विदेशी और अपने विचार के अनुसार गौरव शून्य भारतीय आज भारत को विभिन्न संस्कृतियों, विभिन्न जातियों और विभिन्न धर्मो का एक मिश्रित देश बताते हैं । भारत की यह परिभाषा अत्यन्त घृणित और भयङ्कर रूप से द्वेष की भावना से परिपूरित है तथा इससे अशुद्धऔर अज्ञानमय भारत की दूसरी परिभाषा नहीं हो सकती है । भाषा के रूप में भारत की एक भाषा सरस्वती थी जिसकी साहित्यिक विचार के रूप में केवल एक वैदिक संस्कृति है । भारत की भाषायें और संस्कृति एक ही वृक्ष की शाखायें और उपशाखायं हैं । हमारे देश के प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक जाति के धार्मिक संस्कार एक ही संस्कृति और परम्परा के अनुसार वैदिक ऋचाओं के उच्चारण से आरम्भ होते हैं ।

कतिपय भारतीय राजनैतिक नेताओं का सबसे बड़ा धोका, जिसने एक रीति (फैशन) का रूप धारण कर लिया है यह कहना है कि भारत में निवास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने वाले विदेशी वैसे ही भारतीय हैं जैसे कि भारत के आदि निवासी। किसी भी देश का जो निवासी उस देश की प्राचीन संस्कृति और सभ्यता में विश्वास नहीं रखता है, वह उस देश का नागरिक नहीं माना जा सकता है। आज भी यह विदेशी अपने नाम अरब और इस्राइल के धार्मिक तथा महापुरुषों के नामों पर रखते हैं। जब तक यह अभारतीय अपने नामकरण भारतीय विश्वास, परम्परा, भारतीय महापुरुषों और स्थानीय नाम तथा गुण के अनुसार नहीं करेंगे, तब तक उन्हें भारत से प्रेम और अनुराग नहीं हो सकता है। हम दृढ और स्पस्ट शब्दों में कहते हैं कि वे व्यक्ति भारत में निवास करते हुए भी अभारतीयों के समान ही हैं। सत्य पर आवरण डालकर भारतीय राजनैतिक नेता स्वयम् अन्धकार में हैं। इसी प्रकार हिन्दीं शब्द कोशों के सम्पादक और विश्वविद्यालयों के हिन्दी भाषा विज्ञान के गौरव–शून्य अध्यापक जब इन अभारतीयों के कतिपय शब्दों को हिन्दी भाषा का अङ्ग बताते हैं, तो वे स्वयम् भ्रम और अन्धकार में पड़कर, छात्रों को एक भयङ्कर अशुद्ध मार्ग पर डालते हैं। यदि इन्हें सत्य के दर्शन न हों तो इसमें हमारा क्या दोष है। इस सम्बन्ध में हम केवल इतना ही लिखकर विराम करते हैं—

नालूकोऽपि विलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किम् दूषणम्।

अर्थात यदि उलूक दिन में सूय को नहीं देखता है तो इसमें सूर्य का क्या दोष है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: १५ :

भारत का भाषा सर्वेक्षण

समवत १९४३ वि० में वियेना की ओरियण्टल काङ्ग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा भारत सरकार से यह अनुरोध किया कि वह भारत की भाषाओं का विधि-पूर्वक सर्वेक्षण कराये। शब्दों तथा पत्रों द्वारा इस प्रस्ताव के समर्थक बार्थ, वेण्डल, कावेल, कस्ट, ग्रियर्सन, हार्नले, मैक्समूलर, मोनियर विलियम्स, रोस्टे तथा सेनार्ट थे। समर्थकों में से मैक्समूलर, मोनियर विलियम्स आदि के पतित विचार और कलुषित मनोवृत्ति का परिचय हम दे ही चुके हैं। इस प्रस्ताव को भारत सरकार ने सहानुभूति पूर्वक स्वीकार कर लिया। ब्रिटिश सरकार भारत में जो भी कार्य करती थी वह परोपकार के लिये नहीं होते थे, अपितु वह सरकार की किसी भावना की पूर्ति के हेतु ही होते थे। भारत की भाषाओं का सर्वेक्षण भारतीय भाषाओं की उन्नति के लिए नहीं हुआ था, अपितु इसके पीछे ब्रिटिश साम्राज्य की एक गुप्त भावना थी कि भारत की सभी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके उन प्रत्येक भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद कराया जा सके जिससे मिशनयरियों को उनके कार्य में सहायता मिले और वह भारत की स्थानीय भाषाओं के द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार कर सकें। भाषाओं के सर्वेक्षण का जो आधार बनाया गया था उससे हमारे उपरोक्त कथन का पूर्णतया समर्थन होता है, और वास्तव में भारत के भाषा सर्वेक्षण के पश्चात ब्रिटिश तथा विदेशी बाइबिल सोसइटी, लण्डन, ने विभिन्न भारतीय भाषाओं में बाइबिल के अनुवाद प्रकाशित किये और उनको अधिक मात्रा में समस्त भारत में बिना मूल्य बाण्टे।

भाषा सर्वेक्षण की सीमा—विभिन्न स्थानीय सरकारों से परामर्श के पश्चात मद्रास तथा बर्मा प्रदेशों एवं हैदराबाद और मैसूर राज्यों को इस सर्वेक्षण से पृथक रखने का निर्णय किया गया। इस प्रकार सर्वेक्षण का उन भाषाओं से जिनको द्रविड़ भाषायें कहा गया है, अर्थात तामिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ भाषाओं से कोई सम्बन्ध नहीं था।

सर्वेक्षण का आधार

भारत सरकार ने कुछ वाद-विवाद के पश्चात यह निर्णय किया कि यह सर्वेक्षण प्रमुख रूप से विभिन्न भाषाओं के नमूनों का सङ्कलन होगा, और इस सर्वेक्षण के आधार यह तीन उदाहरण थे :—

(१) आदर्श अनुवाद।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) स्थानीय चुने गये उद्धरण ।

(३) शब्दों एवं वाक्यों की सूची ।

कितनी उपहास जनक बात थी कि आदर्श अनुवाद के लिये जो नमूना निर्धारित किया गया था वह कोई भारतीय कथा न होकर बाइबिल के अतिव्ययी पुत्र (प्रोडिगल सन) की कथा थी। तीसरा नमूना उन आदर्श शब्दों एवं परीक्षित वाक्यों की एक सूची थी जो भारत में बहुत प्रचलित बताई गई थी और जिसका कैम्बेल ने बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी के लिये निर्माण किया था।

इस निर्णय के पश्चात सरकार ने ग्रियर्सन को भाषा सम्बन्धी नमूनों को सङ्कलित करने तथा उन्हें प्रकाशन के लिये सम्पादन करने का कार्यभार सौंपा गया और इस उद्देश्य से विभिन्न स्थानीय अधिकारियों को ग्रियर्सन को आवश्यक सहायता प्रदान करने का आदेश दिया गया।

नमूनों का सङ्ग्रह—इसके पश्चात प्रत्येक जिलाधिकारी को यह आदेश दिया गया कि वह अपने जिले में व्यवहृत प्रत्येक स्थानीय भाषा के तीन नमूने भेजे। इन नमूनों का निर्माण करने में सावधानी रखने का आदेश दिया गया। यहां तक स्मरण रखना आवश्यक है कि इनमें से प्रथक नमूना बाइबिल के अतिव्ययी पुत्र की कथा" का अनुवाद था। इस सम्बन्ध में इस बात पर भी ध्यान दिया गया कि अधिकांश अनुवादक अङ्गरेजी जानने वाले न हों। उन्हें सहायता देने के लिये ब्रिटिश तथा विदेशी बाईबिल सोसाइटी के मिशनरियाँ तथा स्थानीय मिशनरियों की सहायता से इस कथा का अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में कराकर सङ्ग्रहीत किया गया था। यह अनुवाद रोमन लिपि में था। यह सङ्ग्रह "विभिन्न भारतीय भाषाओं में नमूने के अनुवाद" शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ।

द्वितीय नमूने के चुनाव का भार स्थानीय लोगों पर था। परन्तु इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित आदेश दिये गये—(क) यदि कोई स्थानीय लिपि प्रचलित हो तो इस नमूने को उसी में देना चाहिये। (ख) इसका दूसरा रूप रोमन लिपि में होना चाहिये और प्रत्येक पङ्क्ति का शब्दशः अनुवाद उसीके नीचे देना चाहिये। इस द्वितीय नमूने का स्वतन्त्र अनुवाद अच्छी अङ्गरेजी में भी देना था। स्थानीय अधिकारियों को यह भी आदेश दिया गया कि देशी भाषा में अनुवाद करते समय साहित्यिक भाषा का प्रयोग नहीं होना चाहिये, कारण कि इस नमूने का मुख्य लक्ष्य यह है कि इसे प्रत्येक अनुवादक की मातृ भाषा में प्राप्त किया जाय, चाहे वह गँवारू बोली ही क्यों न हो। तीसरे नमूने में आदर्श शब्द एवं वाक्य थे। इन्हें छपे हुये फार्म के रूप में पुस्तकाकार बनवाया गया था। इनमें खाली स्थानों को भरकर भेजना था। लग-भग तीन वर्ष में सब कार्य पूरा हो गया और भारत के अधिकांश जिलाधिकारियों के पास से यह नमूने आ गये। यह थी वह सामग्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसको लेकर ग्रियर्सन इङ्गलैण्ड चला गया और जिसके आधार पर वहाँ जाकर भारत का भाषा सर्वेक्षण नामक ग्रन्थ सम्पादित किया।

भारत की भाषा सर्वेक्षण नामक ग्रन्थ ११ बड़े बड़े खण्डों में प्रकाशित हुआ था। खण्ड ५ व ८ के दो दो भाग हैं, खण्ड १ व ३ के तीन तीन भाग है और खण्ड ९ के चार भाग हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ के २० भाग हैं। इन भागों के अतिरिक्त दो अन्य सङ्ग्रह भी हैं, जिनमें समस्त सर्वेक्षण के लिए वृहत्योग तथा लघुयोग एवं शोधनीय सामग्री है। वृहत्योग में विशेष रूप से उन भाषाओं का विवरण रूप है जो सर्वेक्षण के विविध खण्डों के मुद्रणालय में चले जाने के पश्चात प्राप्त हुये थे। लघु शोधनीय योग में मुद्रणालय आदि प्रकार की अन्य अशुद्धियों को शुद्ध किया गया है। अन्त में तीन परिशिष्ट जोड़े गये हैं। इनमें प्रथम परिशिष्ट में भारत की सभी भाषाओं की वर्गीकृत सूची है। इसके साथ ही सर्वेक्षण के हेतु प्राप्त आङ्कड़ों की सन् १९२२ की जन गणना के आङ्कडों से तुलना की गयी है। दूसरे परिशिष्ट में उन सभी भारतीय भाषाओं की सूची दी है जिनके ग्रामोफोन रेकार्ड इङ्गलेण्ड तथा पेरिस में उपलब्ध हैं। तीसरे परिशिष्ट में सभी भारतीय भाषाओं के नाम हैं।

पाठकों को यह जानने की उत्सुकता होगी कि इतने बड़े ग्रन्थ में क्या लिखा है और क्या सब कुछ ग्रियर्सन का लिखा हुआ है। इस ग्रन्थ के खण्ड १, भाग १ में इस ग्रन्थ की भूमिका है जिसको ग्रियर्सन ने स्वयम् लिखा है या अन्य उन्मादी ईसाई पादरियों की सहायता से लिखा है। खण्ड १, भाग २ में भारत की विभिन्न भाषाओं के १६७ शब्दों की सूची का तुलनात्मक अध्ययन है, यह वही शब्द हैं जो सर्वेक्षण के आधार का भाग (३) थे। इन शब्दों का सङ्ग्रह विभिन्न व्यक्तियों द्वारा हुआ था। खण्ड १, भाग ३ में भारतीय आर्य भाषाओं के कुछ शब्दों का तुलनात्मक कोश है, जिसका सङ्ग्रह लण्डन के प्राच्य विद्या विभाग के प्रो० टर्नर ने किया था। शेष खण्ड और भागों में स्थानीय भाषाओं के उद्धरणों का सङ्ग्रह है। जो भारत के विभिन्न जिलों से मंगाये गये थे, और जो सर्वेक्षण का आधार (२) था। इस प्रकार इस ग्रन्थ की भूमिका अर्थात खण्ड १, भाग १ के अतिरिक्त ग्रियर्सन का लिखा हुआ कुछ भी नहीं है। ग्रियर्सन ने भारतीय संस्कृति, इतिहास तथा भाषा के सम्बन्ध में जो कुछ भी बका है वह इस ग्रन्थ की भूमिका में दिया हुआ है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में भूमिका के अतिरिक्त कुछ भी सामग्री पढ़ने योग्य नहीं है। इस भूमिका में जो भी विचार व्यक्त किये गये हैं वह विक्षिप्त चित्त तथा उन्मादी ईसाईयों और ग्रियर्सन आदि की कलुषित मनोवृत्ति का परिणाम है और वह किसी तथ्य पर आधारित नहीं हैं। भारत की विभिन्न भाषाओं के नमूनों से क्या ग्रियर्सन को हमारे इतिहास, आर्यों का आदिदेश, प्रथम, द्वितीय और तृतीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राकृत भाषाओं का कोई ज्ञान हो सकता था ? सर्वेक्षण द्वारा दक्षिण भारत की भाषाओं के नमूनों का सङ्ग्रह भी नहीं कराया गया था । ग्रियर्सन ने दक्षिण भारत में रहने वाले भारतीयों का इतिहास, उनके आदि देश और उनकी भाषा के सम्बन्ध जो में विचार व्यक्त किये हैं उनका क्या आधार था, यह पाठक स्वयम सोच सकते हैं ।

भारत के भाषा सर्वेक्षण के कार्य से यह आशा की गई थी कि इससे जो भा परिणाम निकलें वह सिद्धान्त रूप में नहीं होंगे अपितु वह तथ्यों का सङ्ग्रह होगा । परन्तु जब यह कार्य ग्रियर्सन जैसे उन्मादी ईसाई के अधिकार में आया तो उसने इस अवसर का पूरा लाभ उठाया और उसने भारतीयों, भारतीय संस्कृति एवं भाषा के सम्बन्ध में जो असत्य और गर्हित विचार प्रकट किये उनका ज्ञान इस ग्रन्थ की भूमिका के अध्ययन से हो सकता है । यद्यपि दक्षिण भारत की भाषायें अर्थात तामिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़, जिनको ग्रियर्सन ने द्रविड़ भाषायें कहा है, इस सर्वेक्षण की सीमा के अन्तर्गत नहीं थी. परन्तु दक्षिण भारतीयों तथा उन भाषाओं के सम्बन्ध में उसने जो विचार व्यक्त किये है, वह उसकी कलुषित मनोवृत्ति का परिणाम था । ग्रियर्सन ने भारत का भाषा सर्वेक्षण की भूमिका, अर्थात खण्ड १, भाग १, में भारतवासियों एवं भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में जो मूल सिद्धान्त निर्धारित किये हैं उनका सारांग इस प्रकार है—

(क) सभी भारतवासी भारत के रहने वाले नहीं हैं । दक्षिण भारत के रहने वाले द्रविड़ परिवार के हैं और यह द्रविड़ भाषा बोलते हैं । उत्तर भारत में रहने वाले आर्य परिवार के हैं, और यह आर्य भाषा-भाषी हैं । द्रविड़ आर आर्य उत्तर पश्चिम की ओर से आकर भारत में बस गये थे ।

(२) संस्कृत भारत की आदि मूल भाषा नहीं है । भारत की आदि मूल भाषा प्रथम प्राकृत थी । लौकिक संस्कृत का उद्भव भी प्रथम प्राकृत की किसी विभाषा से हुआ था ।

(३) भारत की विभिन्न प्रान्तीय भाषायें संस्कृत से विकसित नहीं हुई थीं, अपितु द्वितीय स्तर की प्राकृत भाषाओं से उत्पन्न हुई थी ।

(४) विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ है और उनका परस्पर कोई सम्बन्ध नही है । प्रादेशिक भाषायें संस्कृत की प्रामुखी न बन कर अपने अपने अस्तित्व को ऊपर उठावें ।

(५) दक्षिण भारत और उत्तर भारत की भाषायें एक दूसरे से पूर्णतया प्रतिकूल हैं ।

अब हम ग्रियर्सन के कुछ विचार जो उसने 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' की भूमिका अर्थात खण्ड १, भाग १ में व्यक्त किये हैं, के अनुवाद जो सूचना विभाग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर प्रदेश ने प्रकाशित किया है, से उद्धृत करते हैं, जिनसे हमारा उपरोक्त कथन पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है—

द्रविड़–परिवार के सम्बन्ध में ग्रियर्सन लिखता है—

'द्रविड़ जाति समस्त भारत में फैली हुई है, किन्तु इस परिवार के सभी लोग द्रविड़ भाषायें नहीं बोलते। उत्तर में, इनमें से अनेक लोग आर्य बन गये हैं तथा उन्होंने आर्य भाषायें अपना ली हैं, यद्यपि उनमें अनेक वंश की विशेषतायें सुरक्षित हैं। ··· ··· ··· ··· वास्तव में इनके अन्तर्गत दो महत्व पूर्ण परिवारों के लोग आते हैं। इनमें से एक परिवार है मुण्डा तथा दूसरा है मुख्य रूप से द्रविड़ भाषायें बोलने वाला परिवार'।

वास्तव में मण्डा नाम की कोई भाषा भारत में नहीं बोली जाती है। जिन भाषाओं को ग्रियर्सन 'मुण्डा' कहता है, उन भाषाओं को सन्थाल और कोल आदि जातियां बोलती हैं और उनके नाम 'सन्थाली' और 'कोली' आदि हैं। ग्रियर्सन अपने उपरोक्त नियम का स्वयम खण्डन करता है—

'सर्वेक्षण द्वारा विस्तृत अनुसन्धान के पश्चात यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार के सिद्धान्त के लिए कोई आधार नहीं है। चाहे इन दोनों की ध्वनि प्रणालियों को लें या इनके शब्द-धातु–रूपों एवं शब्दावली को लें, द्रविड़ लोगों का मुण्डा भाषाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है'।

द्रविड़ परिवार के प्रसङ्ग में ग्रियर्सन लिखता है—"हमें यह ज्ञात नहीं है कि द्रविड़ भाषा–भाषी कब से भारत में रह रहें हैं। इतना तो निश्चय प्रतीत होता है कि आर्यों के आगमन के बहुत पहले से ही ये इस देश में वर्तमान थे किन्तु यह कहना कठिन है कि ये यहाँ के आदि निवासी थे अथवा ये भी यहाँ कहीं बाहर से ही आये थे। ··· ··· ··· विशप काल्डवेल तथा अन्य विद्वानों का यह मत है कि आर्य लोगों की भान्ति द्रविड़ लोग भी उत्तर पश्चिम के मार्ग से ही भारत में प्रविष्ट हुये होंगे'।

"वर्तमान समय में द्रविड़ भाषाओं का स्थान दक्षिण भारत है। इसके विपरीत उत्तर भारत में आर्य भाषाओं का क्षेत्र है। ··· ··· ··· ··· इधर अधिकांश द्रविड़ भाषा–भाषी आर्यो की जाति–प्रणाली तथा टूटे फूटे रूप में आर्य भाषा को अपना रहे हैं"।

हम विद् पाठकों को ध्यान दिला दें कि द्रविड़ न किसी जाति का नाम है और न किसी भाषा का ही नाम है। द्रविड़ केवल एक जनपद का नाम है। द्रविड़ जाति, धर्म, वर्ण और भाषा के अनुसार वैसे ही भारतीय हैं जैसे कि उत्तर भारत में रहने वाले भारतीय हैं। द्रविड़ जनपद की मुख्य भाषाओं के नाम हैं, तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़। यह भाषायें भी सरस्वती भाषा से उसी प्रकार विक-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सित हुई हैं जिस प्रकार भारत की अन्य भाषायें।

आर्य शाखा

हमारे देश में आर्य शब्द सदैव संस्कृति का बोधक रहा है, जाति का नहीं। हमारे देश में आर्य नाम की न कोई जाति प्राचीन काल में थी और न आज निवास करती है। परन्तु ग्रियर्सन उत्तर भारत में रहने वालों को आर्य जाति के अन्तर्गत रखता है। ग्रियर्सन, मैक्समूलर आदि ने बड़ी दुर्बुद्धि और प्रयास से इस शब्द का निर्माण किया था। ग्रियर्सन ने आर्यों को एक काल्पनिक परिवार, जिसे वह भारोपीय परिवार कहता है कि एक शाखा बताई है। इसके सम्बन्ध में वह इस प्रकार लिखता है—

'आज हम जिस जन–समूहों को भारोपीय के अन्तर्गत सम्मिलित करते हैं उस परिवार का मूल स्थान, जहां से वह योरोप तथा पश्चिम दक्षिणी एशिया के कुछ भागों में फैला, वर्षों तक विवाद का विषय बना रहा। हम अङ्गरेज स्वर्गीय प्रोफेसर मैक्समूलर द्वारा सावधानी से व्यक्त किये गये इस मत से प्राय: अधिक परिचित हैं कि वह स्थान एशिया में कहीं था'।

भारतीय तथा फारसी भाषा के सम्बन्ध में वह लिखता है—"भारत में आगत आर्यों की भाषा ही वास्तव में भारतीय आर्य भाषाओं की जननी बनी। इसी प्रकार आर्यों की ईरानी शाखा की भाषा से आधुनिक ईरानी कुल की भाषायें विकसित हुई"।

भारतीय आर्य भाषाओं के सम्बन्ध में ग्रियर्सन लिखता है—"ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी में उत्तर भारत में आर्यों की विविध बोलियों से युक्त एक भाषा प्रचलित थी। जन साधारण की नित्य व्यवहार की इस भाषा का क्रमागत विकास वस्तुत: वैदिक युग की बोल चाल की भाषा से हुआ था। इसके समानान्तर ही इन्हीं बोलियों में से एक बोली से ब्राह्मणों के प्रभाव द्वारा एक गौण–भाषा के रूप में लौकिक संस्कृत का विकास हुआ ··· ··· ··· ··· शताब्दियों से भारतीय आर्या–भाषा प्राकृत नाम से पुकारी जाती रही है। ··· ··· ··· वस्तुत: इन्हें भारत वर्ष की प्रथम प्राकृत कहा जा सकता है"। इससे जो भाषा विकसित हुई और जो संस्कृत के समानान्तर विकास के पथ पर अग्रसर होती गयी उसे द्वितीय प्राकृत के नाम से अभिहित किया जा सकता है। ··· ··· ··· ··· अन्त में आधुनिक भाषाओं एवं बोलियों के विकास रूप को तृतीय प्राकृत कह सकते हैं। वस्तुत: यह तृतीय ही हमारे अध्ययन का विषय है"।

लौकिक संस्कृत का उद्भव वेद-भाषा से न बताकर ग्रियर्सन लिखता है कि—'आधुनिक भाषाओं के इस लम्बे विकास के साथ ही साथ लौकिक संस्कृत का उद्भव भी प्रथम प्राकृत की किसी विभाषा से हुआ'।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपभ्रंश के सम्बन्ध में ग्रियर्सन लिखता है—'ब्राह्मण—गुरुकुलों में अध्ययन अध्यापन के कारण जिस प्रकार संस्कृत का रूप स्थिर हो गया था, उसी प्रकार जब प्राकृत में ग्रन्थ रचना होने लगी तो उसका रूप भी बहुत कुछ स्थिर हो गया ... ... प्राकृत रचनाओं में व्यवहृत देश्य (देशी अथवा स्थानीय) शब्द प्रामाणिकता की कोटि में न आ सके और नियमानुकूल साहित्यिक प्राकृत में उनके लिए कोई स्थान नहीं था। ये शब्द स्थिर भी न रह सके क्यों कि स्थानीय भाषाओं में परिवर्तन होने के कारण धीरे-धीरे इनके अर्थ में भी परिवर्तन आता गया। अर्थ परिवर्तन के साथ-साथ ऐसे शब्द प्रायः अप्रचलित हो जाते थे और उनके स्थान पर अन्य शब्द व्यवहृत होने लगते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि समय की प्रगति के साथ-साथ ये प्रबन्ध काव्य जनता के लिए दुर्बोध होते गये और पुनः उन्हें जनता की भाषा में अनूदित करके उनमें देशी शब्द भरे गये। इस प्रकार के ग्रन्थों की स्थानीय प्राकृत को अपभ्रंश कहा गया है'।

हम दिखा चुके हैं कि भारत की भाषाओं में प्रचलित सभी शब्द संस्कृत (सरस्वती) भाषा के हैं। संस्कृत भाषा को विनष्ट करने के लिये वह भारतीय भाषाओं में संस्कृत शब्दों के प्रयोग को अनावश्यक बताता है। यह उसकी दुर्बुद्धि और कलुषित मनोवृत्ति का प्रमाण है। वह लिखता है—'संस्कृत से उधार लिए गये शब्द तत्समकहलाते थे। तत्सम का अर्थ तत् + सम, अर्थात (संस्कृत) के समान। मूल प्राकृत शब्द जो सीधे प्रथम प्राकृत से वंश परम्परा रूप में आये थे, तद्भव कहलाये। तद्भव का मूल अर्थ है, तत् + भव, अर्थात उस (संस्कृत) से उत्पन्न (यहाँ संस्कृत शब्द को भी व्यापक अर्थ में लेना चाहिए। वास्तव में इसका उस प्रथम प्राकृत से तात्पर्य है जिसकी एक विभाषा से लौकिक अथवा पाणिनीय संस्कृत का विकास हुआ था)।

'हम देखते हैं कि गत कई सौ वर्षों से, लौकिक संस्कृत सशक्त रीति से आधुनिक भाषाओं के शब्द समूह पर ही संस्कृत का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होता है, इन भाषाओं के व्याकरण पर बहुत कम प्रभाव पड़ा है। वैदिक युग से ही आधुनिक भाषायें अपने विकास पथ पर अग्रसर होती आ रही हैं। कुछ बातों में संस्कृत ने इनके मार्ग में अवरोध भी उपस्थित किया किन्तु वह इनकी प्रगति रोक न सकी — ... ... इतना ही नहीं, संस्कृत से उधार लिये गये शब्द इन भाषाओं में उसी रूप में व्यवहृत होते हैं जिस रूप में विदेशी शब्द'। उपरोक्त कथन से पूर्णतया स्पष्ट होता है कि ग्रियर्सन जैसे दुर्बुद्धि व्यक्ति को संस्कृत एवं भारतीय भाषाओं का कितना ज्ञान था। जो उपरोक्त सिद्धान्त उसने निर्धारित किये हैं उनके आधार में कोई सत्य या तथ्य है, या वह उसकी दुर्बुद्धि तथा कलुषित मनोवृत्ति का ही परिणाम था। इसी प्रसङ्ग में ग्रियर्सन आगे लिखता है—

पिछली शती से मुद्रणकला के प्रसार तथा शिक्षा के प्रचार से कतिपय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषाओं में तत्सम शब्दों के प्रयोग का एक लोकाचार (फैशन) सा चल पड़ा है। ... — ... — उन्नीसवीं शती के आरम्भ में लिखित एक बङ्गला की पुस्तक के शब्दों की वास्तविक गणना करके यह दिखलाया गया है कि उसमें विशुद्ध संस्कृत शब्दों की सङ्ख्या अट्ठासी प्रतिशत है और उसमें से प्रत्येक शब्द अनावश्यक है, क्यों कि उसके स्थान पर प्रचलित घरेलू शब्दों का व्यवहार किया जा सकता था। इसका परिणाम भी बहुत बुरा हुआ है। भाषा यहाँ दो वर्गो में विभाजित हो गई है। इनमें एक तो सर्वसाधारण द्वारा समझे जाने वाली भाषा है और दूसरी साहित्यिक भाषा है जिसका प्रयोग मुद्रित पुस्तकों में होता है और जो संस्कृत न जानने वालों के लिये दुर्बोध है। इस प्रकार अधिकाँश जनता का साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु साहित्य की रचना करने वालों के लिये यह साधारण सी बात है"।

उपरोक्त कथन ग्रियर्सन की दुर्बुद्धि और कलुषित मनोवृत्ति का एक उदाहरण है। इसी प्रसङ्ग में वह किस निर्लज्जता के साथ कितनी उपहास जनक और मूर्खता की बात बकता है—'बङ्गला के संस्कृतगर्भित होने का कारण अङ्गरेजों का हुगली में आबाद होना है क्यों कि इसी के परिणाम स्वरूप पूर्वी भारत में विद्वत्ता एवं ज्ञान का पुनरुत्थान हुआ"।

इसके पश्चात ग्रियर्सन बङ्गवासियों को निर्लज्जता पूर्वक मूर्खता और अज्ञानता का उपदेश देकर कहता है कि वह अपनी भाषा में संस्कृत शब्दों का व्यवहार न करें—कितना दुःसाहस था इन धूर्त फिरङ्गियों का। इस प्रकार ग्रियर्सन कितने स्पष्ट रूप से संस्कृत के प्रति अपनी पूर्ण घृणा को व्यक्त करता है, वह लिखता है—

स्विपट का कथन है कि जो दूसरों के अनुदान पर निर्भर करता है वह सदैव निर्धन रहता है और भाषा के रूप में बङ्गला की ठीक यही दशा हुई। उसमें सदैव संस्कृत के ऐसे शब्द आते रहे जिन्हें वह पचा नही पाती और इस कारण उसका विकास अवरुद्ध हो गया। इस सम्बन्ध में बीम्स की उपमा तो और सुन्दर है। उन के अनुसार बङ्गला एक वयस्क बालक के समान है जो उस समय भी अपनी माँ का अञ्चल थामे हुमे है तथा उसकी सहायता का इच्छुक है जब उसे स्वयम् अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिये। यह प्रसन्नता की बात है कि कुछ वर्षों से कतिपय अत्यन्त उत्कृष्ट बङ्गला लेखकों ने अपनी भाषा की इस असामर्थता का अनुभव किया है और गत पच्चीस बर्षों से ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है जिनमें संस्कृत के उन भारी-भरकम शब्दों का परित्याग किया गया है जो उसकी गति के मार्ग को अवरुद्ध किये हुये थे। यह बड़ा आशा प्रद शकुन है किन्तु अब भी बहुत कुछ करना शेष है। संस्कृत से शब्द उधार लेने के सम्बन्ध में बङ्गला में वड़ा मोह है और अब तक उसमें देशानुकूल मनोहर एवं ओजपूर्ण रचना सम्भव नहीं है जब तक कोई महान प्रतिभाशाली व्यक्ति उत्पन्न होकर उसे इस इन्द्र जाल से मुक्त नहीं करता'।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बङ्गला के पश्चात ग्रियर्सन हिन्दी भाषा भाषियों को भाषा की विभिन्नता के काल्पनिक जाल में फँसाने का प्रयत्न करता है। हिन्दी, जिसका एक भी शब्द संस्कृत से भिन्न नहीं है, के सम्बन्ध में लगभग वही विचार व्यक्त करता है जो उसने बङ्गला के सम्बन्ध में व्यक्त किये हैं। वह लिखता है—

"अन्य आधुनिक भाषायें, विशेषतया हिन्दी, इसी प्राणघातक दिशा की ओर अग्रसर हो रही है। आजकल हिन्दी साहित्य का केन्द्र स्थान वाराणसी है और यहां संस्कृत के पण्डितों का प्रभुत्व है किन्तु बङ्गला की भान्ति इस बात की आवश्यकता नहीं है कि वह संस्कृत का मुँह देखे। जिन बोलियों से हिन्दी का उद्‌भव हुआ है वह गत पान्च सौ वर्षों से स्वयं इतनी समर्थ रही है कि बाह्य सहायता के बिना ही ये किन्हीं भी ऐसे विचारों को जो मानव-मस्तिष्क में आ सकते हैं स्पष्टतया प्रकट कर सकती है। इसका अपना शब्द समूह विशाल है और इसमें सूक्ष्म विचारों को प्रकट करने की पूर्ण शक्ति है। इसके प्राचीन साहित्य में कल्पना की ऊँची उड़ान तथा ऐसी धार्मिक भावनाओं की ओजपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है जिनका प्रादुर्भाव एशिया में हुआ है। इसमें ऐसे दर्शन तथा अलङ्कार सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना हुई है जिसमें संस्कृत के महान लेखकों की भान्ति ही, अति सूक्ष्म दृष्टि से, विषयों का प्रतिपादन किया गया है। इन ग्रन्थों में कठनाई से ऐसे पारिभाषिक शब्द मिलते हैं जिन्हें शताब्दियों से मान्यता न प्राप्त हो। यद्यपि हिन्दी का शब्द-समूह इतना सम्पन्न है और उसमें भावों की अभिव्यक्ति के लिए अङ्गरेजी से कम क्षमता नहीं है तथापि इसमें इधर ऐसी पुस्तकों को प्रणयन करने का लोकाचार हो गया है जिनका उत्तर-भारत के लाखों लोग उपयोग नहीं कर सकते और जिनमें लेखकों ने ऐसा पाण्डित्य प्रदर्शित किया है जिसका आनन्द संस्कृत जानने वाले थोड़े पण्डित ही ले सकते हैं'।

कितनी उपहास जनक बात है कि ग्रियर्सन उपरोक्त कथन का कारण अङ्गरेजी का शक्तिशाली प्रभाव बताता है। इसके पश्चात वह निर्लज्जता पूर्वक उपदेश देता है कि हिन्दी में संस्कृत शब्दों के व्यवहार को समाप्त कर देना चाहिये। वह लिखता है—दुर्भाग्यवश अङ्गरेजी का अत्यधिक शक्तिशाली प्रभाव, बहुत दिनों तक संस्कृत प्रेमी लोगों के पक्ष में रहा है। इस संस्कृत निष्ठ हिन्दी का प्रयोग मिशनरियों ने अति विस्तृत रूप में किया है और पिछले कुछ वर्षों तक बाइबिल के समस्त अनुवाद इसी में होते रहे हैं। ... ... मेरा यह मत है कि संस्कृत से उधार लेने की क्रिया यहाँ समाप्त भी कर देनी चाहिये। यदि कतिपय लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक नेतृत्व के लिये तैयार हो जायें तो आज भी हिन्दी को बङ्गला के दुर्भाग्य से बचाय जा सकता है। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि इस प्रश्न से सम्बन्ध रखने वाले शिक्षाधिकारियों द्वारा यह दूरदर्शित पूर्ण कार्य किया जा रहा है'। इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कथन से पूर्णतया सिद्ध होता है कि ग्रियर्सन को हिन्दी भाषा का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं था। उसने "भारत का भाषा सर्वेक्षण" की भूमिका में जो कुछ भी लिखा है वह उसकी कलुषित मनोवृत्ति का ही परिणाम था।

आर्य भाषाओं में द्रविड़ भाषा के शब्द

ब्रिटिश साम्राज्य का भारत का भाषा सर्वेक्षण कराने से एक उद्देश्य यह भी था कि भारत के विभिन्न प्रादेशिक निवासियों में भाषा की विभिन्नता के आधार पर फूट डाली जाये। आर्य द्रविड़ विवाद अत्यन्त नूतन और कृत्रिम है, जिसका ग्रियर्सन जैसे सत्तालोलुप व्यक्तियों ने बहुत प्रयास से निर्माण किया था। उसका कथन है कि "पश्चिमोत्तर मार्ग से भारत में प्रवेश करने वाले आर्य प्रारम्भिक युग के द्रविड़ों के सम्पर्क में आये। इन आगन्तुकों ने उनसे अन्तर्जातीय विवाह किये तथा उनके अनेक देवताओं और रीति रिवाजों को अपना लिया। भाषा के क्षेत्र में आर्यों ने द्रविड़ों के कुछ शब्दों को ग्रहण किया। ... ... मेरा अपना विचार है कि द्रविड़ भाषा से आगत शब्दों के सम्बन्ध में जो इधर विद्वानों के विचार हैं उनसे कहीं अधिक शब्द आये। ... ... आर्य भाषा में द्रविड़ भाषा से अनेक शब्द सीधे भी आये"। वह लिखता है—"कि इस प्रकार के आगत शब्दों के मूल अर्थ में परिवर्तन हो जाता है और इनके अर्थ प्रायः घृणस्पद हो जाते हैं। उदाहणार्थ द्रविड़ भाषा में 'पिल्लई' का अर्थ पुत्र होता है किन्तु जब यही शब्द भारतीय आर्य भाषा में आता है तो इसका अर्थ 'पिल्ला' अर्थात् कुत्ते का बच्चा हो जाता हैं। ऐसी अवस्था में यही आशा भी की जाती है"।

उपरोक्त कथन में कितने स्पष्ट शब्दों में ग्रियर्सन ने अपनी कलुषित मनोवृत्ति का प्रमाण दिया है। हम इस सम्बन्ध में अधिक कहना नहीं चाहते, परन्तु हम ग्रियर्सन महोदय को यह अवश्य बताना चाहते हैं कि यदि कोई छदमवेशी अज्ञानी, विद्वान का रूप धारण करके, भाषा का आश्रय लेकर, दूसरों के लिए इस प्रकार की असत्य बातें करता है, तो उस व्यक्ति को खरे शब्दों में शूकर पिल्ला कहा जाता है। पिल्लई शब्द दक्षिणी ब्राह्मणों की एक उपाधी है और इस शब्द का 'पिल्ला' शब्द से कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारी भाषा में शब्दों का अर्थ परिवर्तन नहीं होता है। पिल्ला शब्द हमारी ही भाषा का शब्द है, इसके सम्बन्ध में हम विस्तार से अग्रिम पृष्ठों पर लिखेंगे। हमारी भाषा सरस्वती और संस्कृत में कोई भी शब्द किसी अन्य भाषा का नहीं है। तत्कालीन भारत में अङ्ग्रेजी शासन का लिङ्ग्विस्टिक सर्वे आव् इण्डिया नामक ग्रन्थ प्रकाशित कराने के पीछे जो गुप्त रहस्य था उसका नग्न स्वरूप इसी एक शब्द से हमारे सम्मुख नाचने लगता है अनुताप और दुःख का विषय है कि आज भी भारत शासन इसी प्रकार के कलङ्कित ग्रन्थों को पुनः प्रकाशित करने के हेतु अनुदान प्रदान कर रहा है तथा भारत के उच्च पदासीन नेता इस प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के कार्यों की प्रशंसा करते हैं।

आर्य भाषाओं पर मुण्डा भाषाओं का प्रभाव :

ग्रियर्सन ने भारत के कुछ वनवासियों की भाषाओं को मुण्डा भाषा नाम दिया है। मुण्डा नाम की कोई भाषा किसी समय भी भारत में नहीं बोली जाती थी। जिन भाषाओं को वह मुण्डा कहता है, वास्तव में उस भाषाओं से उसका तात्पर्य सन्थाली, कोली आदि बोलियों से है, जो प्राचीन काल में वनवासी बोलते थे और आज भी उन्हीं क्षेत्रों में बोली जाती है। यह बोलियां भाषायें नहीं हैं। यह अनार्य बोलियां हैं। आर्य भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जो पुर-वासी बोलते थे, तथा अनार्य भाषा वनवासी बोला करते थे। वनवासियों की बोलियों का कोई भी शब्द हमारी भाषा में प्रचलित नहीं है। ग्रियर्सन का कथन है कि यह भाषायें आर्यों की विजय के पूर्व ही, गङ्गा के मैदान से द्राविड़ों द्वारा समाप्त कर दी गई थीं। किन्तु प्राचीन मुण्डा तथा आस्ट्रो-एशियाई भाषाओं के कतिपय शब्द संस्कृत में मिलते हैं। वह कहता है कि—"आधुनिक आर्य भाषाओं में जो बीस बीस करके गणना होती है वह भी मुण्डा का ही अवशेष है। भारतीय आर्य भाषाओं की अङ्क-प्रणाली निश्चित रूप से दशमलव पद्धति पर है। गणना के लिये कोड़ी शब्द का भी प्रयोग होता है और गङ्गा के किनारे के पास के क्षेत्रों में अशिक्षित लोग बड़ी सङ्ख्याओं के लिए इसका प्रयोग करते हैं। उदाहरण बावन की सङ्ख्या को वे 'दो कोड़ी बारह' के रूप में प्रकट करते हैं। बीस बीस करके गिनना मुण्डा भाषाओं की एक विशेषता है'।

ग्रियर्सन का यह कथन भ्रामक और निर्मूल है। 'कोड़ी' शब्द हमारी भाषा का ही प्रचलित शब्द है। सरस्वती भाषा में कोई भी शब्द किसी अन्य भाषा से नहीं आया है। कोड़ी शब्द सरस्वती भाषा का शब्द है और संस्कृत कोशों में उपलब्ध है। इस शब्द का साधु रूप 'कोटिः–कोटी' है। संस्कृत के अनेक शब्दों में प्रयुक्त 'ट' का उच्चारण 'ड़' होता है—देखो इस पुस्तिका का 'ध्वनि-विचार,' अध्याय। मोनियर विलियम्स ने संस्कृत इङ्गलिश कोश में इस शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है—'पुरानी पद्धति के अनुसार सबसे बड़ी सङ्ख्या,' परन्तु इसके पश्चात उसने कोष्ट के भीतर लिख दिया—'अर्थात एक करोड़'। करोड़ सबसे बड़ी सङ्ख्या नहीं है। करोड़ के पश्चात तो अनेक सङ्ख्यायें होती हैं, अर्थात अरब, खर्ब, नील पद्म, शङ्ख महा शङ्ख। पुरानी पद्धति के अनुसार सबसे बड़ी सङ्ख्या बीस होती है, और यही कोड़ी का अर्थ भी है तुलसीदास ने भी रामचरित मानस में इस शब्द को बीस के ही अर्थ में प्रयोग किया है।

काटेहिं पर कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
विनय न मान खगेश सुनु डाटेहिं पइ नव नींच॥ सुन्दर, दो—५८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहां कोटि का अर्थ कोड़ी अर्थात बीस ही है। इसका अर्थ करोड़ असङ्गत है। खरी बोली में आज भी अधिक सङ्ख्या के लिए 'कुरड' शब्द प्रचलित है करोड़ का साधु शब्द क्रोड ही है, जो क्रुड धातु से सिद्ध होता है। 'कोटि:, कोटी' शब्द का प्रयोग भारत के प्राचीन ग्रन्थों में भी बीस के अर्थ में हुआ है—

कोटि सहस्त्रं प्रददौ ब्राह्मणानां महात्मनाम। महाभारत २.४५.२९

अर्थात उन्होंने महात्मा ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में बीस सहस्त्र (सहस्त्र कोटी) स्वर्ण मुद्रायें प्रदान कीं।

योनि कोटि सहस्त्रेषु सृनीश्चारयान्तरात्मन: ।। मनुस्मृति ६.६३

अर्थात इस अन्तरात्मा का बीस सहस्त्र योनियों में पैदा होने का चिन्तन करें।

निर्बन्धसंजातरुषार्थ कार्श्यमचिन्तयित्वा गुरुणाहमुक्त: ।

वित्तस्य विद्यापरिसंख्यया मे कोटीश्चतस्त्रो दश चाहरेति ।। रघुवंश ५.२१

अर्थात मेरे अधिक आग्रह करने पर गुरू जो क्रुद्ध हो गये, और मेरी दरिद्रता का विचार किये विना ही बोले, कि मुझसे प्राप्त चौदह विद्याओं की गणना के अनुसार चौदह कोड़ी (२८०) मुद्रा मुझे दे दो।

उपसंहार

ग्रियर्सन ने 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' नामक ग्रन्थ की भूमिका में जो विचार व्यक्त किये हैं, हमने उनका संक्षिप्त रूप में वर्णन किया है। पाठक स्वयम् देख सकते हैं कि इन विचारों का आधार बाइबिल के 'अपव्ययी पुत्र की कथा' का भारतीय भाषाओं में अनुवाद नहीं हो सकता था। यह विचार उस षड्यन्त्र के अन्तर्गत व्यक्त किये गये थे जिसका आयोजन ब्रिटिश शासन द्वारा भारतीय धर्म, इतिहास, संस्कृति और भाषा को नष्ट करने के लिये किया गया था। इस कार्य के पीछे सत्य शोध की भावना नहीं थी अपितु राजनैतिक अस्तित्व को चिरकाल तक जीवित रखने की लालसा थी। ब्रिटिश लेखकों के सम्वन्ध में यह बात समझ में आती है कि अङ्गरेज जाति की प्रभुता को जीवित रखने के हेतु यह कार्य किया, परन्तु हमें ही नहीं भारत के प्रत्येक स्वतन्त्र विचार चेता व्यक्ति को उस समय महान दु:ख होता है कि जब भारत रक्त प्रधान व्यक्ति अपने हिय और कपाल की दृष्टि में पूर्ण रूप से धूल झोंक कर अथवा फोड़ कर अङ्गरेज लेखकों के सिद्धान्तों और विचारों का समर्थन करने लगते हैं अपितु उनके द्वारा सङ्केतिक गति और ताल पर उनसे भी अधिक मतवाले होकर नृत्य करने लगते हैं। यदि हमारे भारतीय विद्वानों ने अपने हृदय में राष्ट्र गौरव को थोड़ा सा भी स्थान देकर अपनी भाषा और भारत के सम्वन्ध में चिन्तन किया होता तो इनकी वाणी में दासता की चाटुकारता न होती। पाश्चात्य प्रणाली से शिक्षा दीक्षा प्राप्त हिन्दी भाषा विज्ञान के लेखकों को तो यह प्रिय था कि वह मैक्समूलर, ग्रियर्सन आदि के विचारों को अधिक प्रचा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रित करें और उन्हें महान तत्व वेता और शोध करता का रूप दें, जिससे प्रान्तीय ब्रिटिश सरकार की उन पर कृपा हो, उन्हें उपाधियों से भूषित किया जाय और विश्व-विद्यालयों में स्थान मिले। हमें खेद है और दुःख के साथ लिखना पड़ा रहा है कि संस्कृत विद्वान तथा अध्येता और विशेषतः कुरु प्रदेश के विद्वान इस सङ्घर्षमय काल में भी कूप मण्डूक बने हुये हैं। उन्हें इस बात का ज्ञान ही नहीं हैं कि भारत के इतिहास, सरस्वती तथा संस्कृत भाषा को नष्ट करने के लिए लग-भग पन्दरह सोलह दशाब्दियों से कितना भारी कुचक्र पाश्चात्त्य लेखकों ने भाषा विज्ञान के नाम पर चला रक्खा है और उनकी शिक्षा दीक्षा प्राप्त करके हमारे भारतीय विद्वानों के मस्तिक भी कितने विकृत तथा दूषित हो चुके हैं।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: १६ :

सञ्ज्ञावाची शब्दों के लिङ्ग

हमारी भाषा के सम्बन्ध में अनेक अनर्गल, भ्रामक और दूषित विचार व्यक्त रूप से प्रचलित हैं। इनके सम्बन्ध में जब अनुशीलन किया जाता है तो इस प्रकार के जन्म देने वाले महानुभावों को सरलता से दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम वह योरोपीय लेखक हैं जिन्हें हम फिरङ्गी वर्ग की संज्ञा दे सकते हैं और जो भारत में पादरी (ईसाई धर्म प्रचारक) के रूप में आये थे। दूसरे वह भारतीय लेखक हैं जिन्हें हम शिष्टता वश कोई विशेषण न देकर यह कह सकते हैं कि इन्हों ने अपनी भाषा को स्वयम् समझने का तनिक भी कष्ट न किया, अथवा उनके मस्तिष्क इतने हीन थे कि अपने गौरव का अनुभव न करते हुए जो कुछ अशिक्षित फिरङ्गियों ने हमारी भाषा और उसके सम्बन्ध में लिख दिया उसी का उहोंने पूर्ण रूपेण अन्धानुकरण किया।

प्राचीन काल में व्याकरण शास्त्र का जितना और जैसा विस्तृत विवेचन हमारी भाषा में हुआ हैं वैसा और उतना विवेचन संसार की किसी भी भाषा में नहीं हुआ है। जैसे कायमल (रोग) चिकित्सा से दूर होता है, बुद्धिमल (राग-द्वेष)अध्यातम शास्त्र से दूर होता है, वैसे ही वाणी का मल(अपभ्रंश व्याकरण द्वारा दूरकिया जाता हैं। अतः भाषा की शुद्धता की ज्ञान प्राप्ति के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य होता है। भाषा के परम्परागत इतिहास का ज्ञान प्राप्त करके, भाषा के शुद्ध रूप के ही व्याकरण का अध्ययन लाभदायक होता है। यदि हिन्दी (खरी बोली) का व्याकरण उसके शब्दो के साधु रूप का ज्ञान करने के पश्चात. प्राचीन परम्परानुसार लिखा गया होता तो मैक्समूलर और ग्रियर्सन आदि योरोपीय लेखकों के दुर्बुद्धि और पापात्मक विचार हमारी भाषा के व्याकरण की ज्योति में भस्म हो जाते। उन लेखकों को काल्पनिक भाषा, भारो--पीय परिवार, प्रथम, द्वितीय और तृतीय प्राकृत आदि दुर्बुद्धि सिद्धान्तों को व्यक्त करने का साहस भी नहीं होता। हमारी भाषा के लिङ्गानुशासन का नियम ही वह महामन्त्र है जो प्रमादी योरोपीय लेखकों को उनके मस्तिक की आंधियों से निरोग कर देता। संस्कृत भाषा की जनसाधारण के ऊपर अनेक अनुकम्पाओं में से एक यह भी है कि उसके शब्दों के रूपों में आदि काल से आज तक कभी कोई परि-नहीं हुआ। अतः सरस्वती भाषा के शब्दों के साधु रूप आज तक संस्कृत कोशों में सुरक्षित हैं तथा उपलब्ध हैं। संस्कृत व्याकरण में व्युत्पत्ति द्वारा शब्दों के साधुत्व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की ज्ञान प्राप्ति के नियम भाषा विज्ञान का वह चमत्कार है जो आज तक संसार की किसी भी भाषा में उपलब्ध नहीं है। इन नियमों का सङ्ग्रह पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में आज से ४९०० वर्ष पूर्व किया था। पाणिनि से पूर्व सैकड़ों व्याकरण आचार्य इस पवित्र भारत भूमि पर हो चुके हैं जिनकी ज्योति इस भाषा को आलोकित कर चुकी थी। इसके विपरीत यह भली प्रकार विदित है कि आज तक केवल दो सहस्त्र वर्ष पूर्व योरोप की संस्कृति गडरयों तथा चरवाहों की थी जिसका ज्ञान हमें बाइबिल से होता है।

कथ्य भाषा सरस्वती के रूप में धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहा और अब से कुछ ही शताब्दियों पूर्व विद्वानों को यह भी ज्ञान न रहा कि इस भाषा से ही कभी संस्कृत भाषा का निर्माण हुआ था तथा प्राचीन काल में दोनों भाषाओं का एक हीं स्वरूप था। भारतीय विद्वान जब कभी भी व्याकरण शास्त्र पर किसी ग्रन्थ की रचना करते थे तो वह संस्कृत का ही व्याकरण लिखते थे। भारतीय विद्वानों को यह भी ध्यान न रहा कि जन-साधारण की कथ्य भाषा का भी कोई व्याकरण था और है। अत: किसी भी भारतीय विद्वान न हमारी कथ्य भाषा का व्याकरण लिखने का कष्ट ही नहीं किया।

जब योरोपीय पादरी भारत में ईसाई धर्म प्रचारक बनकर आये तो उन्हें जनसाधारण की सामान्य भाषा का ही ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता हुई। भारत का भाषा सर्वेक्षण के लिए भी ग्रियर्सन ने बाइबिल के 'अपव्ययी पूत्र' की कथा का अनुवाद रोमन लिपि में ब्रिटिश तथा विदेशी बाइबिल सोसाइटी के मिशनरियों (धर्म प्रचारकों) की सहायता से जन-साधारण की भाषा में कराया था और इस अनुवाद में किसी भी भारतीय विद्वान से सहायता लेना निषेध था। अत: इन पादरियों को हमारी भाषा के केवल अशिष्ट या भ्रष्ट रूप का ही ज्ञान हो सका। भारत में रहने वाले पादरियों को इस भाषा को योरोप के अन्य पादरियों को सिखाने की आवश्यकता थी जिससे वह भारत में आने के पूर्व यहाँ की भाषा का कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकें और भारत में आते ही ईसाई धर्म प्रचार का कार्य कर सकें और उन का यहाँ की भाषा सीखने में समय नष्ट न हो। इस कार्य के लिए भारतीय पादरियों को इस अशिष्ट भाषा जिसमें शब्दों के भ्रष्ट रूप प्रचलित थे के व्याकरण की आवश्यकता पड़ी जो उस समय उपलब्ध नहीं था। जो व्याकरण उपलब्ध भी थे वह अङ्गरेजी भाषा में लिखे हुये नहीं थे। भारत में रहने वाले योरोपीय पादरियों ने उस भाषा जिसमें सरस्वती भाषा के शब्दों के भ्रष्ट रूप प्रचलित थे के व्याकरण अङ्गरेजी भाषा में अङ्गरेजी भाषा की पद्धति पर लिखने आरम्भ कर दिये, और इन पादरियों के लिखे अनेक व्याकरण प्रकाशित हुये। पादरी एथरिङ्गटन का अङ्गरेजी भाषा में लिखित हिन्दी का व्याकरण प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात पादरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

केलौग का लिखा 'ए ग्रामर आव हिन्दी लेङ्ग्वेज' नामक प्रकाशित हुआ।

तत्कालीन भारत में ब्रिटिश सरकार के शिक्षा-विभाग की भाषा सम्बन्धी नीति इतनी दूषित थी कि वे सरस्वती भाषा के शुद्ध शब्दों को हिन्दी भाषा के शब्द ही नहीं मानते थे। शिक्षा विभाग अङ्गरेजी व्याकरण की पद्धति पर लिखे गये व्याकरणों को ही पाठ्य-क्रम में स्थान देता था। उनका कथन था कि अङ्गरेजी व्याकरण के अनुरुप व्याकरण द्वारा हिन्दी सीखें छात्रों को अङ्गरेजी सीखने में पर्याप्त सुविधा होती है। अतः छात्रों के पाठ्यक्रम के लिए लिखे गये हिन्दी व्याकरण में भी अङ्गरेजी भाषा के व्याकरण का आदर्श स्वीकार किया गया था। श्यामसुन्दर दास ने एक हिन्दी व्याकरण लिखा जिसकी प्रस्तावना में जो उसने अङ्गरेजी भाषा में लिखी है उसका अनुवाद यह है—'इस व्याकरण के निर्माण में मैंने संस्कृत व्याकरण के अनुरूप हिन्दी व्याकरण लिखने की पिष्टपेषित पद्धति का अनुसरण नहीं किया है। हिन्दी यद्यपि मूलतः संस्कृत से ही उत्पन्न हुई है परन्तु अब उसने इतना भिन्न और स्वतन्त्र रूप ग्रहण कर लिया है कि उपर्युक्त पद्धति का किसी प्रकार भी उचित तथा निराबाध नहीं है। इसके अतिरिक्त आज प्रत्येक विद्यार्थी की शिक्षा अङ्गरेजी भाषा के सन्तोषजनक ज्ञान के बिना अपूर्ण समझी जाती है। यदि अङ्गरेजी भाषा की व्याकरण पद्धति को आदर्श मानकर हिन्दी व्याकरण की रचना की जाय तो उससे अङ्गरेजी भाषा सीखने में सुविधा होती है। अतः जिस सिद्धान्त पर अब तक हिन्दी के व्याकरण लिखे गये थे, मैंने उसे छोड़कर आधुनिक अङ्गरेजी व्याकरण के निर्देशों को स्वीकार किया है'।

तदन्तर भारतीय लेखकों ने हिन्दी के अनेक व्याकरण लिखे परन्तु उनमें से किसी भी व्याकरण की रचना पराचीन परम्परानुसार नहीं हुई। किसी भी वैयाकरण ने हिन्दी में प्रचलित शब्दों के साधु रूप (सरस्वती भाषा) का ज्ञान प्राप्त करके कथ्य भाषा का व्याकरण लिखने का प्रयास नहीं किया। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि सरस्वती (कथ्य भाषा) और संस्कृत भाषाओं का व्याकरण एक नहीं है, परन्तु दोनों भाषाओं के शब्द, उन शब्दों की व्याकरण कोटियां तथा अर्थ, और शब्द अर्थ का सम्बन्ध एक ही है। संस्कृत भाषा की अपेक्षा सरस्वती भाषा का व्याकरण अत्यन्त सरल है। संवत १९६५ वि० में 'सरस्वती' नामक एक पत्रिका के एक लेख 'हिन्दी की हीनता' में लिखा था कि हिन्दी में न कोई माना हुआ व्याकरण है और न कोई प्रमाणिक शब्द कोश। नागरी प्रचारणी सभा जिसकी स्थापना सम्वत १९५० वि० में हुई थी और जो हिन्दी की हीनता को दूर करने का प्रयास कर रही थी, हिन्दी व्याकरण और शब्द कोश प्रकाशित करने में लग गई।

सम्वत १९७७ वि० में नागरी प्रचारणी सभा काशी ने एक व्याकरण प्रकाशित किया जिसका नाम है "हिन्दी व्याकरण" और इसके लेखक थे कामता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रसाद गुरु। सम्वत १९६६ से १९८५ तक नागरी प्रचारणी सभा ने एक शब्द कोश, 'हिन्दी शब्द सागर' नामक आठ बड़े बड़े खण्डों में प्रकाशित किया (शब्द सागर पर आगमी अध्याय में हम अपने विचार प्रस्तुत करेंगे)। सम्वत २०१४ वि० में नागरी प्रचारणी सभा ने एक दूसरा व्याकरण 'हिन्दी शब्दानुशासन' नामक प्रकाशित किया। इस व्याकरण का निर्माण नागरी प्रचारणी सभा के व्याकरण योजना मण्डल ने हिन्दी जगत के सुप्रसिद्ध अक्खड़ विद्वान किशोरी दास बाजपेयी से कराया। व्याकरण योजना मण्डल का प्रस्ताव था कि वह व्याकरण हिन्दी के आधुनिक स्वरूप और उसकी प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुये संस्कृत का आवश्यक आधार ग्रहण करके आधुनिक पद्धति पर लिखा जाय। विद्वान लेखक के अतिरिक्त व्याकरण परामर्श-मण्डल के सङ्घठन में दस और विद्वान थे। लेखक प्रत्येक मास में लिखा हुआ अंश सभा के पास भेज देते थे जहाँ से उस अंश की दस प्रतियाँ बनकर दसों अधिकारी विद्वानों की सेवा में परामर्श के लिये भेज दी जाती थीं। हिन्दी जगत में यही दो व्याकरण ग्रन्थ अधिक प्रसिद्ध हैं। अत: इस अध्याय में यही दो व्याकरण हमारे विचार का विषय हैं।

इस पुस्तिका के सिद्धान्त खण्ड में यह स्पष्ट किया गया है कि प्राचीन काल में सरस्वती (भाषा) की पवित्र धारा मध्यदेश की पूर्वी सीमा गङ्गा–यमुना के सङ्गम अर्थात प्रयाग तक प्रवाहित करती थी। सरस्वती भाषा का शुद्ध रूप कुरु देश में ही प्रचलित था और आज उसी प्रदेश में खरी बोली जन-साधारण की कथ्य भाषा है। हिन्दी के प्रमाणिक व्याकरण (?) और प्रमाणिक शब्द कोश (?) का अभ्युदय काशी-कौशल तथा छत्तीस गढ़ के लेखकों द्वारा मध्यदेश की सीमा के बाहर काशी नगर में हुआ है। हमारे अनुसार खरी बोली के सम्बन्ध में इन व्याकरण और शब्द कोश ग्रन्थों का निर्माण अधिकारी विद्वानों द्वारा नहीं हुआ है।

सरस्वती भाषा (आधुनिक खरी बोली) के व्याकरण की दो प्रमुख विशेषतायें हैं जिनको हम अपनी भाषा का आधार कह सकते हैं। इन नियमों पर आधारित हमारी भाषा का सुन्दर विशाल, स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है—

(१) इनमें से पहला नियम है, सञ्ज्ञा शब्दों का लिङ्गानुशासन। लिङ्गानुशासन का जैसा मौलिक और निश्चित नियम हमारी भाषा में हैं तथा जिसका कोई अपवाद नहीं है, ऐसा नियम संसार की किसी भी भाषा में नहीं है। (इस विषय पर इस पुस्तिका के सिद्धान्त अङ्क का व्याकरण अध्याय देखो)।

(२) हमारी भाषा में कोई शब्द क्रिया नामक व्याकरण कोटि के अन्तर्गत नहीं आता है। कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्दों के क्रियार्थक (तिङन्त पद) बनाकर क्रिया की भान्ति प्रयोग होते हैं। सञ्ज्ञा शब्दों के रूप होने के कारण इन पदों के भी पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग रूप होते हैं। पुल्लिङ्ग सञ्ज्ञा शब्द के साथ पुल्लिङ्ग रूप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और स्त्रीलिङ्ग सञ्ज्ञा शब्द के साथ स्त्रीलिङ्ग रूप प्रयोग में आता है। (इस सम्बन्ध में देखो सिद्धान्त खण्ड का वाक्य विचार अध्याय)।

अब हम यह दिखायंगे कि उपरोक्त दोनों व्याकरणों और भाषा विज्ञान की पुस्तकों में हमारी भाषा और उसके लिङ्ग अनुशासन के सम्बन्ध में कितने भ्रामक और दूषित विचारों का उल्लेख है। हम इन विचारों का खण्डन करके इन लेखकों की शङ्काओं का समाधान करेंगे और उन शब्दों के लिङ्ग प्रकृति—प्रत्यय नियम के आधार पर सिद्ध करेंगे।

हमारी भाषा में शब्द, अर्थ और उनका सम्बन्ध नित्य है। शब्दों के नित्य होने के ही कारण व्याकरण शास्त्र बनाना सार्थक है, अन्यथा शब्दों की अनित्यता से सुस्थिर व्याकरण का बनाना सम्भव न होता। हमारी भाषा के व्याकरण के नियम केवल शब्दों के साधु रूप पर ही लागू होते हैं, अतः शब्दों के साधु रूप का ज्ञान अनिवार्य है। हम दिखा चुके है कि साधु शब्द के लिये शब्द की व्याकरण कोटि, अर्थ और लिङ्ग पर ध्यान रखकर ही शब्द के साधु रूप का ज्ञान हो सकता है। शब्द के अर्थों तथा व्याकरण कोटि पर आगामी अध्याय में विचार होगा, यहाँ केवल सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग पर विचार किया जायगा।

केलौग—हिन्दी में सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्गानुशासन के सम्बन्ध में मूर्खता के विचार सबसे पहले पादरी केलौग ने 'ए ग्रामर आव दि हिन्दी लेङ्ग्वेज' में प्रसारित किये। उसका कहना है कि हिन्दी में सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग या तो सन्दिग्ध हैं या जनता में प्रयोग के अनुसार हैं। उसने और जो नियम बताये हैं वह इतने भ्रामक और अनर्गल हैं कि अपने प्रत्येक नियम के अपवाद उसी ने लिख दिये हैं। इन नियमों पर विचार करने से कोई लाभ नहीं है।

रामजी उपाध्याय—इस लेखक ने 'संस्कृत व्याकरण रचना तथा निबन्ध' नामक पुस्तक में लिखा है कि 'हिन्दी भाषा में शब्दों का लिङ्ग निर्णय करना संस्कृत से भी अधिक कठिन है, किन्तु नित्य अभ्यास होने से कम से कम हिन्दी भाषियों को यह कठनाई नहीं प्रतीत होती'। इस लेखक के अनुसार भी शब्दों का लिङ्ग प्रयोग के अनुसार ही है।

उदय नारायण तिवारी—'हिन्दी भाषा का उद्‌यम और विकास' नामक पुस्तक में यह लेखक लिखता है कि 'अहिन्दी प्रदेश के लोगों को हिन्दी शब्दों का लिङ्ग निर्णय करने में बहुत अधिक कठनाई का सामना करना पड़ता है और जन--साधारण की यह धारणा हो गई है कि हिन्दी का लिङ्ग विधान अनियमित है'।

धीरेन्द्र वर्मा—'हिन्दी भाषा का इतिहास' नामक पुस्तक में यह लेखक लिखता है कि 'हिन्दी में व्याकरण सम्बन्धी लिङ्ग भेद सबसे अधिक दुरुह है ... ... इस सम्बन्ध में निश्चित नियम बनाना दुस्तर है। साधारण तया हिन्दी भाषा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

-भाषी अभ्यास से ही अचेतन पदार्थों में प्रचलित लिङ्ग विशेष के शुद्ध रूपों का व्यवहार करते हैं। विदेशियों को हिन्दी में शुद्ध लिङ्ग का प्रयोग करने में विशेष कठनाई इसी कारण पड़ती है"।

कामता प्रसाद गुरु

नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी व्याकरण' में कामता प्रसाद गुरु का कथन है—'हिन्दी में लिङ्ग का पूर्ण निर्णय करना कठिन है। इसके लिये व्यापक और पूरे नियम नहीं बन सकते, क्यों कि इनके लिए भाषा के निश्चित व्यवहार का आधार नहीं है। तथापि हिन्दी में लिङ्ग निर्णय दो प्रकार से किया जा सकता है—(१) शब्द के अर्थ से और (२) उसके रूप से। बहुधा प्राणिवाचक शब्दों का लिङ्ग अर्थ के अनुसार और अप्राणिवाचक शब्दों का लिङ्ग रूप के अनुसार निश्चित करते हैं। शेष शब्दों का लिङ्ग केवल व्यवहार के अनुसार माना जाता है; और उसके लिये व्याकरण की पूर्ण सहायता नहीं मिल सकती।

(क) इसके पश्चात इसी व्याकरण में लिखा है "कई एक मनुष्येतर प्राणिवाचक सञ्ज्ञाओं से दोनों जातियों का बोध होता है, पर वह व्यवहार के अनुसार नित्य पुल्लिङ्ग वा स्त्रीलिङ्ग होते हैं" जैसे—

पु०—पक्षी, उल्लू, कौआ, भेड़िया, चीता, खटमल, केञ्चुआ इत्यादि।

स्त्री०—चील, कोयल बटेर, मैना, गिलहरी, जोंक, तितली, मक्खी, मच्छली इत्यादि।

इन शब्दों के प्रयोग में लोग इस बात की चिन्ता नहीं करते कि इनके वाच्य प्राणी पुरुष हैं या स्त्री। इस प्रकार के उदाहरणों को एलिङ्ग कह सकते हैं'।

कामता प्रसाद गुरु ने 'हिन्दी व्याकरण' की रचना पादरी केलाग द्वारा लिखित व्याकरण के अनुसार ही की है। लिङ्ग निर्णय के जो भ्रामक और दूषित विचार केलाग ने निर्धारित किये थे, उन्हीं का अन्धानुकरण इस लेखक ने किया है। प्रकृति के अनुसार केवल उन प्राणियों का लिङ्ग निर्णय होता है जिनको देखने से उनके प्राकृतिक लिङ्ग का बोध हो सकता है। यदि किसी प्राणी में ऐसा कोई चिह्न नहीं होता जिससे उसके प्राकृतिक लिङ्ग का ज्ञान हो सके तो उस प्राणी का लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार निर्धारित होता है, जो सर्वदा एक ही होगा। इस लेखक ने जिन प्राणियों के उदाहरण दिये हैं उनको देखने से उनके प्राकृतिक लिङ्ग का बोध नहीं होता है, अतः उनका लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार निर्णय किया जायगा जो एक ही होगा।

समाधान—प्रत्यय के अनुसार सञ्ज्ञा शब्दों का लिङ्ग शब्दों के साधु रूप के अनुसार ही निर्धारित होता है। अतः शब्दों के साधु रूप का ज्ञान करने के पश्चात ही उनका लिङ्ग साधु शब्दों के प्रत्यय के अनुसार ही निर्णय करना चाहिये। अब

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम उपरोक्त प्राणियों के सञ्ज्ञा शब्दों के साधु रूप के आधार पर दिखायेंगे कि प्रत्यय के अनुसार उनका लिङ्ग यथार्थ है और व्याकरण लेखक का विचार निर्मूल तथा भ्रामक है।

(पक्षी) पक्षिन्—पु०, (उल्लू) उलूकः—पु०, (कोआ) काकः—पु०, (भेड़िया) वृकः पु०, (चीता) चित्रकः पु०, (खटमल) खट्वा-मलम् पु०, (केञ्चुआ) किञ्चिलुकः पु०।

(चील) लिल्ला, चिल्ली स्त्री०, (कोयल) कोकिला स्त्री०, (बटेर) वर्तका स्त्री०, (मैना) मदना स्त्री०, (गिलहरी) गिरिः स्त्री०, (जोंक) जलुका—जलोका स्त्री०, (तितली) तित्तिरिः स्त्री, (मक्खी) मक्षिका स्त्री०, (मछली) मत्सी स्त्री०।

(ख) इस व्याकरण लेखक ने एक और विचार व्यक्त किया है कि "प्राणियों के समुदाय-वाचक नाम भी व्यवहार के अनुसार पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग होते हैं, जैसे—

पु०—समूह, कुटुम्ब, सङ्घ, दल, मण्डल इत्यादि।

स्त्री—भीड़, फौज, सभा, प्रजा, सरकार, टोली इत्यादि"।

इस लेखक का उपरोक्त विचार भी निर्मूल और भ्रामक है कारण कि प्राणियों के समुदाय में नर और नारी दोनों सम्मिलित हो सकते हैं चाहे उनमें किसी समय एक ही लिङ्ग के प्राणी क्यों न हो। अतः प्रकृति के अनुसार समुदाय का लिङ्ग निर्णय नहीं हो सकता है। इसी कारण प्राणियों के समुदाय का लिङ्ग भी समुदाय के साधु शब्द के प्रत्यय के अनुसार ही निर्णय होता है।

समाधान

(समूह) समूहः पु०, (कुटुम्ब) कुटुम्ब पु०, (सङ्घ) सङ्घः पु०, (दल) दलम् पु०, (मण्डल) मण्डलम् पु०।

(भीड़) वृद्धिः स्त्री०, (फौज म्लेच्छ भाषा) सेना स्त्री, (सभा) सभा स्त्री०, (प्रजा) प्रजा स्त्री०, (सरकार-म्लेच्छ भाषा) राज्य संस्था स्त्री०, (टोली) प्रतोली स्त्री०।

अप्राणिवाचक सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग निर्णय के सम्बन्ध में इस लेखक का कथन है कि 'हिन्दी में अप्राणिवाचक शब्दों का लिङ्ग जानना विशेष कठिन है; क्यों कि यह बात अधिकांश व्यवहार के अधीन है। अर्थ और रूप दोनों ही साधनों से इन शब्दों का लिङ्ग जानने में कठनाई होती है। नीचे लिखे उदाहरणों से यह कठनाई स्पष्ट जान पड़ती है।

(अ) एक ही अर्थ के कई अलग अलग शब्द अलग अलग लिङ्ग के हैं, जैसे नेत्र (पु०), आंख (स्त्री०), मार्ग (पु०), बाट (स्त्री०)।

(आ) एक ही अन्त के कई एक शब्द अलग अलग लिङ्ग में आते हैं, जैसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोदों (पु०), सरसों (स्त्री०), आलू (पु०) बालू (स्त्री०)" ।

इस लेखक का उपरोक्त विचार भी निर्मूल है । कारण की अप्राणिवाचक सञ्ज्ञा शब्दों का लिङ्ग सर्वदा प्रत्यय के अनुसार निर्णय होता है । शब्द का प्रत्यय शब्दके साधु रूप से जाना जाता है । यदि किसी एक ही वस्तु को बताने वाले विभिन्न सञ्ज्ञा शब्द हों तो उन शब्दों के लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार पृथक पृथक हो सकते हैं । यथा—

(नेत्र) नेत्रम् पु०, (आंख) अक्षि स्त्री० ।

(मार्ग) मार्गः पु०, (वाट) वाटी स्त्री०, सड़क (सृङ्का) स्त्री० ।

(कोदों) कोद्रवः पु०, (सरसों) असुरसा, आसुरी स्त्री, (आलू) आलूकम् उल्लः पु०, (बालू) बालुका स्त्री० ।

कामता प्रसाद गुरु ने लिखा है कि 'किसी किसी वैयाकरण ने अप्राणिवाचक सञ्ज्ञाओं के अर्थ के अनुसार लिङ्ग–निर्णय करने के लिये कई नियम बनाये हैं, पर ये अव्यापक और अपूर्ण हैं । अव्यापक इस लिये कि एक नियम में जितने उदाहरण हैं प्रायः उतने ही अपवाद हैं; और अपूर्ण इस लिये कि यह नियम थोड़े ही प्रकार के शब्दों पर बने हैं, शेष शब्दों के लिये कोई नियम नहीं हैं । इन अव्यापक और अपूर्ण नियमों के कुछ उदाहरण हम अन्याय व्याकरणों से यहां लिखते हैं' ।

उपरोक्त विचार पूर्णतया भ्रामक और निर्मूल हैं । किसी भी भाषा के व्याकरण का निर्माण इस प्रकार के सिद्धान्तों पर नहीं हो सकता है । उस व्याकरण के कारण सम्वत १९७७ वि० से आज तक न जाने कितने छात्रों की बुद्धि विपरीत हो चुकी है । यदि उदाहणार्थ दिये हुये सभी शब्दों के साधु रूप का ज्ञान करके उनके प्रत्ययों के अनुसार उन शब्दों का लिङ्ग निर्णय किया जाये तो सभी शब्दों के यथार्थ लिङ्ग का समाधान हो जाता है, और लिङ्ग निर्णय के जो नियम व्यक्त किये गये हैं वह नष्ट हो जाते हैं । अब हम उन सभी शब्दों के लिङ्गों का समाधान करते हैं ।

(क) शरीर के अवयवों के नाम—

पुल्लिङ्ग—(बाल) बालः पु०, (सिर) शिरम् पु०, (मस्तक) मस्तकः पु०, (तालु) तालु पु०, (ओठ) ओष्ठः पु०, (दान्त) दन्तः पु०, (मुँह) मुखम् पु०, (कान) कर्ण. पु०, (गाल) गल्लः पु०, (हाथ) हस्तः पु०, (पांव) पदम् पु०, (नख) नखः पु०, (रोम) रोमन् पु० ।

स्त्रीलिङ्ग—(आँख) अक्षि स्त्री०, (नाक) नासा, नासिका स्त्री०, (जीभ) जिह्वा स्त्री०, (जांघ) जङ्घा स्त्री०, (खाल) छल्लिः स्त्री०, (नस) वस्नसा स्त्री ।

(ख) पेड़ों के नाम—

पुल्लिङ्ग—(पीपल) पिप्पलः पु०, (बड़) वटः पु०, (सागैन) शाकः पु०,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(नीम) निम्ब: पु०, (गुरु ने इसे स्त्री० लिखा है जो अशुद्ध है)।

स्त्रीलिङ्ग—(शीशम) शिंशपा स्त्री० (गुरु ने इसे पुल्लिङ्ग लिखा है जो अशुद्ध है)। (बेरी) बदरिका स्त्री०।

(ग) अनाजों के नाम—

पुल्लिङ्ग—(जौ) यवः पु०, (गेहूं) गोधूम: पु०, (चना) चणक: पु० (तिल) तिल: पु०।

स्त्रीलिङ्ग—(मसूर) मसरा, मसुरा स्त्री०, (अरहर) आढकी स्त्री०।

(घ) द्रव पदार्थों के नाम—

पुल्लिङ्ग—(घी) घृतम् पु०, (तेल) तैलम् पु०, (पानी) पानीयम् पु०, (दूध) दुग्ध पु०, (सिरका) शुक्तम् पु०।

स्त्रीलिङ्ग—(दही) दधि स्त्री० (गुरू ने इसे पु० लिखा है जो अशुद्ध है) (मदिरा) मदिरा स्त्री०।

(ङ) नदियों के नाम—

स्त्रीलिङ्ग—गङ्गा स्त्री०, यमुना स्त्री०, नर्मदा स्त्री०, ताप्ती स्त्री०, (सतलज) शुतुद्रि: स्त्री०, (चम्बल) चर्मणवती स्त्री०।

पुल्लिङ्ग—(सोन) शोण: पु०, (सिन्ध) सिन्धु: पु०, (ब्रह्मपुत्र) ब्रह्मपुत्र: पुल्लिङ्ग।

(च) भोजनों के नाम—

स्त्रीलिङ्ग—(पूरी) पूरिका स्त्री०, (कचौरी) कर्चरिका स्त्री०, (खीर) क्षीरी स्त्री०, (दाल) दालि: स्त्री०, (बेढमी) बेढमिका स्त्री०।

पुल्लिङ्ग—(भात) भक्तम् पु०, (रायता) राज-त: पु०।

इसी प्रकार हम विभिन्न वर्ग के वस्तुओं के नामों को पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग के अन्तर्गत रखने के कारण का समाधान कर सकते हैं।

प्रकृति-प्रत्यय के आधार पर लिङ्ग अनुशासन से एक ही प्रकार के अक्षर विन्यास वाले सञ्ज्ञा शब्दों का पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग होने का समाधान होता हैं, यथा—

(१) (साग) साकम् पु०, (आग) अग्नि: स्त्री०, (राग) राग: पु०, (जाग) जागरणम का स्त्री०, (काग) काग: पु०, (नाग) नाग: पु०।

(२) (रात) रात्री स्त्री०, (पात) पत्रम् पु०, (ज़ात) जाति: स्त्री०, (बात) वार्त्ता स्त्री०, (मात) माति: स्त्री०, (हाथ) हस्थ: पु०।

(३) (जाल) जालम् पु०, (बाल) बाल: पु०, (दाल) दालि: स्त्री०, (साल) साल: पु०, (काल) काल: पु०, (नाल) नाली स्त्री०, (टाल) अट्टालिका स्त्री०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(४) (हाट) हट्टी स्त्री०, (पाट) पट्ट: पु०, (घाट) घाट: पु०, (खाट) खट्वा स्त्री०, (बाट) वाटी स्त्री०।

(५) (आस) आशा स्त्री०, (नास) नाश: पु०, (रास-अर्थ नृत्य) रास: पु०, (रास अर्थ लङ्खनी) रश्मि: स्त्री०, (घास) घास: पु०, घासि: स्त्री०, दोनों शुद्ध हैं, (बांस) वंश: पु०, (प्यास) पिपासा, स्त्री० (मांस) मांसम् पु०।

हिन्दी शब्दानुशासन

हिन्दी शब्दानुशासन के लेखक केवल हिन्दी के ही नहीं अपितु संस्कृत के भी विद्वान हैं। उपरोक्त पुस्तक के आरम्भ में लेखक ने जो निवेदन लिखा है उस का एक वाक्य है—"उनके इस परामर्श पर अमल किया गया है; पर जहाँ वैसा जरूरी नहीं समझा, वहाँ हिन्दी अर्थ नहीं भी दिया है। मूल ग्रन्थ लगने में दिक्कत न पड़े, इतना ही ध्यान रक्खा गया है"। इस छोटे से कथन में लेखक ने म्लेच्छ भाषाओं के तीन शब्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार के अनेक शब्द उस पुस्तक में व्यवहार में आये हैं। क्या इस लेखक के अनुसार यही भाषा हिन्दी है? म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों को अनायास जो हमारी भाषा में घुसड़ने का प्रयास किया जाता है वह अनुचित तथा हानिकारक है। इस प्रकार के शब्द कभी हमारी भाषा का अङ्ग नहीं बन सकते है। हिन्दी भाषा के लेखकों को इस प्रकार के शब्दों का बहिष्कार कर देना चाहिये। हिन्दी शब्दो की उत्पत्तिके सम्बन्ध में इस लेखक के विचार स्पष्ट नहीं है। ग्रियर्सन के काल्पनिक पहली, दूसरी और तीसरी प्राकृत के जाल में यह लेखक भी फँस गये। उनको यह भी ध्यान न रहा कि किसी काल में भी प्राकृत भारत के किसी भी भाग की कथ्य भाषा नहीं थी। खरी बोली और संस्कृत में शब्द, शब्दों की व्याकरण कोटियाँ और शब्दों के अर्थ एक ही है, दोनों भाषाओं में केवल व्याकरण के अनुसार ही भेद है। खरी बोली (सरस्वती) का व्याकरण उत्यन्त सरल हैं परन्तु संस्कृत का व्याकरण कृत्रिम और जटिल है।

हिन्दी भाषा में सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग निर्णय करने के सम्बन्ध में जो अनर्गल, भ्रामक और दूषित विचार हिन्दी शब्दानुशासन के लेखक ने व्यक्त किये हैं ऐसे किसी भी अन्य व्याकरण लेखक ने नहीं किये हैं। इनमें से कुछ सिद्धान्त उपहासजनक भी हैं। इस लेखक का कथन हैं कि संस्कृत में 'आ' प्राय: स्त्रीलिङ्ग का चिह्न है—लता, द्राक्षा आदि। हिन्दी ने 'आ' को पुंल्लिङ्ग विभक्ति बना लिया। हिन्दी ने अपनी जो पुं विभक्ति 'आ' बनाई है, वह जहाँ होगी, वहां तो पुंवर्गीयता या पुंल्लिङ्गता निश्चित ही है। लेखक का यह कथन पूर्णतया भ्रामक और असत्य है। हिन्दी में जो आकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द हैं उनमें 'आ' विसर्ग का रूप होता है। सरस्वती भाषा के आकारान्त शब्द हिंन्दी में भी स्त्रीलिङ्ग ही होते हैं, उनके अक्षर-विन्यास कितने भी विकृत क्यों न हो जावें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उस व्याकरण में सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग निर्णय करने के सम्बन्ध में जो अनर्गल विचार व्यक्त किये गये हैं उनका उत्तरदायित्व केवल लेखक पर ही नहीं है, इसके भागी नागरी प्रचारणी सभा के व्याकरण-परामर्श मण्डल के सभी सदस्य हैं जिनके पास इस व्याकरण का लिखा हुआ अंश प्रत्येक मास परामर्श के लिए भेजा जाता था। उस व्याकरण में लिङ्ग निर्णय के कोई सिद्धान्त नहीं दिये हैं अपितु इस सम्बन्ध में कुछ अत्र तत्र भ्रामक विचार व्यक्त किये गये हैं जो केवल मनोरञ्जक ही नहीं उपहास जनक भी हैं। इन सभी विचारों पर निरुपण करने के लिए हमारे पास पर्याप्त स्थान नहीं है; अतः हम लेखक के कुछ विचारों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते हैं जिनका खण्डन करके अपने सिद्धान्त से उनका समाधान करते हैं।

(क) इस लेखक का कथन है—"केश, बाल आदि हिन्दी में पुंवर्गीय हैं; परन्तु 'मूंछ' स्त्रीवर्ग में है; यद्यपि पुरुष चिह्न है। पता नहीं यह क्यों! ऐसा जान पड़ता है कि 'शक्ति' स्त्रीवर्गीय शब्द है, जिसके साथ 'ताकत' भी है। 'शक्ति' शब्द स्त्रीवर्ग में होने के कारण ही कदाचित् शक्ति-पुञ्ज या शक्ति—व्यञ्जक अन्य शब्द भी स्त्रीवर्ग में चल पड़े हों! तलवार, तोप, बन्दूक, सरकार, फौज, पुलिस, संसद अदालत आदि शक्ति-पुञ्ज स्त्रीवर्ग में चला गया हो"।

टिप्पणी—लेखक का उपरोक्त कथन युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता है। कारण कि प्रथम तो तलवार, बन्दूक, तोप आदि वस्तुओं की उत्पत्ति मूंछ से पूर्व नहीं मानी जा सकती है। दूसरे यह कि अधिक शक्ति पुञ्ज वस्तु पुल्लिङ्ग हैं, यथा सुदर्शन चक्र, गाण्डीव धनुष, परमाणु अग्न्यस्त्र आदि। हम भली प्रकार जानते हैं कि पुरुष के मूंछ जन्म लेने के २०—२२ वष पश्चात युवक अवस्था में निकलती हैं, परन्तु पशुओं के जन्म से ही पूंछ होती है। यदि भगवान ने सभी प्राणियों को एक ही समय बनाया हो तो पूंछ की उत्पत्ति मूंछ से पहले होती है। मूंछ की ध्वनि और आकार पूंछ से मिलता है। पूंछ स्त्रीलिङ्ग होने से ही मूंछ स्त्रीलिङ्ग है (?) (यह कथन लिखने के लिए हम बड़ी बड़ी मूंछ वालों से क्षमायाचना करते हैं)। किया इसी प्रकार के सिद्धान्तों पर हमारी भाषा के लिङ्ग निर्णय के नियम आधारित हो सकते हैं? इस प्रकार के विचारों में कितना तथ्य और बल है, पाठक स्वयम् सोच सकते है। आशा है कि नागरी प्रचारणी सभा इस प्रकार के विचार प्रसारित करके हमारी भाषा को कलङ्कित नही करेगी।

समाधान: सरस्वती भाषा में शब्दों का लिङ्ग प्रकृति-प्रत्यय के नियमानुसार निर्धारित होता है। कोई भी शब्द शक्ति व्यञ्जक होने से स्त्रीलिङ्ग नहीं हो जाता है। तलवार आदि उपरोक्त सभी शब्द अप्राणिवाचक हैं, इस कारण इनका लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार ज्ञात होता है, और प्रत्यय के अनुसार यह सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं। इन शब्दों में तलवार और संसद हमारी भाषा के शब्द हैं, शेष शब्द म्लेच्छ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषाओं के हैं। म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का लिङ्ग निर्णय का यह नियम है कि पहले उस शब्द के अर्थ के अनुसार सरस्वती भाषा के (संस्कृत कोश में दिया हुआ) शब्द का ज्ञान किया जाता है, और प्रत्यय के अनुसार जो लिङ्ग सरस्वती भाषा के शब्द का होता है, वही लिङ्ग उस शब्द का भी माना जाता है।

(तलवार) तरवारिः स्त्री०, (संसद) संसदा स्त्री, (तोप) शतघ्नी स्त्री०, (बन्दूक) भुशुण्डी स्त्री०, (सरकार) राज्य संस्था स्त्री०, (फौज) सेना स्त्री०, (पुलिस) आरक्षा संस्था स्त्री०, (अदालत) न्याय सभा स्त्री०।

मूंछ शब्द को खरी बोली में मूंस भी कहते हैं। मूंछ या मूंस शब्द सरस्वती भाषा के शब्द मासुरी का रूपान्तर है। कतिपय संस्कृत कोशों में मासुरी का अर्थ दाढी दिया है, परन्तु वह अशुद्ध है। दाढी शब्द दाढिका का रूपान्तर है। मासुरी शब्द स्त्री लिङ्ग होने के कारण मूंछ या मूंस स्त्री लिङ्ग है। अतः मासुरी स्त्री० - मासु, मंसु, मूंस या मूंछ।

(ख) वह वैयाकरण लिखता है "नाक के पास 'आंख' है इसलिये एक मार्ग चल पड़ा।" लेखक का यह विचार भी अनर्गल है। नाक के पास होठ और गाल भी हैं। जो पुल्लिङ्ग हैं। यह सभी शब्द अप्राणिवाचक हैं और प्रत्यय के अनुसार पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग हैं। (नाक) नासा, नासिका स्त्री०। (आंख) अक्षि स्त्री०। (होठ) ओष्ठः पु०। (गाल) गल्लः पु०।

(ग) उसी व्याकरण में लिखा है—"संस्कृत के नपुंसक लिङ्ग इकारान्त शब्द दधि०' आदि पुंवर्ग में गये हैं।" लेखक का यह विचार भी भ्रामक है। यदि ऐसा होता तो संस्कृत के इकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्द अस्थि (हड्डी), सक्थि (सान्थल), शुचि (सुच), अक्षि (आंख) शब्द भी हिन्दी में पुल्लिङ्ग होते। यह सभी शब्द हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग हैं। दधि (दहि) शब्द भी हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग ही है और खरी बोली क्षेत्र में स्त्रीलिङ्ग में ही प्रयोग होता है। 'दधि' शब्द में 'ध' महाप्राण का उच्चारता 'ह' होने से शब्द 'दहि' सिद्ध होता है।

(घ) उसी व्याकरण का एक और उदाहरण है—"बांस भी पुल्लिङ्ग है, वंश की ही तरह, परन्तु घास स्त्रीलिङ्ग है! यह क्यों? ऐसा जान पड़ता है कि इस पर 'आस' (आशा), 'प्यास' (पिपासा) आदि की छाया पड़ी है और दूब (दूर्वा) का भी प्रभाव पड़ा है।" कितने प्रहसन की बात है कि यह लेखक एक शब्द का लिङ्ग किसी अन्य शब्द के लिङ्ग के प्रभाब के कारण मानता हैं। किया इसी प्रकार के नियमों पर कोई भाषा उन्नति कर सकती है। घास शब्द दो अर्थों में प्रयोग होता है। खेतों में खड़े हुये घास को पुल्लिङ्ग में प्रयोग करते हैं, जैसे घास खोद लिया। इस अर्थ के अनुसार संस्कृत शब्द कोशों में दिया हुआ शब्द "घासः," है, जो प्रत्यय के अनुसार पु० है। खेतों से घास काटने के पश्चात जब वह पशुओं के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खाने के लिये आती है तो उसको स्त्री० में प्रयोग करते हैं। इस अर्थ के अनुसार संस्कृत शब्द "घासि:" है जो प्रत्यय के अनुसार स्त्री० है, देखो आपटे पृष्ठ ६८६।

प्रकृति के अनुसार प्रत्येक जाति के प्राणियों में पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग का भेद होता है। नपुंसक लिङ्ग (चिह्न) प्रकृति के अनुसार नहीं होता है। यही कारण है कि हिन्दी (खरी बोली) में भी सञ्ज्ञा शब्दों को दो ही लिङ्गों के अन्तर्गत रक्खा जाता है। जिस सञ्ज्ञी को देखने से उसके प्राकृतिक लिङ्ग का बोध नहीं होता है उसका लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार निर्धारित कर लिया जाता है। खरी बोली में कोई भी शब्द क्रिया नाम व्याकरण कोटि के अन्तर्गत नहीं रक्खा जाता है। कर्ता का कर्म दिखाने के लिये सञ्ज्ञा (कर्मवाचक) से बने पदों से ही विधेय का काम लिया जाता है। सञ्ज्ञा शब्दों से बनने के कारण क्रियात्मक पदों के भी दो रूप होते हैं—पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग। पुल्लिङ्ग करता का कर्म दिखाने के हेतु क्रियात्मक पद का पुल्लिङ्ग रूप और स्त्रीलिङ्ग क्रिया का कर्म दिखाने के लिये स्त्रीलिङ्ग रूप का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी (खरी बोली) में लिङ्ग भेद के कारण क्रियात्मक पदों के रूपों में भी विकार होता है। खरी बोली की यह विशेषता संसार की किसी भी अन्य भाषा में नहीं है। अतः खरी बोली में सञ्ज्ञा शब्द के साधु लिङ्ग पर विशेष रूप से ध्यान रक्खा जाता है और उसी के अनुसार क्रियात्मक पद का रूप भाषा में प्रयोग किया जाता है। मध्य देश (सरस्वती भाषा के क्षेत्र) की पूर्वी सीमा गङ्गा-यमुना के सङ्गम (त्रिवेणी) अर्थात प्रयाग तक थी। प्रयाग के पूर्व क्षेत्रों में व्याकरण सम्बन्धी लिङ्ग भेद बहुत कम किया जाता है। अतः भोजपुरी, अवधी आदि भाषाओं के क्षेत्र (पूर्वी उत्तर प्रदेश) के निवासियों को सञ्ज्ञा शब्दों के साधु लिङ्गों का अधिक ज्ञान नहीं होता है।

भारतवर्ष में मध्य देश से पूरब के क्षेत्रों की भाषाओं में लिङ्ग-भेद की शिथिलता का कारण यह है कि इन क्षेत्रों की भाषाओं में कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द प्रचलित नहीं हैं। यथा चलना, उठना बैठना, भागना, पीना, काटना आदि। जिन वाक्यों में इस प्रकार के शब्द प्रयोग होते हैं उनका अर्थ इस क्षेत्र के ग्रामवासी समझ नहीं पाते हैं। यथा—'क्या इस बालक पर चलना आता है।' इस वाक्य को वह नहीं समझ पाते हैं। उनके अनुसार यह वाक्य इस प्रकार होगा —क्या यह बालक चल सकित'। इस वाक्य में कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द 'चलना' प्रयोग न होकर 'चल' धातु का प्रयोग हुआ है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र की भाषा अवधी भोजपुरी अर्थात अर्धमागधी से ही जैन धर्म ग्रन्थों की भाषा प्राकृत बनी है। सरस्वती भाषा में कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द थे, धातु नहीं। संस्कृत कोशों में कर्मवाचक संज्ञा शब्द और धातु दोनों दिये रहते हैं, परन्त प्राकृत कोशों में धातु दिये रहते हैं, कर्मवाचक संज्ञा शब्द नहीं। पूर्वी क्षेत्रीय भाषाओं में संस्कृत के समान इन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धातुओं से ही तिङन्त पद बनाकर क्रिया का काम लिया जाता है। संस्कृत के समान इन तिङन्त पदों के रूपों में संज्ञा शब्दों के अनुसार परिवर्तन नहीं होता है। इन भाषाओ मे अधिकांश संज्ञा शब्दों के रूपों में ही लिङ्ग के अनुसार परिवर्तन कर लिया जाता है। यथा कान-कनवा, मुख-मुखवा, गिलास-गिलसवा, लोटा-लुटवा, बच्चा-बचवा, पान-पनवा, पत्ता-पतवा, पिलङ्ग-पिलङ्गवा, आदि पुल्लिङ्ग रूप। नाक-नकिया, आंख-अंखिया, कटोरी-कटुरिया, थाली-थलिया, खाट-खटिया, बात-बतिया आदि स्त्रीलिङ्ग रूप बनते हैं। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र की भाषा में संज्ञा शब्दों में व्याकरण सम्बन्धी लिङ्ग-भेद बहुत कम किया जाता है।

उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र की भाषा से मागधी भाषा की उत्पत्ति हुई और मागधी भाषा से बङ्गला, आसामी तथा उड़िया भाषायें बनीं। इन भाषाओं ने उत्तर प्रदेश की पूर्वी भाषा में संज्ञा शब्दों में वा अथवा या जोड़कर जो थोड़ा सा लिङ्ग भेद किया जाता था, उसको भी ग्रहण नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि इन भाषाओं में व्याकरण सम्बन्धी लिङ्ग भेद लगभग पाया ही नहीं जाता है।

पाश्चात्य पद्धति से शिक्षित व दीक्षित भारतीय भाषा विज्ञान के लेखक पूर्वी भारत की भाषाओं में व्याकरण सम्बन्धी लिङ्ग भेद के शिथिल होने का कारण यह बताते हैं कि तिब्बत और ब्रह्मा प्रदेशों की अनार्य भाषाओं में लिङ्ग भेद नहीं होता है और उन भाषाओं के प्रभाव के कारण ही ऐसा हुआ है। एक अन्य लेखक की धारणा है कि इन भाषाओं पर कोल भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। इन लेखकों का यह कथन कितना अवउपहास्य है। क्या इन लेखकों ने कभी इन प्रश्नों पर विचार किया है—

(१) क्या उन देशों की भाषाओं की उत्पति हमारी भाषाओं से पूर्व हुई थी।

(२) क्या उन देशों की भाषायें पूर्वी भारत की भाषाओं से अधिक समृद्ध थीं।

(३) अनार्य भाषाओं (?) का हमारी भाषाओं पर प्रभाव पड़ने का क्या कारण था।

(४) उन भाषाओं के शब्द तो हमारी भाषाओं ने ग्रहण नहीं किये परन्तु उनका व्याकरण हमने ग्रहण कर लिया। क्या एक भाषा दूसरी भाषा का केवल व्याकरण ग्रहण कर सकती है।

वास्तव में इन दुर्बुद्धि और पतित लेखकों के पास इन प्रश्नों का कोई युक्ति युक्त उत्तर नहीं है। इन लेखकों का उद्देश्य भारत के गौरव और संस्कृति को विनष्ट करना ही रहता है। भारत का कितना दुर्भाग्य है कि इस प्रकार के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यक्ति प्रमादालयों में न रहकर आज विश्वविद्यालयों में अध्यापक हैं और छात्रों की बुद्धि नष्ट कर रहे हैं।

यह बात साधारणत: समझ में आ सकती है कि एक भाषा दूसरी भाषा के कुछ शब्द ग्रहण कर सकती है, परन्तु उन शब्दों को भी अपने व्याकरण के अनुसार व्यवहार में लाती है। एक भाषा दूसरी भाषा का व्याकरण कभी ग्रहण नहीं करती है। प्रत्येक भाषा का व्याकरण उस भाषा के स्वभाविक विकास के अनुसार ही बनता है।

State Museum Library Lucknow 7635

शब्द कोश और लिङ्ग-निर्णय

हिन्दी भाषा का शब्द कोश सबसे पहले नागरी प्रचारणी सभा काशी ने 'हिन्दी शब्द सागर' नामक प्रकाशित किया था। प्रतीत होता है कि इस कोश के सम्पादक काशी-कौशल, भोजपुरी और छत्तीसगढ़ी भाषाओं के क्षेत्रों के रहने वाले थे। इन क्षेत्रों में व्याकरण सम्बन्धी लिङ्ग भेद बहुत कम किया जाता है। इन सम्पादकों को सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग निर्णय करने के सिद्धान्तों का कोई ज्ञान नहीं था। वह समझते थे कि यह लिङ्गानुशासन केवल व्यवहार के अनुसार होता है। अत: उन्होंने सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग जो उनकी समझ में आये लिख दिये। इस कोश में अनेक शब्दों के अशुद्ध लिङ्ग दिये हुये हैं। इसके पश्चात हिन्दी के जो और शब्द कोश प्रकाशित हुये हैं, वह या तो इस शब्द कोश का अन्धानुकरण है या वह इस शब्द कोश पर आधारित हैं। सञ्ज्ञा शब्दों के जो लिङ्ग उस शब्द कोश में दिये हैं वही उन कोशों के सम्पादकों ने लिख दिये। इसी कारण आज सभी शब्द कोशों में अनेक सञ्ज्ञा शब्दों के अशुद्ध लिङ्ग दिये हुये है।

हिन्दी शब्द सागर के सम्पादक मण्डल के एक गुर्वर्थ सम्पादक और संक्षिप्त शब्द सागर के मूल सम्पादक ने सभा से अपना सम्बन्ध तोड़ने के पश्चात एक शब्द कोश—'प्रमाणिक हिन्दी कोश' नामक प्रकाशित किया। इस कोश की प्रस्तावना में इस सम्पादक ने लिखा है—जिस समय 'हिन्दी शब्द सागर' बना था उस समय बड़े-बड़े विद्वानों ने मुक्त-कण्ठ से उसकी प्रशसा की थी। पर जो विशाल भवन दूर से देखने वालों को परम रमणीक, भव्य और सुखद जान पड़ता था, वही भवन उसमें रहने वालों को और उनसे भी बढ़कर उसके बनाने वाले कारीगरों को बहुत कुछ त्रुटिपूर्ण और सदोष जान पड़ता है। शब्द सागर के दो सम्पादक (रामचन्द्र शुक्ल व रामचन्द्र वर्मा) प्राय: आपस की बातचीत में शब्द सागर की खूब दिल्लगी उड़ाते थे और उसके तरह तरह के दोषों की चर्चा करते हुये सोचा करते थे कि इसके यह सब दोष कब और कैसे दूर होंगे।" अत: हम समझते हैं कि इस सम्पादक ने "हिन्दी शब्द सागर" के वह सभी दोष दूर करके यह कोश सम्पादित किया। परन्तु खेद है कि प्रमाणिक शब्द कोश में हिन्दी शब्द सागर के दोष दूर नहीं किये गये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपितु उससे भी अधिक भ्रान्तियाँ भरी पड़ी हैं।

उसी कोश की प्रस्तावना में लिङ्ग निर्णय के विषय में वह लेखक लिखता है—"हिन्दी में लिङ्ग भेद का प्रकरण इतना जटिल और दुरुह है कि उसकी ठीक-ठीक मीमांसा होना प्राय: असम्भव है। बहुत से अहिन्दी भाषी इसी लिये हिन्दी से घबराते हैं कि उनकी समझ में नहीं आता कि हिन्दी में 'मार्ग' या 'रास्ता' पु० क्यों हैं और 'सड़क' या 'गली' स्त्री० क्यों है। या बाल पु० क्यों है और दाढ़ी या मूंछ स्त्री० क्यों है। पर हिन्दी में सञ्ज्ञाओं में लिङ्गभेद है ही, जिसका प्रभाव विशेषणों और क्रियाओं तक पर पड़ता है। किसी शब्द का ठीक लिङ्ग जानने के लिये लोगों को प्राय: कोश का ही सहारा लेना पड़ता है। अत: प्रमाणिक हिन्दी कोश में शब्दों के लिङ्ग बहुत कुछ विचार पूर्वक और कुछ निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर स्थिर किये गये हैं"। 'प्रमाणिक हिन्दी शब्द कोश' के अवलोकन के पश्चात हम दृढ़ता पूर्वक लिखते है कि उसके सम्पादक को हिन्दी शब्दों के लिङ्ग निर्णय करने के सिद्धान्त का कोई ज्ञान नहीं था। उसको मार्ग पु० और सड़क स्त्री० होने के कारण का भी ज्ञान नहीं है। उस सम्पादक के उपरोक्त कथन का समाधान इस पुस्तिका में व्यक्त किये गये लिङ्गानुशासन के नियम प्रकृति—प्रत्यय के द्वारा होता है।

मार्ग, सं० पु०—सरस्वती मार्ग: प्रत्यय के अनुसार पु०।

रास्ता, सं० पु०—[म्लेच्छ भाषा का शब्द] इस शब्द का वही लिङ्ग होगा जो उस के अर्थ के अनुसार संस्कृत शब्द का प्रत्यय के अनुसार होगा। रास्ता = संस्कृत मार्ग पु०।

सड़क—प्रमाणिक हिन्दी कोश और हिन्दी शब्द सागर में इसे अरबी 'शरक' शब्द लिखा है। अरबी में 'शरक' का अर्थ सड़क नहीं है और न यह शब्द अरबी भाषा का है। 'सड़क' शब्द संस्कृत शब्द 'सृङ्का' का रूपान्तर है और प्रत्यय के अनुसार आकारान्त होने के कारण स्त्री० है। देखो आप्टे खण्ड ३, पृष्ठ १७००। खेद हैं कि 'हिन्दी शब्द सागर' का अन्धानुकरण आदर्श-हिन्दी-संस्कृत कोश के सम्पादक ने भी किया है। यह कोश चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी ने प्रकाशित किया है। इस कोश में भी 'सड़क' को (अ० शरक) लिखा है।

बाल सं० पु०—संस्कृत (बाल:) प्रत्यय के अनुसार पु०

दाढ़ी सं० स्त्री-संस्कृत (दाढिका) प्रत्यय के अनुसार स्त्री०।

मूंछ स० स्त्री—संस्कृत (मासुरी) प्रत्यय के अनुसार स्त्री०।

'हिन्दी शब्द सागर' 'प्रमाणिक हिन्दी कोश' तथा आदर्श हिन्दी संस्कृत कोशों में मूंछ को श्मश्रु लिखा है जो अशुद्ध है। खरी बोली में मूंछ को मूंस भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहते है जो मासुरी का रूपान्तर है। श्मश्रु का शुद्ध अर्थ पुरुष के मुख के ऊपर के बाल हैं।

शब्द कोशों में दी हुई व्याकरण लिङ्ग सम्बन्धी सभी भ्रान्तियों को दिखाने का हमारे पास पर्याप्त स्थान नहीं है। उदाहरणार्थ हम कुछ शब्दों को प्रस्तुत करते है जिनके लिङ्ग शब्द कोशों में अशुद्ध दिये हुये है। उसके पश्चात इन शब्दों के साधु लिङ्ग जो खरी बोली में प्रचलित हैं बताकर अपने कथन का प्रमाणित करेंगे।

शब्द	हिन्दी शब्द सागर	प्रमाणिक शब्द कोश	आदर्श हिन्दी संस्कृत कोश	खरी बोली
(१) जोत	स्त्री०	स्त्री०	स्त्री०	पु०
(२) ईख	स्त्री०	स्त्री०	स्त्री०	पु०
(३) सान	पु०	पु०	पु०	स्त्री०
(४) चौसर	पु०	स्त्री०	पु०	स्त्री०
(५) सैल	स्त्री०	स्त्री०	स्त्री०	पु०
(६) मचान	स्त्री०	स्त्री०	पु०	पु०
(७) मसूर	पु०	पु०	पु०	स्त्री०
(८) सेमल	पु०	पु०	पु०	स्त्री०
(९) सांस	स्त्री०	पु०	स्त्री०	पु०
(१०) सीप	पु०	पु०	पु०	स्त्री०
(११) वित्ता, बालिश्त	पु०	पु०	पु०	स्त्री०
(१२) भंवर	पु०	पु०	पु०	स्त्री०
(१३) कूढ	पु०	+	+	स्त्री०
(१४) दात	पु०	+	+	स्त्री०
(१५) कलस	स्त्री०	स्त्री०	स्त्री०	पु०
(१६) दही	पु०	पु०	पु०	स्त्री०
(१७) भोर	पु०	पु०	पु०	स्त्री०
(१८) छोर	पु०	पु०	पु०	स्त्री०

समाधान

(१) जोत—हल के जुए की रस्सी या चमड़े का पट्टा; चमड़े का पट्टा या रस्सी जिसके द्वारा बैलों को गाड़ी के जुए से बान्ध देते हैं। सं० योक्त्रम्, योत्रम्, पु०।

(२) ईख—गन्ना। सं० इक्षु, इक्षुकः पु०।

(३) सान—वह पत्थर जिस पर शस्त्र आदि की धार लगाई जाती है। सं० शाणी, स्त्री०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(४) चौसर—चौपड़ । सं० चतुस्सारिः, चतुस्सारी, स्त्री० ।
(५) मैल—अपवित्रता, धूल आदि । सं० मलः, मलम् पु० ।
(६) मचान—उभरा हुआ आसन । सं० मञ्चः पु० ।
(७) मसूर—एक प्रकार की दाल । सं० मसरा, मसूरा, स्त्री० ।
(८) सेमल—सं० शाल्मली स्त्री० ।
(९) सांस—सं० श्वासः पु० ।
(१०) सीप—सं० शुक्तिः, शुक्तिका स्त्री० ।
(११) बित्ता, बालिश्त—खरी बोली में इसे बिलेन्द बोलते है। बारह अङ्गुली की लम्बाई की नाप, हाथ को पूरा फैलाकर अङ्गूठे से कन्नो अङ्गुली तक की दूरी सं० वितस्तिः स्त्री० ।
(१२) भंवर—पानी की चक्राकार गति, सं० भ्रमिः स्त्री० ।
(१३) कूड-खेत जोतने पर हल से निकली हुई एक रेखा । स० कृष्टिः स्त्री० ।
(१४) दात—विवाह के समय कन्या को दी गुई सभी सामग्री । सं० दातिः स्त्री० ।
(१५) कलम—लेखनी । सं० कलमः पु० ।
(१६) दही—सं० दधि, स्त्री० ।
(१७) भोर—संर० भा-अवरा, स्त्री० भा = प्रकाश, आभा; अवरा = ओर
(१८) छोर—सर० पः—अवरा, स्त्री० पः = अन्तः, पर्यन्तः, सीमा ।

बृहत् हिन्दी कोश की भूमिका में लिखा है—'शब्दों का लिङ्ग भेद या व्याकरण हिन्दी में अभी विवाद का विषय बना ही हुआ है। एक ही शब्द एक व्यक्ति स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त करता है और दूसरा पुल्लिङ्ग में, और विचित्रता तो यह है कि दोनों ही प्रयोग शुद्ध माने जाते हैं। उदाहरणार्थ, नागरी प्रचारणी सभा वाले 'झंझट' स्त्रीलिङ्ग मानते हैं और अन्य बहुत से लेखक पुल्लिङ्ग । हिन्दी में इस प्रकार के कई शब्द हैं। हमने कहीं-कहीं प्रयोग के अनुसार दोनों रूप दिये हैं और कहीं-कहीं स्वतन्त्र विचार से काम लिया है। संस्कृत के शब्दों का लिङ्ग हिन्दी के अनुसार रक्खा है। गरिमा, लघिमा, अग्नि आदि शब्द संस्कृत में तो पुल्लिङ्ग हैं, पर हिन्दी में स्त्री लिङ्ग में युक्त होते हैं, इसलिये हमने भी ऐसे शब्दों के सम्बन्ध में हिंदी का ही प्राधान्य माना है। यह अन्तर संस्कृत के पाठकों को कुछ खटक सकता है, पर हमारे लिये कुछ और मार्ग नहीं था'।

उपरोक्त कथन सत्य भी है और भ्रामक भी। सत्य तो इस कारण कि जो दशा आज कुछ शब्दों की है, कोश सम्पादक यह दशा प्रत्येक शब्द की बनादेंगे। भ्रामक इस कारण कि कोश सम्पादक हिंदी शब्दों के लिङ्ग अपने-अपने प्रयोग के अनुसार मनमाने लिखते हैं। इन सम्पादकों को लिङ्ग निर्णय के नियम का ज्ञान ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं है अतः किसी शब्द के पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग होने का समाधान यह कोश सम्पादक नहीं कर सकते हैं। संस्कृति के अञ्जलि, अग्नि आदि शब्द इकारान्त होने के कारण स्त्रीलिङ्ग हैं। बृहत हिन्दी कोश में भी दही (दधि) बित्ता (वितस्ति:) स्त्रीलिङ्ग शब्दों को पुल्लिङ्ग लिखा है जो असाधु है। सरस्वती भाषा के कुछ नकारान्त शब्दों का हिन्दी में आकारान्त उच्चारण हो जाता है—देखो इसी पुस्तिका का पृष्ठ ११०। परन्तु वह सभी शब्द प्रत्यय के अनुसार पुल्लिङ्ग ही रहते हैं, यथा—राजन्–राजा; शर्मन्–शर्मा; वर्मन्–वर्मा; नामन्–नामा; श्वन्–श्वा; तक्कन्–तक्का; विश्वकर्मन्–विश्वकर्मा; चर्मन्–चर्मा, चमड़ा; आत्मन्–आत्मा; महात्मन्–महात्मा आदि। इसी कारण गरिमन्—गरिमा, और लघिमन्–लघिमा शब्द भी हिन्दी में प्रत्यय के अनुसार पुल्लिङ्ग ही हैं।

'झंझट' शब्द को 'हिन्दी शब्द सागर' और बृहत् हिन्दी कोश के सम्पादकों ने अपने-अपने मन माने प्रयोग के कारण स्त्रीलिङ्ग या पुल्लिङ्ग लिख दिया है। यह शब्द स्त्रीलिङ्ग है या पुल्लिङ्ग इसके कारण का दोनो कोशो के सम्पादक मण्डलो का ज्ञान ही नहीं है। इस प्रकार के वादविवाद का समाधान करने के लिये सिद्धान्त का जब तक ज्ञान ही नहीं होगा, दोनों सम्पादक मण्डल अपने-अपने कथन पर अटल रहेंगे। कितनी मूर्खता की बात है कि नागरी प्रचारणी सभा के कोश में 'झञ्झट' को (अनु०) लिखा है। इसका समाधान इस प्रकार है—

झञ्झट—अर्थ 'ध्यान का उलझना', ध्यान का सम्भ्रान्त होना, आकुल होना, अर्थात कठनाई, व्याकुलता, सम्भ्रान्ति आदि। इस शब्द के साधु रूप का ज्ञान करके प्रत्यय के अनुसार इसका लिङ्ग निर्णय होगा।

झञ्झट = ध्यान + झट्, ध्य का उच्चारण 'झ' होता है। 'झट' संस्कृत कोश में उपलब्ध है, जो संस्कृत के व्याकरण के अनुसार धातु है, परन्तु सरस्वती भाषा के अनुसार कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द झटनम् (झड़ना) का स्त्रीलिङ्ग रूप है (इस विषय पर सिद्धान्त अङ्क का वाक्य विचार अध्याय देखो)। झट् का अर्थ है उलझना या सम्भ्रान्त होना। इस प्रकार इस शब्द का अर्थ सिद्ध होता है। 'झट' स्त्रीलिङ्ग होने के कारण 'ध्यान—झट' स्त्रीलिङ्ग सिद्ध होता है। यह ध्यान रहे कि इस शब्द में प्रत्यय 'ट्' नही है अपितु स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय 'झट्' है।

हिन्दी भाषा के नाम पर आज अनेक शब्द कोश प्रकाशित हो रहे हैं परन्तु उनमे से एक भी कोश को हिन्दी (खरी बोली) का कोश नही मान सकते हैं। इन सभी कोशों में म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों को, केवल कोश का कालेबर बढ़ाने के लिये, भरा जा रहा है। यह शब्द न हमारी भाषा के हैं और न कभी हमारी भाषा का अङ्ग बन सकते हैं। हिन्दी में इन्हीं शब्दों के प्रयोग के कारण ही हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनने में कठिनाई हो रही है और इसका उत्तरदायित्व हिन्दी भाषा के कोश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्पादकों और लेखकों पर है । यदि म्लेच्छ भाषाओं के सभी शब्दों का हिन्दी कोशों से बहिष्कार कर दिया जाये और हिन्दी लेखक इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग पाप समझलें तो वह समय दूर नहीं है जब दक्षिण भारतीय हिन्दी भाषा को हृदयङ्गम कर लेंगे । खेद है हिन्दी कोश के सम्पादक हिन्दी कोशों का सम्पादन किसी शोध कार्य की भावना से नहीं कर रहे हैं अपितु आर्थिक लाभ की दृष्टि को लक्ष में रखकर ही करते हैं ।

हिन्दी कोश सम्पादकों व लेखकों को हम यह बताना आवश्यक समझते हैं कि म्लेच्छ भाषा का कोई भी शब्द जब हिन्दी में प्रयोग होता है तो उस शब्द की व्याकरण कोटि और लिङ्ग ज्ञात करने के हेतु पहले उस शब्द का अर्थ के अनुसार सरस्वती शब्द का ज्ञान किया जाता है । जो व्याकरण कोटि इस सरस्वती शब्द की होगी वही व्याकरण कोटि म्लेच्छ भाषा के शब्द की होगी । तथा जो व्याकरणिक लिङ्ग सरस्वती शब्द का प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार होगा वही लिङ्ग उस शब्द का भी होगा । जब म्लेच्छ भाषा के शब्द के पर्यायवाची सरस्वती शब्द का ज्ञान करना ही पड़ता है तो म्लेच्छ भाषा के शब्द का अपनी भाषा में प्रयोग करने का क्या लाभ है ।

उत्तर प्रदेश के सूचना विभाग की प्रकाशन शाखा ने एक उर्दू-हिन्दी शब्द कोश प्रकाशित किया है । यह शब्द कोश किसी भाषा का नहीं हैं और न केवल इस शब्द-कोश में दिये हुये शब्दों से कोई भाषा बन सकती है । इस शब्द कोश में म्लेच्छ भाषाओं के शब्द दिये हुये हैं, जिनको उर्दू के शब्द कहा गया है । इस शब्द कोश में अनेक सञ्ज्ञा शब्दों के व्याकरणिक लिङ्ग असाधु दिये हुये हैं । यथा अक्ल पु०, शराब पु०, शर्बत स्त्री० । इन शब्दों के साधु लिङ्ग और उसका कारण इस प्रकार हैं—

(अक्ल) बुद्धिः स्त्री, (शराब) सुरा, मदिरा स्त्री०, (शर्बत) शर्करावत पु० ।

भाषा-विज्ञान के गर्हित विचार :

आधुनिक हिन्दी भाषा विज्ञान के विद्याविहीन और दुर्बुद्धि लेखक गङ्गा को उलट कर हिमालय पर चढ़ाने जैसी घोर अवैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रयत्न किया करते हैं । एक भाषा विज्ञान के लेखक का कथन है—"हिन्दी व्याकरण के अनुसार 'आय' शब्द स्त्रीलिङ्ग है पर व्याकरण यह नहीं बताता कि एक ही धातु और प्रत्यय से निष्पन्न 'आय' स्त्रीलिङ्ग क्यों हो गया है जब कि 'व्यय' पुल्लिङ्ग है । इसका समाधान भाषा विज्ञान करता है । 'आय' शब्द के लिङ्ग पर फारसी के 'आमद' शब्द का प्रभाव है जो स्त्रीलिङ्ग है । 'आमद' का स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग करने वाली (जबान) भाषा ने जब 'आय' का प्रयोग करना (शुरु) आरम्भ किया तो पूर्व संस्कार से उसको भी स्त्रीलिङ्ग बना दिया, यद्यपि प्रकृति-प्रत्यय की दृष्टि से उसे पुल्लिङ्ग ही होना चाहिये । इसी प्रकार हिन्दी व्याकरण 'पुस्तक' शब्द को स्त्रीलिङ्ग कह देता है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर उसका कारण नहीं बताता। संस्कृत के नपुंसक लिङ्ग 'पुस्तक' शब्द का हिन्दी में सामान्यत: पुल्लिङ्ग में प्रयोग होना चाहिये, किन्तु अरबी की 'किताब' के प्रभाव स्वरूप पुस्तक शब्द का स्त्रीलिङ्ग में व्यवहार होने लगा।'' यह कथन कितना भ्रामक और हास्यास्पद है। इन लेखकों को यह भी ज्ञान नहीं कि म्लेच्छ भाषाओं में सञ्ज्ञा शब्दों के व्याकरणिक लिङ्ग के कोई नियम नहीं हैं। इन शब्दों को हमारी भाषा में अनावश्यकता प्रयोग किया जाता है और इस प्रकार के शब्दो का व्याकरणिक लिङ्ग वही होता है जो उस शब्द के पर्याय वाची सरस्वती शब्द का प्रत्यय के अनुसार होता है। 'आय:' शब्द स्त्रीलिङ्ग नहीं अपितु पुल्लिङ्ग है। 'आमद (फा०) शब्द के स्त्रीलिङ्ग होने का कारण यह है कि वह शब्द "आमदन" (फा) अर्थात आना (हि०) शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप है। (देखो वाक्य विचार) 'पुस्तक' शब्द पुस्ति या पुस्तिका का विकृत रूप है जो प्रत्यय के अनुसार स्त्रीलिङ्ग है। सं० शब्द 'पुस्तक' का विकृत रूप 'पोथा' है जो पुल्लिङ्ग है।

क्या यह लेखक जानते है कि फारसी का एक ही शब्द 'आब' पानी के अर्थ में पुल्लिङ्ग और चमक के अर्थ में स्त्री लिङ्ग क्यों होता है। यथा आब (पानी) बह रहा है तथा मोती की आब (चमक) उतर गई। उसका कारण यह है कि शब्द 'आब' पानी के अर्थ में शब्द 'आपम् के प्रत्यय के अनुसार पुल्लिङ्ग है और चमक के अर्थ में शब्द 'आभा' के प्रत्यय के अनुसार स्त्रीलिङ्ग है। इसी प्रकार फारसी भाषा का शब्द 'गुजर' है। यह शब्द जाने के अर्थ में पुल्लिङ्ग है और वृत्ति (निर्वाह) के अर्थ में स्त्री० लिङ्ग है। उसका कारण है कि जाने के अर्थ में यह शब्द सरस्वती भाषा के शब्द 'गमनम्' के स्थान पर प्रयोग होने से पुल्लिङ्ग है और शब्द 'जीविका वृत्ति' या 'वृत्ति' के स्थान पर प्रयोग होने के कारण प्रत्यय के अनुसार स्त्रीलिङ्ग है।

इसी प्रकार शब्द 'रहम' हमारी भाषा के शब्द 'अनुग्रह' के स्थान पर प्रयोग होने के कारण पुल्लिङ्ग है और 'योनि' के स्थान पर प्रयोग होने के कारण प्रत्यय के अनुसार स्त्रीलिङ्ग है। एक और शब्द 'अर्ज' का उदाहरण देते हैं। यह शब्द हमारी भाषा के शब्द 'विस्तार:' या परिग्रह के स्थान पर प्रयोग: होने के कारण प्रत्यय के अनुसार पुल्लिङ्ग है, तथा शब्द 'प्रार्थना' के स्थान पर प्रयोग होने के कारण प्रत्यय के अनुसार स्त्रीलिङ्ग है। यही दशा म्लेच्छ भाषाओं के सभी शब्दों की है। सरस्वती भाषा में किसी शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग होने पर भी उसके लिङ्ग में कोई भेद नहीं हो सकता हैं, जो सर्वदा प्रकृति—प्रत्यय के अनुसार निश्चित रहता है। वास्तव में फारसी भाषा के सभी शब्द सरस्वती भाषा के भ्रष्ट शब्दों के रूप हैं और उन शब्दों का लिङ्ग हमारी भाषा के सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग के अनुसार होता है। इस सम्बन्ध में देखो, इसी पुस्तिका का अध्याय—"हमारी उत्पत्ति एवं आदि देश।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: १७ :

हिन्दी भाषा के शब्द कोश

इस पुस्तिका के सिद्धान्त अङ्क में हमने पूर्णतया सिद्ध किया है कि भारत की आदि मूल भाषा सरस्वती थी जो मध्य देश की कथ्य भाषा थी, परन्तु यह भाषा शुद्ध रूप में अपने उद्गम स्थान के समीपवर्ती क्षेत्र कुरुदेश में ही बोली जाती थी। इस प्रदेश की कथ्य भाषा अब हिन्दी (खरी बोली) है। सरस्वती भाषा का संस्कृत रूप संस्कृतम् अर्थात संस्कृत भाषा है। संस्कृत शास्त्रीय भाषा है जिसका व्याकरण कृत्रिम और जटिल है। संस्कृत के, व्याकरण द्वारा नियन्त्रित होने के कारण, शब्दों में आदि काल से आज तक कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सरस्वती जन-साधारण की कथ्य भाषा थी और उसका व्याकरण अत्यन्त सरल था। सरस्वती और संस्कृत भाषाओं में जो भी अन्तर था वह केवल व्याकरणिक था। दोनों भाषाओं के शब्द, शब्दों के अर्थ और शब्दों की व्याकरण कोटियां एक ही थी। सरस्वती भाषा में, काल-भेद और व्यक्तिगत उच्चारण के कारण, परिवर्तन होता रहा और उसके शब्दों के रूपों में इतना परिवर्तन हो गया की उसके शब्द व्याकरण के अनुसार भ्रष्ट हो गये। परन्तु उन शब्दों के अर्थों तथा व्याकरण कोटियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सरस्वती भाषा के शब्दों के साधु रूप और उनके अर्थ आज भी संस्कृत कोशो में सुरक्षित हैं और उपलब्ध हैं। संस्कृत कोशों में दिये हुये शब्दों को हम संस्कृत भाषा के शब्द मानकर हिन्दी खरी बोली में प्रयोग नहीं करते हैं। हम उन शब्दों को उस भाषा (सरस्वती) के शब्द मानकर व्यवहार में लाते हैं, जिससे व्याकरण द्वारा नियन्त्रित होकर संस्कृत भाषा बनी थी, और जिसका आधुनिक रूप हिन्दी (खरी बोली है। अत: हिन्दी खरी बोली संस्कृत भाषा की पुत्री नही है अपितु संस्कृति की जननी का आधुनिक रूप या उसकी प्रतिनिधि है। इसका सब से बड़ा प्रमाण यह है कि संस्कृत कोशों में दिये हुये सभी सञ्ज्ञा शब्दों के व्याकरणिक लिङ्ग हिन्दी में वही हैं जो उन शब्दों के लिङ्ग निर्णय के नियम प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार सिद्ध होते हैं और इसका कोई भी अपवाद नहीं है। संस्कृत कोशों में दिये हुये शब्दों और उन शब्दों से बने हुये यौगिक शब्दो के अतिरिक्त हमारी भाषा के और कोई शब्द नहीं है। म्लेच्छ भाषाओं के जो शब्द अनावश्यक हमारी भाषा मे घुसेड़ दिये गये हैं या जिनको घुसेड़ने का प्रयास किया जा रहा है वह हमारी भाषा का अङ्ग न हैं और न बन सकते हैं। हम यहां यह भी बता दें कि पाली प्राकृत और अपभ्रंश किसी काल में भी भारत के किसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रदेश की कथ्य भाषायें नहीं थीं, तथा उन कृत्रिम भाषाओं का हिन्दी खरी बोली से कोई सम्बन्ध नहीं है।

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि हिंदी भाषा में प्रचलित शब्दों के साधु रूप का ज्ञान हो जाये तो उन शब्दों की वही व्याकरण कोटियां और अर्थ होंगे जो उन शब्दों के संस्कृत कोशों में उपलब्ध हैं। अतः हिंदी भाषा के कोश सम्पादकों को जिन आधारों पर कोश सम्पादन का कार्य करना आवश्यक और अनिवार्य था वह थे—

(क) हिन्दी भाषा में प्रचलित शब्दों के साधु रूप का ज्ञान करना,

(ख) यौगिक शब्दों का विच्छेद करके उनकी व्युत्पत्ति दिखाना,

(ग) सञ्ज्ञा शब्दों के साधु रूप का ज्ञान करके उनका प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार लिङ्ग निर्णय करना और वही लिङ्ग हिन्दी शब्द का बताना,

(घ) सभी शब्दों की व्याकरण कोटियां और अर्थ संस्कृत कोशों के अनुसार बताना,

(ङ) म्लेच्छ भाषाओं के अनावश्यक शब्दों का, जिनके पर्याय वाची शब्द हमारी भाषा में है या बन सकते हैं, बहिष्कार करना।

हम दृढ़तापूर्वक कहते है कि यदि उपरोक्त आधारों पर हिन्दी भाषा के शब्द कोशों का निर्माण हुआ होता तो योरोपीय लेखकों, व पादरियों और पाश्चात्य पद्धति से शिक्षा-दीक्षा पाये भारतीयों ने हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में जो अनर्गल और दूषित विचार प्रसारित किये थे, वह विचार जन्म लेने से पहले ही विनष्ट हो जाते।

हिन्दी कोश सम्पादन का कार्य सबसे पूर्व नागरणी प्रचारणी सभा काशी ने संवत १९६६ वि० में आरम्भ किया और २० वर्ष में 'हिन्दी शब्द सागर' नामक शब्द कोश आठ खण्डों में प्रकाशित किया। इसके पश्चात कई हिन्दी कोश प्रकाशित हुये। वह सभी शब्द कोश या तो हिन्दी शब्द सागर पर आधारित हैं या उसका अन्धानुकरण हैं। इनमे से किसी कोश में भी कोई मौलिक प्रामाणिकता नहीं है। उन कोशों का सम्पादन सत्य शोध की भावना से नहीं अपितु आर्थिक लाभ की दृष्टि से हुआ है। इन सभी शब्दकोशों में हिन्दी (खरी बोली) क्षेत्र की भाषा मे दैनिक व्यवहार मे आने वाले सहस्त्रों शब्दों का तो अभाव है परन्तु म्लेच्छ भाषाओं के गर्हित शब्दों का बाहुल्य है। इन सभी शब्द कोशों में सञ्ज्ञा शब्दों के जो व्याकरणिक लिङ्ग दिये हुये हैं उनसे यह स्पष्ट होता है कि इन शब्द कोशों के सम्पादकों को लिङ्ग निर्णय के नियम का कोई ज्ञान नही था। अनेक शब्दो के अर्थ और व्युत्पत्ति तो इतनी भ्रामक और दूषित है कि उससे यह प्रतीत होता है कि इन सम्पादकों को हिन्दी (खरी बोली) का भी विशेष ज्ञान नहीं था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन शब्द कोशों में म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का बाहुल्य, सञ्ज्ञा शब्दों के अशुद्ध लिङ्ग, शब्दों के भ्रामक अर्थ और अनर्गल तथा उपहासजनक व्युत्पत्ति से यह सिद्ध होता है कि यह शब्द कोश हिन्दी (खरी बोली) के नहीं अपितु किसी अज्ञात म्लेच्छ भाषा के शब्द कोश हैं कितनी हास्यास्पद बात है कि शब्द सागर में म्लेच्छ भाषा का शब्द निखालिस' विशुद्ध के अर्थ में दिया हुआ है। और इससे भी आश्चर्य-जनक वात यह है कि इस शब्द का भी अन्धानुकरण अन्य शब्द कोशों में हुआ है। हम इन सम्पादकों को एक ऐसा ही शब्द 'बेफजूल' व्यर्थ के अर्थ में बताते हैं जिसे यह अपने कोशों से खङ्ग्रहीत कर सकते हैं।

आज से कुछ शताब्दी पूर्व तक हिन्दी (खरी बोली) क्षेत्र की साधारण जनता भले ही शुद्ध संस्कृत न बोल सकती हो, परन्तु वह उसे अवश्य ही समझ लेती थी। कारण कि (खरी बोली) और संस्कृत के सभी शब्द, व्याकरण कोटियों और अर्थ सहित एक ही हैं, दोनों भाषाओं में केवल व्याकरणिक भेद है। आज हिन्दी शब्दों के केवल अक्षर विन्यास विकृत हो गये हैं। चोखम्बा विद्याभवन वाराणसी ने एक 'आदर्श-हिन्दी-संस्कृत,कोश:' प्रकाशित किया है। इस प्रकार के कोश का मूल कार्य केवल हिन्दी शब्दों के साधु शब्द का ज्ञान कराना ही हो सकता है। हमें पूर्ण आशा थी कि इस सम्पादक ने यह कार्य अवश्य किया होगा। खेद है कि इस कोश सम्पादक का शब्दो की व्युत्पत्ति के विषय में मुख्य आधार 'हिन्दी शब्द सागर' ही रहा। शब्दों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में जो अवैज्ञानिक, अनर्गल, दूषित तथा हास्यास्पद विचार हिन्दी शब्द सागर में दिये हुये हैं उन्हीं का अन्धानुकरण इस सम्पादक ने किया हे। इस शब्द कोश में भी म्लेच्छ भाषाओं के शब्द दिये गये हैं और उनका संस्कृत अनुवाद देने का प्रयास किया गया है जो पूर्णतया अवैज्ञानिक है।

नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी शब्द कोश एक दूषित प्रथा को जन्म दे रहे हैं। इन कोशों का सम्पादक मण्डल अपनी अज्ञानता और विवेक हीनता के कारण संस्कृत और हिन्दी शब्दों, जो वास्तव में एक ही हैं और युगों से एक ही अर्थ को प्रकट करते हुये हमारी भाषा में प्रचलित हैं, की अवहेलना करते हुये म्लेच्छ भाषाओं के गर्हित शब्दों से कोश के कलेवर की वृद्धि कर रहा है और इन्हीं कथित शब्दों को हिन्दी भाषा के शब्दों की सञ्ज्ञा देकर अपने कर्तव्य की इति मान लेता है। प्रत्येक अहिन्दी भाषी हिन्दी का प्रामाणिक रूप देखने के लिये सबसे पूर्व ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित कोश की शरण में जाता है, परन्तु उसे निराश होना पड़ता है जब वह देखता है कि संस्कृत के आधार पर जितने हिन्दी शब्दों का उसे ज्ञान है, उन शब्दों से ही यह कोश शून्य है। बङ्गाल और दक्षिण भारत के अहिन्दी भाषी व्यक्तियों का यह विश्वास है कि हिन्दी भाषा का शब्द कोश वही है जो संस्कृत भाषा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का है, परन्तु जब वह हिन्दी शब्द सागर आदि कोशों का अवलोकन करते हैं तो उन कोशों में संस्कृत शब्दों के स्थान पर म्लेच्छ भाषाओं के शब्द दिखाई देते है और उन्हें आश्चर्य होता है कि क्या यही हिन्दी भाषा राष्ट्र भाषा के रूप में उन्हें ग्रहण करनी पड़ेगी। एक तमिल भाषी का कथन है कि वे हिन्दी भाषा में माता और पिता शब्दों की तो कल्पना कर सकते हैं किन्तु वालिद और वालिदा की नहीं। अतः वह इस प्रकार की भाषा, जिसमें म्लेच्छ भाषाओं के शब्द व्यवहार में आते हों, के विरुद्ध विद्रोह कर उठते हैं। इस व्यथा और विद्रोह के रूप में अहिन्दी भाषा-भाषी राष्ट्र भाषा को सरल संस्कृत के रूप में प्रतिष्ठित करने की मांग करते हैं। विवेक तथा तर्कपूर्ण दृष्टि से जब हम विचार करते हैं तो उनकी इस भावना में सत्य, तथ्य और बल पाते हैं। हमें आशा है कि औचित्य के आधार पर जब कभी भारत मे पूर्णतया राष्ट्र भावना से ओतपरोत जनसमुदाय का शासन पर अधिकार होगा तो ऐसी हिन्दी जिसमें केवल सरस्वती भाषा के शब्द होंगे तथा जिसमें म्लेच्छ भाषा के शब्दों का व्यवहार वर्जित होगा, इस देश की राष्ट्र भाषा बनकर देश में राष्ट्रीयता और अखण्डता का प्रचार करेगी और इस देश में रहने वाले, देशद्रोही अभारतीयों के वास्तविक रूप को प्रकट करके उनको नष्ट करने में सहायता देगी।

आकाशवाणी से हिन्दी में प्रसारित समाचार की भाषा में अरबी आदि भाषाओं के शब्द इस प्रकार समन्वय किये जाते हैं जैसे भारत के कुछ पदासीन नेताओं के रक्त में अरबों, तुर्कों तथा मुगलों का रक्त मिश्रित हो और उसी का रङ्ग आकाश-वाणी की भाषा में लक्षित होता हो। इतना ही नहीं, आकाशवाणी सञ्चालक, अल्पमत से, चाटुकार नेताओ को प्रसन्न करने के लिये आकाशवाणी से जो उर्दू भाषा प्रसारित की जाती है, उसमें अरबी, फ़ारसी भाषाओं के इतने शब्द होते हैं, जैसे उसके सुनने वाले भारत के अर्ध शिक्षित मुसलमान न हों अपितु अरब देश के ही रहने वाले अरब हों। हिन्दी में म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों के व्यवहार के कारण ही तो राष्ट्र भाषा हिन्दी का दक्षिण भारत के निवासी विरोध करते हैं। यह कार्य वर्तमान भारत शासन की निष्ठापूर्व नीति के अधीन इस कारण किया जाता है कि भारत को भाषा के एकता के सूत्र में न बन्धने दिया जावे।

खेद है कि हिन्दी शब्द कोशों में म्लेच्छ भाषाओं के माशूक, हमदूब, सनम दिलदार, दिलबर, दिलरुबा आदि पुल्लिङ्ग शब्द दिये हुये हैं। इस प्रकार के शब्द भारतीय संस्कृति और सभ्यता के अनुसार असभ्य, अशिष्ट, अभद्र, गर्हित तथा अश्लील हैं। हिन्दी में इस प्रकार के शब्दों के पर्याय वाची शब्द प्रियतमा, प्रेमिका, प्रेयसी, प्रतिमा, वल्लभा, हृदयेश्वरी आदि स्त्रीलिङ्ग शब्द हैं। हिन्दी शब्द सागर का सम्पादन मण्डल म्लेच्छ भाषाओ के शब्दों को हिन्दी भाषा के कोश का अङ्ग बनाकर प्रच्छन्न रूप से इन शब्दों को प्रोत्साहन दे रहा है। प्रतीत होता है कि नागरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रचारणी सभा के कोश सम्पादन मण्डल का यह दूषित विचार है कि जो कुछ भी उन्होंने नागरी लिपि में छाप दिया वह हिन्दी भाषा का अङ्ग बन जाता है। इस प्रकार नागरी प्रचारणी सभा वास्तविक रूप से नागरी लिपि प्रचारणी परन्तु हिन्दी गौरव विनाशनी सभा का रूप धारण कर रही है। इन कार्यों से सभा ने काशी नगर में, गङ्गा के तट पर, मंदागिन में बैठ कर अपने आदि संस्थापकों के हिन्दी प्रचार के उद्देश्यों को तर्पण प्रदान किया है। नागरी प्रचारणी सभा अशुद्ध व्याकरण ग्रन्थों और शब्द कोशों की बिक्री के धन और केन्द्रीय सरकार से प्राप्त विशेष अनुदान की सहायता से परिवार पोषण तथा काशी-कौशल के कतिपय जीविका-विहीन सरस्वती भाषा से शून्य अज्ञानी साहित्यकारों के लिये अनाथालय या विधवाश्रम का कार्य कर रही है। हमारा नम्र निवेदन है कि नागरी प्रचारणी सभा अपने उद्देश्यों के अनुसार आर्थिक लाभ की दृष्टि से नहीं अपितु सत्यशोध की भावना से ही हिन्दी व्याकरण और शब्द कोशों का सम्पादन और प्रकाशण करेगी। हिन्दी शब्द कोशों के सभी सम्पादकों और प्रकाशकों से हमारा अनुरोध है कि वे हिन्दी के शब्द कोशों से शीघ्र ही म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का बहिष्कार कर देंगे और भारत में इस विष वृक्ष को और पनपने नहीं दिया जायगा। हम किसी भी भारतीय नागरिक के धर्म विश्वास में बाधा डालना उचित नहीं समझते हैं, परन्तु जो भी अभारतीय भारत में भारत का नागरिक बनकर रहना चाहता है उसको भारत की भाषा और संस्कृति को अवश्य ही अङ्गीकरण करना होगा।

हिन्दी (खरी बोली) के शब्दों के साधु रूप के ज्ञान के हेतु कुछ कोश सम्पादकों ने शब्द की व्युत्पत्ति का उल्लेख किया है। व्युत्पत्ति शब्द के मूल रूप, विकास, इतिहास बताकर शब्द के वास्तविक अर्थ का ज्ञान कराती है। व्युत्पत्ति विषय संस्कृत व्याकरण का है, जिसके अनुसार शब्द का खण्ड दो भागों में किया जाता है— प्रकृति और प्रत्यय और इसके द्वारा शब्द के साधुत्व का ज्ञान होता है। हम हिन्दी शब्दों के सम्बन्ध में व्युत्पत्ति शब्द का प्रयोग उचित नहीं समझते हैं। हिन्दी में जितने भी शब्द प्रचलित हैं वह सभी शब्द सरस्वती भाषा के हैं या उन शब्दों से यौगिक शब्द हैं। इन शब्दों में कुछ शब्दों के अक्षर विन्यास तो सरस्वती शब्दों के अनुसार ही हैं और अधिकांश शब्दों के अक्षर-विन्यास विकृत हो गये हैं, परन्तु वह शब्द आज भी वही हैं जो सरस्वती भाषा में थे। हिन्दी में प्रचलित किसी भी शब्द के साधु अर्थ तथा सञ्ज्ञा शब्द के लिङ्ग का ज्ञान ही नहीं हो सकता है जब तक उस शब्द के साधु रूप का ज्ञान न हो जाय।

हिन्दी शब्द सागर तथा संक्षिप्त शब्द सागर में सभी शब्दों की, इस सम्बन्ध में दी हुई, भ्रान्तियां तथा मूढता दिखाने का हमारे पास पर्याप्त स्थान नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसा करने के लिए हमें एक शब्द सागर उद्धार कोश ही लिखना पड़ेगा। हिन्दी शब्दों की व्युत्पत्ति (साधु रूप) के सम्बन्ध में प्रामाणिक हिन्दी कोश, भाषा शब्द कोश, आदर्श हिंदी शब्द कोश आदि कोशों के सम्पादकों ने हिन्दी शब्द सागर की ही साहित्यिक चोरी की है। उन कोशों के सम्पादकों ने इस विषय पर कोई मौलिक या स्वतन्त्र विचार व्यक्त नहीं किये हैं। संक्षिप्त शब्द सागर की भूलें दिखाने से इन कोशों में दी हुई भूलों का भी ज्ञान हो जाता है, अतः हम इन कोशों का कोई निर्देश नहीं देते हैं। उदाहरणार्थ हम संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में दिये हुये कुछ शब्दों को प्रस्तुत करते हैं जिनसे हमारे कथन का पूर्णतया समर्थन हो जायगा। पहले संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में शब्द की दी हुई व्याकरण कोटि, लिङ्ग, व्युत्पत्ति दी जायगी, उसके पश्चात आवश्यकता अनुसार उस पर टिप्पणी करेंगे और फिर उस शब्द के साधु रूप को दिखाकर अपने कथन का समर्थन करेंगे। इन शब्दों के आगे संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर को श० सा०, सञ्ज्ञा को सं०, पुल्लिङ्ग को पु०, स्त्रीलिङ्ग को स्त्री० और विशेषण को वि० लिखा है।

टूम—श० सा०, सं० स्त्री० अनु० टुनटुन ?

टिप्पणी—प्रतीत होता है कि श० सा० के सम्पादक मण्डल ने अभिनेत्री टुनटुन से प्रभावित होकर इस शब्द को स्त्री० लिखा है।

समाधान : खरी बोली में इस शब्द के दो रूप प्रचलित हैं—टूम और टूमण। इनका अर्थ सोने का आभूषण है और यह शब्द स्त्री है। इस शब्द का साधु रूप है—टुः-मणिः सं० स्त्री०, टुः = कनकम्, सोना, मणि.—आभूषण। देखो आप्टे खण्ड २, पृष्ठ ७५०

अदवान—श० सा० सं० स्त्री० संस्कृत अधः = नीचे + हिन्दी बान = रस्सी।

टिप्पणी—उपरोक्त शब्द में यदि बान पु० प्रत्यय है तो वह शब्द स्त्री० क्यों हुआ। सम्पादक मण्डल ने नीचे के बानों की रस्सी बना ली, ऊपर के बानों को हम कोड़े बनाने के लिये काम में लायेंगे।

समाधान—खरी बोली क्षेत्र में खाट की पायन्त में डालने की रस्सी के लिये दो शब्द प्रचलित हैं, (१) अदवान जिसका साधु रूप है—उद्वाहनी, सं०, स्त्री, और (२) दमैन जिसका साधु रूप है–दामनी, सं०, स्त्री०। यह दोनों शब्द स्त्री हैं।

पेंग—श० सा० सं० स्त्री० हिंदी पटेंग।

टिप्पणी—हिंदी में पटेंग कोई शब्द ही नहीं है ओर न यह शब्द श० सा० में दिया हुआ है। हिन्दी के शब्द 'पटेंग' के रूप में परिवर्तन क्यों हुआ और यह स्त्री० क्यों बना।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—प्रेङ्खा सं०, स्त्री० ध्वनि परिवर्तन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अनुसार 'र' और 'आ' को लोप होने से यह शब्द पेङ्ग—पेङ्ग बना है।

धोरे—श० सा० क्रि० वि० संस्कृत धर।

टिप्पणी—संस्कृत में धर शब्द अव्यय नहीं है वि० है और इसका अर्थ धोरे नहीं है।

समाधान—धोरे शब्द अव्यय है। इसका अर्थ है निकट, समीप अर्थात जो दूर न हो। इसका साधु रूप है—अदूरे, अव्यय।

दनतोन—श० सा० दतुअन, दतुवन, सं० स्त्री० संस्कृत दन्त धावन ?

टिप्पणी—दन्त धावन शब्द स्त्री० क्यों हुआ ?

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—दन्तः—अवनी, अवनिः, सं० स्त्री० अवनिः, अवनी = अङ्गुली देखो आप्टे खण्ड १, पृष्ठ २४८।

कहावत—श० सा० सं० स्त्री० हिन्दी √कह + आवत (प्रत्य०)

टिप्पणी—खरी बोली में आवत कोई प्रत्यय नहीं है और न यह स्त्री० हो सकता है।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—कथा + उक्तिः 'थ' महाप्राण का उच्चारण 'ह' होता है।

फूल—श० सा० सं० पु० (संस्कृत) अर्थ नहर।

समाधान—यह शब्द सं० स्त्री० है और इसका साधु रूप है—कुल्या सं० स्त्री०

तुक—श० सा० सं० स्त्री० हिन्दी टूक अर्थ किसी पद्य या गीत का कोई खण्ड या कड़ी।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—तः + उक्तिः सं० स्त्री० तः = छन्द का एक चरण, उक्तिः = वाक्य, भाषण।

पकौडा—श० सा० स० पु० हिन्दी पका + हिन्दी औड़ा (प्रत्य०)

टिप्पणी—हिन्दी में औड़ा कोई शब्द नहीं है और न कोई प्रत्यय है।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है - पक्व + वटः सं० पु०।

पाड़ा—श० सा० सं० पु० संस्कृत पट्टन, अर्थ पुरवा, मुहल्ला।

टिप्पणी—संस्कृत, पट्टनम् का अर्थ नगर होता है।

समाधान—इसका साधु रूप है—पाटकः सं० पु० अर्थ ग्राम का एक भाग, पुरवा।

धरोहर—श० सा० सं० स्त्री० हिन्दी धरना।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—धर + अबहर। अवहरणम् का स्त्री० रूप अवहर है। संस्कृत कोश में इसका रूप अवहृ दिया है। अतः यह शब्द स्त्री० हैं।

धमाका—श० सा० सं० पु० अनु०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है धम: + क: सं० पु० धम: = यम देवता, क: = ध्वनि, शब्द । अथवा ध्मा = क:, सं०, पु० ध्मा = आग को फूंकना, आग को उद्दीप्त करना ।

गुलगुला—श० सा० सं० पु० हिन्दी गोल + गोला, अर्थ मीठा पक्वान ।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप हैं—गुल्य + गोल: सं० पु० गुल्य = मीठा

झांसा—श० सा० सं० पु० संस्कृत √ झष्

समाधान—इसका साधु रूप हैं झ + अंश: सं० पु० झ = नष्ट करना, मारना, अंस: = भाग, अंश ।

असामी–श० सा० स० पु० [अरबी इस्म (नाम) का बहु० । हिन्दी में एक]

टिप्पणी—यदि हिन्दी शब्द सागर के सम्पादक का वश चले तो भारत भूमि को भी वह अरब का भाग बता देगे ।

समाधान—असामी का अर्थ है वह व्यक्ति जो खेत का स्वामी न हो और उसने लगान पर खेत जोतने के लिये लिया हो । इसका साधु रूप है—अ + स्वामिन् सं० पु० ।

सायत—श० सा० सं० स्त्री० (अरबी सायत), अर्थ शुभ मुहूर्त ।

टिप्पणी—हिन्दी शब्द सागर के सम्पादक मण्डल की इस प्रकार की मूर्खता पर कोई टिप्पणी करना व्यर्थ है । भारत के हिन्दुओं के विवाह संस्कार के शुभ मुहूर्त का शब्द भी इन्हें अरबी प्रतीत हुआ ।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—स + आयति: सं० स्त्री० स = शुभ, आयति = भावी समय भावी फल महिमा आदि ।

सड़क—श० सा० सं० स्त्री० (अरबी शरक) अर्थ मार्ग (पाठक इस प्रकार के शब्दों पर स्वयम् टिप्पणी कर सकते हैं)

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—सृङ्का सं० स्त्री०

बखिया—श० सा० स० पु० (फा०) अर्थ एक प्रकार की सिलाई ।

टिप्पणी—हिन्दी शब्द सागर का सम्पादन मण्डल हिन्दी भाषा को भी फारसी बता दे तो कुछ आश्चर्य नहीं होगा ।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—व्ये + क्रिया सं० स्त्री० व्ये = सीना देखो आप्टे खण्ड ३, पृष्ठ १५२२

मेहतर—श० सा० सं० पु० (फा०) मिलाइए संस्कृत महत्तर, अर्थ श्रेष्ठ व्यक्ति, भंगी ।

टिप्पणी—श० सा० का सम्पादन मण्डल भारत के सभी शब्दों को फा० लिख सकता है । सम्पादन मण्डल मेहतर और महत्तर शब्दों को एक ही समझता है, इसी कारण से एक ही शब्द के श्रेष्ठ व्यक्ति और भंगी अर्थ दिये हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समाधान : मेहतर शब्द का साधु रूप है—मेह + तर सं० पु० मेह = प्रस्राव, मूत्र। तर = नष्ट करना, अर्थात मूत्र आदि का नष्ट करने वाला = भंगी। महत्तर शब्द का साधु रूप है—महत् + तर महत् = श्रेष्ठ व्यक्ति, महान व्यक्ति, तर = उससे भी बड़ा। इस प्रकार महत्तर का अर्थ है—सरदार, राजा यथा चितराल का महत्तर।

महरा—श० सा० सं० पु० (हिन्दी महता) अर्थ काहार।

टिप्पणी—श० सा० का सम्पादन मण्डल महरा और महता शब्दों को एक ही समझता है। कारण कि इनको सं० शब्द मम् अर्थ जल का ज्ञान ही नहीं है, और न यह शब्द श० सा० में दिया हुआ है। खरी बोली में यह शब्द बहुत प्रचलित है, बालक से पूछते हैं क्या मम् पीना है।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप = मम्—हरः सं० पु० मम् = पानी, जल। हरः = लाने वाले, ढोने वाला। महता शब्द महत्तर का विकृत रूप है।

चूहड़ा—श० सा० सं० पु० (?) अर्थ भंगी या मेहतर।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—च्यु + हरः सं० पु० च्यु = गिरा हुआ, चुआ हुआ, सड़ा हुआ आदि।

चोकर—श० सा० सं० पु० (हिन्दी चून = आटा + कराई = छिलका)

टिप्पणी—खरी बोली में कराई कोई शब्द नहीं है। श० सा० में कराई शब्द स्त्री० दिया है तब यह शब्द स्त्री० होना चाहिये।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—च + अवकरः सं० पु० च = बीज रहित, अवकरः = इकट्ठा किया हुआ।

बखेड़ा—श० सा० संज्ञा (हिन्दी बखेरना) पु० या स्त्री० नहीं लिखा है।

समाधान— इस शब्द का साधु रूप है—व + खेटः सं० पु० व = आवास, निवास, खेटः = दुःखित, निरानन्द, कष्ट प्रायः

तड़का—श० सा० सं० पु० (हिन्दी तड़कना) अर्थ प्रातःकाल।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप—तड् + कः सं० पु० तड् = चमकना कः = प्रकाश।

मसूड़ा—श० सा० सं० पु० सस्कृत श्मश्रु।

टिप्पणी—श० सा० में मूंछ को भी श्मश्रु लिखा है और उसको स्त्री० लिखा है। मसूड़ा को भी श्मश्रु लिखा है और पु० लिख दिया। श० सा० का सम्पादक मण्डल बिना पेन्दी के लोटे की भान्ति जिधर को चाहा लुड़क गये।

समाधान—मसूड़ा दान्त के ऊपर के मांस को कहते हैं, इसका साधु रूप है—मांस + ऊढ स० पु० देखो आप्टे खण्ड ३, पृष्ठ १४०० ।

मस्सा, मसा—श० सा० सं० पु० संस्कृत मांसकील।

समाधान-इस शब्द का साधु रूप है—माषः सं० पु० आप्टे खण्ड २, पृष्ठ १२६७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खीर—श० सा० सं० स्त्री० (संस्कृत क्षीर)

टिप्पणी—संस्कृत में क्षीर: शब्द का अर्थ दूध है और जो शब्द प्रत्यय के अनुसार पु० है। और संस्कृत में भी पु है।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है--क्षीरी, सं० स्त्री० दूध और चावल आदि से बना एक प्रकार का भोजन।

ओर—श० सा० सं० स्त्री० (संस्कृत अवार)

टिप्पणी—संस्कृत अवार का अर्थ इस पार या नदी का उस पार का किनारा है जो पु० है। ओर का अर्थ दिशा है और स्त्री० है।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है–अवरा, सं० स्त्री०।

गंज—श० सा०सं०स्त्री० (फारसी) अर्थ कोष, राशि, अनाज की मण्डी आदि।

टिप्पणी—श० सा० का सम्पादन मण्डल संस्कृत के तत्सम शब्दों को भी फा० लिखने में लज्जा नहीं करता। यह शब्द न स्त्री० है और न फा० है।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है--गञ्ज: स० पु० देखो आप्टे खण्ड २, पृष्ठ ६४२।

खेवट--श० मा० सं० पु० हिन्दी खेत + बांट।

समाधान—यह शब्द पु० नहीं स्त्री० है। इसका साधु रूप है—क्षेत्रम् + पट्टिका सं० स्त्री० पट्टिका = लेख्यपत्र।

खाद—श० सा० सं० स्त्री, संस्कृत खाद्य।

टिप्पणी—संस्कृत खाद्यम् का हिन्दी विकृत रूप खाजा है। द् + य का उच्चारण 'ज' होता है। खाद्य शब्द पु० है।

समाधान—खाद का अर्थ है, कूड़ा, करकट, मल, विष्ठा, गूथ आदि। खरी बोली मे 'षम्' का यही अर्थ है। इस शब्द का साधु रूप है—षम् + आदि सं० स्त्री० 'ष' का उच्चारण 'ख' होता है।

खुड्डी—श० सा० सं० स्त्री० (गड्ढा)।

समाधान—गड्ढा शब्द पु० है। इस शब्द का साधु रूप है—षम् + उड्डी सं० स्त्री०।

गुड्डी—श० सा० सं० स्त्री० (संस्कृत गुण + उड्डीन)।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—ग + उड्डी सं० स्त्री० ग = जो जाता है, उड्डी = ऊपर उड़ने।

लकड़बग्घा—श० सा० सं० पु० (हिन्दी लकड़ी + बाघ)

टिप्पणी—लकड़ी और बाघ से लकड़बग्घा केवल श० सा० का सम्पादन मण्डल ही बना सकता है।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—लगड + व्याघ्र सं० पु० लगड़ =

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुन्दर, मनोहर ।

सड़ासड़—श० सा० अव्य० (अनु० सड़ से) जिसमे शब्द हो ।

समाधान—इस शब्द का अर्थ है शीघ्र शीघ्र । इस शब्द का साधु रूप है—स्राक्-स्राक् अव्यय ।

हाण्डी—श० सा० सं० स्त्री (संस्कृत भांड)

समाधान—संस्कृत में 'भाण्ड' सं० पु० है । इस शब्द का साधु रूप है—हण्डी, हण्डिका सं० स्त्री० ।

झरोका—श० सा० सं० [अनु० झर झर + गोरख] अर्थ खिड़की ।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—झा + रोकम् सं० पु० झा = ध्या, रोकम् = छिद्रम् । ध्या का उच्चारण झा होता है—ध्यान करने का छिद्र ।

बाज—श० सा० स० पु० (अरबी बाज), अर्थ एक पक्षी, तीर में लगा हुआ पर ।

समाधान—यह शब्द संस्कृत का है, जिसका साधु रूप है—वाजिन् सं० पु० देखो आप्टे खण्ड ३, पृष्ठ १४०९ ।

सेहरा—श० सा० स० पु० (हिन्दी सिर + हार)

समाधान—यह शब्द चार अर्थों में प्रयोग होता है । (१) फूलों की माला जो सिर पर बान्धते हैं । (२) मुकुट, (३) प्रथम श्रेणी, या सबसे अच्छा, (४) एक प्रकार का गीत । इस शब्द का साधु रूप है—शेखरः सं० पु० ।

नकटा—श० सा० वि० (हिन्दी नाक + कटा) अर्थ जिसकी नाक कटी हो, निर्लज्ज ।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—नक्त वि०

पटाका—श० सा० सं० पु० हिन्दी पट (अनु०)

इसमाधन—इस शब्द का साधु रूप है—पटः + कः स० पु० पटः = कोई सुन्दर बना हुआ पदार्थ, कः = आग, शब्द, ध्वनि ।

रास-श० सा० सं० स्त्री० (अरबी) अर्थ लगाम ।

समाधान—यह शब्द सरस्वती का है जिसका साधु रूप है = रश्मिः सं० स्त्री ।

लगाम—श० सा० सं० स्त्री० (फारसी)

समाधान—यह शब्द भी सरस्वती का है इसका साधु रूप है—वल्गा सं० स्त्री०

तीर—श० सा० सं० पु० (फारसी) अर्थ बाण ।

समाधान—यह शब्द भी सरस्वती का है, इसका साधु रूप है—तीरः सं० पु०

पारस—श० सा० सं० पु० (स० स्पर्श)

समाधान—स्पर्श शब्द का अर्थ छूना है । इसका साधु रूप है—परशः सं० पु०

पत्तल—श० सा० सं० स्त्री (संस्कृत पत्र + ल).

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समाधान...ल कोई प्रत्यय नहीं है, और न इस प्रकार यह शब्द स्त्री० हो सकता है। प्राचीन काल में केले के पते को काट काट कर पत्तल बनाते थे। इसी प्रकार की पत्तल अब भी दक्षिण भारत में प्रचलित हैं। इसका साधु रूप है—पत्रम् + कला सं० स्त्री० 'कला' का अर्थ भाग या अंश है और 'कला' का उच्चारण 'अला' हो जाता है।

पायल—श० सा० सं० स्त्री० हिन्दी पाय + ल (प्रत्यय)

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—पाद: + लता सं० स्त्री० अर्थात पाय की बेल। 'लता' का उच्चारण लया होता है, अत: पाय + लया = पायलया, पायल दोनों रूप प्रचलित हैं।

तीयल—श० सा० सं० पु० हिन्दी तिय + ला (प्रत्यय)

समाधान—यह शब्द पु० नहीं स्त्री० हैं। इस शब्द का साधु रूप है-स्त्री + लता, सं० स्त्री० स्त्री का उच्चारण तीय, और लता का उच्चारण लया होता है। अत: तीय-लया—तीयल।

बंजर—श० सा० सं० पु० संस्कृत बन + उजड़ अर्थ ऊसर।

समाधान—इसका साधु रूप है—बन्ध्य सं० पु०।

भुरभुरा—श० सा० वि० (अनु०)।

समाधान—अनु० से विशेषण नहीं बनता है। इस शब्द का साधु रूप है—भङ्गुर वि०।

दरदरा—श० सा० वि० (संस्कृत दरण = छनना)।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—दर्दर वि०।

बुरा—श० सा० वि० (संस्कृत विरूप)।

समाधान—विरूप का अर्थ बुरा नहीं है। इस शब्द का साधु रूप है—अभद्र वि०।

दरार—श० सा० सं० स्त्री० (संस्कृत दर)।

समाधान—'दर' शब्द वि० है इससे सं० स्त्री० नहीं बन सकता हैं। इस शब्द का साधु रूप है—दारी सं० स्त्री०।

जनेत—श० सा० सं० स्त्री० संस्कृत जन्य + हिन्दी एत (प्रत्यय)।

समाधान—'एत' कोई प्रत्यय नहीं है और यह स्त्री० क्यों हुआ? इस शब्द का साधु रूप है—जन्य: + यात्रा सं० स्त्री०। जन्य: का अर्थ है वर के मित्र, सम्बन्धी या सेवक।

झमेला—श० सा० सं० पु० (अनु० झांव झांव)।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—ध्या + मेल: सं० पु० ध्या = ध्यान करना, विचार करना जिसका उच्चारण झा होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

झक—श० सा० सं० स्त्री० (अनु०) ।

समाधान--इस शब्द का साधु रूप है–ध्या + क्षि: सं० स्त्री०, ध्या = विचार, ध्यान । क्षि: नष्ट करना, व्यय करना ।

झंझट—श० सा० सं० पु० स्त्री० (अनु०) ।

समाधान–इस शब्द का साधु रूप है-ध्यान + झट् सं० स्त्री० यहां 'झट्' कर्मवाचक सञ्ज्ञा झटनम् का स्त्री० रूप है । इसका अर्थ है सम्भ्रान्त होना, आकुल होना ।

खोजना--श० सा० क्रि० स० (संस्कृत √खुज् = चुराना) ।

समाधान—इस शब्द का अर्थ है खोये हुये पदार्थ को ढूण्ढना । इसका साधु रूप है–क्ष: + अवजिनम् कर्मवाचक सञ्ज्ञा । इसी का स्त्री० रूप 'खोज'है क्ष: = खोना अवजिनम = वापस पाना अर्थात खोये हुए पदार्थ को ढूण्ढना ।

छेड़ना—श० सा० क्रि० स० (हिन्दी छेदना) ।

टिप्पणी—छेदना का अर्थ बीन्धना है । छेड़ना का अर्थ है किसी को अस्पष्ट शब्द कह देना, सीत्कार करना, चिड़ाना, या किसी युवती को छेड़ देना आदि ।

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—क्ष्वेडनम् कर्मवाचक सञ्ज्ञा पु० । इसी का स्त्री० है क्ष्वेड़ = छेड़ ।

चकमा—श० सा० सं० पु० [संस्कृत चक्र = भ्रान्त]

समाधान—इस शब्द का साधु रूप है—च: + कर्मन् सं० पु० च: = चोर,

भोर—श० सा०, सं० पु० (सं० विभावरी)

टिप्पणी—शब्द सागर के शब्द 'भोर' को सञ्ज्ञा पु० और इस शब्द को संस्कृत शब्द 'विभावरी' बनाने का समर्थन 'प्रमाणिक हिन्दी कोश', 'भाषा-शब्द-कोश' और आदर्श हिन्दी-संस्कृत कोश के सम्पादकों ने भी किया है। इन सभी कोशों के सम्पादकों ने 'विभावरी' शब्द को सं० स्त्री० और इसका अर्थ रात्री आने अपने कोशों में लिखा है । इस प्रकार इन सभी लेखकों ने स्त्री० को पु० और रात्री को भोर (अर्थात तड़का, सबेरा, प्रभात) बताने का चमत्कार दिखाया है ।

समाधान—शब्द 'भार' सं० स्त्री० है—उठ जाग बटोही भोर भई अब रैन कहां जो सोवत है । इस शब्द का साधु रूप यह है—भा-आवरा, सं० स्त्री०, भा = प्रकाश, आभा, चमक । अवरा = ओर । इस प्रकार इस शब्द का अर्थ तड़का, प्रभात और शब्द सं० स्त्री० होना सिद्ध होता है ।

हिन्दी कोश सम्पादकों ने किस प्रकार हिन्दी कोश कला तथा तत्सम शब्दों तक का सत्यानाश किया है, उसको दिखाने के लिये हम 'सत्यनाश' और 'सत्यानासी' शब्दों को ही प्रस्तुत कर रहे हैं ।

सत्यानाश- श० सा० संस्कृत—(सत्ता + नाश) और इस शब्द का अर्थ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्वनाश, मटियामेट, ध्वंस, दिया हुआ है ।

टिप्पणी—सत्यानाश शब्द का अर्थ सर्वनाश या ध्वंस नहीं है। इस शब्द का प्रयोग उस समय होता है जब कोई व्यक्ति किसी कार्य को उचित प्रकार से न करके उसे बिगाड़ देता है, अर्थात उसका वास्तव में या सत्य रूप से नाश कर देता है। वह शब्द हमारा तत्सम शब्द है जिसका साधु रूप है–(सत्या–नाश) । सत्या = सत्य ।

सत्यानाशी—श० सा० वि० [हिन्दी सत्यानाश + ई (प्रत्यय)]

टिप्पणी—शब्द 'सत्यानाश' संज्ञा पुल्लिङ्ग शब्द है । इसमें 'ई' प्रत्यय जोड़ने से शब्द 'सत्यानाशी' इस शब्द का स्त्रीलिङ्ग शब्द बनेगा जो असम्भव है ।

समाधान—इस शब्द साधु शब्द है—(सत्यानाशित) वि० (उपरोक्त दोनों शब्दों के जो अर्थ और व्युत्पत्ति शब्द सागर में दी हुई हैं, वही भाषा-शब्द कोश और प्रामाणिक हिन्दी कोश में दी हुई है खेद है कि आदर्श-हिन्दी-संस्कृत-कोश में भी शब्द 'सत्यानाश' के वही अर्थ और व्युत्पत्ति लिखी है)

इसी प्रकार के सहस्त्रों शब्दों के उदाहरण दिये जा सकते हैं। संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर के सम्पादक मण्डल की मूढता का और कहां तक उल्लेख करें। उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि इस कोश के सम्पादन का मूल आधार ही दूषित था। कोश कला के नम्र निवेदन में रामचन्द्र वर्मा ने लिखा है—"यदि नागरी प्रचारणी सभा, काशी की कृपा से हिन्दी शब्द सागर और उसका संक्षिप्त संस्करण न निकल गया होता तो सम्भवत: आज हिन्दी का कोश क्षेत्र बहुत कुछ सूना ही दिखाई देता।" परन्तु हमारा विचार है कि वास्तविक रूप से हिन्दी कोश कला को दूषित पद्धति पर चला कर उसे नष्ट करने में सबसे बड़ा योगदान रामचन्द्र वर्मा का ही है। इसका प्रमाण यही है कि हिन्दी शब्द सागर, संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर और प्रामाणिक हिन्दी कोश के सम्पादक मण्डल के मुख्य सदस्य या सम्पादक रामचन्द्र वर्मा ही थे। इन्हीं कोशों में म्लेच्छ भाषाओं तथा अहिन्दी शब्दों का बाहुल्य और खरी बोली में नित्य प्रचलित शब्दों का अभाव है। उपरोक्त शब्द कोशों में सञ्ज्ञा शब्दों के अशुद्ध लिङ्ग निर्णय का कारण रामचन्द्र वर्मा का प्रमाणिक हिन्दी व्याकरण है।

हिन्दी भाषा के नाम पर जो शब्द कोश आज उपलब्ध हैं, हिन्दी जगत को इस प्रकार के शब्द कोशों की न पहले आवश्यकता थी और न आज है। यदि इस प्रकार के शब्द कोशों का सम्पादन और प्रकाशन न हुआ होता तो संस्कृत के शब्द कोश ही आज हिन्दी के शब्द कोशों की भान्ति प्रयोग में आते और हिन्दी के सम्बन्ध में जो प्रमूढता आज प्रचलित है वह प्रसारित न हुई होती। हिन्दी शब्द कोशों में शब्दों के अर्थ भी भ्रामक और अशुद्ध दिये हुये हैं। इन शब्द कोशों के सम्पादकों के लिये यह अनिवार्य था कि हिन्दी में प्रचलित शब्द का वही अर्थ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखते जो उस शब्द के साधु रूप का संस्कृत कोश में दिया हुआ था। हिन्दी खरी बोली में 'लङ्का' शब्द किसी स्त्री को गाली देने के अर्थ में प्रयोग होता है। संस्कृत शब्द कोश में इस शब्द के अर्थ (१) रावण का निवास और राजधानी, (२) कुलटा, व्यभिचारणी स्त्री, वेश्या आदि दिये हुये हैं। परन्तु संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, प्रामाणिक हिन्दी कोश और भाषा शब्द कोशों में इस शब्द का अर्थ व्यभिचारिणी स्त्री आदि नहीं दिया हुआ है। शब्द 'खाट' सं० स्त्री० खरी बोली में दो अर्थों में प्रयोग होता है। पहला अर्थ 'चारपाई या खटिया' है, जिसका साधु रूप-खट्वा, खट्वा सं० स्त्री० है। दूसरा अर्थ 'अर्थी' है जिसका साधु रूप 'खट्टि:' सं० स्त्री० है। संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, प्रमाणिक हिन्दी कोश, और भाषा शब्द कोशों में यह अर्थ नहीं दिया है। बृहत हिन्दी कोश में यह अर्थ भी दिया हुआ है परन्तु इस अर्थ में इस शब्द को पु० लिख दिया है, जो अशुद्ध है। खरी बोली में 'पशु' शब्द सरल, साधारण, अनुपक्रमकारी व्यक्ति के अर्थ में भी प्रयोग होता है। यथा 'गोपाल बहुत पशु' है। इस शब्द का यह अर्थ संस्कृत कोश में उपलब्ध है (आप्टे खण्ड २, पृष्ठ ९९९)। परन्तु इस शब्द का यह अर्थ किसी भी हिन्दी कोश में नहीं दिया हुआ है। संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में 'पशुपति' का अर्थ—'जीवों का मालिक शिव' दिया हुआ है जो पूर्णतया भ्रामक और अनर्गल है। इस शब्द में 'पशु' का अर्थ है—'उपदेवता, जो शिव के सेवक या अनुचर है।' इन उपदेवताओं का पति (स्वामी) होने के कारण शिव को 'पशुपति' कहते हैं। इसी प्रकार के सहस्त्रों शब्दों के अशुद्ध अर्थ सभी हिन्दी कोशों में दिये हैं। जिन विद्यार्थियों की मातृभाषा हिन्दी है या हिन्दी भाषा का साधारण ज्ञान है, उनको अपनी भाषा की समृद्धि के लिये किसी हिन्दी शब्द कोश का प्रयोग नहीं करना चाहिये, अपितु उनके लिये यह आवश्यक है कि वह किसी संस्कृत हिन्दी कोश का उपयोग करें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: १८ :

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय
का
आधुनिक हिन्दी भाषा का मूल व्याकरण

भारत शासन के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय ने व्याकरण की एक पुस्तिका प्रकाशित की है जिसका नाम है—'आधुनिक हिन्दी भाषा का मूल व्याकरण'। कौतूहल का विषय है कि यह व्याकरण हिन्दी भाषा में लिखा हुआ नहीं है अपितु अङ्गरेजी भाषा में लिखा हुआ है। इस व्याकरण के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसके लेखक को यह भी ज्ञान नहीं था कि सरस्वती या भारती भाषा क्या थी और आधुनिक हिन्दी (खरी बोली) के शब्दो का क्या मूल स्रोत है, तथा आधुनिक हिन्दी किस भाषा का परिवर्तित रूप है। उपरोक्त पुस्तिका में आधुनिक हिन्दी के नाम पर दो मुख्य कार्य करने का प्रयास किया गया है जो इस प्रकार हैं—

(१) म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों को हमारी भाषा का अङ्ग बताना,

(२) अङ्गरेजी भाषा के व्याकरण का हिन्दीकरण करना।

उस व्याकरण में हमारी भाषा को किसी भारतीय आदि मूल भाषा का आधुनिक रूप न मानकर एक स्वतन्त्र भाषा स्वीकार की है और जो शब्द हमारी (हिन्दी खरी बोली) में प्रचलित हैं उनकी उत्पत्ति दिखाने के हेतु उनको पाञ्च श्रेणियों के अन्तर्गत रखा है—(१) तत्सम, (२) अर्धतत्सम, (३) तद्भव, (४) देशी, (५) विदेशी। इन शब्दों की परिभाषा इस प्रकार बताई है—

तत्सम—वे शब्द हैं जो संस्कृत भाषा से उन्हीं अक्षर विन्यासों में हिन्दी में आये हैं।

अर्द्धतत्सम—वे शब्द हैं जो सीधे संस्कृत भाषा से हिन्दी भाषा में आये हैं, परन्तु हिन्दी भाषा में उन शब्दों के अक्षर विन्यासों में आवश्यकता अनुसार परिवर्तन कर लिया गया है।

तदभव—संस्कृत भाषा के वे शब्द हैं जो प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में होकर हिन्दी भाषा में आये है।

देशी—वे शब्द हैं जो देश में उत्पन्न हुए हैं, परन्तु उनकी उत्पत्ति का कुछ ज्ञान नहीं हो सकता है। इनमें से बहुत शब्द दक्षिण भारत की द्रविड़ तथा मुण्डा भाषाओं से हिन्दी ने ग्रहण किये हैं।

विदेशी—वे शब्द है जो विदेशी (म्लेच्छ) भाषाओं के हैं और अब हिन्दी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा में प्रचलित हैं।

पाठक स्वयम् देख सकते हैं कि शब्दों की उपरोक्त श्रेणियां और उनकी परिभाषा सम्बन्धित वही प्रलाप हैं जो ग्रियर्सन ने लिङ्ग्विस्टिक सर्वे आत् इण्डिया की भूमिका में व्यक्त किये हैं। हम पूर्णतया सिद्ध कर चुके हैं कि हमारी भाषा में प्रचलित सभी शब्द सरस्वती भाषा के ही हैं अर्थात वे शब्द हैं जो संस्कृत शब्द कोशों में उपलब्ध हैं या संस्कृत शब्द कोशों मे दिए हुए शब्दों से बने सिद्ध होते हैं। विदेशी अर्थात म्लेच्छ भाषाओं के शब्द हमारी भाषा के अङ्ग नहीं हैं और न उनकी हमारी भाषा में कोई आवश्यकता है।

जिन शब्दों को देशी की सञ्ज्ञा देकर द्रविड़ तथा मुण्डा भाषाओं से हमारी भाषा ने ग्रहण करना बताया है, उनमें से केवल चार शब्द उदाहरण रूप में प्रस्तुत किये गये हैं—(१) कोड़ी, (२) खोट, (३) मूंगा और (४) ढूण्ढना। यदि हम यह सिद्ध कर दें कि उपरोक्त चारों शब्द सरस्वती भाषा के ही सिद्ध शब्द हैं तो द्रविड़ तथा मुण्डा आदि भाषाओं से हमारी भाषा में शब्द ग्रहण करने के सिद्धान्त का पूर्णतया खण्डन हो जाता है। इन चारों शब्दों के साधु शब्द इस प्रकार है—

कोड़ी सं० स्त्री०—सर० (कोटिः, कोटी) सं० स्त्री०। इस शब्द का अर्थ है—एक प्राचीन गणित के अनुसार सबसे बड़ी सङ्ख्या। मोनियर विलियम्स पृष्ठ ३१२, कोड़ी गणित के अनुसार २० से बड़ी सङ्ख्या नहीं होती है। अर्थात २४=१ कोड़ी ४, ४५=२ कोड़ी ५। देखो अध्याय १०, उच्चारण विपर्यय आधार १९, जिसके अनुसार 'ट' का उच्चारण 'ड़' होता है।

खोट सं० पु०—सर० (कूट) सं० पु०। इस शब्द का अर्थ है—छल, कपट, भ्रम, धोका, कैतवम्, असत्य आदि। मोनियर विलियम्स पृष्ठ २९९; आप्टे पृष्ठ ५९२।

मूंगा सं० पु०—एक प्रकार का रत्न जो कपिश या पिङ्गल रङ्ग का होता है—सर० (मुः—अङ्गम्) सं० पु०, मुः=कपिश या पिङ्गल रङ्ग, आप्टे पृष्ठ १२७२ मोनियर विलियम्स पृष्ठ ८१९। अर्थात कपिश या पिङ्गल रङ्ग के अङ्ग वाला (रत्न)।

ढूण्ढना—सर० (ढुण्ढनम्) यह क्रियावाचक सञ्ज्ञा शब्द है जिसका अर्थ है—खोजना, गवेषणा करना। आप्टे पृष्ठ ६५४, मोनियर विलियम्स पृष्ठ ४३१।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि हमारी भाषा में प्रचलित सभी शब्द सरस्वती भाषा के हैं और हमारी भाषा का वही व्याकरण है जो सरस्वती भाषा का है।

उस व्याकरण में अङ्गरेजी भाषा के व्याकरण के आधार पर सञ्ज्ञा शब्दों को दो उपकोटियों के अन्तर्गत रखा गया है। हमारी भाषा के व्याकरण के अनुसार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सञ्ज्ञा शब्दों का यह विभाजन पूर्णतया अवैज्ञानिक है। सरस्वती भाषा में सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्गानुशासन का ऐसा निश्चित नियम है कि उसका कोई अपवाद ही नहीं है, परन्तु उस व्याकरण में इस सम्बन्ध में भी अनर्गल विचार व्यक्त किये गये है और लिखा है–"हिन्दी में सञ्ज्ञा शब्दों का लिङ्ग किसी नियम के अनुसार निर्धारित नहीं होता है अपितु व्यवहार के अनुसार होता है।" हमने स्पष्ट शब्दों में बताया है जिन प्राणियों को देखने से उनके नर अथवा नारी होने का बोध होता है केवल उन्हीं प्राणियों के नर और नारी के लिये हमारी भाषा में पृथक-पृथक शब्दों का प्रयोय होता है और उनका व्याकरणिक लिङ्ग प्रकृति के अनुसार ज्ञात होता हैं। शेष प्राणियों का और सभी अप्राणिवाचक शब्दों का लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार होता है।

हमारी भाषा में कुछ विशेष प्राणियों को केवल पुल्लिङ्ग और कुछ विशेष प्राणियों को केवल स्त्रीलिङ्ग इस कारण माना गया है कि उनको देखने से उनके पुल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग होने का ज्ञान ही नहीं होता है। अतः उनका लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार माना जाता है। उस व्याकरण में जिन प्राणियों को केवल पुल्लिङ्ग और जिनको केवल स्त्रीलिङ्ग लिखा है उसका यही कारण है और जो इस प्रकार है।

पक्षी—(पक्षिन्) पु०। उल्लू—(उलूकः) पु०।
भेड़िया—(वृकः) पु०। चीता—(चत्रिकः) पु०।
खटमल—(खट्वा-मलम्) पु०। मच्छर—(मत्सरः) पु०।
कौआ—(काकः, कागः) पु०। कीड़ा—(कीटः) पु०।
केञ्चुआ—(किञ्चुलुकः) पु०।
चिड़िया—(चटिका) स्त्री०। चील—चिल्ली, (चिल्लका) स्त्री०।
गिलहरी—(गिरी) स्त्री०। तित्तली—(त्तित्तरी) स्त्री०।
मच्छली—(मत्सी) स्त्री०। कोयल—(कोकिला) स्त्री०।
मच्छ—(मतसः) पु०। मक्खी—(मक्षी) स्त्री०।

हमारी भाषा के केवल प्राणियों के समूहों के लिये समुदाय-वाचक शब्दों का प्रयोग होता है। अप्राणियों के समूह के लिये कोई विशेष शब्द नहीं होता है। प्राणियों के समूह में नर अवथा नारी दोनों प्रकार के प्राणी सम्मिलित रह सकने के कारण उन शब्दों का लिङ्ग भी प्रत्यय के अनुसार माना जाता है। उस व्याकरण में दिये हुए समूह वाचक शब्दों के लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार इस प्रकार हैं—

समूह—(समूहः) पु०। कुटुम्ब—(कुटुम्ब) पु०।
झुण्ड | (यूथम) पु०। दल—(दलम्) पु०।
परिवार—(परिवारः) पु०।
भीड़—(बृद्धिः) स्त्री०। सभा—(सभा) स्त्री०।
प्रजा—(प्रजा) स्त्री०। फौज (विदेशी—(सेना) स्त्री०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अङ्गरेजी भाषा में शब्दों को आठ व्याकरण कोटियों के अन्तर्गत रक्खा जाता है—(१) सञ्ज्ञा, (२) सर्वनाम, (३) विशेषण, (४) क्रिया, (५) क्रिया विशेषण (६) प्रिपोजीशन, (७) समुच्चयबोधक, और (८) मनोविकार सूचक। हमारी भाषा में शब्दों को केवल तीन व्याकरण कोटियों में विभक्त किया जाता है—(१) सञ्ज्ञा, (२) विशेषण और (३) अव्यय। परन्तु उस व्याकरण में भी हमारी भाषा के शब्दों को उन्हीं आठ व्याकरण कोटियों के अन्तर्गत रखा गया है। हमने इसी पुस्तिका के सिद्धान्त खण्ड में दिखाया है कि हमारी भाषा में कोई भी शब्द क्रिया नामक व्याकरण कोटि के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है। क्रियार्थक सञ्ज्ञा शब्दों के पद बनाकर ही उनको वाक्य में प्रयोग किया जा सकता है। यह 'पद' शब्द नहीं होते हैं।

किसी भी भाषा की वाक्य-रचना में तीन विषयों पर विचार होता है—(१) पदों का परस्पर समन्वय, (२) कारक, और (३) क्रम। सरस्वती तथा संस्कृत भाषाओं में प्रथम दो पर ही विचार होता है। अङ्गरेजी वाक्य-विचार में केवल अन्तिम पर ही विचार होता है। सरस्वती और संस्कृत भाषायें विभक्ति प्रधान है, अतः उनमें पदों का परस्पर सम्बन्ध शब्द के अन्त में होने वाली विभक्तियों से निर्धारित होता है और वाक्य में वे पद कहीं पर भी रखे जा सकते हैं। वाक्य में पदों के क्रम परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन नहीं होता है। परन्तु अङ्गरेजी विभक्तिहीन भाषा है, और उसमें क्रम ही सर्वोत्तम महत्व का विषय है, उसमें क्रम परिवर्तन करते ही अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। हिन्दी भाषा में प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार सञ्ज्ञा शब्दों का लिङ्गानुशासन का एक निश्चित तथा वैज्ञानिक नियम है जिसका प्रभाव विशेषण और क्रियात्मक पदों पर भी पड़ता है। उद्देश्य के लिङ्ग के अनुसार ही विधेय के रूप में भी परिवर्तन करना अनिवार्य होता है। पुल्लिङ्ग उद्देश्य के साथ क्रियात्मक पद के पुल्लिङ्ग रूप का और स्त्रीलिङ्ग के साथ स्त्रीलिङ्ग रूप का प्रयोग होता है। इसका यही कारण है कि हिन्दी (खरी बोली) में क्रियात्मक पद भी सञ्ज्ञा शब्दों के रूप होते हैं। क्रिया नामक व्याकरण कोटि का कोई भी शब्द हिन्दी में नहीं होता है। संसार की किसी भी अन्य भाषा में इस प्रकार का विधान नहीं है। अतः हमारी भाषा का व्याकरण अङ्गरेजी भाषा के आधार पर लिखना पूर्णतया अशुद्ध तथा अवैज्ञानिक है, उस प्रकार के व्याकरण को हिन्दी भाषा के व्याकरण की सञ्ज्ञा नहीं दी जा सकती है।

—————

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: १९ :

भाषा–शास्त्र (विज्ञान)

शब्द अर्थ विचार

भारतीय धर्म का प्रधान पीठ वेद है। हम भारतीय वेद को अत्यधिक आदर सम्मान एवम् पवित्रता की दृष्टि से देखते हैं। वेद का अक्षर अक्षर पवित्र माना जाने के कारण उसका परिवर्तन तथा स्वरूप एवम् स्वरच्युति महान अनर्थ का कारण समझी जाती है। वेद के स्वरूप तथा अर्थ के संरक्षण के निमित ही छः वेदाङ्गों का उदय हुआ था, जिनके नाम हैं--(१) शिक्षा, (२) कल्प, (३) व्याकरण (४) निरुक्त, (५) छन्द, (६) ज्योतिष। इन वेदाङ्गों में मन्त्रों के उचित उच्चारण के लिए शिक्षा का, कर्मकाण्ड और यज्ञीय अनुष्ठान के लिए कल्प का, शब्दों के ज्ञानरूप के लिए व्याकरण का, और अर्थ ज्ञान के लिये निरुक्त का, छन्दों की जानकारी के लिये छन्द का, और अनुष्ठानों के उचित काल निर्णय के लिये ज्योतिष का उपयोग होता है। संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ होने पर भी वेदों में आज तक एक अक्षर का भी परिवर्तन नहीं हो सका है। वैदिक युग से ही शब्द की मीमांसा पर भारतीय मनीषीयों ने विचार करना आरम्भ कर दिया था। इसके उपरान्त यास्क मुनि ने सर्वप्रथम यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि सभी शब्दों की उत्पत्ति धातुओं से हुई है। इन्हीं सिद्धान्तों पर भारतीय वैयाकरणों ने हमारी भाषा में से लग-भग ३९०० धातुओं को इकट्ठा करके अष्टाध्यायी की रचना की। पाणिनि की अष्टाध्यायी पर कात्यायन ने वर्तिक और पतञ्जलि ने महाभाष्य लिखा। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से संसार के यही प्राचीनतम ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं। भारत में अर्थ का महत्त्व प्राचीन काल से ही माना जाता है। सूत्रकार (पाणिनि) वार्तिककार (कात्यायन) और भाष्यकार (पतञ्जलि) आदि महर्षियों ने शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध को नित्य माना है शब्दों के नित्य होने के कारण ही व्याकरण शास्त्र बनना सार्थक है अन्यथा शब्दों की अनित्या से सुस्थिर व्याकरण शास्त्र का बनना सम्भव न होता। शब्द नित्य होने के कारण उसमें किसी भी काल में कोई विकार नही आ सकता है। शब्द का ठीक ज्ञान प्राप्त करना और अर्थ तथा व्याकरण के द्वारा उसके साधु रूप का निरूपण करना ही आवश्यक होता है। पतञ्जलि ने महाभाष्य में लिखा है—

"यदधीत मविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्राविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थात जिसका अध्ययन तो किया गया, किन्तु जिसमें स्वरादि के संस्कार विदित नहीं हुये अथवा अर्थों का परिज्ञान नहीं हो पाया, फलत: जो पाठमात्र से ही बार बार शब्दित होता है उसका वह अध्ययन (जैसे सूखा काठ आग के बिना जल नहीं सकता वैसे ही) प्रकाशमान नहीं होता - निष्फल होता है। अत: बिना अर्थ का ज्ञान प्राप्त किये हम अध्ययन न करें।" इसी प्रकार यास्क मुनि ने निरूक्त में कहा है—

स्थाणुरयं भारहार: किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत् सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा॥

अर्थात जो बिना अर्थ जाने वेदों का अध्ययन करता है, वह केवल भार ढोता है। अर्थ का जानने वाला ही समस्त कल्याणों का भागी होता है और ज्ञान की ज्योति से समस्त दोषों को दूर कर ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है। व्याकरण के महत्त्व को बताते हुये भाष्यकार पतञ्जलि लिखते हैं--

उत त्व: पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्व: श्रृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासा॥

अर्थात जो वैयाकरण नहीं है वह वाणी को देखता हुआ भी देख नहीं पाता, और वाणी का अध्ययन करने पर भी उसके यथार्थ स्वरूप को जान नहीं पाता है। वैसे ही जो वैयाकरण नहीं है वह उस वाणी को सुनकर भी सुन नहीं पाता है, अर्थात उसके वाणी अश्रुत सी ही रह जाती है। दूसरे चरण में भाष्यकार कहते हैं कि जैसे कोई कामिनी स्त्री पति के लिये सुन्दर वस्त्रों द्वारा सजी हुई होने पर भी अपने शरीर को प्रकट कर देती है, वैसे ही वैयाकरण के आगे वाणी अपना स्वरूप खोल कर रख देती है। अत: वाणी अपना स्वरूप प्रकट कर दे उसके लिये व्याकरण पढ़ना आवश्यक है (इस सम्बन्ध में देखो ऋग्वेद १०.७१.४.)।

संस्कृत भाषा में व्याकरण शास्त्र का जितना और जैसा सूक्ष्म, तर्कपूर्ण और विस्तृत विवेचन हुआ है, उतना और वैसा विवेचना विश्व की किसी अन्य भाषा में दुर्लभ है। व्याकरण वेदाङ्ग के अतिरिक्त एक दर्शन भी माना गया है। भारतीय दर्शन में शब्द को ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है। आचार्य भर्तृहरि ने शब्द को अनादिनिधन, अक्षर, जगतकारण, नित्य और चेतन स्वीकार किया है। जगत में जितने पदार्थ हैं वह सब शब्द के विषय हैं। खपुष्प आदि जो जगत में नहीं हैं उनकी भी सत्ता जगत में विद्यमान है। अत: जगत ही शब्द का कर्ता है या जगत शब्द का ही विवर्त है। किसी भी अर्थ का ज्ञान शब्द के द्वारा ही होता है। जैसे कोई भी ज्ञान निर्विषयक नहीं होता किन्तु ज्ञय के अधीन ही रहता है वैसे शब्द भी अर्थ समझाने के लिये ही प्रयुक्त होता है और अर्थ के अधीन रहता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय दर्शन शास्त्रों (न्याय) और मीमांसा में भी शब्द-अर्थ पर गम्भीरता से विचार हुआ है। शब्द विषयक मीमांसा के सिद्धान्त भाषा शास्त्र की दृष्टि से भी कम महत्त्वशाली नहीं हैं। कुमारिल भट्ट का 'अभिहितान्ववाद' और प्रभाकर का 'अन्विताभिधानवाद' शब्द बोध के यथार्थ निरूपण के लिये नितान्त मननीय हैं। मीमांसा का 'शब्द-नित्यवाद' बड़े महत्त्व की कल्पना है। मीमांसा के अनुसार कानों से सुनाई पड़ने वाली ध्वनि अनित्य है, वह केवल शब्द के स्वरूप की सूचिका है। शब्द स्वयम् नित्य है। सबसे प्रसिद्ध युक्ति यह है कि उच्चारित ध्वनि ही यदि वास्तव में शब्द होती तो एक ही शब्द के दस बार उच्चारण करने पर दस शब्दों का अनुभव होता, परन्तु इससे एक ही शब्द का अनुभव होता है। फलतः उच्चारण शब्द को उत्पन्न नहीं करता, प्रत्युत उसके रूप का आविर्भाव करता है। अतः उच्चारण के ऊपर अवलम्बित न होने से शब्द नित्य है। शब्द का अर्थ के साथ सम्बन्ध भी नित्य और स्वभाविक है।

भारतीय काव्य शास्त्र में भी शब्द अर्थ का विवेचन गम्भीरता से हुआ है। यद्यपि काव्य-शास्त्र में शब्द अर्थ का विवेचन काव्य सम्बन्धी दृष्टि को ध्यान में रखकर हुआ है परन्तु भाषा शास्त्र की दृष्टि से भी उसका महत्त्व कम नहीं है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को इस रूप में व्यक्त किया है—

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

अर्थात, वाणी (शब्द) और अर्थ जैसे दोनों अलग होते हुये भी एक ही साथ जुड़े रहते हैं, इसी प्रकार से संसार के माता और पिता पार्वती और परमेश्वर (चैतन्य तथा प्रकृति) प्रथक होते हुये भी एक ही प्रतीत होते हैं। उनको मैं कवि कालिदास शब्द और अर्थ की प्राप्ति के लिये वन्दना करता हूं।

भारत में भाषा शास्त्र का अध्ययन, मनन एवम् चिन्तन वैदिक काल में ही प्रारम्भ हो गया था। अष्टाध्यायी के अध्ययन से स्पष्ट है कि भारत में पाणिनि काल में भाषा-शास्त्र का अध्ययन अपनी चरम सीमा तक उन्नति कर चुका था। पाश्चात्य लेखकों ने पाणिनि का काल वि० सं से ६/७ शती पूर्व तक माना है। यह काल-गणना उस एतिहासिक रूप के अनुसार है जिसे ईसाई-मत-पक्षपाती लेखकों ने मानव की उत्पत्ति ईसा (?) से ६००० वर्ष पूर्व मानकर कल्पित किया है। भारतीय अवच्छिन्न परम्परा-सिद्ध सत्य ऐतिह्य के अनुसार पाणिनि मुनि का काल वि० सं० के आरम्भ से २९०० वर्ष पूर्व है और पतञ्जलि का काल वि० सं० के आरम्भ से २००० वर्ष पूर्व है। भारत में भाषा शास्त्र का अनुसन्धान उस समय हो चुका था जब योरोप में भाषा का नाम भी कोई नहीं जानता था, अपितु योरोप,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का अधिकांश भाग मानव शून्य भू-खण्ड था। आज से केवल दो सहस्त्र वर्ष पूर्व जब हमारे देश में कालिदास रघुवंश की रचना कर रहे थे, उस समय योरोप के देशों में पूर्ण रूप से असभ्यता का साम्राज्य था।

योरोप की भाषायें

योरोपीय सभ्यता का मूल स्रोत ग्रीस था। तत्पश्चात जब योरोपीय सभ्यता और प्रभुता का केन्द्र रोम बना तो ग्रीक और लैटिन दोनों भाषाओं का अध्ययन होने लगा और ग्रीक भाषा के आधार पर लैटिन भाषा के व्याकरण बनने लगे। शीघ्र ही लैटिन धर्म और सभ्यता की मूल भाषा मानी जाने लगी और उसके अध्ययन ने सारे योरोप में महत्त्व प्राप्त कर लिया। १७ वीं शती ई० के अन्त तक योरोप के समस्त विद्यालयों में लैटिन ही पढ़ाई जाती थी। लैटिन के व्याकरण का ज्ञान केवल शुद्ध लिखने और बोलने के लिये प्राप्त किया जाता था। उस समय तक योरोप के विभिन्न देशों में उन उन देशों की मातृभाषा नहीं पढ़ाई जाती थी और न उसका कोई महत्त्व समझा जाता था। योरोप के छोटे छोटे देशों में कोई मूल भाषा न होकर सम्पर्कीय भाषाओं ने जन्म लिया था। साथ ही न किसी मूल भाषा का ऐसा सशक्तिवान साहित्य था जो सम्पर्कीय भाषाओं को अलङ्कृत करता। १८ वीं शती ई० में योरोप के विभिन्न देशों में उन उन देशों की मातृ-भाषाओं का अध्ययन आरम्भ हुआ, परन्तु शब्दों की व्युत्पत्ति आदि के लिये लैटिन शब्दों का आश्रय लेना और व्याकरण में लैटिन व्याकरण के अनुसार नियम खोजने का प्रभाव था। १८ वी शती के अन्त में जर्मनों को संस्कृत भाषा का परिचय प्राप्त हुआ। योरोप में भाषा विज्ञान का आरम्भ जर्मनी में हुआ और इसके बनने में सबसे अधिक प्रभाव संस्कृत के अध्ययन से हुआ। जर्मनी के पश्चात भाषा-विज्ञान का अध्ययन फ्रांस में होने लगा, उसके पश्चात इङ्गलैण्ड में और फिर अमरीका में आरम्भ हुआ। योरोप की भाषाओ का इतिहास और सभ्यता का विकास केवल इतना ही प्राचीन है कि उङ्गलियो पर ही गिना जा सकता है, और जिसका उल्लेख हमने ऊपर किया है।

भाषा-विज्ञान

भारत के विश्वविद्यालयों में भाषा-विज्ञान के नाम से जो शिक्षा दी जाती है वह न कोई भाषा है और न कोई विज्ञान है। इस शिक्षा को तुलनात्मक अध्ययन भी नहीं कह सकते हैं। कारण कि विभिन्न भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिये उन उन भाषाओं के पूर्ण ज्ञान प्राप्ति की आवश्यकता होती है। इस विभाग के अध्यापकों को हिन्दी भाषा का भी पूर्ण ज्ञान नहीं होता है। इस विभाग में अध्ययन उन्ही विचारो से आरम्भ होता है जिनको मैक्समूलर और ग्रियर्सन आदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुर्बुद्धि फिरङ्गियों ने और पादरियों ने भारतीय गौरव, संस्कृति और भाषा को विनष्ट करने के लिये जन्म दिया था। खेद है कि भारत के स्वतन्त्र होने पर भी इस प्रकार के विचार हमारे विद्यालयों में पढ़ाये जाते हैं। प्रतीत होता है कि इसके पीछे भारत सरकार के पदासीन नेताओं की नीति और भारत शिक्षा मन्त्रियों की परम्परा है जिसका उल्लेख हमने किया है।

विश्वविद्यालयों में भाषा-विज्ञान की शिक्षा उपहासजनक रीति से दी जाती है। पहले तो यह बताया जाता है कि भाषा-विज्ञान का जन्म योरोप में हुआ। इसका कारण यह है कि भाषा विद् पाश्चात्य प्रणाली से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त किये हुये हैं और उसी आदेश के आदर्श को आप्त-वाक्य या ब्रह्म वाक्य मानकर आगे चलते हैं। यह अध्यापक भारतीय ज्ञान परम्परा से शून्य, अर्द्ध-शिक्षित, पाश्चात्य प्रणाली के भक्त, फिरङ्गियों के मानस पुत्र, अपने विद्यार्थियों को चार-छः योरोपीय भाषाबिदों के नाम सुनाते हैं और उनके सिद्धान्तों की चर्चा करते हैं। यह अध्यापक भूल जाते हैं कि योरोपीय सिद्धान्त योरोप की सम्पर्कीय भाषाओं के सम्बन्ध में निर्धारित किये गये थे। भारत की स्थिति पुर्णतया विपरीत है। सहस्त्राब्दियों से हमारे पास अपनी मूल भाषा है और उसका सशक्त और समर्थ्य साहित्य है तथा अपनी एक चिन्तन प्रणाली है। भारत जैसे देश की भाषा पर योरोप के भाषा विज्ञान के सिद्धान्तों को परखना एक प्रथम श्रेणी की मूर्खता है जिसे भारतीय भाषा विद् कर रहे हैं। इतना ही नहीं उनकी बुद्धि उस समय और उपहासयोग्य हो जाती है जब वे उन्हीं टूटे फूटे सिद्धान्तों को आधार मानकर देववाणी सरस्वती भाषा से लेकर प्रान्तीय भाषाओं तक में अपनी बात की पुष्टि के हेतु उदाहरणों को ढूण्ढने का प्रयास करते हैं और सफल न होने पर शब्दों की असत्य और अशुद्ध व्युत्पत्ति दिखाते हैं और अपने कोरे ज्ञान का प्रगटिकरण करते हैं। ऐसी विडम्बना हमारे देश में है और खेद है कि भाषा वैज्ञानिक आज भी उन्हीं प्राणलियों का यशोगान करते हुये एक अनर्गल मूर्खता का प्रचार कर रहे हैं। उपरोक्त पङ्क्तियों को लिखकर हमारा किञ्चित उद्देश्य किसी को अपमानित करने का नहीं है अपितु हम हाचते हैं कि भाषा विज्ञान के सम्बन्ध में सत्य की झलक जो वास्तविकता की एक रेखा है उसे भाषा विज्ञान शिक्षक पहछानें और जानें तथा इस दिशा में शोध करते हुये नवीन परम्पराओं को जन्म दें। हिन्दी भाषा विज्ञान के एक लेखक, युनिवर्सिटी के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है—"यह विचित्र विरोधाभास है कि यूरोप में भाषा-विज्ञान के अध्ययन का आरम्भ संस्कृत के अध्ययन और परिज्ञान से प्रेरित हुआ और भारत में यूरोपीय प्रभाव के फलस्वरूप। यहाँ यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान का ग्रहण जैसे अन्य क्षेत्रों में हुआ, वैसे ही भाषा विज्ञान के क्षेत्र में भी। इसलिए आधुनिक भारतीय दृष्टि में स्वतन्त्र मौलिक चिन्तन का अभाव है। जो मार्ग यूरोप के विद्वानों ने बना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया है, उसी पर हम चल रहे हैं। अपनी प्राचीन उपलब्धियों का ज्ञान नहीं होने से हम उनकी सहायता नहीं ले पाते और जो पुरानी या बासी चीजें यूरोप या अमरीका से मिलती हैं, उन्हें ही पाकर हम अपने को कृतार्थ मानते हैं। इसलिये जो भाषा-वैज्ञानिक कार्य आधुनिक युग में हुए हैं उनमें गतानुगतिकता अधिक है। इसका एक कारण यह भी है कि यहाँ आरम्भ में भाषा वैज्ञानिक कार्यो का सूत्रपात यूरोपीय विद्वानों द्वारा ही किया गया और उन्हीं के आदर्शों पर भारतीय विद्वान भी चलते रहे। सम्भवत: जो मार्ग बन गया उसमें भारतीय तत्त्व कम और पाश्चात्य तत्त्व प्रमुख हो गया।''(१)

ब्रील का सिद्धान्त

हिन्दी भाषा विज्ञान के विभाग में आज एक और विज्ञान की शिक्षा दी जाती है जिसे अर्थ विज्ञान कहते हैं और इसे भाषा विज्ञान की ही एक शाखा बतायी जाती है। यह भी बताया जाता है कि इस विज्ञान को व्यवस्थित रूप देने में एक फ्रांसीसी बिद्वान माइकेल ब्रील का ही योगदान है। ब्रील के सिद्धान्त के आधार पर जो शिक्षा दी जाती है उसको हम भाषा-विज्ञान के एक लेखक के शब्दों में ही उद्धृत करते हैं—प्रत्येक सार्थक शब्द अपने साथ अपना एक अर्थ, भाव या विचार रखता हे। वही अर्थ उसका प्राण या सार है और उस शब्द का सारा महत्त्व उस अर्थ पर ही निर्भर है। पारिभाषिक शब्दावली में उस अर्थ को अर्थ-तत्व या अर्थग्राम कहते हैं। किसी शब्द का अर्थ सर्वदा एक नहीं रहता। धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन या विकास होता रहता है। अर्थ-विज्ञान में इसी अर्थ-परिवर्तन या अर्थ-विकास का अध्ययन होता है और हम विकास या परिवर्तन की दिशा तथा उसके मूल में छिपे कारण को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार अर्थ-विज्ञान के अन्तर्गत हम किसी शब्द के अर्थ तत्त्व में होने वाले परिवर्तन या विकास के कारण तथा उसकी दिशा पर विचार करते हैं।''(२) एक अन्य हिन्दी भाषा विज्ञान के लेखक का कथन है कि शब्दों के अर्थ में सदा परिवर्तन होता रहता है। अर्थ भी स्थायी और अपरिवर्तनीय वस्तु नहीं है। ध्वनि और पद के समान इसमें भी परिवर्तन हुआ करता है। (३)

ब्रील के अनुसार अर्थ का विकास या अर्थ परिवर्तन तीन प्रमुख दिशाओं में होता है— (१) अर्थ विस्तार, (२) अर्थ सङ्कोच, (३) अर्थादेश।

ब्रील का अर्थ परिवर्तन का यह सिद्धान्त भारतीय भाषा-विज्ञान के लेखकों

---

(१) भाषा विज्ञान की भूमिका पृष्ठ ३०९।

(२) भाषा बिज्ञान पृष्ठ २०९।

(३) भाषा विज्ञान की भूमिका पृष्ठ २७१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा अध्यापकों को मान्य है, और विश्वविद्यालयों में इस सिद्धान्त की विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है। भाषा-विज्ञान के लेखकों ने अपनी-अपनी कृतियों में उपरोक्त सिद्धान्त की पुष्टि में कुछ शब्दों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत भी किया है। इन पुस्तकों में जो उदाहरणार्थ शब्द दिये हैं, वह सभी पुस्तकों में लगभग एक ही हैं। प्रतीत होता है कि इन लेखकों ने उदाहरणस्थ शब्दों की एक दूसरे की पुस्तक से साहित्यिक चोरी की है। दूसरी बात यह भी स्पष्ट है कि इन शब्दों के अतिरिक्त इन लेखकों के पास और शब्द ही नहीं हैं जिनको यह उदाहरण रूप में प्रस्तुत कर सकें। यदि किसी लेखक ने किसी और शब्द का उदाहरण देने का प्रयास भी किया है तो उस शब्द में उसने अन्य लेखकों से बढ़कर अपनी प्रमूढ़ता का ही प्रमाण दिया है। जब कोई लेखक या अध्यापक ब्रील के सिद्धान्त की पुष्टि में किसी नये शब्द का उदाहरण देता है तो अन्य लेखक व अध्यापक उनकी इस खोज पर मतवाले होकर निर्लज्जता-पूर्वक नाचने लगते हैं और उसकी जो प्रशंसा करते हैं उसको हम इन शब्दों में प्रस्तुत कर सकते हैं—

उष्ट्राणां विवाहेषु गर्दभा गीत गयका:।
परस्परं प्रशन्सन्ति अहो रूपं अहो ध्वनि:॥

अर्थात ऊटों के विवाह के अवसर पर गर्दभ एकत्रित होकर गाते हैं और आपस में एक दूसरे के स्वर की तथा रूप की प्रशसा करते हैं।

पाश्चात्य लेखकों तथा ब्रील का अर्थ परिवर्तन का सिद्धान्त भारतीय भाषा शास्त्र के सिद्धान्त 'सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे' से पूर्णतया विपरीत है। हिन्दी भाषा-विज्ञान की पुस्तकों में ब्रील के सिद्धान्त की पुष्टि में जिन शब्दों को उदाहरणस्थ प्रस्तुत किया गया है, हम उन सभी शब्दों की मीमांसा करेंगे और दिखायेंगे कि यह उदाहरण अनर्गल और असत्य हैं। भाषा-विज्ञान की पुस्तकों के लेखक अपनी मूर्खता तथा विवेक हीनता के कारण या तो उन शब्दों की व्युत्पत्ति अशुद्ध दिखाते हैं या उन्हें उन शब्दों के साधु रूप का ज्ञान ही नहीं हो पाता है। जैसा ऐक भाषा-विज्ञान के लेखक ने लिखा है कि शब्द 'चौकन्ना' अपने अर्थ में इतना सङ्कुचित हो गया है कि किसी चार कान वाले को चौकन्ना नहीं कह सकते हैं। यह कितनी मूर्खता का हास्यास्पद कथन है। भगवान ने संसार में किसी भी प्राणी (मनुष्य, पशु, पक्षि) को चार कानों वाला उत्पन्न नहीं किया है, हो सकता है कि पाश्चात्य पद्धति से शिक्षा-दीक्षा पाये भाषा-विज्ञान के लेखकों के चार कान विज्ञान द्वारा लगा दिये गये हों। उस लेखक को इतना भी ज्ञान नहीं है कि 'चौकन्ना' उसे कहते हैं जो अपने कानों से चतुर (कुशल) हो। शब्द 'चतुर' सङ्ख्या वाचक विशेषण है जिसका अर्थ 'चार' है। दूसरा शब्द 'चतुर' है जो विशेषण है और जिसका अर्थ 'कुशल' है। 'चौकन्ना' शब्द की व्युत्पत्ति चतुर + कर्ण है। इस उदाहरण से स्पष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि पाश्चात्य प्रणाली से शिक्षा प्राप्त किये भाषा-विज्ञान के अध्यापक विद्यार्थियों को किस प्रकार भ्रम में डाल कर अपने कथन की पुष्टि किया करते हैं। महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन में इस प्रकार के कथन को 'छल' कहा है (१.२.१०)।

विद्यार्थी का धर्म:

भारतवर्ष में सदैव ज्ञान की ओर विशेष रूप से नव चेतन क्रान्तिमय ज्ञान की प्रतिष्ठा रही है। यहां तक सिद्धान्त है कि चाहे जो आचार्य हो उसके वचनों का तब तक पूर्ण रूप से पालन न करो जब तक अपनी विवेक बुद्धि द्वारा सदसत की परीक्षा न कर ली जाय। यही कारण है कि हमारे देश में सहस्त्रों वैदिक विचारों से लेकर दर्शन तथा उपनिषदों तक की रचना हुई जिनमें विचारों की विभिन्नता है, ज्ञान तथा तत्त्व की प्रमुखता है और वही व्यक्ति यहां पर प्रतिभावान स्वीकार किया जाता था जो अपनी मौलिकता की रक्षा करता था। यह हमारे देश के गौरव युग की एक झलक थी। कालान्तर में ज्ञान को और विशेष रूप से स्वतन्त्र चिन्तन को हीनता प्रदान की जाने लगी और कुछ ऐसे अहम् वादी व्यक्ति आये जिन्होंने यह चाहा कि जो वह कहते हैं वही उनके अनुयायी मानें, अक्षरश: पालन करें, तथा अपनी बुद्धि को तिरोहित कर दें। इस प्रकार मानव की सहज जन्य ज्ञान चेतना को विनष्ट किया गया और एक गुरू ने अपने अनुयायियों को केवल थोड़े से सिद्धान्तों को मान कर चलने के लिये बाध्य किया और खेद है कि उसी समय सम्प्रदायवाद ने जन्म लिया, अर्थात एक व्यक्ति की निष्ठा और उसके उपदेश और वाक्यों में पूर्ण आदर्श और श्रद्धा। विश्वविद्यालयों के अध्यापक अपनी शिक्षा प्रणाली से एक सम्प्रदायवाद को जन्म दे रहे हैं। हम विद्यार्थियों को सावधान करके प्रेरित करते हैं कि यदि किसी व्यक्ति को विश्व के सभी पदार्थ प्राप्त हो जायें परन्तु उसका आत्मा नष्ट हो जाय तो वह पदार्थ उसके किसी काम नहीं आ सकते हैं। इसी प्रकार यदि किसी विद्यार्थी को विश्वविद्यालय की कोई भी पराकोटि की उपाधि प्राप्त हो जाय परन्तु उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाय तो उस उपाधि का कोई महत्त्व नहीं हो सकता है। सत्यासत्य की परीक्षा करके विद्या ग्रहण करना विद्यार्थी का परम धर्म है।

प्रामाणिक शब्दकोश

मूलभाषा के उद्गम और विकास का ज्ञान कभी नहीं हो सकता है। सरस्वती भारत की आदि मूल भाषा होने के कारण ही भारतीय उसे दैवी वाक् अनादिनिधना अजरा अमरा मानते हैं। हमारी भाषा का उद्गम कब हुआ, इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर न कभी दिया गया और न भविष्य में दिया जा सकेगा। हमारी भाषा के उद्गम और विकास की चर्चा करना प्रथम श्रेणी की मूर्खता है। अनेक व्यक्तियों के किसी शब्द के साधु अर्थ के सम्बन्ध में भ्रम हो सकता है, इस कारण शब्द के साधु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थ का ज्ञान भाषा के प्रामाणिक शब्द कोश द्वारा हो सकता है। हिन्दी भाषा के जो शब्द कोश आज उपलब्ध हैं उनमें शब्दों की व्याकरण कोटियाँ और अर्थ अशुद्ध दिये हुये हैं। अधिकांश शब्दों के सभी अर्थों का ज्ञान भी इन शब्द कोशों से नहीं हो पाता है। शब्दों की व्युत्पत्ति का तो इन शब्द कोशों के सम्पादकों को कोई ज्ञान ही नहीं है। इसी कारण इन शब्द कोशों में सञ्ज्ञा शब्दों के अशुद्ध लिङ्ग भी दिये हुये हैं। इन शब्द कोशों को अपनी भाषा के प्रमाणिक शब्द कोशों की मान्यता नहीं दी जा सकती है।

हमारी भाषा में बहुत से शब्द अनेकार्थी हैं। कोई शब्द एक क्षेत्र में एक अर्थ में प्रयोग होता है और वही शब्द दूसरे क्षेत्रों में दूसरे-दूसरे अर्थों में प्रयोग हो सकता है। जन साधारण को तो क्या विद्वानों तक को भी शब्दों के सभी अर्थों का ज्ञान नहीं होता है। एक व्यक्ति या विद्वान एक शब्द को एक अर्थ में जानता है और दूसरा व्यक्ति उसी शब्द को दूसरे अर्थ में जान सकता है। जैसे संस्कृत शब्द 'जल' वि० है। हिन्दी में इस विशेषण शब्द का पु० रूप 'जला' और स्त्री० रूप 'जली' होता है। यह शब्द खरी बोली क्षेत्र में सामान्यता मूर्ख के अर्थ में प्रयोग होता है। काशी-कौशल क्षेत्र के व्यक्ति इस शब्द को समझ ही नहीं पाते हैं और यह शब्द इस अर्थ और व्याकरण कोटि में किसी भी शब्द कोश में दिया हुआ नहीं है। शब्द कोशो में शब्द 'जल' को सस्कृत लिखकर इसको सं० पु० और अर्थ पानी लिखा है, परन्तु यह शब्द पानी के अर्थ में 'जल' नहीं है अपितु 'जलम्' है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि इस शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो गया है। शब्द के सभी अर्थों का ज्ञान शब्द के प्रामाणिक शब्द कोशों से हो सकता है। कुछ शब्द कोशों में यह भी दिया रहता है कि वह शब्द अमुक लेखक ने अमुक अर्थ में अमुक रचना में प्रयोग किया है। शब्द कोशों में एक ही शब्द के जो अनेक अर्थ दिये होते हैं उनमें यह निर्णय करना असम्भव होता है कि उस शब्द का उन अर्थों में पहले कौनसा अर्थ बना और पश्चात में कौन सा अर्थ बना। हम केवल यह कह सकते हैं कि एमुक शब्द के इतने अर्थ होते हैं। हम यह दिखा चुके हैं कि हमारी भाषा के शब्दों की व्याकरण कोटियां और अर्थ आज भी वही हैं जो उन शब्दों के प्राचीन काल में थे। हमारी भाषा के शब्द अपने वास्तविक रूप और अर्थ में आज भी संस्कृत कोशों में सुरक्षित हैं। इसी कारण हम संस्कृत कोशों को ही अपनी भाषा के प्रामाणिक शब्द कोश मानते हैं और अपने सिद्धान्त की पुष्टि में उन्हीं शब्द कोशों का उपयोग करेंगे।

विद्वानों का वर्गीकरण

हम अपने देश के विद्वानों को तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—(१) सारग्राही, (२) भारवाही और (३) जिज्ञासमान। सारग्राही विद्वान शास्त्रों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथवा लोक से उन उन शास्त्रों का तात्पर्य ग्रहण करके कृतकृत्य होते हैं तथा करुणार्द्र चित्त होकर दूसरे दीन जनों के उद्धार के लिये सूत्र रूप में उपदेश प्रदान करते हैं। ये दो प्रकार के हैं—महर्षिगण जो मन्त्र, सूक्त आदि के द्रष्टा हैं, तथा मुनिजन जो दर्शन शास्त्र आदि के प्रवक्ता हैं। भारवाही वे हैं जो स्वयम् अपने को पण्डित समझने लगते हैं। वे अपनी अधिकार युक्त बुद्धि के अनुसार उन उन प्राचीन महर्षियों के द्वारा युक्त अर्थ की खींचातानी करके, सार और असार दोनों का सम्मिश्रण करके अनेक मतवाद और आडम्बर रचा करते हैं। जिज्ञासमान भी दो प्रकार के होते हैं। वास्तविक जिज्ञासमान वे हैं जो अपनी त्रुटि को समझते हैं, वह यह अनुभव करते हैं कि वे अज्ञानी हैं और जहाँ कहीं से भी यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिये सर्वदा उत्सुक रहते हैं। वे विनम्र होते हैं और युक्तियुक्त बात में विश्वास रखते हैं। दूसरे ज्ञान लवदुर्विदग्ध होते हैं जिन्हें कुछ थोड़ा सा ज्ञान का अंश कहीं से मिल गया उसी को सब कुछ मानते हुये दूसरों की सारपूर्ण बात को सुनने के लिये भी सहमत नहीं होते हैं और वह जिन बातों को नहीं भी समझते हैं उन पर भी अपना पण्डित्य दिखाते हुये दूसरों का उपहास करने में प्रवृत्त रहते हैं। इन्हीं के लिये कहा गया है कि ब्रह्मा भी इन्हें नहीं समझा सकते हैं।[1] भारत में भाषा विज्ञान के लेखकों और विश्वविद्यालयों के भाषा विज्ञान के अध्यापकों को ज्ञान-दुर्विदग्ध व्यक्तियों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

भाषा-वैज्ञानिक-समज :

ब्रील के अर्थ परिवर्तन के सिद्धान्त का भारत के भाषा विज्ञान के लेखकों ने अन्धानुकरण किया है। इन लेखकों ने ब्रील के नियम को अपनी अपनी पुस्तकों में प्रस्तुत किया है और उसके समर्थन में कतिपय हिन्दी शब्दों के उदाहरण भी दिये हैं। यह पुस्तकें भारत के विश्वविद्यालयों की उच्च-कक्षाओं के पाठ्य पुस्तकों के रूप में स्वीकृत हैं। इन पुस्तकों और उनके लेखकों के नाम तथा जिस संवत् में इनका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था, इस प्रकार हैं—

(१) भाषा-विज्ञान, डा० श्याम सुन्दर दास—सं० १९८१ वि०।
(२) सामान्य भाषा विज्ञान डा० बाबूराम सक्सेना—सं० २००० वि०।
(३) भाषा-विज्ञान, डा० भोलानाथ तिवारी—सं० २००७ वि०।
(४) सरल भाषा-विज्ञान, डा० मन मोहन गौतम—तृतीय संस्करण सं० २०२२ वि०।
(५) भाषा-विज्ञान और हिन्दी, डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल—सं० २०१४ वि०।
(६) अर्थतत्व की भूमिका, डा० शिवनाथ—सं० २०१८ वि०।
(७) भाषा-विज्ञान की भूमिका, प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा—सं० २०२३ वि०।

(१) देखो वेदों में भारत संस्कृति—पुराण समीक्षा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योरोप के विभिन्न देशों की भाषाओं के पठन-पाठन का इतिहास ३००/४०० वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है। इन देशों की भाषायें मूल भाषायें नहीं हैं अपितु सम्पर्कीय भाषायें हैं जिनके शब्द ग्रीक और लैटिन भाषाओं से गृहीत हुये हैं। ब्रील फ्रांस का एक विचारक था और उसने १९ वीं शती में फ्रांस की भाषा में उस भाषा के शब्दो के आधार पर एक पुस्तक 'सेमाण्टिक्स' (अर्थ-विचार) प्रकाशित की। सन् १९०० ई० में लण्डन से इस पुस्तक का अङ्गरेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ। सम्भवत: श्याम सुन्दर दास को ब्रील के अर्थ-परिवर्तन सिद्धान्त का ज्ञान ब्रील की पुस्तक के अङ्गरेजी अनुवाद द्वारा हुआ। श्याम सुन्दर दास को यह ज्ञान ही नही था कि हिन्दी (खरी बोली) सरस्वती भाषा का ही आधुनिक रूप है और यह भाषा एक मूल भाषा है। इसके अतिरिक्त श्याम सुन्दर दास को संस्कृत भाषा और उसके व्याकरण का भी कोई ज्ञान नहीं था। उस लेखक ने अज्ञान तथा भ्रमवश ब्रील के अर्थ परिवर्तन के सिद्धान्त का हिन्दी करण कर डाला, अर्थात ब्रील के अर्थ परिवर्तन के नियम, अर्थ परिवर्तन की दिशायें, अर्थ परिवर्तन के कारणो का हिन्दी अनुवाद करके और उनके समर्थन में कतिपय हिन्दी शब्दों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करके 'भाषा विज्ञान' नामक पुस्तक प्रकाशित कर दी। इस पुस्तक में जिन शब्दों को उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया गया है, उन शब्दों के इस पुस्तक में दिये हुये अर्थों का, उन शब्दों के संस्कृत कोशों में दिये हुये अर्थों से तुलना करके कोई भी सामान्य बुद्धि का व्यक्ति कह सकता है कि उदाहरणार्थ शब्दों के अर्थों में कोई परिवर्तन नही होता है अत: यह उदाहरण असाधु और असत्य है तथा ब्रील का सिद्धान्त हमारी भाषा के शब्दों के सम्बन्ध में असत्त है। भारतीय विद्वानों ने इस पुस्तक को विचार करने योग्य ही नहीं समझा और किसी विद्वान ने भी इस पुस्तक की कोई आलोचना नहीं की।

उपरोक्त पुस्तक के प्रकाशन के १९ वर्ष पश्चात बाबूराम सक्सेना ने इसी पुस्तक के आधार पर 'सामान्य भाषा विज्ञान' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में भी ब्रील के अर्थ परिवर्तन के सिद्धान्त को मान्यता दी है और उसके समर्थन में कतिपय हिन्दी शब्दों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक के लेखक केवल संस्कृत के ज्ञाता, विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्यापक ही नहीं अपितु संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका' नामक पुस्तक के लेखक भी है। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस विद्वान लेखक को यह ज्ञान था कि संस्कृत में जिस शास्त्र से साधु शब्द का ज्ञान हो उसे व्याकरण कहते हैं—व्याक्रियन्ते—व्युत्पाद्यन्ते, शब्दा अनेनेति शब्दज्ञान-जनकं व्याकरणम्। पतञ्जलि ने भी महाभाष्य का आरम्भ इन शब्दों से किया है— 'अथ शब्दानुशासनम्' अर्थात अब साधु शब्द शिक्षण नामक (व्याकरण) शास्त्र का आरम्भ होता है। वार्तिक की व्याख्या करते हुये भाष्याकार पतञ्जलि लिखते हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'सिद्धे सब्दार्थ सम्बन्धे' अर्थात शब्द, शब्दों के अर्थ और उनके परस्पर सम्बन्ध के सिद्ध (नित्य) रहने पर पाणिनि का शास्त्र (व्याकरण) लिखा गया है। संस्कृत और सरस्वती के शब्द एक ही हैं, उत: सरस्वती के शब्द नित्य होने के कारण व्याकरण शास्त्र का निर्माण हुआ। 'सामान्य भाषा विज्ञान' के विद्वान लेखक ने भारत के भाषा शास्त्र के सिद्धान्तों का पूर्णतया विस्मरण करके और अपनी स्वतन्त्र विचार धारा, मनन, चिन्तन को तिरोहित करके ग्रीक के अर्थ परिवर्तन के सिद्धान्त को हिन्दी शब्दों के सम्बन्ध में भी सिद्ध करने के हेतु अपने ज्ञान और अज्ञान की पूरी शक्ति लगा दी। इस सिद्धान्त के समर्थन में हिन्दी शब्दों को उदाहरणार्थ प्रस्तुत करते समय उन्हें सञ्ज्ञा और विशेषण के भेद का भी ज्ञान न रहा। क्या हम हिन्दी (खरी बोली) क्षेत्र (कुरु देश) के रहने वाले यह स्वीकार कर लें कि शब्द 'वर' वि० और 'वर:' सं० पु०; 'मधुर' वि० और 'मधुरम्' सं० पु०; 'दुर्लभ' वि० और 'दुलाह' सं० पु० एक ही शब्द हैं और इस प्रकार के शब्दों में अर्थ परिवर्तन हो जाता है। भारत में इस प्रकार की मूढता और वातुलता को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। 'सामान्य भाषा विज्ञान' में जिन हिन्दी शब्दों को अर्थ परिवर्तन के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है, उन शब्दों में किसी भी शब्द के अर्थ में परिवर्तन नहीं होता है। यह उदाहरण पूर्णतया भ्रामक, अनर्गल और असत्य हैं। इन उदाहरणों में न कोई बल है और न तथ्य है।

इसी प्रसङ्ग में हमें एक कथा का समरण हो आया। प्राचीन काल में एक राजा ने अपने राजकुमार को देश के प्रसिद्ध ज्योतिषी के पास ज्योतिष विद्या अध्ययन के लिये भेजा। राजकुमार ने बहुत परिश्रम के साथ ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन किया। शिक्षा समाप्त होने पर ज्योतिषी उसे राजा के पास ले गये। राजा ने प्रसन्नता प्रकट करते हुये राजकुमार की परीक्षा हेतु अपनी मुट्ठी में एक अङ्गूठी जिसमें एक बहुमूल्य पत्थर जड़ा हुआ था, लेकर पूछा—"कुमार बताओ हमारी मुट्ठी में क्या है।" राजकुमार को ज्योतिष विद्या से ज्ञात हुआ कि राजा की मुट्ठी में कोई गोल वस्तु है जिसमें पत्थर लगा हुआ है। इस पर राजकुमार ने उत्तर दिया कि आपकी मुट्ठी में चक्की का पाट है। राजा ने क्रोध पूर्वक ज्योतिषी से कहा कि क्या आपने इतने वर्षों में इसे यही शिक्षा दी है। ज्योतिषी ने हाथ जोड़कर कहा—'अन्नदाता हमने उसे जो विद्या प्रदान की है उससे राजकुमार ने जो निष्कर्ष निकाला वह कुमार से पूछ लें। हमारे पास विद्या है वह हमने उसे दे दी है, परन्तु खेद है कि बुद्धि जो एक नैसर्गिक वर्दान है, वह हम इसे नहीं दे सकते थे।" ठीक यही दशा उन संस्कृत विद्वानों की है जो 'सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे' का सूत्र पढने के पश्चात भी अर्थ परिवर्तन के सिद्धान्त के समर्थन में हमारी भाषा के शब्दों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृत व्याकरण शास्त्र का जितना और जैसा सूक्ष्म, तर्क पूर्ण और विस्तृत विवेचन हुआ है उतना और वैसा विवेचन विश्व की किसी अन्य भाषा में असम्भव है। संस्कृत व्याकरण शास्त्र के यह ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं। परन्तु खेद है कि संस्कृत व्याकरण के अध्ययन के लिए व्याकरण की वही पुस्तकें पाठ्य-पुस्तकों के रूप में स्वीकृत हैं जो पाश्चात्य लेखों ने लिखी हैं या जो पुस्तकें पाश्चात्य व्याकरण पद्धति के अनुसार लिखी गई हैं। यही कारण है कि विश्वविद्यालयों से एम० ए० (संस्कृत) की उपाधि प्राप्त किये हुये विद्यार्थियों को संस्कृत व्याकरण के मूल सूत्रों तक का भी ज्ञान नहीं होता है जिनके आधार पर संस्कृत व्याकरण बनना सार्थक है।

'सामान्य भाषा विज्ञान' के विषय वस्तु के सम्बन्ध में तो हम अपने विचार प्रकट कर ही चुके हैं। इस पुस्तक की भाषा मे म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का इस प्रकार मिश्रण है जैसा कि आकाश वाणी से हिन्दी में प्रसारित समाचारों की भाषा में जानबूझ कर किया जाता है। इस पुस्तक की लेखन शैली से प्रतीत होता है कि यह पुस्तक किसी संस्कृत के विद्वान की लिखी हुई नहीं है अपितु किसी ऐसे भारतीय की लिखी हुई है जिसको संस्कृत, हिन्दी तथा अरबी और फारसी शब्दों के भेद का ज्ञान ही न हो।

भारत में भाषा-विज्ञान की शिक्षा का प्रारम्भ कलकत्ता विश्वविद्यालय में सुनीति कुमार चाटुर्ज्या की अध्यक्षता में हुआ था और यह शिक्षा योरोपीय लेखकों के विचारों और सिद्धान्तों पर आधारित थी। हिन्दी क्षेत्र के कुछ विद्यार्थियों ने भी कलकत्ता विश्वविद्यालय से पाश्चात्य पद्धति के अनुसार भाषा-विज्ञान की शिक्षा ग्रहण की थी। जब हिन्दी क्षेत्र के विश्वविद्यालयों के हिन्दी भाषा विभाग में भाषा विज्ञान की शिक्षा का प्रारम्भ हुआ तो इस विभाग में वह व्यक्ति भाषा-विज्ञान के अध्यापक नियुक्त हुये जिन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से भाषा-विज्ञान की कोई उपाधि प्राप्त की थी और जो अपनी स्वतन्त्र विचार धारा और बुद्धि को कलकत्ते की कालिज स्ट्रीट में खो आये थे। इन अध्यापकों ने ब्रील के अर्थ परिवर्तन, उसकी दिशाओं और कारणों के सिद्धान्त की पुष्टि में उदाहरणर्थ हिन्दी शब्दों की खोज आरम्भ कर दी और सफलता प्राप्त न होने पर उन्होंने हिन्दी शब्दों की काल्पनिक और असत्य व्युत्पत्ति दिखा दिखा कर हिन्दी शब्दों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करना आरम्भ कर दिया। इनमें से कतिपय अध्यापकों ने हिन्दी भाषा विज्ञान की पुस्तकें भी लिखी और इनमें भी वही असत्य विचार भरे हुये हैं। इन लेखकों ने जितने अधिक हिन्दी शब्दों को उदाहरणार्थ प्रस्तुत करने का प्रयास किया, उन्होने उतना ही अधिक अपनी प्रमूढता का प्रगटिकरण किया है। आज तो भाषा विज्ञान के यह लेखक और अध्यापक वह चमत्कार दिखा रहे हैं जिन्हें देख कर संसार का बड़े से बड़ा डाक्टर या विज्ञानी भी चकित रह जाता है। इन लेखकों ने केवल अप्राणी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को प्राणी, पु० को स्त्री०, और स्त्री को पु० ही नहीं बना कर दिखाया अपितु विशेषण तक को पु० और स्त्री० बना डाला। वास्तव में ऐसा चमत्कार हमारे पाठकों को देखने को तो क्या सुनने को भी नही मिलेगा। प्रतीत होता है कि इन लेखकों ने अपने मस्तिष्क के विकार की किसी प्रमाणिक संस्कृत शब्द कोश से कभी चिकित्सा नहीं कराई और न कभी व्याकरण शास्त्र जैसी रसायण औषधी का सेवन किया। इन लेखकों को अपने इस कार्य में 'हिन्दी शब्द सागर' जैसे शब्द कोशों से पूर्ण रूप से सहायता प्राप्त हुई, जिसके द्वारा इन (भाषा) वैज्ञानिकों को खाद्य' पु० से 'खाद' स्त्री०, 'दुर्लभ' वि० से 'दुलाह' पु० और 'मधुर' वि० से 'माहुर' सं० पु० बनाने की कला का ज्ञान प्राप्त हुआ। इन लेखकों के कतिपय उदाहरण तो इतने लज्जा विहीन हैं कि कोई भी सामान्य बुद्धि का व्यक्ति इन्हें उदाहरणार्थ प्रस्तुत करना उचित नही समझेगा। हम भी शिष्ठतावश उन शब्दों की आलोचना करना उचित नहीं समझते हैं।

भाषा विज्ञान की उपरोक्त शेष पुस्तकों में कोई भी मौलिक विचार नहीं हैं। इन सभी पुस्तकों में ग्रील के सिद्धान्त की पुष्टि में जिन शब्दों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है वह शब्द सभी पुस्तकों में लग-भग एक ही हैं। यदि किसी लेलक ने अन्य शब्द का उदाहरण देने का प्रयास भी किया है तो उससे उसने अपनी मूर्खता का स्पष्टीकरण ही करके दिखाया है। इसके अतिरिक्त इन पुस्तकों के लेखको की दशा बिना पेन्दे (पिण्ड) के उस लोटे के समान है जो जिस ओर मन मे आया लुड़क जाता है। यह लेखक उदाहरण में कभी हिन्दी शब्द को प्रस्तुत करते हैं, तो कभी बङ्गाली शब्द को, कभी फारसी शब्द को और कभी अङ्गरेजी शब्द को। प्रतीत होता है कि इन लेखकों के पास किसी एक ही भाषा के उदाहरण देने योग्य शब्द हैं ही नहीं। भाषा-विज्ञान के लेखक और अध्यापक पाश्चात्त्य लेखकों की गति और ताल पर, अपने हिय और कपाल की दृष्टि को फोड़कर, केवल अज्ञानता का निर्लजनता पूर्वक नृत्य दिखा रहे हैं, जिसे देखकर हमें ही नहीं प्रत्येक भारतीय, जिसके हृदय में राष्ट्र गौरव है, को गम्भीरता पूर्वक विचारना पड़ता है कि क्या भाषा-विज्ञान विभाग में कोई शिक्षा दी जाती है या इस विभाग में भारतीय संस्कृति, गौरव और भाषा को विनष्ट ही करने का मार्ग दिखाया जाता है। क्या इस प्रकार के विभाग को विश्वविद्यालयों में अधिक समय तक रखखा जा सकता है या रखना उचित है।

भाषा-विज्ञान में अर्थ परिवर्तन के सिद्धान्त की अज्ञानता का कारण पाश्चात्य भाषा विज्ञान की मान्यतायें हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) भाषा के अध्ययन के लिये व्याकरण को प्रमुखता देने की आवश्यकता नही है। किसी भी भाषा का बोलने वाला उसका व्याकरण नहीं पढ़ता। व्याकरण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा में अन्तर्निहित रहता है। भाषा सीखने का अर्थ ही है व्याकरण भी सीखना। व्याकरण की आवश्यकता पड़ती है दूसरी भाषाओं के अध्ययन के लिये, मातृभाषा के लिये नहीं। (२) लिपिबद्ध भाषाओं की अपेक्षा जीवित भाषाओं का अध्ययन उपादेय और फलप्रद है। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में वाचक भाषा ही आती है। (१)

उपरोक्त कथन कितना हास्यास्पद है। यदि भाषा विज्ञान के अध्यापकों को साधु शब्द और व्याकरण के ज्ञान की आवश्यकता नहीं है तो उनके लिये निम्न वाक्यों में 'हार' शब्द एक ही हैं—

(क) ऊषा का हार खोया गया।

(ख) गोपाल की हार हो गई।

प्रकृति के अनुसार मनुष्य और पशु दोनों ही जरायुज हैं, अर्थात गर्भ धारण करने के पश्चात जन्म लेते हैं। मनुष्य का आत्मा मननशील करके सत्यासत्य की परीक्षा कर सकता है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषो से सत्य छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु पशु में यह नैसर्गिक गुण नहीं है। प्रकृति ने भी मनुष्य और पशु का भेद व्यक्त करने के लिये पशु के पीछे एक पुच्छ चिह्न लगा दिया है। यदि विज्ञ मनुष्य अपनी प्रज्ञा द्वारा सत्यासत्य का निर्णय न कर सके तो उसके पीछे लगी हुई परा‌कोटि की उपाधियाँ भी पुच्छवत ही हैं।

मनुष्यों में अति अज्ञान और कुसङ्ग से भ्रष्ट बुद्धि होती है। विद्यासतसङ्ग के बिना शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। जब तक वादी प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद व लेख न किया जाय, तब तक सत्यासत्य का निर्ण नहीं हो सकता। सत्य की जय और असत्य का क्षय के अर्थ मित्रता से वाद व लेख हमारी मनुष्य जाति का मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्य की उन्नति कभी नहीं हो सकती। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत होता है। इसीलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। अतः विद्वान आप्तों का यही मुख्य काम है कि लेख द्वारा सबके सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात वह स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग कर दें।

प्रभाकर मीमांसक किसी ज्ञान में भ्रम की सत्ता स्वीकार ही नहीं करते हैं। उनके अनुसार भ्रम होता ही नहीं है, यहां भेद ज्ञान का अभाव रहता है। अतः सब भ्रान्ति के स्थान पर ज्ञान का अभाव रहता है। भ्रम भी विषयों को लेकर

(१) भाषा-विज्ञान की भूमिका, पृष्ठ ३२५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं होता अपितु उनके संसर्ग को लेकर होता है। प्रत्येक ज्ञान सत्य का दर्शन कराता है। तत्त्व ज्ञान से मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति होती है। जिस प्रकार दीप का प्रकाश अपने सामने उपस्थित होने वाले समस्त वस्तुओं के रूप को प्रकट कर देता है, उसी प्रकार भाषा का व्याकरण शब्द के साधु रूप और शब्द कोश शब्द के साधु और सभी अर्थों को प्रकट कर देता है। अत: हम ब्रील के अर्थ परिवर्तन के समर्थन में उदाहरण रूप में दिये हुये शब्दों को व्याकरण ओर शब्द कोश की कसौटी पर घिसकर, उनकी मीमांसा करके यह सिद्ध करेंगे कि इनमें से किसी भी शब्द के अर्थ में न परिवर्तन होता है, न सङ्कोच और न विस्तार। भारतीय भाषा-शास्त्र के अनुसार शब्द, शब्दों का अर्थ और उनका परस्पर सम्बन्ध नित्य है और ब्रील का सिद्धान्त पूर्णतया असत्य है। पाश्चात्य लेखकों का भाषा-विज्ञान न कोई भाषा है और न कोई विज्ञान है।

विश्वविद्यालयों में संस्कृत शब्दों के ज्ञान हेतु इस समय प्राय: तीन शब्द-कोश प्रचलित हैं और यह तीनों शब्दकोश संस्कृत अङ्गरेजी माध्यम के हैं। इनका विवरण निम्न है—

१. प्रेक्टीकल संस्कृत अङ्गरेजी कोश— शिवराम आप्टे।
२. संस्कृत—अङ्गरेजी कोश —शिवराम आप्टे, सशोधित संस्करण—गोड और कारवे।
३. संस्कृत—इङ्गलिश कोश—मोनियर विलियम्स।

शिवराम आप्टे ने एक संस्कृत—अङ्गरेजी कोश विद्यार्थी संस्करण भी प्रकाशित किया था, जिसका हिन्दी अनुवाद भारत प्रशासन के अनुदान से प्रकाशित हुआ था, परन्तु इस शब्द कोश में बहुत थोड़े शब्दों का सङ्कलन है, तथा सरस्वती भाषा के अनेक शब्द जो अविकल रूप से खड़ी बोली में प्रचलित हैं, इस शब्दकोश के द्वारा उपलब्ध नहीं हो पाते हैं, इसी कारण हमें उपरोक्त संस्कृत—अङ्गरेजी कोशों का आश्रय लेना पड़ा है।

संस्कृत के प्राय: सभी विशेषण शब्दों में विसर्ग, आ, ई या म् के संयोग से विभिन्न लिङ्ग सूचक सञ्ज्ञा शब्द बन जाते हैं। उदाहरणार्थ 'काल' शब्द विशेषण है, इसमें विसर्ग के संयोग से 'काल:' शब्द सञ्ज्ञा पुल्लिङ्ग बनता है, आ और ई के सयोग से 'काला' और 'काली' शब्द सञ्ज्ञा स्त्री लिङ्ग बनते हैं और म् के संयोग से 'कालम्' सञ्ज्ञा नपुंसक लिङ्ग शब्द बनता है। संस्कृत वैयाकरण इस प्रकार के शब्दों की व्युत्पत्ति प्रकृति और प्रत्यय के सयोग से मानते हैं और इस प्रकार के शब्दों को एक ही शब्द के रूप स्वीकार करते हैं। परन्तु सरस्वती भाषा के सिद्धान्तानुसार 'काल', 'काल:', काला, 'काली' और 'कालम्' शब्द विभिन्न हैं और इन शब्दों के अक्षर-विन्यास भी पृथक-पृथक हैं। इन सभी शब्दो की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्याकरण कोटियाँ और व्याकरण के अनुसार लिङ्ग भी पृथक-पृथक हैं और इसी कारण इन शब्दों के अर्थ भी पृथक-पृथक हैं। (यहाँ यह ध्यान रहे कि सरस्वती भाषा में सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार निर्धारित होते हैं और नपुंसक लिङ्ग नहीं होता है)।

आप्टे ने अपने शब्द कोशों में इस प्रकार की शब्द-प्रक्रिया स्पष्ट तथा विशिष्ट रूप से प्रदर्शित की है और उन शब्दों के अर्थ भी पृथक पृथक दिये गये हैं। आप्टे ने जिस प्रकार शब्द प्रक्रिया और अर्थ विभेद प्रदर्शित किया है, मोनियर विलियम्स नें अपने शब्द कोश में इस रीति का अनुपालन नहीं किया है। मोनियर विलियम्स ने शब्द के आगे वि०, पु०, स्त्री० न० लिख दिया है परन्तु शब्द की व्याकरण कोटि और लिङ्ग के अनुसार जो रूप बनते हैं उनको नहीं दिखाया है और इनके जो विभिन्न अर्थ होते है उनको एक ही स्थान में गुम्फित कर दिया है। इस प्रकार इस कोश से व्याकरण कोटि तथा लिङ्ग के अनुसार शब्द के न तो अक्षर-विन्यास का ज्ञान हो पाता हैं और न अर्थ का। इस कारण यह कोश अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होता है। अत: विद्यार्थियों को शब्द ज्ञान के हेतु आप्टे के शब्द कोशो को व्यवहार में लाना चाहिये। आप्टे का संस्कृत-अङ्गरेजी कोश जिसका संशोधित संस्करण गोडे और कारवे ने प्रकाशित किया है कि छपाई अच्छी है और शब्दों को ढूण्ढने में अधिक सहायता मिलती है यह कोश तीन खण्डों में प्रकाशित हुआ है और हमने इसी कोश में दिये हुये शब्दों और उनके उदाहरणों को प्रस्तुत किये हैं।

गंवार

प्रश्न—'गवार' शब्द का अर्थ 'गांव का रहने वाला' था, पर अब अर्थ परिवर्तन होकर इसका अर्थ 'असभ्य या असंस्कृत' हो गया है।

उत्तर—न्याय दर्शन में ऐसे उदाहरण का नाम 'छल' है, परन्तु पाश्चात्य पद्धति के भाषा विज्ञान के लेखक ऐसे उदाहरण मूढ बुद्धि के कारण प्रस्तुत करते हैं, वे सं० और वि० शब्दों के भेद का ज्ञान करने की आवश्यकता ही नहीं समझते है। 'गंवार' शब्द 'गांव का रहने वाला' के अर्थ में सं० पु० है और इसका साधु रूप 'ग्रामीण:' है। गंवार शब्द, 'अश्लील, अशिष्ट, असभ्य' आदि अर्थों में वि० है जिसका साधु रूप 'ग्रामीण' है। दोनों शब्द विभिन्न व्याकरण कोटियों के हैं और पृथक पृथक हैं। देखो आप्टे पृष्ठ ६७४।

वर—वर:

प्रश्न—'वर' शब्द का अर्थ पहले 'श्रेष्ठ, उत्तम, छांटा हुआ' आदि थे, परन्तु अब इस शब्द का अर्थ 'दूलाह या देवता का दान' हो गया।

उत्तर—श्रेष्ठ, उत्तम, छांटा हुआ, आदि अर्थों में शब्द 'वर' वि० है, और इसका साधु रूप 'वर' है। इसी व्याकरण कोटि और अर्थ में यह शब्द आज भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रचलित है, यथा—प्रियवर, मान्यवर, परमेश्वर। यदि 'वर' का अर्थ परिवर्तन होकर दूलाह हो गया होता तो इन शब्दों के अर्थ अब इस प्रकार होते—प्रिय-दूलाह, मान्य-दूलाह, परमेश-दूलाह।

'वर' शब्द 'दूलाह, वरदान' आदि अर्थों में सं० पु० है और इसका साधु रूप 'वरः' है। दोनों शब्द विभिन्न व्याकरण कोटियों के हैं और पृथक पृथक हैं। देखो आप्टे पृ० १३९०।

दुर्लभ – दूलाह

प्रश्न—'दुलाह' शब्द की व्युत्पत्ति 'दुर्लभ' से है। 'दुर्लभ' का अर्थ है 'जिसका प्राप्त करना कठिन हो,' 'जिसका मिलना दुष्कर हो'। परन्तु अब 'दुलाह' शब्द में दुर्लभ का आशय लुप्त हो गया है।

उत्तर—'दुर्लभ' शब्द त्रि० है जिसका अर्थ है—'दुष्प्राप', 'दुस्साध्य'। यथा दुर्लभं भारते जन्म मानुष्यं तत्र दुर्लभम्। 'दुलाह शब्द सं० पु० है जिसका कोई सम्बन्ध 'दुर्लभ' से नहीं है। इस शब्द का साधु रूप है—'द्वि + लाभः', द्वि का उच्चारण दु और 'भ' महाप्राण का उच्चारण 'ह' होने से यह शब्द दु + लाह = दुलाह बना है। 'लाभः' का अर्थ है प्राप्ति, उपलब्धि, अधिगम, उपभोग, विजय, ज्ञान आदि। संस्कृत में 'लभ्' शब्द अनेक अर्थों में प्रयोग होता है। गर्भ-लाभ = गर्भवती होना। देखो आ० पृ० १३५८। विवाह (अधिगम) द्वारा दूसरे को प्राप्त करने का अर्थ ही दुलाह है। इसी शब्द का स्त्री० रूप दुलाह + णी = दुलाहणी—या दुलहनिया होता है। तुलना कीजिये—ब्रह्माणी, क्षत्रियाणी आदि।

असुर — सुर

प्रश्न—ऋग्वेद की ऋचाओं म 'असुर' शब्द देवता वाची है, पर अब यह शब्द राक्षसवाची हो गया है।

उत्तर—वैदिक संस्कृत में साधु उच्चारण मूल शब्द में अर्थ परिवर्तन की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। शब्द के एक होने पर भी स्वर-भेद से किसी शब्द के अर्थ का अनर्थ हो जाया करता है। इस विषय में एक अत्यन्त प्राचीन आख्यायिका प्रचलित है। वृत्र ने अपने शत्रु इन्द्र के विनाश के लिये एक यज्ञ का आयोजन किया। होम का प्रधान मन्त्र था—"इन्द्र शत्रुर्वर्धस्व"; जिसका अर्थ है कि इन्द्र का शत्रु विजय प्राप्त करे, किन्तु यह अर्थ तभी सिद्ध हो सकता था जब 'इन्द्रशत्रुः' अन्तोदात हो। ऋत्विज़ों की असावधानी से अन्तोदात के स्थान पर आदि उदात का उच्चारण किया गया, अर्थात बलाघात अन्तिम स्वर पर न करके प्रथम स्वर पर किया गया। इस स्वर परिवर्तन से यह शब्द तत्पुरुष समास से बहुव्रीहि समास बन गया और इसका अर्थ हो गया 'इन्द्रः शत्रुः यस्य' अर्थात इन्द्र जिसका घातक है, और वृत्र इन्द्र के द्वारा मारा गया। इस प्रकार जो यज्ञ यजमान की फलसिद्धि के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिये किया गया था, स्वर के अपराध से वही यजमान का ही विनाशक सिद्ध हुआ। इसी प्रकार असुर' शब्द आदि उदात से (अः·सुरः) देवता वाची है तथा अन्तोदात से (अ–सुरः) राक्षस वाची है। इसका स्पष्टीकरण सरस्वती भाषा में इस प्रकार किया जा सकता है।

सरस्वती भाषा में सभी अक्षर, स्वर और व्यञ्जन, सार्थक हैं। देवता वाची शब्द 'असुर' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—अः + सुरः। अः का अर्थ है, शिव, ब्रह्मा, वायु, वैश्वानर। अः कृष्णः शङ्करो ब्रह्मा शकः सोमोऽनिलोऽनलः। सूर्यः प्राणो यमः कालो वसन्तः प्रणवः सुखी।। अः का अथ है—कृष्ण, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, सोम, वायु, अग्नि, सूर्य, यम, काल, वसन्त, प्रणव। इस प्रकार अः + सुरः = शिव सुर (शिव देवता), ब्रह्मा सुर (ब्रह्म देवता), वायु सुर (वायु देवता) वैश्वानर सुर (वैश्वानर देवता)। इसी अर्थ में यह शब्द ऋग्वेद की ऋचाओं में प्रयोग हुआ है। देखो आप्टे पृ० १।

राक्षसवाची शब्द 'असुर' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—अ + सुरः। 'न' एक निपात है। हलादि शब्द के पूर्व 'न' 'अ' होता है और अजादि शब्द के पूर्व 'अन्। 'न' (नञ्) के ६ अर्थ हैं—(१) सादृश्य (समानता या तुल्यता), (२) अभाव, (३) अन्यत्व, (४) अल्पता, (५) अप्राशस्त्य (अनुचित, बुरा आदि), और (६) विरोध (विरुद्ध अर्थ), जैसे, अनीतिः (अनैतिकता), असुरः (देवों का विरोधी, अर्थात राक्षस)। देखो काले संस्कृत ग्रामर पृ० २३८।

असुर देवता वाची (अः— सुरः) और असुर राक्षसवाची (अ—सूरः) पृथक पृथक शब्द हैं। इन शब्दों के अर्थ मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

साहसिक

प्रश्न—साहसिक हत्या, लूट और व्यभिचार आदि बुरे कार्य करने वाले के लिये प्रयोग होता था, किन्तु आजकल इस शब्द का प्रयोग श्रेष्ठ कार्यों में होता है।

टिप्पणी—'भाषा-विज्ञान' (भोलानाथ) और 'सरल भाषा-विज्ञान' में साहसिक का अर्थ अब श्रेष्ठ कार्य करने वाले के अर्थ में लिखा है, 'परन्तु अर्थ तत्व की भूमिका' मे इस शब्द का अर्थ आज भी बुरे अर्थ में ही प्रचलित है (पृ० २३०)। इस प्रकार भाषा-विज्ञान के लेखक स्वयं एक दूसरे का खण्डन करते हैं।

उत्तर—'साहस' शब्द संस्कृत साहित्य मे दोनों अर्थों में प्रयोग हुआ है। (१) प्रचण्डता, बल, लूटखसोट आदि (पैशुन्यं साहसम् द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्। वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः।। मनु० ७.४८ कोई भी घोर अपराध (जैसे डाका, कलात्कार, लूट, क्रूरता, अत्याचार आदि—न सहास्मि साहसमसाहसिकी, शि० ९.५९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२) शौर्य, धृष्टता, पराक्रम—साहसे श्रीः प्रतिवसति—मृच्छ० ४; उग्र शौर्य, निर्भीकता, धैर्य, साहसिक कार्य—तदपि साहसाभासम् मा० ; किमपरमतो निर्व्यूढं यत् करार्पणसाहसम् ९/१० पञ्चतन्त्र १.१९१ कि० १७.४२ । इस शब्द के यही सब अर्थ अब भी प्रचलित हैं । देखो आप्टे पृष्ठ १६७८ ।

वाटी—बाड़ी—बाड़ो

प्रश्न—संस्कृत का 'वाटिका' या 'वाटी' शब्द ही हिन्दी शब्द 'बाड़ी' है जिसका अर्थ उपवन, उद्यान है, परन्तु बङ्गला भाषा में 'बाड़ी' शब्द का अर्थ 'घर' या 'कमरा' हो गया और गुजराती भाषा में यही शब्द 'बाड़ो' बना, जिसका अर्थ 'आङ्गन' होता है ।

टिप्पणी—बिना पेन्दे के लोटे इसी प्रकार लुड़का करते हैं ।

उत्तर—संस्कृत शब्द 'वाटी' मे 'ट' का उच्चारण 'ड' होने से इस शब्द का रूप 'बाड़ी' हो गया है, परन्तु व्याकरण कोटि और अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । यही शब्द हिन्दी में प्रचलित है ।

बङ्गला शब्द 'बाड़ी' अर्थ 'घर' या 'कमरा' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है । संस्कृत शब्द 'वारः' का एक अर्थ 'फाटक' या 'दरवाजा' भी है, देखो आप्टे पृ० १४१५ । फाटक घर के द्वार को और दरवाजा कमरे के द्वार को कहते हैं । 'वारः' शब्द से 'वारिन्'—'वारी' शब्द बना जिसका अर्थ हुआ—फाटक वाला अर्थात घर, या दरवाजे वाला अर्थात कमरा । तुलना कीजिये पाप—पापिन्—पापी, दोष—दोषिन्—दोषी आदि शब्दों से । 'बारी' शब्द में 'र' का उच्चारण 'ड़' होने से 'बाड़ी' शब्द बनता है जिसका अर्थ घर या कमरा पु० शब्द सिद्ध होता है ।

गुजराती शब्द 'बाड़ो' पु० है और यह संस्कृत शब्द 'वाटः' या 'वाटम्' का ही रूप है जिसका अर्थ आङ्गन है और जो व्याकरण की दृष्टि से पु० है । देखो आप्टे पृ० १४१० ।

उपरोक्त तीनों शब्द पृथक पृथक हैं और उनमें से किसी भी शब्द का अर्थ परिवर्तन नहीं हुआ है ।

दरिया—समुद्र

प्रश्न—फारसी शब्द 'दरिया' का अर्थ 'नद' है, परन्तु गुजराती भाषा में यह शब्द समुद्र के अर्थ में प्रयोग होता है ।

टिप्पणी—अब यह बिना पेन्दे के लोटे भारतीय भाषाओं को छोड़कर फारसी शब्दों का उदाहरण देने लगे । प्रतीत होता है इन्होंने कभी फारसी कोश न देख कर तारापुर वाला से इस शब्द को उदाहरण रूप में सीखा है ।

उत्तर—फारसी में 'दरिया' शब्द के दो अर्थ हैं, (१) नद, (२) समुद्र,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखो भट्ट उर्दू-हिन्दी-कोष पृ० २२० । फारसी में दरिया शब्द अनेक शब्दों के साथ समुद्र के अर्थ में प्रयोग होता है। यथा (१) दरियाई घोड़ा (समुद्र में चलने वाला जहाज), (२) नारजीले दरियाई, या दरियाई नारयल (समुद्र में पैदा होने वाला नारियल, जिसको औषधी रूप में प्रयोग करते हैं), (३) दरियाय अहमर (लाल सागर), (४) दरियाये-शोर (खारा-दरिया अर्थात समुद्र, काला-पानी— वह समुद्र जिसमें अण्डमान टापू हैं जहां अङ्गरेजी शासन काल में आजन्म कारावासी भेजे जाते थे)।

ग्लास — गिलास

प्रश्न—अङ्गरेजी शब्द 'ग्लास' का अर्थ है शीशा, परन्तु हिन्दी में 'गिलास' शब्द का अर्थ पानी पेने का पात्र विशेष है चाहे वह शीशे का बना हो चाहे वह धातु का।

उत्तर—हिन्दी शब्द 'गिलास' का अङ्गरेजी शब्द 'ग्लास' से कोई सम्बन्ध नहीं है। 'गिलास' शब्द पात्र विशेष के अर्थ में भारत में अङ्गरेजों की भाषा के जन्म से भी पूर्व से प्रयोग हो रहा है। यह शब्द संस्कृत शब्द 'गल्लक:', या 'गल्वर्क:' का ही परिवर्तित रूप है जिसका अर्थ 'गिलास' है चाहे वह किसी धातु का बना हो। देखो आप्टे पृ ६५४।

दुहितृ दुहने वाली

प्रश्न—संस्कृत में 'दुहितृ' शब्द का अर्थ दुहने वाली पूर्णतया मिट गया है और अब कन्या हो गया है।

उत्तर—यह प्रश्न अत्यन्त असत्य और दुष्टाशय है। इस प्रकार का कथन करने वालो को न संस्कृत का कोई ज्ञान है और न उन्होंने कभी संस्कृत कोश देखा है। क्या यह बता सकते हैं कि 'दुहितृ' शब्द दुहने वाली के अर्थ में किस साहित्य में प्रयोग हुआ है। दूध दुहने के अर्थ में शब्द का साधु रूप 'दोहनम्' है। दुहने वाली के अर्थ मे संस्कृत शब्द 'दोहिका' बन सकता है, जो 'दुहितृ' शब्द से भिन्न होगा। दुहितृ शब्द का अर्थ सर्वदा पुत्री था और है। आप्टे पृष्ठ ८२७।

नङ्गा और लुच्चा

प्रश्न—नग्न और लुञ्चित शब्द पहले जैन साधुओं के लिये आदर के साथ प्रयुक्त होते थे, पर अब उनका तद्भव रूप नंगा—लुच्चा, अर्थात बदमाश के लिये प्रयोग में आता है।

टिप्पणी : बुद्धि विपरीत होने के कारण ही जैन साधुओं का नंगा—लुच्चा शब्द से सम्बन्ध जोड़ा जाता है।

उत्तर—जैन साधु नङ्गे रहते हैं और उनके सिर के बाल मुण्डते नहीं हैं अपितु नोच नोच कर उखाड़ लिये जाते हैं। जिस शब्द का अर्थ जैन साधु या नङ्गा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिक्षु है, उसका साधु रूप नग्नः है, और जिस शब्द का अर्थ 'नंगा' अर्थात प्रमी, जार आदि हैं, उस शब्द का साधु रूप 'नङ्गः' है । यह दोनों शब्द भिन्न भिन्न हैं, देखो आप्टे पृ० ८७४ । आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोश पृ ५०६ । इसी प्रकार जिस साधु के बाल नोच नोच कर उखाड़ दिये जाते हैं उस शब्द का साधु रूप लुञ्चित या लुञ्चित केशः है । देखो आप्टे पृ० १३६८ । जिस शब्द का अर्थ 'लुच्चा' अर्थात दुष्ट व्यक्ति है, उसका साधु रूप 'लोचकः' है । देखो आप्टे पृ० १३७४ । यह सभी शब्द पृथक पृथक हैं और इन शब्दों में किसी भी शब्द के अर्थ में परिवर्तन नहीं होता है ।

खाद्य — खाद

प्रश्न—'खाद्य' से विकसित 'खाद' शब्द मनुष्य के भोजन के लिये व्यहृत नहीं होता, उसका अर्थ हो गया है भूमि की उर्वर शक्ति बढ़ानेवाला द्रव्य ।

टिप्पणी—शब्द 'खाद्य' सं० पु० है और शब्द 'खाद' सं० स्त्री है । अतः दोनों शब्द पृथक पृथक है, परन्तु (भाषा) विज्ञानी यह चमत्कार दिखाते हैं कि पु० को स्त्री० बना सकते हैं ।

उत्तर—संस्कृत में खाद को पुरीषादि कहते हैं । इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—पुरीषम् + आदि । पुरीषम् का अर्थ है—मल, विष्ठा, गूथ, गोबर, कूड़ा-करकट आदि । देखो आप्टे पृ० १०३३, आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोश पृ० ६२४ । पुरीषम् शब्द मनुस्मृति में ३-२५०, ४-५६, ५-१२३ और ६-७५ में प्रयोग हुआ है । शब्द पुरीषम् = पुरी + षम् । उपरोक्त पदार्थ पुरी में एकत्र होने के कारण यह शब्द पुरी-षम् है । खरी बोली क्षेत्र में यह शब्द केवल 'षम्' प्रचलित है । 'ष' का उच्चारण 'ख' होता है और 'म्' का उच्चारण न होने से इस शब्द का उच्चारण 'ख' होता है । इस प्रकार शब्द 'खाद' की व्युत्पति इस प्रकार है—ख + आदि = खादि—खाद सं० स्त्री० ।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि 'खाद्यम्' (खाजा) सं० पु० और शब्द 'खाद' सं० स्त्री० पृथक पृथक हैं और इनके अर्थों में कोई परिवर्तन नहीं होता है ।

महाजन

प्रश्न—'महाजन' शब्द से पहले श्रद्धाभाव उत्पन्न होता था, पर अब सूद खोर (म्लेच्छ भाषा) महाजन के अर्थ में यह शब्द घृणावाची हो गया ।

टिप्पणी—जैसे रोगी स्वस्थ होने पर वैद्य का, विद्यार्थी शिक्षा समाप्ति पर अध्यापक का उपकार नही मानता है, उसी प्रकार भिकारी भिक्षा पाने के पश्चात दानी का उपकार नहीं मानता है । प्रतीत होता है जब तक इनको महाजन के घर से भिक्षा मिलती रही तब तक महाजन प्रतिष्ठित पुरुष रहा, परन्तु जब इनको विद्यालय या विश्वविद्यालय की भिक्षा से जीविका वृत्ति होने लगी और महाजन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने भिक्षा देनी बन्द करदी तो वह महाजन व्याज खाने वाला घृणावाची हो गया। बात ठीक हैं या नही ?

उत्तर—संस्कृत कोश में 'महाजन:' शब्द के अनेक अर्थ हैं—(१) प्रतिष्ठित पुरुष, प्रमुख व्यक्ति, श्रेष्ठ पुरुष—महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नति कारकः। पद्मपत्र-स्थितं तोयं धत्ते मुक्ताफलश्रियम्॥ पञ्चतन्त्र ३-६०। किसी व्यवसाय का मुखिया, व्यापारी, धनवान आदि। आज भी यह शब्द इन्हीं सब अर्थों में प्रचलित है, इस शब्द के अर्थ में कोई परिवर्तन कभी नहीं हुआ है। देखो आप्टे पृ० १२५०।

भद्र—भद्दा

प्रश्न—'भद्र' शब्द से विकसित 'भद्दा' शब्द में अपने पूर्वज का कोई चिह्न नहीं है। कहां भद्र और कहां भद्दा।

उत्तर—यदि आप की मूढ बुद्धि में भद्र (भले) और अभद्र (बुरे) का ज्ञान नहीं है तो इसमें शब्द का क्या दोष है। भद्र शब्द में 'र' का उच्चारण 'ल' होने से इस शब्द का उच्चारण 'भद्ल' हुआ। 'द्' के पश्चात 'ल' होने से 'द्' का उच्चारण 'ल्' होगा। अतः इस शब्द का उच्चारण हुआ भल्ल—भल्ला। शब्द भद्दा का साधु शब्द 'मन्द' है। 'म' का उच्चारण 'भ' होता है और न्' के पश्चात 'द' होने से 'न्' का लोप और 'द' द्वित्व हुआ। अतः मन्द—भद्द—भद्दा। इस प्रकार इस शब्द के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है। देखो आप्टे पृ० ११८४, १२३८, और इसी पुस्तिका के सिद्धान्त अङ्क का ध्वनि विचार अध्याय।

उत्ताप—उतावला

प्रश्न—हिन्दी में 'उतावला' शब्द का प्रयोग मनोभाव से सम्बन्धित शीघ्रता, उत्सुकता, आकुलता आदि भाव के लिये होता है परन्तु मूल शब्द संस्कृत शब्द 'उत्ताप' (गर्म) अर्थ से सम्बन्धित है।

उत्तर—प्रमादी सब कुछ बक सकते हैं और बका करते हैं। शब्द 'उत्ताप' सं० पु० है और शब्द 'उत्तावल' वि० है जो साधु शब्द है और इसका अर्थ है—उत्सुकता, शीघ्रता। देखो आप्टे पृ० ४१० हिन्दी में यही शब्द पुरुष के लिये उत्तावला' और स्त्री के लिये उत्तावली प्रयोग में आता है। दोनों शब्दों के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

महाराज

प्रश्न—महाराज का अर्थ है महाराजा। महाराजा शब्द प्रमुख का द्योतक है, पर अब रसोई बनाने वाले को महाराज कहते हैं।

उत्तर—संस्कृत कोश के अनुसार महाराजः शब्द का अर्थ बड़ा राजा या सम्राट भी है और यह शब्द व्यक्तियों को ससम्मान सम्बोधन करने की रीति भी है। देखो आप्टे पृ० १२५२। रसोई बनाने वाले को महाराज कहकर सम्बोधित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करना हमारी एक सभ्यता है। अब से कुछ समय पूर्व तक जब परोहित किसी के यहां जीमने जाता था तो उस दिन रसोई स्वयं बनाता था। परोहित को ससम्मान सम्बोधित करने के कारण ही उसे महाराज कहते थे। बङ्गाल में इसी प्रकार महाराज को ठक्कुर कहते हैं—देखो आप्टे पृ० ७५१।

लिङ्ग

प्रश्न—लिङ्ग शब्द का पुराना अर्थ 'लक्षण' था, धीरे-धीरे इन्द्रिय विशेष के अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण इसमें अपकर्ष आ रहा है और सम्भव है कि कुछ दिन में यह सभ्य समाज के निकाल दिया जावे।

उत्तर—संस्कृत कोशों में 'लिङ्गम्' शब्द के १९ अर्थ दिये हुये हैं देखो आप्टे पृ० १३६६। इस शब्द के यह सभी अर्थ आज भी प्रचलित हैं। भाषा विज्ञान के अध्यापक जब कक्षा में सञ्ज्ञावाची शब्दों का लिङ्ग पढ़ाते हैं तो हमें ज्ञान नहीं कि उस समय यह शब्द उनके मुख से किस अर्थ में निकलता है और आगे चलकर शब्दों का लिङ्ग बताते समय वह किस शब्द का प्रयोग करेंगे। भाषा विज्ञान के लेखक किस निर्लज्जता से इस प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत करते है।

पाषण्ड

प्रश्न—'पाषण्ड' अशोक के समय में (जैन व बौद्ध) साधुओं का एक सम्प्रदाय था। इन पाषण्ड साधुओं का बड़ा सत्कार होता था। पश्चात में वे साधु वा उनके शिष्य भ्रष्टाचारी हो गये। अब 'पाषण्ड' शब्द अपने मूल अर्थ से विपरीत अर्थ दुष्टता, आडम्बर आदि में प्रयोग होता है।

उत्तर—जैन और बौद्ध साधुओं का अर्थ देने वाला शब्द पाखण्ड: सं० पु० है अस्वधर्मो ममैव पाखण्डावतार: देखो आप्टे पृ० १००२। 'पाषण्ड' शब्द दुष्टता के अर्थ में वि० है जिसका साधु रूप 'पाषण्ड' वि० है, आप्टे पृ० १०१७। नास्तिक, धर्म भ्रष्ट, धर्म के नाम पर झूठा आडम्बर रचने वाला धूर्त व्यक्ति, विधर्मी आदि अर्थ देना वाला शब्द सं० पु० है जिसका साधु शब्द—'पाषण्डक:, पाषण्डिन्, पाषण्डिक:' स० पु० है, देखो आप्टे पृ० १०१७। यह शब्द इन्हीं अर्थ में मनुस्मृति के ५. ९० और ९.२२५ में प्रयोग हुआ है। 'ष' का उच्चारण 'ख' होने से यह दोनों शब्द उच्चारण की दृष्टि से एक ही प्रतीत होते हैं, वास्तव में यह शब्द पृथक पृथक है।

डण्डा

प्रश्न—पुरुष की जननेन्द्रिय को कई जगहों में डण्डी कहते हैं।

उत्तर—काशी कोशल क्षेत्र में अनेक पु० शब्दों को स्त्री० और स्त्री० शब्दों को पु० प्रयोग करते हैं। खरी बोली में यह शब्द 'डण्डी' स्त्री० नहीं है अपितु 'डण्डा' पु० है जिसका साधु शब्द 'दण्ड:' पु० है। 'द' का उच्चारण 'ड' और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विसर्ग का उच्चारण 'आ' होने के कारण इस शब्द का उच्चारण 'डण्डा' होता है। दण्ड: शब्द के ३५ अर्थ संस्कृत कोश में दिये हुये हैं उनमें से बाईसवां अर्थ है—शिश्न, या पुरुष की जननेन्द्रिय। देखो आप्टे पृ० ७९८। मो० वि० पृ ४६६।

मंगला मुखी—वेश्या

प्रश्न—वेश्या को मंगल बोधक शब्द मंगलामुखी कहते हैं।

उत्तर—यह आप की समझ का दोष है शब्द का नहीं। इस शब्द का साधु रूप 'मङ्गुल मुखी' है। मङ्गुलम् शब्द का अर्थ है—'कल्मष, पाप' आदि।

जिन—दैत्य

प्रश्न—हिन्दी में 'जिन' बौद्ध या जैन साधु को कहते हैं, परन्तु फारसी में यह शब्द दैत्य का अर्थ देता है।

उत्तर—बौद्ध या जैन साधु के अर्थ में 'जिन' का साधु शब्द 'जिन:' है देखो आप्टे पृ० ७३८। दैत्य के अर्थ में इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—जि: + न। 'जि:' का अर्थ है पिशाच देखो आप्टे पृ० ७३७ और 'न' = उसी प्रकार का देखो आप्टे पृ० ८७२। 'जिन:' और 'जिन' दोनों शब्द पृथक पृथक हैं और इनके अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं है।

धी—झी

प्रश्न—संस्कृत 'धी' का अर्थ 'कन्या' है, इसी का तद्भव रूप 'झी' का अर्थ वङ्गला में 'चाकरानी' है

टिप्पणी—यदि 'धी' का अर्थ 'कन्या' है तो आप 'धीवर:' शब्द को 'धी' का 'वर:' 'पति:' तो नहीं समझ बैठे।

उत्तर—शब्द 'धी' संस्कृत शब्द 'धीदा' या 'धीलटी' का संक्षिप्त रूप है जिसका अर्थ 'कन्या' या 'पुत्री' है। संस्कृत शब्द 'धीवर:' का अर्थ 'मछुआ' और 'धीवरी' का अर्थ मछुए की स्त्री है। यह मनुष्य चाकरी करते हैं और घरों में बासन माञ्जते हैं। 'धीवरी' का विकृत रूप 'झीवरी' या 'झीमरी' है और इस शब्द का संक्षिप्त रूप 'झी' है। 'धी' और 'झी' दोनों शब्द पृथक पृथक हैं जिनके अर्थों में कोई परिवर्तन नहीं है।

विमान—वायुयान

प्रश्न—विमान शब्द का अर्थ पहले अनादर था, पर अब यह शब्द वायुयान के अर्थ में प्रचलित है।

उत्तर—शब्द 'विमान' जिसका अर्थ अनादर या अपमान है, उसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—वि + मान:। 'वि' एक उपसर्ग है जो सञ्ज्ञा या विशेषण शब्दों में जुड़कर अनेक अर्थ देता है। उनमें से एक अर्थ निषेध या अभाव भी है (ऐसी अवस्था में इसका प्रयोग उसी प्रकार होता है जैसे 'अ' या 'निर्' का) देखो आप्टे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृ० १४२२ । अत: वि + मान: = मान: का उल्टा, अर्थात अनादर या अपमान ।

शब्द 'विमान' जिसका अर्थ वायुयान है, उसमें 'वि' उपसर्ग नहीं है । इस शब्द का साधु रूप है—'विमानम्' देखो आप्टे पृ० १४५७ ।

मिठाई—मिट्ठा

प्रश्न—मिठाई शब्द अवधी में गुड़ और हलवाई द्वारा बनाई हुई मिठाई दोनों अर्थों में प्रयोग होता है, पर खड़ी बोली में केवल हलवाई की मिठाई के लिए प्रयोग होता है ।

उत्तर—हम बता चुके हैं कि काशी-कौशल क्षेत्र के व्यक्तियों को शब्दों के साधु लिङ्ग का ज्ञान कम होता है । 'मिठाई' शब्द 'गुड़' के अर्थ में स्त्री० नहीं अपितु पु० है । खरी बोली क्षेत्र में 'गुड़' के अर्थ में यह शब्द 'मिट्ठा' है । दोनों शब्द पृथक पृथक हैं ।

नेत्र—नेतृ

प्रश्न—नेत्र शब्द का अर्थ था चमकने वाला, प्रकाश करने वाला, आगे चलने वाला, पश्चात को 'आंख' के अर्थ में बह सीमित हो गया ।

उत्तर—अग्रेसर, प्रबन्धक, सञ्चालक, जो नेतृत्व पथप्रदर्शन करे आदि अर्थों में यह शब्द 'नेत्र' नहीं है अपितु 'नेतृ' है । और इसी का विकृत शब्द नेता है जो प्राणीवाचक सञ्ज्ञा शब्द है । देखो आप्टे पृ० ९३८ । 'आंख' का अर्थ रखने वाले शब्द का साधु रूप 'नेत्रम्' है जो अप्राणीवाचक सञ्ज्ञा है । यह दोनों शब्द पृथक पृथक् हैं और अपने अपने अर्थों मे साधु हैं ।

उष्ट्र—भैंसा

प्रश्न—वेद की ऋचाओं में उष्ट्र का अर्थ भैंसा है, पर आजकल इस शब्द का अर्थ 'ऊण्ट' है ।

उत्तर—संस्कृत में उष्ट्र: शब्द का अर्थ 'ऊण्ट' और एक प्रकार का भैंसा दोनों हैं । संस्कृत साहित्य में यह शब्द ऊण्ट के अर्थ में निरन्तर प्रयोग हुआ है—अथोष्ट्रवामी शतवाहितार्थम्, रघुवंश ५.३२, मनुस्मृति ३.१६२, ४.१२० । आजकल भैंसे की उत्पत्ति भी एक प्रकार के उष्ट्र: से ही हुई है । खरी बोली में भैंसे को 'झोट्टा' कहते हैं । इस शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—ज: + उष्ट्र: । 'ज:' का अर्थ है उत्पत्ति, जन्म आदि । इस शब्द में अन्तिम 'र' का लोप होता है और 'ष' हलन्त होने से 'ष' का लोप और 'ट' द्वैध हो जाता है । अत: यह शब्द बना—ज: + उट्ट: = जोट्ट: = झोट्टा या भैंसा । अत: इस शब्द के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है ।

कलम

प्रश्न—'कलम' शब्द का अर्थ 'लेखनी' है, परन्तु माली कलम लगाने के लिये और नाई कलम काटने के लिये, 'कलम' शब्द को दूसरे अर्थों में प्रयोग करते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर—'कलम' शब्द लेखनी के अर्थ में पदार्थ वाचक सं० पु० है। माली का कलम लगाने के अर्थ में और नाई का कलम काटने के अर्थ में यह शब्द कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप होता हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह दोनों शब्द पृथक पृथक हैं। लेखनी के अर्थ में 'कलम' शब्द का साधु शब्द 'कलम:' सं० पु० शब्द हैं। देखो आप्टे पृ० ५४५, आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोश पृ० २५६। माली का कलम लगाने के अर्थ में, और नाई का कलम काटने के अर्थ में इस शब्द का साधु शब्द 'कल्पनम्' का स्त्रीलिङ्ग रूप 'क्लृप' है। देखो आप्टे पृ० ५४८, ६०२। 'कल्पनम्' के अनेक अर्थ शब्दकोश में दिये हुये हैं, उनमें से यह भी हैं-क्रमबद्ध करना, छटाइ करना, एक का दूसरे पदार्थ पर जमाना, सजाना, काटना आदि।

इसी अर्थ में यह कहा जाता है—"बाबूजी जब तक मेरे प्रार्थना पत्र पर आपकी कलम नहीं लगेगी, उस समय तक मेरा काम नहीं बनेगा," अर्थात उस समय तक अधिकारी प्रार्थना पत्र पर उचित निर्देश नहीं करेगा। इस वाक्य में भी शब्द 'कलम' स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग हुआ है और 'कलम लगाने' का अर्थ 'लेखनी लगाना' नहीं है अपितु 'क्रमबद्ध करना' या 'कार्यान्वित करना' होता है।

रदन

प्रश्न—रदन का अर्थ फाड़ने वाला था किन्तु पश्चात में केवल दान्त का अर्थ रह गया।

उत्तर—वर्धकिन् (बढ़ई) के एक यन्त्र को रददा या रन्दा कहते हैं जिससे लकड़ी छीलने आदि का काम लिया जाता है। इसका साधु शब्द 'रद:' है अर्थात 'रदनम' करने वाला। देखो आप्टे पृ० १३२८। दान्त का अर्थ देने वाला शब्द 'रदन' है, देखो आप्टे पृ० १३२८। संस्कृत में दोनों शब्द—रद: और रदन: दोनों अर्थों में भी प्रयोग होते हैं। इन शब्दों के अर्थों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

बैल

प्रश्न—जब कोई कहता है कि—'यज्ञदत्त बैल है'। इस वाक्य में बैल का मुख्यार्थ गृहीत न होकर 'मूर्ख' हो गया है।

उत्तर—यज्ञदत्त बैल (पशु) नहीं है, अत: इस वाक्य में 'बैल' शब्द 'पशु' का अर्थ नहीं रखता है। पशु के अर्थ में 'बैल' शब्द का साधु शब्द 'बलद' है। मूर्ख या मूढ के अर्थ में 'बैल' शब्द का साधु शब्द 'बाल, वि०' है, देखो आप्टे पृ० ११६२। अनर्थकुशला ह्येते बाला: पण्डितमानिन: बाल्मीकीय रामायण २.१००.३८।

राजवैद्य—वैद्यराज

प्रश्न—राजवैद्य का अर्थ होता है राजा का वैद्य किन्तु वैद्यराज का अर्थ है वैद्यों में श्रेष्ठ।

उत्तर—संस्कृत में शब्द 'राजन्' का अर्थ है राजा, नरेश, शासक आदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समास में नकार का लोप हो जाता है। यथा, राजन्—आज्ञा = राजाज्ञा अर्थात राजा का आदेश। राजन्-पुत्र: = राजपुत्र: अर्थात राजा का पुत्र। राजन्-गृहम् = राजगृह अर्थात राजा का निवास। राजन् + कुल = राजकुल अर्थात राजा का कुटुम्ब आदि। देखो आप्टे पृ० १३३४।

संस्कृत का दूसरा शब्द है 'राज्' जिसका अर्थ है—अपनी श्रेणी में अच्छा या सबसे अच्छा। बहुधा उत्तरपद में प्रयुक्त होकर यह शब्द श्रेष्ठता आदि का अर्थ प्रकट करता है। सोऽभ्नुजो हरिण ध्मात: सर्वप्राणेन शङ्खराट्। बाल्मीकीय रामायण ७.७.१० (इस अर्थ में विशेषण भी है)। यथा मृग-राज् = मृगराज अर्थात शेर, सिंह। वैद्य-राज् = वैद्यराज अर्थात वैद्यों में श्रेष्ठ। इसी प्रकार धर्मराज, यमराज, प्रयागराज आदि शब्द हैं।

उपरोक्त शब्दों में राजन् और 'राज्' शब्द पृथक पृथक है और उनके अर्थ में कोई परिबर्तन नहीं होता है।

उधार

प्रश्न—हिन्दी शब्द 'उधार' संस्कृत 'उद्धार' शब्द से बना है परन्तु दोनों के अर्थ में बहुत परिवर्तन हो गया है।

उत्तर—'उद्धार' शब्द के १५ अर्थ संस्कृत कोश में दिये हुये हैं, उनमें से इस शब्द का एक अर्थ 'ऋण' भी है, और विशेष रूप से वह ऋण जिस पर कोई ब्याज नहीं होता है। वास्तव में इसी अर्थ में 'उधार' शब्द हिन्दी में भी प्रचलित है। देखो आप्टे पृ० ४२९। इस शब्द के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं है।

मृग

प्रश्न—'मृग' शब्द का अर्थ 'चौपाया' या 'कोई भी जङ्गली जानवर' था, पर अब यह शब्द 'हरिण' के अर्थ में सीमित हो गया है।

उत्तर—'मृग:' शब्द के संस्कृत कोश में १५ अर्थ दिये हुये हैं। देखो आप्टे पृ० १२८४। इस शब्द के यह सब अर्थ अब भी हैं। 'चौपाया' या 'जङ्गली जानवर' के अर्थ में यह शब्द आज भी प्रयोग में आता है। जैसे, मृग:-आधप: = पशुओं का राजा, अर्थात सिंह—केसरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिप -शिशुपालवध २.५३। मृग:—अरि: = शेर, सिंह। मृग:—काननम् = उद्यान। मृग:-राज् = शेर। मृग:-श्रेष्ठ: = व्याघ्र। मृग:-जीवन: = शिकारी, बहेलिया। मृग:-आविध: = बहेलिया। मृग:-रोम = ऊन। मृग:-प्रियम् = पहाड़ पर उगने वाला घास। मृग:-वल्लभ: = एक प्रकार का घास आदि।

तैल

प्रश्न-पहले तिल के सार को ही तैल कहते थे, किन्तु आज तैल का प्रयोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरसों, नारियल, और रेण्डी के तेल को ही नहीं, अपितु मिट्टी और मछली के तेल को भी तैल कहते हैं।

उत्तर—'तेल' का साधु शब्द 'तैलम्' है। इस शब्द का अर्थ 'तिल का सार' न कभी पहले था और न आज है। क्या भाषा-विज्ञान के लेखक बता सकते हैं कि तेल का अर्थ 'तिल का सार' किस संस्कृत कोश में दिया हुआ है। मिथ्या कथन से कुछ लाभ नहीं होता है। 'तैलम्' का अर्थ तेल है। देखो आप्टे पृ० ७८६। केवल तेल कहने से यह ज्ञान नहीं हो सकता कि तेल किस पदार्थ का है। जिस पदार्थ का तेल हो उस पदार्थ का नाम तेल से पहले जोड़ना पड़ता है। जैसे सरसों का तेल, अलसी का तेल, मूङ्गफली का तेल। तेल तो मनुष्यों का भी निकल जाता है, यथा इन बालकों ने उन बालकों को पदा पदा कर तेल (प्रस्वेद) निकाल दिया। शब्दार्थ प्रकाश के अध्ययन से पाश्चात्य पद्धत्ति के भाषा-विज्ञान के लेखकों का तेल निकल जाता है। तेल एक प्रकार का तरल पदार्थ होता है जो ठोस पदार्थों में छिपा रहता है।

श्रद्धा-श्राद्ध

प्रश्न—श्रद्धा से किये जाने वाला कार्य 'श्राद्ध' है, पर इस शब्द का अर्थ-सङ्कोच इस रूप मे हुआ है कि मृत व्यक्ति के लिये किये जाने वाले संस्कार का नाम श्राद्ध हो गया।

उत्तर—इस प्रकार का कथन दुर्बुद्धि का ही प्रमाण है। जो भाषा विज्ञान के विद्यार्थी अपने अध्यापकों में श्रद्धा रखते हैं, क्या वह उन अध्यापकों का श्राद्ध ही किया करते हैं। शब्द 'श्रद्धा' स० स्त्री० है और शब्द 'श्राद्धम्' सं० पु० है और दोनों शब्द पृथक पृथक हैं।

'श्रद्धा' शब्द के ७ अर्थ हैं—(१) आस्था, निष्ठा, विश्वास, (२) दैवी सन्देशों में विश्वास, धार्मिक निष्ठा, (३) मन की स्वस्था, शान्ति, (४) घनिष्ठता, (५) आदर, सम्मान, (६) प्रबल इच्छा और (७) साध—गर्भवती स्त्री की इच्छा। शब्द 'श्राद्धम्' का अर्थ है—मृतक सम्बन्धियों की दिवङ्गत आत्माओं के सम्मान में अनुष्ठेय संस्कार, अन्त्येष्टि संस्कार। दोनो शब्दों के भिन्न भिन्न अर्थ हैं और उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता है।

मुग्ध

प्रश्न—'मुग्ध' शब्द संस्कृत में सुन्दर अथवा मूढ़ दोनों अर्थ देता था। आगे चलकर शब्द के अर्थ में उत्कर्ष हुआ। परिणामतः मुग्ध का मूढ़ अर्थ समाप्त हो गया और अब हिन्दी में मुग्ध का प्रयोग उसके अच्छे अर्थ में ही होता है।

उत्तर—भाषा विज्ञान के मूढ़ इसी प्रकार की बातें किया करते हैं। खरी बोली में ऐसे व्यक्ति को 'जान-बावला' कहते हैं। हिन्दी के सभी शब्द कोशों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'मुग्ध' के यह अर्थ दिये हुये हैं—मोहित, मूढ, भोला, सुन्दर। इस शब्द के यही अर्थ संस्कृत में हैं। देखो आप्टे पृ० २२७५।

सत्—असत्

प्रश्न—पहले सत् और असत् का अर्थ था 'विद्यमान' और 'अविद्यमान'। उनमें पीछे से भले और बुरे का अर्थ आ गया।

उत्तर—जिस व्यक्ति ने कभी संस्कृत कोश देखा ही न हो, वही इस प्रकार का प्रश्न कर सकता है। संस्कृत कोश में 'सत्' वि० शब्द के १० अर्थ दिये हुये हैं और वह सब अर्थ इस शब्द के आज भी प्रचलित हैं। भले के अर्थ में यह शब्द संस्कृत साहित्य में निरन्तर प्रयोग हुआ है—सती सती योगविसृष्टदेहा, कुमार सम्भव १.२१, शिशुपालवध ५.१७।

कुशल

प्रश्न—कुशल उसको कहते थे जो बिना अपने हाथों को चोट पहुंचाए कुश तोड़ लावे, इसमें चतुराई की आवश्यकता होती थी और अब कुशल का शब्द चतुर मात्र के लिए हो गया है।

उत्तर—'कुशल' शब्द विशेषण है; जो व्यक्ति कुश तोड़ लाता होगा वह अवश्य ही प्राणीवाचक होगा। अब देखो भाषा विज्ञानियों की चतुराई—प्राणी वाचक को भी वि० बना डाला। कुश तोड़ लाने वाले के अर्थ में कुशल शब्द संस्कृत साहित्य में न कभी प्रयोग हुआ और न हो सकता था। यह शब्द योग्य, प्रवीण, चतुर आदि अर्थ में संस्कृत साहित्य में प्रयोग हुआ है—कृतान्तः कुशलः पुत्र येनास्मि व्यसनीकृतः वाल्मीकीय रामायण ७.५४.१६, देखो याज्ञवल्क्य स्मृति १.३१३, १.१८१, मनुस्मृति ७.१९०, रघुवंश ३.१२। इस शब्द के अर्थ में आज तक कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

प्रवीण

प्रश्न—'प्रवीण' शब्द का अर्थ आरम्भ में था अच्छी तरह वीणा बजाने वाला, किन्तु पश्चात में चलकर वह किसी भी काम में निपुणता का वाचक हो गया।

उत्तर—भाषा विज्ञान के लेखक बिना स्वर की वीणा बजाया ही करते हैं। वीणा बजाने वाला अवश्य ही प्राणी वाचक होगा परन्तु 'प्रवीण' वि० है। प्रवीण वि० शब्द के अर्थ—चतुर, कुशल, जानकार थे और हैं। इन्हीं अर्थों में यह शब्द संस्कृत साहित्य में प्रयोग हुआ है। आमोदानथ हरिदन्तराणि नेतुं नैवान्यो जगति समीरणात् प्रवीणः, भामिनी विलास १.१५, कुमार सम्भव ७.४८.

निपुण

प्रश्न—पुण्य करने वाले को निपुण कहते थे, परन्तु अब अच्छे या बुरे साधन से सफल हो जाने वाले को निपुण कहा जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर—संस्कृत में निपुण का अर्थ पुण्य करने वाला न कभी था और न है। निपुण वि० है और पुण्यम् सं० पु० शब्द है। पुण्यम् में कोई भी उपसर्ग लगाने से इस शब्द की व्याकरण कोटि और लिङ्ग में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता है। निपुण शब्द का संस्कृत में भी चतुर, कुशल, बुद्धिमान आदि अर्थ हैं और इन्हीं अर्थों में यह शब्द संस्कृत साहित्य में प्रयोग हुआ है—वयस्य निसर्गनिपुण: स्त्रिय: मालविकाग्निमित्र ३. निपुण और पुण्यम् पृथक पृथक शब्द हैं और इनके अर्थ में कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

भाई

प्रश्न—हिन्दी में भाई और भय्या शब्द अब केवल संस्कृत के भ्रातृ शब्द के अर्थ में सीमित नहीं है, बहुत जगह भय्या लड़के को भी कहते हैं और कभी कभी बोल चाल की भाषा में पत्नी पति से कह बैठती है, भाई जरा बच्चे को सम्भाल लो। इस प्रकार भाई का अर्थ केवल सम्बोधन करना हो गया है।

उत्तर—जिन व्यक्तियों ने शब्द भ्रातृ का अर्थ किसी संस्कृत शब्द कोश में देखा ही नहीं, केवल वही व्यक्ति यह समझते हैं कि इस शब्द का अर्थ अब सीमित नहीं रहा है। भ्रातृ शब्द के ४ अर्थ संस्कृत कोशों में उपलब्ध हैं— (१) भाई, (२) घनिष्ट मित्र या सम्बन्धी, (३) निकटवर्ती सम्बन्धी, (४) मित्रवत सम्बोधन का चिह्न (प्रिय मित्र)। तीसरे अर्थ के अनुसार हो माता या पिता पुत्र को भाई कह सकते हैं और पति पत्नी को तथा पत्नी पति को भाई कह सकती है। हिन्दी में इस शब्द के वही अर्थ हैं जो संस्कृत में थे और इसके अर्थ में कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

कपड़ा

प्रश्न—कपड़ा शब्द का अर्थ जीर्ण कपड़ा था। आगे चल कर इस के अर्थ में उत्कर्ष हुआ और फटे वस्त्र से उठ कर 'कपड़ा' साधारण वस्त्र के लिये प्रयोग होने लगा।

उत्तर—शब्द 'कपड़ा' का साधु शब्द 'कर्पट:' है। संस्कृत कोश में इस शब्द के ४ अर्थ दिये हुये हैं—(पुराना) या जीर्ण कपड़ा, (२) कपड़े का टुकड़ा, (३) मलिन कपड़ा, (४) कपड़ा। देखो आप्टे ५४०। प्रथम अर्थ में 'कर्पट:' शब्द का विकृत रूप 'कप्पड़' है और चौथे अर्थ में इसका विकृत शब्द 'कपड़ा' है। इस शब्द के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

स्याही

प्रश्न—स्याह का अर्थ काला है, आरम्भ में लोग काले रङ्ग से लिखते थे इसलिये उसे स्याही कहा गया। पर आज नीली, लाल और हरी आदि सभी रङ्गों की रोशनाइयाँ 'स्याही' नाम से अभिहित की जाती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर—'स्याही' म्लेच्छ भाषा का शब्द है। भारतीय भाषा में इसके पर्याय वाची शब्द 'काली' और 'मसि:' हैं। इन शब्दों के अनेक अर्थ संस्कृत कोशों में उपलब्ध हैं। काली या मसि: का अर्थ केवल काले रङ्ग की मसि: नहीं है अपितु काले रङ्ग की या किसी भी रङ्ग की मसि: होते हैं। देखो आप्टे पृ० ५६५, १२४५ '

भार्या

प्रश्न—शब्द 'भार्या' का अर्थ था जिसका भरण-पोषण किया जाय परन्तु आगे चलकर यह शब्द केवल पत्नी के अर्थ में सीमित हो गया।

उत्तर—किसी भी संस्कृत कोश में 'भार्या' शब्द का अर्थ—जिसका भरण-पोषण किया जाय नहीं दिया हुआ है, और न यह अर्थ इस शब्द का कभी था और न है। भार्या स्त्री० शब्द का अर्थ धर्मपत्नी होता था और है—सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती। सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता॥ हितोपदेश १.१९६, देखो आप्टे पृ० ११९३। जिसका भरण-पोषण किया जाय के अर्थ वाला शब्द विशेषण होगा और वह शब्द है—भार्य वि०। भार्य: सञ्ज्ञा पु० शब्द है जिसका अर्थ सेवक होता है, देखो आप्टे पृ० ११९३। इसी शब्द का विकृत रूप भाड़ू है जो सञ्ज्ञा पु० है।

साहु और सेठ

प्रश्न—'साधु' शब्द के अर्थ उत्तम, श्रेष्ठ आदि थे। रुपये का लेन देन करने वाले अर्थात धनी लोग अच्छे और सज्जन समझे जाते थे। इस कारण हिन्दी में साधु का साहु और श्रेष्ठ का सेठ अर्थ हो गया।

उत्तर—उत्तम और श्रेष्ठ आदि अर्थों में शब्द साधु वि० है। साहु आदि अर्थों में इस शब्द का शुद्ध रूप 'साधु:' सं० पु० होता है। शब्द साधु: सं० पु० के चार अर्थ संस्कृत कोशों में उपलब्ध हैं, (१) भद्र पुरुष, पुण्यात्मा, (२) ऋषि, मुनि, सन्त, या जैन साधु, (३) व्यापारी, (४) साहुकार, ऋण पर धन देने का व्यापार करने वाला। देखो आप्टे पृ० १६६७ हिन्दी में इस शब्द के अर्थ वही हैं जो संस्कृत में हैं, इनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इसी प्रकार श्रेष्ठ शब्द भी वि० और सं० पु० होता है। श्रेष्ठिन् (सेठी) शब्द का अर्थ है व्यापारसंघ का प्रधान या अध्यक्ष। श्रेष्ठिन्-चत्वरम् का अर्थ है—नगर का वह भाग या चौराहा जहां व्यापारी रहते हों। देखो आप्टे पृ० १५७८, इस शब्द के अर्थ में भी कोई परिवर्तन नहीं होता है।

मधुर—माहुर

प्रश्न—अवधी भाषा में शब्द 'माहुर' का अर्थ 'विष' है। यह संस्कृत के 'मधुर' शब्द का ही परिवर्तित रूप है जिसका अर्थ 'मीठा' होता था। स्यात् इसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह कारण है कि सङ्खिया आदि विष मिठाई में मिलाकर दिये जाते रहे हैं।

टिप्पणी—सङ्खिया (शृङ्गिकम) आदि विष मिठाई में मिलाकर दिये जाते रहे हैं या नहीं इसका हमें कोई ज्ञान नहीं है, परन्तु हम यह निस्सन्देह कहते हैं कि इस प्रकार के व्यक्ति प्रत्येक वर्ष सहस्त्रों विद्यार्थियों को भाषा-विज्ञान के नाम पर भाषा में विष मिलाकर पिला रहे हैं और उनकी बुद्धि नष्ट कर रहे हैं। खेद है कि जिन अध्यापकों को सञ्ज्ञा और विशेषण के भेद का भी ज्ञान नहीं है उन्हीं से विद्यार्थियों को शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है।

उत्तर—शब्द 'मधुर' मीठे के अर्थ में विशेषण है और संस्कृत में इसका अर्थ मीठा ही है। शब्द 'माहुर' जिसका अर्थ विष' है सञ्ज्ञा पुल्लिङ्ग शब्द मधुर वि० का नहीं अपितु शब्द 'मधुरम्' सं० पु० का परिवर्तित रूप है और संस्कृत में इसी शब्द का अर्थ 'विष' होता है। देखो आप्टे पृ० १२३०। 'मधुर' वि० और मधुरम् सं० पु० पृथक पृथक शब्द हैं और इनके अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

महत्तर और मेहतर

प्रश्न—संस्कृत में 'महत्तर' शब्द का अर्थ अधिक बड़ा है, परन्तु इसी शब्द का बिकृत रूप 'मेहतर' हिन्दी में भङ्गी के अर्थ में प्रयोग होता है।

उत्तर—सस्कृत में शब्द 'महत्तर' वि० है और 'मेहतर:' सं० पु० है। महत्तर वि० शब्द का अर्थ है अपेक्षा कृत बड़ा। इस शब्द की व्युत्पत्ति है—महत्+तर। तर एक अतिशय सूचक प्रत्यय है जो दो की तुलना में प्रयोग होता है। शब्द 'महत्तर:' स० पु० का अर्थ है—प्रधान, मुख्य या सबसे बड़ा व्यक्ति अर्थात राजा, ग्राम का मुखिया। चितराल काश्मीर में एक छोटा राज्य है जहाँ के राजा को 'चितराल का महत्तर' कहते हैं। मुखिया या प्रधान के अर्थ में इसी शब्द का विकृत रूप महता होता है। देखो आप्टे पृ० १२४७, आप्टे सं०—हिन्दी कोश पृ० ७८३। शब्द 'महतर' का 'मेहतर' शब्द से कोई सम्बन्ध नहीं है। मेहतर' की व्युत्पत्ति इस प्रकार हैं-मेह+तर। मेह का अर्थ है-मूत्र, प्रस्राव। तर का अर्थ है-नष्ट करने वाला, हर ले जाने वाला, समाप्त करने वाला आदि। तर=[तृ-भावे अप्] देखो आप्टे पृ० ७८४। अत: 'मेहतर' का अर्थ है—मूत्र या प्रस्राव आदि को हर ले जाने वाला या नष्ट करने वाला। इसी अर्थ में यह शब्द हिन्दी में प्रयोग होता है। दोनों शब्द पृथक पृथक हैं और उनके अर्थों में कोई परिवर्तन नहीं है।

गुरु

प्रश्न—संस्कृत में शब्द 'गुरु' के अर्थ अध्यापक, शिक्षक, देवाचार्य आदि हैं परन्तु हिन्दी में शब्द का प्रयोग दु:साध्य, महत्त्वपूर्ण आदि अर्थों में भी होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर—सञ्ज्ञा और विशेषण का ज्ञान न होने के कारण ही इस प्रकार के अनर्गल और भ्रामक विचार उत्पन्न होते हैं। गुरु सं० पु० शब्द का साधु रूप 'गुरुः' है जिसके अर्थ हैं—अध्यापक, शिक्षक, पिता, आदरणीय पुरुष आदि। परन्तु 'गुरु' वि० शब्द के अर्थ दुःसाध्य, महत्त्वपूर्ण आदि होते हैं। दोनों शब्द पृथक पृथक हैं और इनके अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है। देखो आप्टे पृ० ६६५, आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोश पृ० ३४९।

डाण्ड

प्रश्न—अवधी में डाण्ड शब्द दण्ड या जुर्माना के अर्थ में आता है, डण्डे के अर्थ में नहीं, यद्यपि वह शब्द डण्डे का ही रूपान्तर है।

उत्तर—इस शब्द का साधु रूप 'दण्डः' या 'दण्डम्' है। संस्कृत कोश में इस शब्द के ३५ अर्थ दिये हुये हैं। इनमें एक अर्थ जुर्माना भी दिया है। देखो आप्टे पृ० ७९८। इस शब्द के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं है।

पुरोहित

प्रश्न—विद्वान पण्डित पुर या गांव का हितैषी होता था। धर्म की प्रधानता होने के कारण समस्त कार्य उसकी ही देख रेख में हुआ करते थे। पुरोहितों की आज एक जाति बन गई है जो पण्डित न होते हुये भी तथा पुर या गांव का कोई हित-चिन्तन न करते हुये भी पुरोहित कहे जाते हैं और उनका काम विवाह आदि संस्कार कराना है।

टिप्पणी—जिन्हें सरस्वती भाषा का ज्ञान नहीं है और जो शब्दों के अर्थ संस्कृत के प्रामाणिक शब्द कोशों में देखने का भी कष्ट नहीं करते हैं, वे या तो भ्रम में पड़कर इसी प्रकार प्रलाप किया करते हैं या जान-बूझ कर ब्रील के सिद्धान्त के पुष्टिकरण हेतु शब्दों की मिथ्या व्युत्पत्ति बनाते हैं। शब्द 'पुरोहित' का 'पुर' शब्द से कोई सम्बन्ध नहीं है। 'पुर + हित' से पुरोहित शब्द नहीं बन सकता है। अतः पुरोहित शब्द का अर्थ—पुर (गांव) का हितैषी नहीं हो सकता है और न है।

समाधान—शब्द 'पुरोहितः' के संस्कृत के शब्द कोशों में दो अर्थ दिये हुये हैं, (१) वह व्यक्ति जिसे किसी भार सम्भालने के लिये नियुक्त किया गया हो, अभिकर्ता, दूत, (२) कुल पुरोहित, वह व्यक्ति जो कुल में होने वाले कर्मकाण्डों या संस्कारों का सञ्चालन करता है। देखो आप्टे संस्कृत अङ्ग्रेजी कोश पृष्ठ १०३२, आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश पृष्ठ ६२३। इन्हीं दोनों अर्थों में यह शब्द आज भी प्रचलित है और इस शब्द के अर्थ में आज तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

यजमान

प्रश्न—यज्ञ करने वाले को यजमान कहते थे। यज्ञों की प्रथा लुप्त हो गई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है पर परम्परा से आता हुआ यह शब्द विद्यमान है और न केवल पुरोहित और ब्राह्मण के यजमान होते हैं वरन् नाई, धोबी और दर्जियों के भी यजमान पाये जाते हैं।

टिप्पणी—देखो 'पुरोहित' के अन्तर्गत।

समाधान—संस्कृत के शब्द कोशों में 'यजमान:' शब्द के चार अर्थ दिये हुये हैं—(१) वह व्यक्ति जो नियमित रूप से यज्ञ करता है और उसका व्ययभार स्वयं करता है, (२) वह व्यक्ति जो अपने यज्ञ करवाने के लिये पुरोहितों को नियुक्त करता है, (३) संरक्षक, धनि व्यक्ति, अतिथेय, (४) कुल का प्रधान पुरुष। देखो आप्टे संस्कृत अङ्गरेजी कोश पृष्ट १२९८, आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोश पृष्ट ८२३। इस शब्द के अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

ठाकुर-प्रजा

प्रश्न—राजा और प्रजा पद्धति प्राचीन है। इसी कारण गांव के क्षत्रिय वर्ग को ठाकुर और शूद्र वर्ग को प्रजा कहा जाता था। लोकतन्त्र के वर्तमान युग में न कोई राजा है और न कोई प्रजा, न कोई सेवक, पर प्रथाओं के अवशिष्ट रूप में प्रजा, ठाकुर, सेवक आदि शब्द अपने रूढ़ि अर्थ में प्रयुक्त होते चले जा रहे हैं।

समाधान—जितने व्यक्ति आज सेवक का काम करते है, उतने कभी प्राचीन काल में भी नहीं करते थे। 'सेवक:' शब्द का आज भी वही अर्थ है जो प्राचीन काल में था। देखो आप्टे संस्कृत अङ्गरेजी कोश पृष्ट १७०२। 'ठाकुर' का साधु शब्द 'ठक्कुर:' है जिसका अर्थ है—'एक उपाधि जो प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम के साथ जोड़ी जाती है'। अनेक व्यक्तियों को आज भी केवल उनकी उपाधि से ही सम्बोधित करते हैं। अत: गांव के प्रसिद्ध व्यक्तियों को आज भी ठाकुर कहते हैं। शूद्र वर्ग के व्यक्तियों को 'प्रजा' नहीं कहते है 'परजे' कहते हैं, जिस शब्द का साधु शब्द 'परिजन:' है। देखो आप्टे संस्कृत-अङ्गरेजी कोश पृष्ट ९७५। इस शब्द के अर्थ में भी आज तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

स्वयंवर:

प्रश्न—स्वयंवर की प्रथा के समय कुमारियाँ पति का वरण करती थी। अब वरण की प्रथा नहीं है। माता-पिता ही कन्या के लिए सुयोग्य व्यक्ति खोज देते हैं। फिर भी 'वर' शब्द ही का प्रयोग होता जा रहा है।

टिप्पणी—माता-पिता कन्या के लिये जिस सुयोग्य व्यक्ति को खोजते हैं क्या वह 'वर:' नहीं होता है। 'वर:' शब्द का क्या अर्थ है, क्या आपने कभी किसी संस्कृत शब्द कोश में देखा है। भाषा-विज्ञान के प्रमादी अपना उपचार किसी भी संस्कृत शब्द कोश से स्वयम् कर सकते हैं। हम प्रमादवत् प्रश्नों का उत्तर देना उचित नहीं समझते हैं, परन्तु हम समझते हैं कि विश्वविद्यालय के छात्र उन प्रश्नों का उत्तर देने के समर्थ हैं, तथा उचित उत्तर दे सकते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गवेषणा

प्रश्न—'गवेषणा' शब्द का अर्थ है—'गाय ढूण्ढने की इच्छा'। यह शब्द प्रारम्भ में केवल गाय को ढूण्ढने के अर्थ में ही प्रयोग होता रहा होगा, पर अब किसी भी विषय पर गवेषण-पूर्ण लिखे हुये लेख या व्याख्या के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है।

टिप्पणी—प्रश्न करने से पूर्व यह बताओ कि 'गवेषणा' शब्द का अर्थ—'गाय ढूण्ढने की इच्छा', किस प्राचीन शब्द कोश में दिया हुआ है या यह शब्द इस अर्थ में किस साहित्य में प्रयोग हुआ है, या यह केवल तुम्हारे मस्तिष्क का दूषिय विकार है। निर्लज्जता पूर्वक झूटे प्रश्न करने से कोई लाभ नहीं है। इस प्रश्न में संस्कृत की यह लोकोक्ति चरितार्थ है—न ह्येष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति। अर्थात यदि अन्धा खम्बे को नहीं देख पाता तो उसमें खम्भे का क्या दोष है। जो व्यक्ति ब्रील आदि के शब्दार्थ-परिवर्तन के नियम में अपनी बुद्धि को नष्ट करके बुद्धिहीन हो गये हैं, केवल वही इस प्रकार का प्रश्न करते हैं। यदि तुमने इस शब्द का अर्थ किसी संस्कृत शब्दकोश में देखा होता तो यह प्रश्न न किया होता।

उत्तर—गवेषण शब्द का अर्थ है—किसी वस्तु की खोज या किसी विषय पर अन्वेषण—सखि किमर्थगवेषणया गिरम् (किरति), नैषध ४-१०७। देखो आप्टे संस्कृत-अङ्गरेजी कोश पृष्ठ ६५५। गवेषणाम्' शब्द का प्रयोग अथर्ववेद ५.२०.११ में हुआ है—अभिमातिषाहो गवेषणः। जो विद्वान व्युत्पत्ति पक्ष को सामने लाते हों, वह इस शब्द को 'गवेष्' धातु से बना सिद्ध कर सकते हैं। 'गवेष्' (गवेषते, गवेषयति, गवेषित) का अर्थ है—(१) ढूण्ढना, खोजना, पूछताछ करना अनुसन्धान करना, तस्मादेष यतः प्राप्तस्तत्रैवान्यो गवेष्यताम्—कथा सरित्सागर २५.१७६। (२) प्रयत्न करना, उत्कट, इच्छा करना प्रबल उद्योग करना, कड़ा परिश्रम करना, गवेषमाणं महिषीकुलं जलम्—ऋतुसंहारम् १.२१।

इसी शब्द से 'गवेषित' वि० का अर्थ है. खोजा हुआ, ढूण्ढा हुआ, अनुसन्धान किया हुआ। 'गवेषणा' शब्द का अर्थ, 'गाये को ढूण्ढने की इच्छा' न कभी पहले था और न आज है। इस शब्द के अर्थ में न कोई विस्तार हुआ है और न परिवर्तन हुआ है।

जुगुप्सा

प्रश्न—'जुगुप्सा' शब्द का आरम्भ में अर्थ था 'गाय का पालन करना'। आगे चलकर इस शब्द के 'गुप' (छिपाना) पर बल पड़ा और अर्थ होने लगा छिपाकर पालन करना। फिर पालन वाला अर्थ पर क्रमशः बल कम हो जाने से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समाप्त हो गया और केवल छिपाई जाने वाली वस्तु तक सीमित रहा। छिपाने के संसर्ग से इस शब्द का प्रयोग घृणा के अर्थ में चल पड़ा। इस शब्द के अर्थ में फिर परिवर्तन हो रहा है और उसका प्रयोग 'घृणा' के साथ-साथ 'निन्दा' और भर्त्सना के लिये भी होने लगा।

टिप्पणी—इस प्रश्न की टिप्पणी उसी प्रकार की है जो 'गवेषणा' शब्द के प्रश्न पर की गई है। इस शब्द का अर्थ 'गाय का पालन करना' या 'छिपाना' कभी नहीं था और न इन अर्थों में यह शब्द किसी प्राचीन साहित्य में प्रयोग हुआ है। जिन व्यक्तियों को प्रमादालय में उपचार कराने के लिये भेजा जाता है, वही व्यक्ति इस प्रकार की कपोल कल्पित कथा सुनाया करते हैं।

उत्तर—संस्कृत के शब्द-कोशों में 'जुगुप्सा' शब्द के अर्थ इस प्रकार हैं—(१) निन्दा, उपालम्भ, दुर्वचन, निर्भर्त्सना, (२) अभिरुचि, घृणा, बीभत्सा, विराग, द्वेष, अप्रीति, (३) बीभत्स रस का स्थायी भाव जिसकी परिभाषा इस प्रकार है—दोषेक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विषयोद्‌भवा—साहित्य दर्पण २०७। इन्हीं अर्थों में यह शब्द प्राचीन काल से प्रयोग होता चला आ रहा है और इस शब्द के अर्थ में कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

चूड़ी फूटना

प्रश्न—अमङ्गलवाची शब्दों को दूसरे शब्दों द्वारा प्रकट करने के कारण वैधव्य को चूड़ी फूटना कहते हैं।

उत्तर—हिन्दी (खरी बोली) क्षेत्र में भारतीय विवाहित स्त्रियों के लिये काच की चूडियां पहनना अनिवार्य होता है, यह स्त्री के सुहाग का चिन्ह है। जब किसी परिवार में कोई परिणीत पुरुष मर जाता है तो उस परिवार की सभी विवाहित स्त्रियां अपनी अपनी चूडियां बधा देती हैं, अर्थात शोक समाप्ति तक उतार कर रख देती हैं, परन्तु जिस स्त्री का पति मरा है वह अपनी चूड़ियां फोड़ डालती है। उस परिवार में शोक समाप्ति पर अन्य स्त्रियां अपनी अपनी चूड़ियां फिर पहन लेती हैं, परन्तु विधवा आजीव काच की चूड़िया नहीं पहनती है। अतः विधवा होने पर ही चूड़ियां फोड़ी जाती हैं। यहां यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि जब किसी स्त्री की कोई चूड़ी हाथ से छूट जाने के कारण या इसी प्रकार किसी और कारण कोई भी चूड़ी टूट जाती है तो खरी बोली क्षेत्र में कोई भी स्त्री उसको चूड़ी फूट गई नहीं कहती है, अपितु उसे चूड़ी बिसमना कहती है सरस्वती भाषा मे 'बिसमना' शब्द का साधु शब्द 'विस्रंसनम्' है, देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ १४८३। अतः किसी विवाहित स्त्री की चूड़ी फूटने का अर्थ ही उसका विधवा होना है, और इसके अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वर्गवास होना

प्रश्न—अशुभ शब्द को दूसरे शब्द के द्वारा प्रकट करने के कारण ही किसी के मर जाने को स्वर्गवास होना कहते हैं।

उत्तर—यदि प्रश्नकर्ता ने शब्द 'स्वर्गः' और उससे बने यौगिक शब्दों को किसी संस्कृत कोश में देखा होता तो यह प्रश्न न किया होता। किसी व्यक्ति के स्वर्गवास होने का अर्थ है कि वह व्यक्ति स्वर्ग में चला गया और वहां रहने लगा। शब्द स्वर्गः—गतिः और स्वर्गः—गमनम् का अर्थ ही 'मर जाना' है, देखो आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृष्ठ १७४०। अतः यह शब्द अपने अभिधा अर्थ में ही प्रयोग होता है।

दूकान बढ़ाना

प्रश्न—दूकान खुली रहने का समय समाप्त होने पर दूकान बन्द करना न कहकर दूकान बढ़ाना या बधाना क्यों कहते हैं ?

उत्तर—शब्द 'बढ़ाना' और 'बन्द करना' दो पृथक पृथक शब्द हैं। दूकान बढ़ाना का अर्थ है कि कार्य समय समाप्ति या विश्राम आदि के कारण कुछ निश्चित समय के लिये दूकान का कार्य निग्रह कर देना। शब्द 'बढ़ाना' का साधु शब्द 'बधनम्' है। देखो आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृष्ठ ११५०। दूकान बन्द करना का अर्थ है, दूकान को या व्यापार को सर्वदा के लिये बन्द ता समाप्त कर देना। शब्द 'बन्द करना' का साधु शब्द 'बन्धनम' है, देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ११५२। अतः विराम के कारण दूकान बढ़ाना या बधाना ही शुद्ध प्रयोग है और हिन्दी (खरी बोली) क्षेत्र में इस अथ में यही शब्द प्रचलित है।

जड़

प्रश्न—'जड़' शब्द का प्रचीन अर्थ वृक्ष आदि की जड़ है, परन्तु इस शब्द ने एक नवीन अर्थ भी धारण कर लिया है, जैसे झगड़े की जड़।

उत्तर—सरस्वती भाषा में शब्द 'जड़' स्त्री० का साधु शब्द 'जटा' स्त्री० है। 'जटा' शब्द के संस्कृत कोशों में छः अर्थ दिये हुये हैं। इनमें एक अर्थ है तन्तुमय जड़, अङ्घ्रि, अर्थात पेड़ आदि की जड़। इस शब्द का दूसरा अर्थ 'मूलम्' भी है। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ७२३। शब्द 'मूलम्' के २२ अर्थ संस्कृत कोश में उपलब्ध हैं। 'मूलम्' शब्द का अर्थ पेड़ की जड़ भी है और कारण, उत्पत्ति उद्गम भी है। अतः पेड़ की जड़ का साधु शब्द 'तरुमूलम्' है और 'झगड़े की जड़' का साधु शब्द 'कलह मूलम्' है। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश को पृष्ठ १२८२। इसी आधार पर हमारी भाषा में यह प्रचलित है—'रोग की जड़ खांसी और झगड़े की जड़ हांसी'। 'जड़' शब्द का अर्थ 'मूलम्' है, इसको स्पष्ट करने के लिये ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारी भाषा में 'जड़-मूल' शब्द प्रचलित है और उसका निरन्तर प्रयोग होता है। जैसे—भारतीय विश्वविद्यालयों में पाश्चात्य पद्धति से भाषा-शास्त्र की शिक्षा तथा भारतीय भाषाओं और भारतीयों के सम्बन्ध में मेक्समूलर और ग्रियर्सन आदि लेखकों द्वारा प्रतिपादित विचारों और सिद्धान्तों को जड़-मूल से नष्ट करने के हेतु ही हमने शब्दार्थ-प्रकाश की रचना की है। अतः 'जड़' शब्द ने कोई नवीन अर्थ धारण नहीं किया है और यह शब्द सभी अर्थों में अपने अभिधा अर्थ में ही प्रयोग होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: २० :

अलङ्कार, मुहावरा और अर्थ परिवर्तन

पाश्चात्य भाषा-वैज्ञानिकों के अनुसार शब्दों के अर्थ परिवर्तन का एक कारण अलङ्कारिक प्रयोग भी है। ब्रील का कथन है कि अन्य सभी कारणों से अर्थ-परिवर्तन क्रमिक रूप से होता है, परन्तु अलङ्कारों के कारण अर्थ-परिवर्तन एक क्षण में हो जाता है। पाश्चात्य पद्धति से शिक्षित व दीक्षित हिन्दी के प्रारम्भिक भाषा-वैज्ञानिकों ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के कलङ्क केन्द्र में इस सिद्धान्त की शिक्षा सुनीति कुमार आदि से ग्रहण करके हमारी भाषा में भी इस सिद्धान्त का प्रचार और प्रसार किया। इसी प्रकार के अन्य भाषा-वैज्ञानिकों ने अपनी स्वतन्त्र विचार-धारा को तिरोहित करके बाल-बुद्धि से ब्रील के उपरोक्त कथन को ब्रह्मवाक्य माना और अलङ्कार प्रयोग के कारण शब्दों के अर्थ परिवर्तन के सिद्धान्त की पुष्टि में हमारी भाषा के अनेक शब्दों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत कर डाला। इन शब्दों की परीक्षा करके हम दिखायेंगे कि इन शब्दों का न अलङ्कारिक प्रयोग हुआ है और न इन शब्दों का अर्थ परिवर्तन होता है। वास्तव में उन लेखकों को उन शब्दों के साधु शब्द और उन साधु शब्दों के शुद्ध अर्थ का कोई ज्ञान ही नहीं है।

अलङ्कार

अलङ्कार का अर्थ है—सजावट, सजाने या अलङ्कृत करने की क्रिया, आभूषण, अलङ्कारशास्त्र-विद्या। अतः अलङ्कार शोभा बढ़ाने वाले पदार्थ को कहते हैं, अर्थात जो सौन्दर्य की अभिवृद्धि करता है। काव्य विवेचन के लेखकों का कथन है कि 'जिस प्रकार शरीर को प्राण की आवश्यकता है उसी प्रकार काव्य में रस की 'वाक्य रसात्मकं काव्य' अर्थात रसात्मक वाक्य ही काव्य है। यह सत्य है कि जिस प्रकार सुन्दरी रमणी का सौन्दर्य ही यथेष्ट होता है उसे अलङ्कारों (आभूषणों) की अपेक्षा नहीं होती उसी प्रकार काव्य को भी भाव (रस) के अतिरिक्त अलङ्कारों की आवश्यकता नहीं है किन्तु इसमें संशय नहीं है कि जिस प्रकार रत्नजटित अलङ्कार सुन्दरी के सौन्दर्य को द्विगुणित कर देते हैं उसी प्रकार रसरूपी आत्मा वाला काव्य यदि उचित अलङ्कारों द्वारा अलङ्कृत हो जाय तो वह सुन्दरतम हो जाता है।" साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ अलङ्कार को उसी प्रकार रस का उत्कर्ष विधायक मानते हैं जैसे कनक कुण्डल आदि मानवीय सौन्दर्य के उत्कर्ष विधायक होते हैं। उनके अनुसार काव्य की शोभा अलङ्कारों पर निर्भर नहीं है। अलङ्कार शोभा का जनक न होकर शोभा में वृद्धि करने वाला ही होता है। अलङ्कार काव्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की शोभा बढ़ाने वाला तो है परन्तु काव्य में उसकी अनिवार्य स्थिति स्वीकार नहीं की जा सकती है। काव्य का आत्मा रस होता है और काव्य शब्द तथा अर्थ के आश्रित रहता है।

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि अलङ्कार काव्य शास्त्र का ही विषय है। कथ्य-भाषा में अलङ्कारों का महत्त्व नहीं है। जन-साधारण की कथ्य-भाषा का सर्व-प्रथम उद्देश्य अर्थ-प्रकाश होता है। भाषा के द्वारा जितने स्पष्ट रूप से और जितने अल्प प्रयास से अर्थ-प्रकाश किया जाता है, वह भाषा उतनी ही उत्कृष्ट मानी जाती है। जन-साधारण अपने विचारों को स्पष्ट शब्दों में ही व्यक्त करते हैं, उनकी भाषा में अलङ्कारों का प्रयोग नहीं रहता है, वे अपनी भाषा में शब्दों को साधारणत: उन्हीं अर्थों में प्रयोग करते हैं जो अर्थ उन शब्दों के हमारी भाषा मे प्रचलित हैं और उन शब्दों के जो अर्थ संस्कृत शब्द-कोशों में उपलब्ध होते हैं।

मुहावरा

'मुहावरा' शब्द म्लेच्छ भाषा का है। मुहावरा का अर्थ है—वाक्य में शब्द का वह प्रयोग जिसका अर्थ शब्द के अभिधा अर्थ से पृथक होता है। हमारी भाषा में न तो 'मुहावरा' शब्द का पर्याय वाची कोई शब्द है और न हमारी भाषा में किसी शब्द का प्रयोग मुहावरे के रूप में अर्थात उस शब्द के अर्थ से पृथक अर्थ में होता है। हिन्दी भाषा में मुहावरों की खोज का प्रयास एक प्रमूढ़ता है। जो व्यक्ति हिन्दी भाषा में मुहावरों का उदाहरण देते हैं उनके भ्रम का मुख्य कारण नागरी प्रचारणी सभा आदि द्वारा प्रकाशित हिन्दी के शब्दकोश हैं। इन शब्द कोशों में अनेकार्थी शब्दों के कतिपय अर्थों को तथा एक ही शब्द में अन्य शब्दों के योग से बने यौगिक शब्दों के अर्थो को मुहावरा बताया गया है। प्रतीत होता है कि हिन्दी शब्द कोशों के सम्पादकों ने इस प्रकार के शब्दों के अर्थ संस्कृत के प्रामाणिक शब्द कोशों में देखने का कष्ट ही नहीं किया। हिन्दी शब्द कोशों में अनेकार्थी तथा यौगिक शब्दों के प्रयोग को मुहावरा लिखने का कारण हिन्दी शब्द कोश सम्पादन कला के मूल सिद्धान्त की त्रुटियां हैं जो दो प्रकार की हैं—

क—सरस्वती भाषा के अनेकार्थी शब्द

हिन्दी में शब्दों के वही सब अर्थ हैं जो उन शब्दों के साधु शब्द के प्रामाणिक संस्कृत शब्द कोशों में उपलब्ध हैं। इन में अनेकार्थी शब्दों की एक बहुत बड़ी सङ्ख्या है। हिन्दी शब्द कोशों के सम्पादकों को अनेकार्थी शब्द के जिस जिस अर्थ का साधारणत: ज्ञान था, वही अर्थ उन्होंने उस शब्द के लिख दिये और जो अन्य अर्थ उस शब्द के हमारी भाषा में प्रचलित थे उनको मुहावरा लिख दिया। हम अपने उपरोक्त कथन को कुछ शब्दों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करके स्पष्ट करते हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पकना—संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में इस शब्द के तीन अर्थ दिये हुये हैं, इसी शब्द के अन्तर्गत 'बाल पकना' को एक मुहावरा लिख दिया है। यदि संक्षिप्त शब्द सागर के सम्पादकों ने संस्कृत शब्द कोशों में शब्द 'पक्व' और उसके अर्थ देखे होते तो वह भ्रमवश 'बाल पकना' को एक मुहावरा न लिखते। 'बाल पकना' कोई मुहावरा नही हैं, यह शब्द 'पक्व' का ही एक अर्थ है। आप्टे संस्कृत-अङ्गरेजी शब्द कोश में शब्द 'पक्व' के नौ अर्थ दिये हुये है, इनमें आठवां अर्थ है— बुढ़ापे के कारण बालों का धवल या श्वेत हो जाना', उसी शब्द कोश में शब्द 'पाकः' का भी एक अर्थ यही दिया हुआ है। मोनियर विलियम्स ने भी शब्द 'पक्व' का यही अर्थ लिखा है।

पक्का—संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में इस शब्द के केवल तीन अर्थ दिये हुये हैं—(१) जो (फल अनाज आदि) पुष्ट अवस्था को प्राप्त होकर खाने या काटकर सुरक्षित रखने के योग्य हो गया हो, कच्चा का उल्टा। (२) उबला हुआ (पानी आदि तरल पदार्थ)। (३) आञ्च या ताप द्वारा गलाकर प्रयोग के योग्य तैयार किया हुआ (भोजन या द्रवणशील कोई मसाला आदि)।

आप्टे संस्कृत-अङ्गरेजी शब्द कोश में शब्द 'पाकः' के बीस अर्थ दिये हुये हैं। 'पाकः' शब्द के जो अर्थ सक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में दिये हुये हैं वह संस्कृत कोशो में दिया हुआ पहला अर्थ है, इस प्रकार इस शब्द के उन्नीस अर्थ संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में नहीं दिये हुये हैं। जिन व्यक्तियों ने 'पाकः' शब्द के अर्थ संस्कृत शब्द कोशों में नहीं देखे हैं वह उन उन्नीस अर्थो को मुहावरा समझते हैं। जैसे (१) ईण्टों का पकाना पक्की ईण्ट (२) परिपक्वता, पूर्ण विकास—धी, मति, (३) सम्पूर्ण, समाप्त, निष्पन्न, (४) किसी कार्य का परिणाम, काम का पक्का हो जाना, (५) किसी फोड़े आदि का चीरने के लिये पक्का हो जाना, (६) अनुभवशील, चतुर, विदग्ध जैसे पक्का मनुष्य, (७) सर्वजनीय भय और सन्त्रास का पक्का होना अर्थात जो राष्ट्रीय अनर्थ, सङ्कट या राज्य परिवर्तन का कारण होता है। अत: इन सभी अर्थो में पाकः' शब्द का प्रयोग मुहावरा नहीं है अपितु यह सभी 'पाकः' शब्द के अभिधात्मक कोश सम्मित अर्थ हैं।

हाथ—संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर मे इस शब्द का केवल एक ही अर्थ दिया हुआ है—बाहु से लेकर पञ्जे तक का अङ्ग, कर, हस्त। इस शब्द के अन्तर्गत अनेक मुहावरे दिये हुये हैं, जैसे हाथ में आना या पड़ना, हाथ के हाथ आदि।

आप्टे सस्कृत अङ्गरेजी शब्द कोश में हस्त शब्द के आठ अर्थ दिये हुये हैं। आप्टे और मोनियर विलियम्स के शब्द कोशों में 'हस्त' शब्द में विभिन्न शब्दों को जोड़कर पचास से भी अधिक यौगिक शब्द बनाकर उनके अर्थ दिये हुये हैं। संक्षिप्त शब्द सागर में जिनको मुहावरे बताया गया है, वह सभी इन यौगिक शब्दों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थ हैं, यथा—हाथ में आना—हस्तगामिन्, हस्तगत; हाथ के हाथ—हस्ता हस्ति आदि। अन्य शब्दों के लिये देखो आप्टे संस्कृत अङ्गरेजी शब्द कोशपृष्ठ १७५३, मोनियर विलियम्स पृष्ठ १२९४, १२९५।

दुहना—संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में इस शब्द के दो अर्थ दिये हुये हैं—(१) स्तन से दूध निचोड़ कर निकालना, (२) निचोड़ना, तत्त्व या सार खींचना। परन्तु धन हर लेना तथा लूटना अर्थों को उस शब्द का मुहावरा लिख दिया है।

आप्टे तथा मोनियर विलियम्स संस्कृत अङ्गरेजी शब्द कोशों में √दुह या दुहना के अनेक अर्थ दिये हुये हैं। हिन्दी शब्द सागर में जिन अर्थों को मुहावरा लिखा है वह सभी अर्थ इस शब्द के अर्थ हैं, यथा किसी से लाभ उठाना, इस अर्थ में यह शब्द संस्कृत साहित्य में भी प्रयोग हुआ है—दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम् (रघुवंश १.२६)। 'कोई इच्छा पूरी करना' के अर्थ में भी यह शब्द संस्कृत साहित्य में प्रयोग हुआ है—कामान्दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीम् (उत्तर रामचरित ५.३१)।

इसी प्रकार के सैङ्कड़ों अन्य शब्दों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है परन्तु उसके लिये इस पुस्तिका में पर्याप्त स्थान नहीं है।

ख—सरस्वती के विभिन्न शब्दों का हिन्दी एकात्मक शब्द

सरस्वती भाषा में कतिपय दो दो शब्दों का उच्चारण विपर्यय इस प्रकार हुआ है कि उन दोनों शब्दों का हिन्दी में एक ही रूपात्मक शब्द प्रचलित हो गया है और वह एक ही हिन्दी शब्द सरस्वती भाषा के उन दोनों शब्दों का द्योतक है। यदि संस्कृत शब्द कोशों में उस हिन्दी शब्द के एक ही साधु शब्द के वह दोनों अर्थ उपलब्ध नहीं होते हों तो यह स्पष्ट है वह हिन्दी शब्द सरस्वती के दो विभिन्न शब्दों का एकात्मक विकृत रूप है। ऐसी दशा मे भी हिन्दी शब्दकोशकार संस्कृत शब्दकोशों में सरस्वती के उन दोनों शब्दों को ढूण्ढने का प्रयास ही नहीं करते हैं। वे हिन्दी शब्द के साधारण और सामान्य अर्थ को तो उस शब्द का अर्थ मान लेते हैं तथा अज्ञानवश दूसरे अर्थ में उस शब्द के प्रयोग को मुहावरा समझ लेते हैं। वास्तव में शब्द का वह प्रयोग भी उस शब्द का मुहावरा नहीं होता है अपितु अभिधा अर्थ होता है। हम कुछ शब्दों का उदाहरण देकर इस कथन को स्पष्ट करते हैं।

समझना—इस शब्द का साधारण अर्थ है—जानना, पढ़ना, ज्ञानप्राप्त करना आदि। यथा, मैं इस विषय को समझ गया हूं। मैं आपका कथन समझ गया हूं। इन वाक्यों में इस शब्द का साधु शब्द 'सम्बुधनम्' है। परन्तु जब कोई व्यक्ति कलह या द्वन्द्व के समय कहता है, 'मैं तुम्हें किसी दिन भली प्रकार समझ लूंगा', तो इस वाक्य में 'समझना' उपरोक्त अर्थ में प्रयोग नहीं हुआ है और न इस शब्द का यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोई मुहावरा है। इस वाक्य का अभिधा अर्थ है कि मैं तुम्हें किसी दिन पूर्ण रूप से वशीकरण या पराजित कर लूंगा। इस वाक्य में 'समझना' का साधु शब्द है 'समजनम' जिसका अर्थ है वशीकरण करना. पराजित करना आदि। देखो आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृष्ठ १६२९।

चखना—इस शब्द का साधारण अर्थ है, खाना, स्वाद लेना। इस अर्थ में 'चखना' शब्द का साधु शब्द 'चक्षणम्' है, देखो आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृष्ठ ६९१। परन्तु जब हम कहते हैं कि, 'आपने इसका परिणाम चख लिया' तो इस वाक्य में 'चखना' का उपरोक्त अर्थ नहीं हो सकता है और न यह कोई मुहावरा है। इस वाक्य का अभिधा अर्थ है—'इसके परिणाम स्वरूप तुम्हें दुःख या पीड़ा का अनुभव हो गया'। इस वाक्य में 'चखना' का साधु शब्द 'चक्कनम्' है, जिसका उपरोक्त अर्थ होता है। देखो आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृष्ठ ६९०।

बजना—इस शब्द का साधारण अर्थ है, ध्वनि होना। इस अर्थ में इस शब्द का साधु शब्द 'वादनम्' है, देखो आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृष्ठ १४१२। कलह या द्वन्द्व के समय भी बहुत कोलाहल होता है। अतः अनेक व्यक्तियों का विचार है कि 'लड़ाई होने' के अर्थ में 'लड़ाई बजना' एक मुहावरा है। परन्तु उनका यह विचार भ्रामक है। इस अर्थ में 'बजना' शब्द का साधु शब्द वाजिनम्' है, जिसका अर्थ है, कलह, द्वन्द्व, विसंवाद, सङ्ग्राम, विप्रतिपत्ति, अभिसम्पात आदि। देखो आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृष्ठ १४०९। 'वाजिनम्' शब्द का ही स्त्रीलिङ्ग शब्द 'वाजि' है जिसका अशुद्ध रूप 'बाजी' है, परन्तु इस शब्द को संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में अज्ञानवश 'फारसी' लिखा है।

खाना—इस शब्द का साधारण अर्थ है भोजन करना, भक्षण करना, काट लेना। इस अर्थ में इस शब्द का साधु शब्द 'खादनम्' है। देखो आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृष्ठ ६३८। हिन्दी शब्द सागर में 'कसम (शपथ) खाना' को एक मुहावरा लिखा है। कसम (शपथ) खाने का पदार्थ नहीं है तथा खाई नहीं जा सकती है और न यह कोई मुहावरा है। शपथ खाना के अर्थ में 'खाना' शब्द का साधु शब्द 'ख्यापनम्' है, जिसका अर्थ है, प्रकाशित करना—जानता ही नरेन्द्रेण ख्यापनार्थं परस्य वै—महाभारत ५.१९०,२२। स्वीकार करना, अङ्गीकरण करना, लोकसमक्ष, प्रकाशित और प्रसिद्धि करना। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ६४१। शपथ खाना के अर्थ में यह शब्द अपने अभिधा अर्थ में ही प्रयोग होता है।

विस्तार भय के कारण हम और शब्दों के उदाहरण नहीं दे रहे हैं।

अलङ्कार प्रयोग और अर्थ परिवर्तन के उदाहरण ?

भाषा-विज्ञान के लेखकों का कथन है कि वक्ता या लेखक का यही प्रयास रहता है कि वह कम से कम शब्दों में अपने कथन या लेख को अधिक से अधिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्पष्ट कर सके। ऐसा करने के लिए अलङ्कारों का प्रयोग किया जाता है। आरम्भ में तो प्रयोग अलङ्कारिक रहता है परन्तु कुछ समय पश्चात किसी को अलङ्कारों का ध्यान नहीं रहता है और शब्द का प्रयोग नवीन अर्थ मे चलने लगता है, और इस प्रकार शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है (१)। एक अन्य भाषा वैज्ञानिक लिखता है कि अलङ्कारिक प्रयोग केवल काव्य या साहित्य ही में नहीं होते हैं अपितु कथ्य भाषा में भी साधारण व्यक्ति स्वभाविक रूप में इनका प्रयोग करते हैं (२)। प्रतीत होता है कि भाषा-वैज्ञानिकों को अलङ्कार शब्द के अर्थ का भी ज्ञान नहीं है। अलङ्कारों का प्रयोग काव्य की शोभा में वृद्धि करने के लिये होता है, काव्य का आत्मा तो रस होता है और काव्य भी शब्द तथा अर्थ के आश्रित रहता है। अलङ्कारों का प्रयोग वाक्य में भावों को अधिक स्पष्ट करने के लिये नहीं होता है।

भाषा-वैज्ञानिकों ने कतिपय शब्दों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करके यह दिखाने का प्रयास किया है कि इन शब्दों के अलङ्कार प्रयोग से उनके अभिधा अर्थों में परिवर्तन हो जाता है। भाषा-वैज्ञानिकों का अलङ्कार प्रयोग से शब्दों के अर्थ परिवर्तन का सिद्धान्त पूर्ण रूपेण भ्रामक और अनर्गल है। उन शब्दों के साधु शब्द और अभिधा अर्थ का ज्ञान न होने के कारण वे इस प्रकार प्रलाप करते हैं। भाषा-विज्ञान के लेखक अपनी आँखों पर चर्म पट्टिका बान्ध कर अथवा फोड़कर स्वयम् अन्धकार में पड़कर छात्रों को भी भाषा के अन्धकार कूप में डालते हैं। दुःख और अनुताप का विषय है कि पिछले २०-२५ वर्षों में इन तथाकथित भाषा-वैज्ञानिकों ने सहस्त्रों छात्रों की बुद्धि भ्रष्ट कर दी है।

हमारा उद्देश्य सत्य दर्शन हेतु युवा वर्ग का नयनोन्मीलन है। इसी लक्ष की पूर्ति हेतु अब हम भाषा-वैज्ञानिकों द्वारा उदाहरणार्थ शब्दों पर प्रकाश डालकर दिखायेंगे कि उनके कथन में कोई सत्य या तथ्य नहीं है। निम्न लेख में हमने काल्पनिक नामों का प्रयोग किया है।

बैल

प्रश्न—'भोलानाथ बैल है'। इस वाक्य में बैल का मुख्यार्थ गृहीत नहीं होता है। भोलानाथ मनुष्य है वह बैल (पशु) कैसे हो सकता है। इस वाक्य में बैल का मुख्य अर्थ (पशु) बाधित है और गौण अर्थ (मूर्ख) विवक्षित है। इस वाक्य के प्रयोग का अभिप्राय है भोलानाथ की मूर्खता का अतिशय सूचित करना। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि शब्द के अर्थ का न तो कोई निश्चित रूप है और न एक स्तर।

उत्तर—इस प्रश्न के द्वारा प्रश्न कर्ता अपनी दुर्बुद्धि का परिचय देकर यह भी स्पष्ट करता है कि उसको व्याकरण शास्त्र का स्वल्प ज्ञान भी नहीं है। एक

(१) देखो भाषा-विज्ञान, भोलानाथ तिवारी पृष्ठ २३२।
(२) देखो सरल भाषा-विज्ञान, गौतम पृष्ठ २६०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सञ्ज्ञक या सञ्ज्ञी को दूसरे सञ्ज्ञक या सञ्ज्ञी की सञ्ज्ञा नहीं दी जा सकती है। भोल नाथ (मनुष्य) और बैल (पशु) दो विभिन्न सञ्ज्ञकों की सञ्ज्ञायें हैं। अतः भोलानाथ (मनुष्य) को बैल (पशु) की सञ्ज्ञा नहीं दी जा सकती है। उपरोक्त वाक्य में 'बैल' शब्द सञ्ज्ञा नहीं है अपितु विशेषण है। इस वाक्य में प्रश्नकर्ता अपनी बाल बुद्धि से बैल का गौण अर्थ मूर्ख समझता है, परन्तु बैल मूर्ख नहीं होता हैं। उपरोक्त वाक्य में शब्द बैल (वि०) का साधु शब्द बाल (वि०) हैं जिसका अर्थ सरस्वती भाषा अर्थात संस्कृत शब्द कोश में इस प्रकार भी है— अज्ञ, वालेय, ज्ञानहीन, अनभिज्ञ, निर्बुद्धि, दुर्बुद्धि, मूढ, मूर्ख आदि। नीरसायां रसं बालो बालिकायां विकल्पयेत। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ११६२, इस वाक्य में यह शब्द अपने अभिधा अर्थों में प्रयोग हुआ है। अत: यह स्पष्ट है कि शब्द का अर्थ नित्य है उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। बैल वि० शब्द का साधु शब्द भेल वि० भी हो सकता है, जिसका अर्थ भी मूर्ख, निर्बुद्धि, दुर्बुद्धि आदि हैं। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ १२११।

गधा

प्रश्न—'उदयनारायण गधा है। इस वाक्य में गधे का मुख्यार्थ गृहीत नहीं होता है। यहां भी गधे का मुख्य अर्थ (पशु) बाधित हैं और उसका गौण अर्थ (निर्गुण, दुर्जात, निर्बुद्धि) विवक्षित है।

उत्तर—इस प्रश्न के उत्तर को समझने के लिये देखो शब्द 'बैल' का उत्तर। हिन्दी (खरी बोली) में उपरोक्त वाक्य का उच्चारण इस प्रकार होगा—'उदयनारायण गधू है'। इस वाक्य में शब्द 'गधू' विशेषण है जिसका साधु शब्द 'गृधू' है और जिसका अर्थ सरस्वती भाषा में इस प्रकार है, अभद्र, निर्गुण, दुष्ट, दुर्जात, दुर्बुद्धि आदि। देखो आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृष्ठ ६६८। उपरोक्त वाक्य में भी यह शब्द अपने अभिधा अर्थ में प्रयोग हुआ है। अत: इस शब्द के अर्थ में भी कोई परिवर्तन नहीं है।

काला नाग

प्रश्न—निष्ठुर व्यक्ति को काला नाग क्यों कहते हैं।

उत्तर—काला नाग में शब्द काला (वि०) है, जिसका अर्थ है पीड़ा, हिंसा, हानि, अपकार देना। देखो आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृष्ठ ५६५। नाग: (सञ्ज्ञा) शब्द का अर्थ है, निष्ठुर, निर्दय, क्रूर व्यक्ति। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ८८४। अत: 'काला नाग:' का अर्थ है, अपकार, पीड़ा, हिंसा, हानि पहुंचाने वाला निष्ठुर, निर्दय या क्रूर व्यक्ति। यह शब्द अपने अभिधा अर्थ में ही प्रयोग होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरस कहानी

प्रश्न—कहानी में कोई तरल द्रव्य नही टपकता कि उसे हम सरस कहते हैं।

उत्तर—आपके प्रश्न से स्पष्ट है कि आप भ्रमवश इस शब्द को स—रस: (सञ्ज्ञा) समझते हैं यह शब्द सरस्वती भाषा का विशेषण है, जिसका अर्थ संस्कृत शब्द कोशों में इस प्रकार दिया हुआ है—प्रेमपूर्ण, प्रणयोन्मत, रसिक, भावपूर्ण, आसक्तचित्त, रागान्वित, रुचिकर आदि। अत: इसी प्रकार की कहानी को सरस कहानी कहते हैं।

नीरस काव्य

प्रश्न—काव्य में तरल द्रव्य होना चाहिये जिसके नहीं रहने पर हम उसे नीरस कह सकते हैं।

उतर—इस प्रश्न द्वारा प्रश्न कर्ता ने अपनी निर्बुद्धि और अज्ञानता का पूर्ण रूप से परिचय दिया है। सरस्वती भाषा में नीरस एक यौगिक विशेषण शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—निर्—रस। काव्य में रस का अथ है, भाव:, राग: आदि। नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति—काव्यप्रकाश। रस जीवन का सार और आनन्द है जिसकी हमें आत्मा के विकास, सामूहिक उल्लास, व्यापक संवेदनशीलता के प्रसार तथा मानसिक संस्कार के लिये अनिवार्य आवश्यकता रही है। विद्वानों ने रस की गम्भीर विवेचना की है। नाटक मे आठ रस माने गये हैं, शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत। काव्य में शान्त रस को जोड़कर नौ रस माने गये हैं। कभी कभी वात्सल्य और भक्ति रसों को जोड़कर इनकी सङ्ख्या ग्यारह बताई जाती है। परन्तु प्रमुखतया शास्त्रीय विधि से काव्य में रस नौ ही हैं। आचार्य विश्वनाथ ने रस को काव्य का आत्मा ही माना है, वाक्यं रसात्मकं काव्यम। अत: जिस काव्य में उपरोक्त रसों में से कोई रस न हो, या काव्य दृष्टि से रमणीय न हो या जो अरुचिकर हो उसे नीरस काव्य कहते हैं। अत: यह शब्द भी अपने अभिधा अर्थ में प्रयोग होता है। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ९१० और १३८१।

मधुर सङ्गीत

प्रश्न—मधुर आस्वाद्य वस्तु हुआ करता है। सङ्गीत खाने का वस्तु नहीं है, अत: सङ्गीत की मधुरता का कोई अर्थ नही होता।

उत्तर—सरस्वती भाषा में मधुर (वि०) शब्द के अनेक अर्थ हैं। सङ्गीत के प्रसङ्ग मे 'मधुरं' का अर्थ है, सुस्वर, मधुस्वर, मञ्जुल, सुरीला, प्रिय, श्रुतिमनोहर आदि। पुंस्कोकिलोऽयं मधुरं चुकूज, कुमार सम्भव ३.३२। अत: मधुर सङ्गीत शब्द भी अपने अभिधा अर्थ मे प्रयोग होता है। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ १२३०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्जीव भाषा

प्रश्न—'निर्जीव' प्राणी हुआ करते हैं किन्तु इस विशेषण का प्रयोग हम भाषा के लिये करते हैं, जिसमें जीवन नाम का वस्तु हो नहीं होता।

उत्तर—निर्जीव का अर्थ प्राणरहित या मृतक है, परन्तु भाषा के सम्बन्ध में इस विशेषण का अर्थ है अशक्त, उत्साहहीन। अतः निरुत्साह भाषा को निर्जीव भाषा कहते हैं और यह शब्द अपने अभिधा अर्थ में ही प्रयोग होता है। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ९०९।

मोम या पत्थर का दिल

प्रश्न—किसी के कोमल हृदय को देखकर हम कह देते हैं कि उसका 'दिल मोम का' है या कठोर होने पर उसका 'दिल पत्थर का' है। परन्तु दिल मोम या पत्थर का नहीं हो सकता है।

उत्तर—'दिल' म्लेच्छ भाषा का शब्द है। इसका साधु शब्द हृदय है। सरस्वती भाषा में 'हृदय' शब्द का प्रथम अर्थ है, आत्मा, मन। हृदये दिग्धशरैरिवाहतः, कुमारसम्भव ४, २५। इसी प्रकार हमारी भाषा में अयोहृदयः, पाषाण हृदय आदि शब्द प्रचलित है। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ १७६२। 'मोम' शब्द का साधु शब्द 'मधु' है। मधु शब्द का मोम के अर्थ में मनुस्मृतिः १०,८८ में भी प्रयोग हुआ है। सरस्वती भाषा में शब्द 'मधु' वि० का अर्थ है, मधुर, सुखद, रुचिकर, आनन्द युक्त, आनन्द दायक। आपाययति गोवन्दपादपद्मासवं मधु, भागवत १.१८.१२। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ १२२८। सरस्वती भाषा में 'मोम का दिल' का साधु रूप 'मधु हृदय' होता है, जिसका अर्थ है, सुखद, आनन्द दायक मन। हमारी भाषा में भी यह शब्द अपने अभिधा अर्थ में प्रयोग होता है।

सरस्वती भाषा में 'पत्थर का दिल' का साधु रूप 'पाषाण हृदय' (वि०) शब्द है, जिसका अर्थ है, क्रूर, निष्ठुर, निष्करुण, निर्दय, आदि। देखो आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृष्ठ १०१७। यह शब्द भी अपने अभिधा अर्थ में हमारी भाषा में प्रचलित है।

टेढ़ा मनुष्य

प्रश्न—अलङ्कार के कारण टेढ़ा शब्द विशेष अर्थ देने लगता है। अलङ्कृत भाषा के कारण टेढ़ा आदमी छली और प्रपञ्ची व्यक्ति का अर्थ देने लगता है।

उत्तर—प्रश्न करने से पूर्व किसी काव्य शास्त्र में अलङ्कार का अर्थ समझ लो। व्यर्थ प्रलाप से कोई लाभ नहीं होता। 'टेढ़ा मनुष्य' में न कोई अलङ्कार है और न अर्थ परिवर्तन। हिन्दी (खरी बोली) में टेढ़े व्यक्ति को 'टञ्च व्यक्ति' भी कहते हैं। 'टञ्च' का साधु शब्द तिर्यच या तिर्यञ्च' वि० है। इस शब्द का एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थ है, जिह्म, कपटी, धूर्त, वञ्चक, शठ आदि । देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ७७३ । शब्द 'टञ्च व्यक्ति' या टेढा मनुष्य हमारी भाषा में अपने अभिधा अर्थ में ही प्रयोग होता है ।

मीठी या कड़ुई बात

प्रश्न—किसी पदार्थ का स्वाद ही 'मीठा' या 'कड़ुआ' होता है । बात खाई या चखी नहीं जाती है । अतः अलङ्कारिक प्रयोग के कारण ही बात को मीठी या कड़ुई कहते हैं ।

उत्तर—बात को मीठी या कड़ुई कहने में न कोई अलङ्कारिक प्रयोग है और न अर्थ परिवतन । महर्षियों ने रस (स्वाद) के छः भेद बतायें हैं—मधुर, लवण, तिक्त, कषाय, अमल (खट्टा) और कटु देखो महाभारत १२.१८४.३१ । बात के लिये मीठी या कड़ुई विशेषणों का तो प्रयोग होता है, परन्तु बात के लिये लवण, तिक्त, कषाय या अमल शब्दों का प्रयोग नहीं होता है । इसी प्रकार किसी कामिनी के लिये केवल 'नमकीन' (वि०) का प्रयोग होता है । इसका यही कारण है कि यह सभी विशेषण अपने अपने अभिधा अर्थों में प्रयोग होते हैं, इनके प्रयोग में कोई अलङ्कार नहीं होता है । 'मीठी बात' का साधु शब्द 'मधुर वार्ता' है । सरस्वती भाषा में 'मधुर' का एक अर्थ यह भी है—सुखद, मनोरञ्जक, रुचिकर, जो सुनने में भली जान पड़े, सौम्य, प्रिय आदि । 'मधुर' शब्द से बने यौगिक शब्दों के अर्थ से 'मधुर' का यह अर्थ स्पष्ट है; यथा मधुर-अक्षर (मधुराक्षर) वि० का अर्थ है सुस्वर, मधुर ध्वनि वाला, रसीला । मधुर-आलाप (मधुरालाप) वि० अर्थात मधुर शब्दों का उच्चारण करना । मधुर-आलापः (मधुरालापः) सञ्ज्ञा, अर्थात मधुर या सुरीले स्वर । देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ १२३० ।

'कड़ुई बात' का साधु शब्द 'कटु वार्ता' है । सरस्वती में 'कटु' का एक अर्थ है, व्यङ्ग्यात्मक, अरुचिकर, अप्रिय, श्रवणकटु नृपाणमेकवाक्यं विवव्रुः रघुवंश ६.८५; असूयक, ईर्ष्यिन्, मत्सरिन आदि । अतः 'कटु' शब्द अपने अभिधा अर्थ में ही प्रयोग हुआ है । देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ५२० ।

नमकीन स्त्री

प्रश्न—किसी भी कामिनी का स्वाद नमकीन नहीं होता है । अलङ्कारिक प्रयोग के कारण ही सुन्दर स्त्री (कामिनी) को नमकीन कहते हैं ।

उत्तर—शब्द नमकीन' (वि०) का साधु शब्द 'लावणिक' वि० शब्द है । इस शब्द का एक अर्थ नमकीन भी है और दूसरा अर्थ—प्रिय, सुन्दर, रमणीय, कमनीय, आदि भी हैं । अतः नमकीन स्त्री का अभिधा अर्थ रमणीय या कमनीय स्त्री है । इसी प्रकार जब हम कहते हैं कि इस स्त्री में बहुत नमक है तो यहां 'नमक' शब्द सञ्ज्ञा, पु० होता है और इस शब्द का साधु शब्द 'लावण्यम्' सञ्ज्ञा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पु० शब्द है, जिसके अर्थ है, सौन्दर्य, मनोहरता, रामणीयकम् आदि; तथापि तस्या लावण्यं रेखया किंचिदन्वितम्—शकुन्तलम् १०/३८, कुमार सम्भव ७/१८ देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ १३६४/१३६५।

गहरी बात

प्रश्न—कूप, नदी, समुद्र आदि ही गहरे होते हैं। अलङ्कार प्रयोग तथा अर्थ परिवर्तन के कारण ही 'गहरी बात' कहते हैं।

उत्तर—'गहरा' वि० शब्द का साधु शब्द 'गभीर' वि० है। 'भ' महाप्राण का उच्चारण 'ह' हो जाता है। अतः उच्चारण विपर्यय के कारण ही 'गभीर' शब्द 'गहरा' का रूप धारण करता है। शब्द 'गभीर' का एक अर्थ यह भी है—महत्त्वपूर्ण, गुप्त, रहस्यपूर्ण, मेधावी, दुर्बोध, दुर्गाह्य आदि देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ६४८, आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश पृष्ठ ३३४। इस शब्द के प्रयोग में न कोई अलङ्कार है और न अर्थ परिवर्तन है। यह अपने अभिधा अर्थ में ही प्रयोग हुआ है।

रूखी हंसी

प्रश्न—रूखी हंसी का क्या अर्थ है?

उत्तर—'रूखी हंसी' में रूखी वि० का साधु शब्द 'रूक्ष' वि० है। इस शब्द का एक अर्थ है—क्रूर, निष्करुण, कटु, निर्दय, विप्रिय। इस शब्द के प्रयोग में भी कोई अलङ्कार नहीं है और यह भी अपने अभिधा अर्थ में प्रयोग होता है। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ १३४६।

अलङ्कारिक प्रयोग के कारण अर्थ परिवर्तन के उदाहरणार्थ जिन अन्य शब्दों को भाषा-वैज्ञानिकों ने प्रस्तुत किया है, अब हम उन सभी शब्दों के साधु शब्दों तथा उनके अर्थ पर प्रकाश डालकर यह स्पष्ट करेंगे कि हमारी भाषा में वह सभी शब्द अपने अपने अभिधा अर्थों में प्रयोग होते हैं और उनमे कोई अलङ्कार प्रयोग नहीं होता है। इस प्रकार इन तथाकथित भाषा-वैज्ञानिकों के द्वारा बताये गये शब्दों के अर्थ परिवर्तन के सिद्धान्त का पूर्ण रूपेण खण्डन हो जाता है। बहुत से शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं। भाषा-वैज्ञानिक यह दोषरोपण कर सकते हैं कि वह यह कैसे समझें कि किस प्रसङ्ग में शब्द का कौन सा अर्थ होगा। हम बता चुके हैं कि शब्द अर्थ और उनका सम्बन्ध सिद्ध (नित्य) होता है। महाभाष्य में पतञ्जलि ने इस प्रश्न के उत्तर में कहा है 'लोकतः', अर्थात यह उस शब्द के लोक व्यवहार से जाना जाता है। लोक अर्थ को बुद्धि का विषय बनाकर (प्रयोग करने वाले) शब्दों का प्रयोग करते हैं। लोक व्यवहार से अर्थ द्वारा स्वरूप-बोधन (अर्थ-ज्ञान) के लिये शब्द का प्रयोग किया जाता है व्याकरण का आश्रय लिये बिना ही बुद्धि द्वारा पदार्थ को पकड़ कर लोग शब्दों का प्रयोग करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आलू या गन्ने की आँख :

हिन्दी खरी बोली में आलू या गन्ने की आँख नहीं 'अङ्खुवा' कहते हैं, जिसका साधु शब्द अङ्कुर है। यह अङ्कुर बढ़कर आलू या गन्ने का पौधा बन जाता है। यह शब्द अपने अभिधा अर्थ में ही प्रयोग होता है।

सारङ्गी के कान :

'शब्द 'कान' का साधु शब्द 'कर्ण: या कर्णक:' है, जिसके अर्थ हैं, कान, कुण्डे, हत्ये, प्रतान। प्रतान मूत के समान वाली लता को कहते हैं जो चक्कर खाकर वृक्ष आदि के सहारे चढ़ती है। सारङ्गी के कुण्डे या प्रतान को ही 'कान' कहते हैं. अत: यह शब्द भी अपने अभिधा अर्थ में प्रयोग होता है। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ५३८, ५३९।

अरे के दाँत :

हिन्दी (खरी बोली) में दान्त नहीं कहते हैं अपितु आरे के दान्ते कहते हैं। दान्त का साधु शब्द 'दन्त:' है, जिसके अर्थ हैं, दान्त, दान्ते (बाण या किसी शस्त्र की नोक)। आरे में भी नोक के समान दान्ते होते हैं। अत: यह शब्द भी अपने अभिधा अर्थ में प्रयोग होता है। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ८००।

घड़े का मुंह :

शब्द मुंह का साधु शब्द 'मुखम्' है। नरस्वती भाषा में इस शब्द के २२ अर्थ होते हैं। उनमें से इस शब्द का एक अर्थ है, सबसे ऊपर का भाग। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ १२७४। अत: यह शब्द यहाँ भी अपने अभिधा अर्थ में प्रयोग हुआ है।

बर्तन का पेट :

किसी मनुष्य या पशु के पेट (उदर) के अर्थ में शब्द 'पेट' का साधु शब्द 'पटीरम्' है—आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ९५३। किसी बासन के पेट के अर्थ में शब्द पेट' का साधु शब्द 'पेटकम्' है, जिसका अर्थ है, मानम् या परिमाणम्', आप्टे संस्कृत-इङ्गलिश कोश पृष्ठ १०४६। यह दोनों शब्द पृथक पृथक हैं और अपने अपने अभिधा अर्थ में प्रयोग होते हैं।

छन्द का चरण या पद :

सरस्वती भाषा में शब्द 'चरण' का एक अर्थ पैर है, परन्तु इसका एक अन्य अर्थ है—किसी छन्द या पद्य का चौथा भाग, आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृ० ६९९। इसी प्रकार शब्द 'पद' का एक अर्थ पैर है और दूसरा अर्थ है, किसी छन्द या पद्य का चौथा भाग, आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ९५९। शब्द 'चरण' और 'पद' यहां भी अपने अभिधा अर्थ में प्रयोग हुये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्धा कुआं :

शब्द "अन्धा कुआं' का साधु शब्द 'अन्ध कूप:' है, जिसका अर्थ है, कुआं जिसका मुंह उसके पास घास आदि उगने के कारण दिखाई न दे, देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ १२८। यह शब्द अपने अभिधा अर्थ में ही प्रयोग होता है।

पहाड़ की चोटी :

शब्द 'चोटी' स्त्री० का साधु शब्द 'चूड़ा' स्त्री० है जिसका एक अर्थ शिखर है, देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ७१४। यह शब्द अपने अभिधा अर्थ में ही प्रयोग होता है।

लगती बात :

लगती बात में शब्द 'लगती' कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द लगना का रूप नहीं है, अपितु यह एक विशेषण शब्द है जिसका साधु शब्द-लगित वि० है जिसका अर्थ है, सम्बन्ध युक्त, देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ १३५५। यह शब्द इस प्रसङ्ग में अपने अभिधा अर्थ में ही प्रयोग होता है।

चुभती बात :

चुभती बात में भी शब्द 'चुभती' कर्मवाचक सञ्ज्ञा शब्द 'चुभना' का रूप नहीं है। सूई से समान बात चुभ नहीं सकती है। यहां 'चुभती' विशेषण शब्द है, जिसका साधु शब्द 'क्षुभित' वि० है जिसका अर्थ है, आकुलित, भयान्वित या क्रोधनीय। यह शब्द इस प्रसङ्ग में अपने अभिधा अर्थ में ही प्रयोग हुआ है।

नाम-करण

भारतीयों का नामकरण सरस्वती भाषा के शब्दों और भारत के महापुरुषों के नामों के आधार पर ही होता था। वह नाम प्राचीन काल से भारत में प्रचलित हैं और आज तक उन्हीं नामों के अनुसार व्यक्तियों के नाम रखने की प्रथा है। उच्चारण विपर्यय के कारण उन नामों के अक्षर-विन्यास अब इतने भ्रष्ट हो गये हैं कि आज वह नाम असभ्य और गवार समझे जाते हैं। परन्तु उन नामों के साधु शब्दों का ज्ञान करने से उनके प्राचीन काल के सुन्दर नामों का बोध हो जाता है। इस प्रकार के कतिपय नाम और उनके साधु नामों को उदाहरण के रूप में परस्तुत करते है—

कूड़ा मल—क्रूर मल्ल:	वेहू मल—व्युह: मल्ल:
भार्ना मल—वाहिनी मल्ल:	भूजन मल:—भू-जन्य: मल्ल:
माड़ू मल—मारुत मल्ल:	बारू मल—वरुण: मल्ल:
बानू मल—भानु मल्ल:	बहादर मल—बाहा-दृढ़ मल्ल:

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नियादर मल—नी-आदर मल्ल: रुडी मल—रुद्रिय मल्ल:

मोलहड मल—मूल्य हर मल्ल: धन्न मल—धनाढय मल्ल:

भारतीयों के कुछ नाम अभारतीयों के मुख में पड़ कर ऐसे प्रतीत होने लगते हैं जैसे कि वह नाम म्लेच्छ भाषा के शब्दों पर आधारित हों, परन्तु उनके साधु शब्दों का ज्ञान होने से वह भ्रम दूर हो जाता है, यथा—

मुनशी लाल = मनीषित् लाल।

खुशहाल सिंह = कुशल सिंह।

राम बख्श = राम वक्षस्, अर्थात राम जिसके वक्ष (हृदय) में हैं।

अपशब्द और उर्दू

हमारी भाषा इतनी प्रौढ़ तथा सामर्थवान है कि इसमें प्रत्येक विचार को व्यक्त करने के हेतु उचित शब्द विद्यमान हैं। अपनी भाषा में हम जितने भी शब्द व्यवहार में लाते हैं उनको हम उनके वास्तविक अर्थों में प्रयोग करते हैं तथा उन शब्दों के साधु अर्थ आज भी संस्कृत के प्रामाणिक शब्द कोशों में उपलब्ध हैं। हम अपनी भाषा में किसी भी शब्द को निर्थक प्रयोग नहीं करते हैं। जब हम कुछ शब्दों को अपशब्दो (गाली) के अर्थ में प्रयोग करते हैं तो भी हम उन शब्दों को उनके साधु अर्थों में ही व्यवहार में लाते हैं। जब आक्रमणकारी म्लेच्छ भारत में रहने लगे तो उन्होंने हमारी भाषा के अपशब्दों (गलियों) को सुना, परन्तु उन शब्दों के साधु अर्थों का ज्ञान न होने के कारण, उन्होंने उन शब्दों के अर्थ का अनर्थ कर डाला और उन्होंने उन शब्दों को अनर्थों में प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। जिन अर्थों में वह शब्द आज प्रयोग होते हैं उनके वह अर्थ हो ही नहीं सकते हैं।

किसी को अपशब्द के अर्थ में शब्द ससुर अर्थ श्वशुर, पत्नी का पिता और शब्द ससुरी—अर्थ श्वश्रू, पत्नी की माता समझा जाता है और इन शब्दों ने गालियों का रूप धारण कर रक्खा है। हमारी संस्कृति और सभ्यता के अनुसार श्वशुर: (पत्नी का पिता) और श्वश्रू: (पत्नी की माता) सम्मानीय तथा आदरनीय व्यक्ति हैं और उनको आर्य तथा आर्या शब्दों से सम्बोधित किया जाता है।

प्राचीन काल से भारतवर्ष में श्वशुर: पितृ तुल्य है तथा श्वसुर: उतना ही आदरनीय है जितना कि पिता। राम के लिये दशरथ और जनक समान आदरनीय थे। म्लेच्छ जो बलात्कार, भारतीय परिवारों की स्त्रियों और कन्याओं का अपहरण कर लेते थे उन्हें अपहरित स्त्रियों के परिवार से कोई सम्मान प्राप्त नहीं होता था। अत: म्लेच्छों को ससुर और ससुरी के साधु शब्दों के अर्थ का ज्ञान ही नहीं हो सका और वे इन शब्दों को अपशब्दों के अर्थ में प्रयोग करने लगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपशब्द के अर्थ में ससुर शब्द का साधु शब्द स-असुर: अर्थात असुर के समान या राक्षस है। इसी शब्द का स्त्रीलिङ्ग शब्द स-असुरी है जिसका अर्थ असुरी के समान या राक्षसी है। ससुर शब्द का श्वशुर: के अर्थ में स्त्रीलिङ्ग शब्द ससुरी नहीं है अपितु श्वश्रू: (सासू) होता है।

एक और शब्द 'च्युत' का उदाहरण देते हैं। हम अपनी भाषा में इन शब्दों को निरन्तर व्यवहार में लाते हैं—यथा ज्ञान-च्युत, पद-च्युत, संस्कार-च्युत, च्युत-तः आदि। 'च्युत' शब्द का एक वाक्य में प्रयोग इस प्रकार है—कुछ व्यक्ति इस प्रकार शिक्षा देते हैं जिससे प्रतीत होता है कि उनकी स्वतन्त्र विचार-धारा और मस्तिष्क की प्रतिभा च्युत हो चुकी है। शब्द 'च्युत' का अर्थ है—गिरा हुआ, दूर किया, गया, बाहर निकाला गया। 'त:' के अनेक अर्थ (१) चोर (२) असभ्य, अशिष्ठ, (३) दुष्ट, दुर्जात, पापी, दुरात्मा आदि। अत: शब्द "च्युत" और "च्युत-त." को भी हम उनके साधु अर्थों में अपशब्दों के रूप में प्रयोग करते हैं। परन्तु म्लेच्छों ने, जिनकी सभ्यता अश्लील शब्दों पर आधारित है, उन शब्दों के अर्थ नारी को जननेन्द्रिय ही समझा। इसी अर्थ के अनुसार उन्होने माता, भगिनी, पुत्री आदि के जननेन्द्रिय के आधार पर अपशब्दों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया और उनकी भाषा में इस प्रकार के अनेक अशलील शब्द प्रचलित हैं। प्रत्येक व्यक्ति गर्भ धारण करने के पश्चात ही जन्म लेता है। अत: इस प्रकार के शब्द अपशब्द नहीं हो सकते हैं और उपर्युक्त अर्थों में उन शब्दों का प्रयोग पूर्णतया अनर्गल और निरर्थक है। हम इसी प्रकार के अन्य शब्दों का उदाहरण देना उचित नहीं समझते हैं, पाठक उनके अर्थ संस्कृत शब्द कोशों में देख सकते हैं।

अरब की विचारधारा, सभ्यता और साहित्य जो फारसी के सहयोग से भारत में उर्दू द्वारा प्रतिबिम्बित हुआ, उसके अध्ययन से आभास होता है कि उन देशों में प्रौढ़ बालकों के साथ समलैङ्गिक सम्बन्ध (गुदा मैथुन) होता है। अरब देशों की दण्डनीतिविधि के अनुसार इस प्रकार के सृष्टिक्रम विरुद्ध सम्बन्ध दण्डनीय नहीं हैं। साधारण रूप से मानव का स्वभाविक आकर्षण मानवी के प्रति होता है, परन्तु उनका आकर्षण अप्राकृतिक, अस्वभाविक और विपरीत दिशा में है। यही कारण है कि प्रेमिका के अर्थ में उनकी भाषा में माशूक, महबूब, दिलबर, दिलदार, दिलरुबा, सनम आदि अनेक अशिष्ट और अश्लील शब्द प्रचलित हैं जो सभी शब्द पुल्लिङ्ग वाची हैं। उनके नामकरण भी अधिकांश उन्हीं अशलील शब्दों के आधार पर होते हैं। इसी प्रकार के विचारों पर आधारित उर्दू साहित्य तथा कविता की रचना होती है। अपने कथन की पुष्टि के हम उर्दू में एक प्रसिद्ध कवि इकबाल की एक विख्यात गजल (कविता) का एक चरण उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न वो इश्क़ में रही गर्मियाँ न वह हुस्न में रही शोखियां ।
न वो गज़नवी में सज़ाक है न वो ख़म है ज़ुल्फे अयाज़ में ।।

इससे अधिक स्पष्ट शब्दों में वह अपने विचार और क्या व्यक्त कर सकता था । अयाज़ नाम का एक नवयुक था जो महमूद गजनवी का माशूक़, महबूब तथा विजन सेवक था । उपर्युक्त चरण में महमूद गजनवी के इश्क़ तथा अयाज के हुस्न (सौन्दर्य) की चर्चा की गई है । आज भी चित्रपट आदि सङ्गीत के उर्दू भाषा के गीतों में 'मेरा महबूब' 'मेरा सनम' आदि शब्दों का अधिक प्रयोग होता है । बृहस्पतिवार के दिन उनके सिद्धजनों की क़बरों पर जो उत्सव होते हैं, वे वेश्याओं, डोमों आदि के द्वारा अशलील और अशिष्ट गीतों के गाने के सम्मेलन ही होते हैं । इस प्रकार के पर्व पर उन स्थानों में पणस्त्रियां अपने व्यापार के हेतु एकत्र हुआ करती हैं जो अपनी कला और सौन्दर्य की विज्ञापना उन कब्रों पर करती हैं । कुछ ही दशाब्दियों पूर्व मुसलमान नवाबों के नवयुवक संस्कृति तथा सभ्यता की शिक्षा ग्रहण करने पणाङ्गनाओं के कोठों पर भेजे जाया करते थे । प्रतीत होता है कि उपर्युक्त विशेष शैली और अपशब्द, जो भारतीय संस्कृति, सभ्यता और साहित्य में हृदयङ्गम नहीं हो सकते है, को नवजीवन प्रदान करने के हेतु ही आज भारत में अरब रक्त के मुसलमानों द्वारा उर्दू भाषा के लिये प्रबल आन्दोलन हो रहा है । उनके इस आन्दोलन में कतिपय काशमीरी तथा अन्य परिवारों का, जो उसी संस्कृति और सभ्यता में जन्मे और पले तथा जो उसी में रुचि रखते हैं, नेतृत्व तथा सक्रिय सहयोग है । हम अपने देशवासियों को सावधान करते हैं कि पराजित होने के पश्चात स्वाधीनता प्राप्त हो सकती है परन्तु संस्कृति एक बार भी विनष्ट होने के पश्चात नवजीवित नहीं हो सकती है । भारत में उर्दू भाषा के नाम पर आन्दोलन द्वारा भारतीयों की संस्कृति और सभ्यता पर आघात हो रहा है, उसका सशक्त प्रतिरोध करना हमारा परम धर्म और कर्तव्य है । इस दशा में हमारे लिये यह अनिवार्य है कि हम अपनी भाषा में म्लेच्छ भाषा के किसी भी शब्द का प्रयोग न करें, तथा हमारी जिन पुस्तिकाओं में इस प्रकार के शब्दों का मिश्रण किया गया हो उनका हम अग्निदाह कर दें ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: २१ :

भारतीय विश्वविद्यालयों में भाषा-विज्ञान का इतिहास

स्वतन्त्र विचार धारा का लोप

भारतवर्ष का दुर्भाग्य रहा है कि विज्ञन कुछ समय से इसके निवासितों की स्वतन्त्र चिन्तन धारा लुप्त होती गई। पहले मुसलमान प्रभाव के कारण कुछ मनोवल में क्षीणता आई परन्तु अङ्गरेज महाप्रभुओं ने तो आकर इस देश की मौलिकता को ही सर्व प्रकारेण नष्ट करने का प्रयास किया। पाश्चात्य जगत के सम्पर्क में आने पर वहाँ के विद्वानों ने जो कुछ इस सम्बन्ध में लिखा उसमें अधिक भाग अज्ञान मूलक ही है, वह लेखक चाहे ग्रियर्सन हो अथवा कीथ या मेकडौनल। योरोपीय विद्वानों ने हमें अपने देश को समझने और जानने के लिये अपने विचारों के अनुकूल प्रभावित किया। जो माप दण्ड उन्होंने निर्धारित किया हम उसी माप दण्ड के सहारे उनके समर्थन में अग्रसर हो गये। स्वतन्त्र चिन्तन और मौलिक प्रतिभा का ह्रास इससे अधिक और क्या होगा। हमने स्पष्ट रूप से दिखाया है कि ब्रिटिश शासन प्रणाली का मूल उद्देश्य विभाजन, वैमनस्य और पारस्परिक घृणा को जन्म देना था। ग्रियर्सन ने इन सिद्धान्तों को भारत का भाषात्मक सर्वेक्षण द्वारा बड़ी चतुरता से पोषित करके ब्रिटिश साम्राज्य की नीव को सुदृढ़ किया।

जहां तक अगरेजों का सम्बन्ध है हमें उनसे कुछ विशेष नहीं कहना है क्योंकि उन्होंने अपने देश, अपने राष्ट्र के हित में एक चतुर और कुशल अभिवक्ता की भांति असत्य को सत्य, अतथ्य को तथ्य प्रकट करने का पूर्ण प्रयास किया। परन्तु हमें खेद है, आश्चर्य है और दया आती है अपने उन भारतीय भाषा विज्ञानियों और इतिहासकारों पर जिन्होंने अंङ्गरेजों के माया जाल में अपने को फंसाकर और उनकी पटुता में अपनी बुद्धि को पूर्ण रूप से नष्ट करके जितनी शक्ति के साथ उन्होंने इस असत्यवाद को प्रमाणित करने का प्रयास किया उससे अधिक सत्य के साथ शपथ खाकर भारतीयों ने किया। भाषा विज्ञान के अध्यापकों (जो ग्रियर्सन के वाक्यों को महामन्त्र मानकर भारत को अलग अलग रूपों में देखने लगे हैं) की अपेक्षा तो हमारी ग्रामवासी जनता ही भली है जो उत्तर भारत में रहती हुई दूर दक्षिण में रामेश्वर के शङ्कर का दर्शन करने जाती है, बड़ी भक्ति के साथ उड़ीसा जगन्नाथ के मन्दिर के सम्मुख प्रणत होती है, और तमिलनाड, कर्णाटक तथा केरल के यात्री न जाने कौन सी श्रद्धा सञ्जोय ऋषिकेश से आगे उत्तर भारत में बद्रीनाथ के दर्शन के लिये कितने कष्टों के साथ बढ़ते चले जाते हैं। भाषा विज्ञान के इन अध्यापकों, (जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिक्षित होते हुये भी ग्रियर्सन के चेले बनकर देश की एकता को नष्ट कर रहे हैं) से तो वह जनता धन्य है जो अशिक्षित होते हुए भी राष्ट्र की एकता को जीवित रखे हुये है।

भाषा की एकता का नष्ट

भारत की भाषा सम्बन्धी एकता को नष्ट करने का प्रयास सदैव श्वेत जाति के शासक करते रहे। इङ्गलैण्ड के विश्वविद्यालयों में इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु भाषा-विज्ञान के विभागों में सहस्त्रों मील दूर बैठकर हिन्दी बङ्गाली, महाराष्ट्री, तमिल आदि भाषाओं पर सर्वेक्षण करना आरम्भ किया जिसके पीछे सत्य शोध की भावना नहीं थी अपितु राजनैतिक अस्तित्व को चिरकाल तक जीवित रखने की लालसा। भारत के प्रति द्वेषपूर्ण तथा हीन भावना प्रसार में षड्यन्त्रकारी होते हुये यूरोप के भाषा-वैज्ञानिकों तथा ईसाई धर्म प्रचारकों ने भाषा-विज्ञान के आधार पर अपनी कुत्सित मनोदशा का परिचय देते हुए कहा है कि वह उस दिन का स्वप्न देखते हैं जब कि ईसाई धर्म का चिह्न (क्रौस) भारत के प्रत्येक भवन और घर पर स्थापित होगा।

अङ्गरेज जाति प्रारम्भ से ही एक कुशल और पटु जाति है और उसने यह चाहा कि अङ्गरेजों के अतिरिक्त भारत से ही कुछ ऐसे व्यक्ति मिलें जो उनकी योजना को सफल बनावें और ऐसे बीज बोवें कि उनका उद्देश्य सफल हो। इस उद्देश्य की सफलता में वह साधन बनाना चाहते थे ऐसे भारतीयों को जिनका राष्ट्रीय गौरव नष्ट हो, शिक्षित तो हों परन्तु अङ्गरेजों के मानस पुत्रों के रूप में जीवित रहें।

यह एक प्रथा है कि प्रत्येक देश में कुछ दुर्बल मनोदशा के व्यक्ति होते हैं। विदेशी आक्रमणकारी जब किसी देश को विजित करके उसमें प्रवेश करता है तो वह मानसिक दौरबल्य प्रभावित जन धन तथा पद के लोभ में आकर क्रीतदास की भांति उसके स्वागत में जयघोष करते हुये सामने आते हैं। वही दशा भारतीय इतिहासकारों और भाषा-विज्ञान के लेखकों और अध्यापकों की है जिनका स्वतन्त्र चिन्तन, आत्मय गौरव पूर्णतया नष्ट है। बात सत्य है और कटु, परन्तु कभी कभी किसी के प्रति कोई द्वेष की भावना न रखते हुए केवल शुद्ध हृदय से सत्य का दिग्दर्शन कराना राष्ट्रीय भावना को मुखरित और जागरित करना अपना उद्देश्य मानकर यह नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि कटु सत्य को सामने रक्खा जाय। ऐसे ही कटु सत्य को हम बड़ी निम्रता के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं।

यूरोपीय भाषा-वैज्ञानिकों का षड़यन्त्र

१८५७ की क्रान्ति के विफल होने के पश्चात भारत में ब्रिटिश साम्राज्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्ण रूपेण स्थापित हुआ और उसके साथ ही इङ्गलैण्ड के राजनयक नेताओं ने यह प्रयास किया कि विजित भारतीयों के मस्तिष्क पर यह पूर्ण छाप लगा दी जाय कि उनमें राष्ट्रीय गौरव और आत्म सम्मान की जो भावना है, वह निरस्त हो जाय। यही योजना राजनीति और धर्म प्रसारण दोनों क्षेत्र के कर्णधारों के सहयोग से निश्चित की गई तथा भारतीयों में उनकी प्राचीन भाषा और ज्ञान के सम्बन्ध में भ्रामक विचारों को जन्म देने का प्रयास किया गया। भारतीयों में भाषा सम्बन्धी उनकी जो देव वाणी से पुनीत परम्परा चली आ रही थी, उसको नष्ट करने की एक योजना बनाई गई। तत्कालीन भारत में अङ्गरेजी शासन के सहयोग से इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु भारत का भाषा सर्वेक्षण का एक षड़यन्त्र रचा गया और सर्वेक्षण के द्वारा जिन विष बुन्दुओं को भारतीय मस्तिष्क में डालने का प्रयास किया गया वह इस प्रकार थीं—

(१) भारत में रहने वाले सभी भारतीय अभारतीय हैं, वह प्राचीनकाल में अज्ञात देशों से आ आकर भारत में बसे हैं।

(२) भारत की संस्कृति और सभ्यता अपनी नहीं है, अपितु यह विभिन्न जातियों की एक मिश्रित सस्कृति है।

(३) आधुनिक भारतीय भाषायें सरस्वती (देववाणी) से पृथक विकसित भाषायें हैं और अपने को सबल और समर्थ बनाने के लिये उन्हें सरस्वती (संस्कृत) शब्दों को ग्रहण नहीं करना चाहिये।

भारत का भाषा-सर्वेक्षण नामक ग्रन्थ की भूमिका में बङ्गाली भाषा के सम्बन्ध में जो विषालु विचार प्रकट किये गये हैं उनको हम ग्रियर्सन के शब्दों में उदधृत करते हैं—

"पिछली शती से मुद्रणकला के प्रसार तथा शिक्षा के प्रचार से कतिपय भाषाओं में तत्सम शब्दों के प्रयोग का एक फैशन सा चल पड़ा है। उन्नीसवीं शती के आरम्भ में लिखी एक बङ्गाली की पुस्तिका के शब्दों की वास्तविक गणना करके यह दिखलाया गया है कि उसमें विशुद्ध शब्दों की सङ्ख्या अट्ठासी प्रतिशत है और उसमें से प्रत्येक शब्द अनावश्यक है, क्योंकि उनके स्थान पर प्रचलित घरेलू शब्दों का व्यवहार किया जा सकता था। इसका परिणाम भी बहुत बुरा हुआ है। भाषा यहां दो भागों मे विभाजित हो गई है। इनमें से एक तो सर्व साधारण द्वारा ग्राह्य भाषा है और दूसरी साहित्यिक भाषा है जिसका प्रयोग मुद्रित पुस्तकों में होता है और जो संस्कृत न जानने वालों के लिये दुर्बोध है। इस प्रकार अधिकांश जनता का साहित्य मे कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु साहित्य की रचना करने वालों के लिये यह साधारण सी बात है। जिस प्रकार देश के अधिनियमों का न जानना अनभिज्ञ लोगों का ही दोष है, उसी प्रकार जनता के लिये इस प्रकार की भाषा में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखित साहित्य यदि दुर्बोध है तो अन्ततः यह उसी का दोष है। जैसा कि सर अथेल्स्टेन बेन्स ने अपनी सन् १८९१ की जनगणना की रिपोर्ट में कहा है—बङ्गला में संस्कृतगर्भित होने का कारण अङ्गरेजों का हुगली में आबाद होना है क्योंकि इसी के परिणाम स्वरूप पूर्वी भारत में विद्वता एवं ज्ञान का पुनरुत्थान हुआ। मुगल-शासन-काल में जनता तथा पाण्डित्य की अपेक्षा के कारण जनभाषा या तो अपूर्ण या गंवारू थी या गलती से उसे ऐसा मान लिया गया था। अङ्गरेजी शासन काल में जनभाषा के तन्तुओं को सुदृढ़ करने की आवश्यकता थी किन्तु इसके बदले उस समय की शिक्षा के एकमात्र केन्द्र कलकत्ते में संस्कृत के पुराने और कमजोर ढांचे को अपनाया गया और इसी के शब्द लेकर पारस्परिक व्यवहार के लिए भाषा तैयार की गई। स्विफ्ट का कथन है कि जो दूसरों के अनुदान पर निर्भर करता है वह सदैव निर्धन रहता है और भाषा के रूप में बंगाली की ठीक यही दशा हुई। उसमें सदैव संस्कृत से ऐसे शब्द आते रहे जिन्हें वह पचा नहीं पाती और इस कारण उसका विकास अवरुद्ध हो गया। इस सम्बन्ध में बीम्स की उपमा तो और सुन्दर है। उनके अनुसार बङ्गला एक वयस्क बालक के समान है जो उस समय भी अपनी माँ का आञ्चल थामे हुये है तथा उसकी सहायता का इच्छुक है जब उसे स्वय अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिये। यह प्रसन्नता की बात है कि पिछले कुछ वर्षों से कतिपय अत्यन्त उत्कृष्ट बंगला लेखकों ने अपनी भाषा की इस कमजोरी का अनुभव किया है और गत पच्चीस वर्षों से ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है जिनमें संस्कृत के उन भारी-भरकम शब्दों का प्रयोग किया गया है जो उसकी प्रगति के मार्ग को अवरुद्ध किये हुये थे। यह बड़ा आशाप्रद शकुन है। किन्तु अब भी बहुत करना शेष है। संस्कृत के शब्द उधार लेने के सम्बन्ध में बङ्गला में बड़ा मोह है और तब तक इसमें देशानुकूल मनोहर एव ओजपूर्ण रचना सम्भव नहीं है जब तक कोई महान् प्रतिभाशाली व्यक्ति उत्पन्न होकर उसे इस इन्द्रजाल से मुक्त नहीं करता।"

किसी भी सामान्य बुद्धि के व्यक्ति की समझ में यह बात भली प्रकार आ सकती है कि कथ्य भाषा मे साधु शब्दों का विकृत रूप प्रचलित होता है, जिनको घरेलू शब्दों की सञ्ज्ञा दी जा सकती है, परन्तु जब वही शब्द साहित्यिक भाषा में व्यवहार में आते हैं तो उन शब्दों के साधु रूप का ही प्रयोग होता है। जिस भाषा की पुस्तिका में ८८% शब्द शुद्ध संस्कृत के हों तो सरलतापूर्वक यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शेष १२% शब्दों के विकृत रूप का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार यह पूर्णतया सिद्ध होता है कि बङ्गाली भाषा संस्कृत का ही विकृत रूप है। अङ्गरेजी शासन के षड्यन्त्र की पूर्ति के हेतु उपरोक्त कथन से अधिक स्पष्ट शब्दों में ग्रियर्सन और क्या लिख सकता था?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वीर क्रान्तकारी बङ्गाली नवयुवक

एक ओर अङ्गरेजी शासन भारतीयों के विरुद्ध एक षड्यन्त्र की रचना कर रहा था तो दूसरी ओर अङ्गरेजी शासन को उखाड़ फेंकने के लिये दत्तचित्त क्रान्तकारी बङ्गाली नवयुवक संलग्न थे। बङ्गाल में ही बङ्किम चन्द्र जैसे सबल लेखक जन्म ले चुके थे जो अपने उच्च कोटि के काव्य, नाटक तथा उपन्यासों के माध्यम से राष्ट्रीयता का सञ्चार कर रहे थे और ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह की ज्वाला फूंक रहे थे। बङ्किम बाबू के गीत 'वन्दे मातृम्' ने तो राष्ट्रीयता और विद्रोह की लहर दौड़ा दी थी जिसमें कहा गया है—मां तुम अबला कहां हो, तुम्हारी तीस करोड़ सन्तानों के हाथों में सात करोड़ कृपाणो हैं।

भारत का भाषा सर्वेक्षण के विचार

भारत का भाषा सर्वेक्षण की भूमिका में जो विचार व्यक्त किये गये हैं उनमें ग्रियर्सन तो केवल नाम मात्र के लिये है। इन विचारों की रचना ब्रिटिश विश्विद्यालयों के भाषा वैज्ञानिकों तथा यूरोपीय पादरियों ने अपने कतिपय स्वरचित सिद्धान्तों के आधार पर बहुत पहले से कर रक्खी थी। अपव्ययी पुत्र की कथा के अनुवाद की भाषा से ग्रियर्सन ने यह निष्कर्ष कहां से निकाला कि समस्त भारतीय भारत के आदिम निवासी नहीं हैं अपितु प्राचीन काल से नेग्रिटो, द्रविड़, किरात और आर्य जातियों के झुण्ड अज्ञात देशों से आ आकर भारत में बसते रहे हैं?

अङ्गरेजों के मानस पुत्र

अपने दूषित विचारों को भारतीय का रूप प्रदान करने के लिये इङ्गलेण्ड के भाषा-वैज्ञानिकों को यह आवश्यकता हुई कि आत्मगौरव रहित, अभारतीय भावों से परिपूर्ण, भारतीय क्रीत दास प्राप्त हो, जो उनके विचारों को अपने मुख से कहे। दुर्भाग्य से सुनीति कुमार चाटुर्ज्या नामक एक बङ्गाली नवयुवक उन्हें प्राप्त हुआ। यह नवयुवक भारत से इङ्गलेण्ड (लण्डन) गया और वहां जाकर उसने 'बङ्गाली भाषा की उत्पत्ति और विकास' के नाम से एक शोधग्रन्थ की रचना की। विदेशी गौरव और डी॰ लिट् की उपाधि से वशीभूत होकर उसने अपने शोध ग्रन्थ में उन्हीं सब बातों को अक्षरशः अङ्कित कर दिया जो लण्डन के भाषा वैज्ञानिक चहाते थे। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि बङ्गाली भाषा की उत्पत्ति और विकास से सम्बन्धित ग्रन्थ बङ्गा भाषा में नहीं लिखा गया था अपितु अङ्गरेजी भाषा में लिखा गया था। परिहास की बात है कि सुदूर पश्चिम लण्डन में ब्रिटिश भाषा-वैज्ञानिकों (जिन्हें बङ्गा भाषा के एक भी शब्द का ज्ञान नहीं था) के अधीनत्व में बैठकर सुनीति कुमार बङ्गा भाषा की उत्पत्ति और विकास पर ता क्या विचार करते, परन्तु अङ्गरेज भाषा-वैज्ञानिकों द्वारा उन्हें भारत से अलगाव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और विभेदता को उत्पन्न करने के लिये मधु विष रूपी जो पेय दिया गया उससे पूर्ण प्रभावित होकर, रसमयी देववाणी के रूपान्तर बङ्गा भाषा जिसमें अट्ठासी प्रतिशत शब्द संस्कृत भाषा के सामान्यतया प्रचलित हों का उद्भव भी उसे विदेशी ज्ञात हुआ। उसी प्रभाव वश उन्होंने भारतीयों तथा भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में जो भ्रामक और अनर्गल प्रलाप अपने शोध ग्रन्थ में किये हैं वह केवल उन्हीं को शोभा दे सकते हैं। हिन्दी सुनीति कुमार चाटुर्ज्या की मातृ-भाषा नहीं है और न उन्हें हिन्दी का विशेष ज्ञान है। अत: हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में लिखने के लिये यह अधिकारी विद्वान नहीं है, परन्तु सुनीति कुमार ने एक पुस्तिका 'भारतीय-आर्य भाषा और हिन्दी' नामक लिखी है, जिसके प्रथम व्याख्यान में उसने वही विचार व्यक्त किये हैं जो उसके शोध-ग्रन्थ के मूल आधार हैं। इस पुस्तिका से उसके कुछ विचार हम उसी की भाषा में उद्धृत करते हैं—

"अत्यन्त प्राचीन काल में भिन्न भिन्न विदेशी जातियां अपनी विभिन्न संस्कृतियों को साथ लेकर भारत में आई हैं और यहां बसती गई हैं।"

'हमारे यहां की आदि-वासी नेग्रिटो या निग्रोवटु जातियां हैं। स्यात् ये भारत के प्राचीनतम निवासी हैं·······इन नेग्रिटो आदिवासियों के पश्चात पश्चिमी एशिया की आस्ट्रिक जाति के मनुष्यों का आगमन हुआ और उनके पश्चात द्रविड़ उसी पश्चिम दिशा से आये। आस्ट्रिक जाति के लोग प्राचीन भारत में 'निषाद' कहलाते थे और पहले युग के द्रविड़ लोग आर्यों के 'दास' और 'दस्यु' नामों से प्रसिद्ध थे। द्रविड़ों के बाद आर्य जातियां आई, और उत्तर तथा उत्तर-पूर्व से तिब्बती-चीनी लोग, जो प्राचीन भारत में 'किरात' कहलाते थे आये। भारतीय जातियों एवं भारतीय संस्कृति की मूलाधार यह चार जातियां थीं—निषाद, द्रविड, किरात और आर्य; परन्तु ये स्वयं भी आने के समय पूर्ण रूप से विशुद्ध या आमिश्रिभ नहीं कही जा सकतीं"।

'वैदिक, प्राचीन फारसी और अवेस्ता, ग्रीक, गौथिक तथा अन्य जर्मन, लैटिन, प्राचीन आइरिश तथा अन्य केल्ट बोलियां तथा स्लाव एवं बाल्टिक भाषाओं, आरमीनियन, हित्ती, एवं तुखारी भाषाओं के मूल उत्स-स्वरूप आद्य-भारतीय-यूरोपीय भाषा विभक्त रूप से एक जन समुदाय द्वारा बोली जाती थी। उन्हें भाषा-तत्त्वविदों ने 'विरोस' नाम दिया है···'विरोस' भारत-यूरोपीय कुल के अन्तर्गत गिनी जाने वाली विभिन्न भाषाओं के बोलने वाले बिलकुल पृथक-पृथक उद्गम एवं मानसिक गठन वाले आधुनिक जनों की भाषा के तत्त्व की दृष्टि से एक-मात्र पूर्वज सिद्ध होते हैं। यद्यपि वे उनके जन्मदाता पूर्वज न भी रहे हों। और अब तो हमारे लिये 'विरोस' किस प्रकार के थे, अथवा उनके वास्तविक सीधे वंशज आज कौन हैं, अथवा उनके शुद्धतम अवशेष कहां प्राप्त हो सकते हैं, यह सब पता लगाना भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असम्भव है । प्राचीन भारत की ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातियों को ही भारत
वर्ष में 'आर्य' नाम से प्रवेश करने वाली 'विरोस' की सच्ची सन्तान कहा जा सकता
है । इसी कोटि मे ईरान के आर्य भी आ जाते हैं ।''

आर्य-भाषा के अतिरिक्त ये उपजातियां अपने साथ कुछ वैदिक सूक्तों तथा
वैदिक पद्धतियों के धर्म तथा संस्कृति को भी अवश्य लाई थीं । इन भारतीय आर्यों
ने भाषा के सामञ्जस्य के अतिरिक्त विश्व के एक अत्यन्त अद्भुत जातिगत, धर्मगत
तथा संस्कृतिगत समन्वय का भी शिलान्यास किया, जिससे विश्व को हिन्दू जाति,
हिन्दू धर्म तथा हिन्दू संस्कृति के साथ-साथ वैदिक संस्कृत तथा पालि आदि प्राचीन,
तथा हिन्दी गुजराती, मराठी, बङ्गला, पञ्जाबी एवं अन्य और अर्वाचीन भारतीय
भाषाएं भी प्राप्त हुई ।''

विद पाठकों को इस प्रकार की कपोल कल्पना और मूर्खता पूर्ण जल्पना
का पूर्ण ज्ञान सुनीति कुमार की उपरोक्त पुस्तिका के अध्ययन से हो सकता है ।
यह विचार कुछ नये नहीं थे । इस प्रकार के विचार यूरोपीय लेखकों द्वारा अनेक बार
प्रसारित हो चुके थे और जिनका पूर्णतया खण्डन इसी पुस्तिका में हो चुका है ।
यूरोपीयों के विचार अब केवल एक भारतीय के मुख से कहलवाये गये थे ।

कलकत्ता विश्वविद्यालय का भाषा-विज्ञान विभाग—कलङ्क केन्द्र

अङ्गरेजों के मानस पुत्र सुनीति कुमार ने जब भारतीयों के विरुद्ध 'बङ्गला
भाषा का उदगम और विकास' नामक विष अपने शोध ग्रन्थ में वमन कर
दिया तो उसको डी० लिट् की उपाधि से लण्डन विश्वविद्यालय ने सुशोभित कर
दिया । अङ्गरेजी शासन ने यह विचार करके कि सुनीति कुमार भाषा सम्बन्धी
विष वमन भारत में सदैव जीवित और पनपता रहे, उन्होंने कलकत्ता विश्व-
विद्यालय में भाषा-विज्ञान का एक विभाग स्थापित करके सुनीति कुमार को उसका
अध्यक्ष बनाया । जिसका मुल उद्देश्य था कि अङ्गरेजी शासन को उखाड़ फेंकने के
लिये सलग्न क्रान्तिकारी बङ्गाली नवयुवक अपने उद्देश्य से हट जावें और अपने को
केवल बङ्गाली भाषा में सीमित मानकर भारत के विशाल अङ्ग न बनें, और इससे
भी बड़े साधन की पूर्ति यह हो कि भारतीय अपने को भारत का मूल निवासी न
मानकर एक बाहर से आये हुये प्राचीन विदेशी भाव में रङ्ग जायें । अन्य षड्यन्त्र
यह भी था कि सुनीति कुमार भारत के विभिन्न प्रदेशों के भारतीयों को यह शिक्षा
दे कि उनकी भाषा देववाणी सरस्वती और संस्कृत से पोषित नहीं है अपितु
सहस्त्राब्दियों से एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में है । इस प्रकार भारत में भाषा
सम्बन्धी उस भयङ्कर द्वन्द्व को जन्म देने का ऐसा प्रयास किया गया कि भारतीय
विभक्त हों, सीमित हों ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कलकत्ता विश्वविद्यालय के भाषा-विज्ञान विभाग ने हिन्दी भाषी प्रान्त के छात्रों को आकृष्ट किया। अनेक हिन्दी भाषी व्यक्ति सुनीति कुमार के रङ्ग में रङ्ग कर हिन्दी प्रान्तों के विश्वविधालयों में भाषा-विज्ञान का अध्ययन और अध्यापन उसी शैली पर करने लगे जो उन्हें अपने गुरुदेव की कृपा से प्राप्त हुई थी और इस प्रकार संस्कृत की यह लोकोक्ति पूर्ण रूपेण चरितार्थ हो उठी—

मति भ्रष्टा बुद्धिर् विनष्टा गर्दभ वत शब्दायते। अर्थात मति भ्रष्ट और बुद्धि नष्ट होकर केवल गर्दभ अलाप होने लगी।

हाय भारत। तेरे आत्मा को नष्ट करने के लिये क्या-क्या षड्यन्त्र रचे गये !

अङ्गरेजी के जारज पुत्र

हम सिद्ध कर चुके हैं कि भारत की आदि मूल कथ्य भाषा सरस्वती थी, जिसका साहित्यिक रूप संस्कृत और आधुनिक रूप हिन्दी खरी बोली है। प्रत्येक कथ्य भाषा और साहित्यिक भाषा के शब्द एक ही होते हैं। अतः संस्कृत और हिन्दी के शब्द एक ही हैं और युगों से एक ही अर्थों को धारण किये हुये हमारी भाषा में प्रयोग होते चले आ रहे हैं। अङ्गरेजी के जारज पुत्रों को न हमारी भाषा का ज्ञान है और न वे यह समझते हैं कि संस्कृत और हिन्दी के शब्द एक ही हैं। वह हमारी भाषा के सम्बन्ध में जो कुछ विचार करते हैं उसको अङ्गरेजी में लिखते हैं। इसी प्रकार के एक व्यक्ति ने एक पुस्तक अङ्गरेजी में लिखी है जिसमें उसने संस्कृत-निष्ठ हिन्दी को bastard child of Banaras कहा है, तथा तत्सम् शब्दों के प्रचलन को pure folly, miscalled brahmanism, malice and obscurantism कहा है। (1) अङ्गरेजी के जारज पुत्र इससे अधिक और क्या मूर्खता पूर्ण प्रलाप कर सकते हैं। इस गर्दभ वाणी में वह अपने अध्यापकों को गुरुदक्षिणा ही प्रदान करते हैं।

---

(1) This Hindi and Devnagari by Madan Gopal, See pages 26, 46 and 161.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: २२ :

आगरा विश्वविद्यालय

'ब्रील' नामक पाश्चात्य लेखक के अर्थ परिवर्तन के सिद्धान्त की पुष्टि में भारतीय विश्वविद्यालयों के भाषा-विज्ञान विभागों में शब्दों के अर्थ परिवर्तन के उदाहरणों की गवेषणा प्रमाद का एक रूप धारण किये हुये है। इस प्रमाद की कोई दशा या सीमा प्रतीत नहीं होती है, जिस भाषा-वैज्ञानिक के मस्तिष्क में जैसा विकार उत्पन्न होता है वह उसी प्रकार बहकने लगता है। विश्वविद्यालयों में इस विषय पर जो अनुसन्धान होता है उसमें तीन प्रकार की मूर्खतायें दृष्टिगोचर होती हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) शब्दों की अशुद्ध, भ्रामक, अवैज्ञानिक तथा मनघड़त व्युत्पत्ति बताई जाती है और उसमें व्याकरण के ज्ञान का अभाव रहता है। शब्दों की व्याकरण कोटियों तथा सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग एक पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

(२) शब्दों के अर्थों को प्रामाणिक संस्कृत शब्द-कोशों में नहीं देखा जाता है और उनके अशुद्ध अर्थ का प्रयोग होता है।

(३) अनेकार्थी शब्दों का वह अर्थ प्रयोग होता है जो उस प्रसंग में उपयुक्त नहीं होता है।

आगरा विश्वविद्यालय ने एक शोध ग्रन्थ 'हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में अर्थ परिवर्तन' नामक को स्वीकार करके उसके लेखक को पी० एच० डी० की उपाधि से सुशोभित किया है और अब यह शोध ग्रन्थ पुस्तक के रूप में प्राची प्रकाशन मेरठ से प्रकाशित हुआ है। इस शोध ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि—अर्थ परिवर्तन भाषा के आन्तरिक पक्ष से सम्बन्ध रखता है, अतः शब्दों के अर्थ परिवर्तन-सम्बन्धी अध्ययन से उसके बोलने वाले जन समुदाय की सभ्यता और संस्कृति के विषय में अनेक तथ्यों का उद्घाटन होता है। संस्कृत शब्दों के अर्थ परिवर्तन-सम्बन्धी अध्ययन से प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति की अनेक बातों का पता चलता है। बहुत सी प्रथायें, जो आजकल प्रचलित नहीं हैं और जो प्राचीन काल में प्रचलित थीं, प्रकाश में आती हैं, उदाहरणार्थ 'सौगन्ध' शब्द के अर्थ-परिवर्तन-सम्बन्धी अध्ययन से प्राचीन भारत में गुरुजनों अथवा माता-पिता द्वारा प्रेम के कारण छोटे लोगों अथवा बच्चों के सिर मूङ्घने की प्रथा का पता चलता है। सिर सूङ्घने की प्रथा आजकल प्रचलित नहीं है।"

उपरोक्त शोध ग्रन्थ के लेखक ने इस प्रकार एक भारतीय सभ्यता के सम्बन्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में अनर्गल और हास्यास्पद वायस जल्पना की है। पाश्चात्य लेखकों के अर्थ-परिवर्तन के सिद्धान्त में विश्वास रखने वाले भारतीय लेखक भारत की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और भाषा के सम्बन्ध में न तो कुछ जानते हैं और न उस पर कुछ प्रकाश डाल सकते हैं। वह लेखक अपने निर्लज्जता पूर्ण विचारों से केवल अपनी दुर्मति, दुर्बुद्धि तथा वातुलता का अलग प्रमाण निःसन्देह प्रस्तुत कर सकते हैं और करते हैं। हम स्पष्ट और दृढ़ शब्दों में कहते हैं कि यदि इसी प्रकार के शोध ग्रन्थों पर आगरा विश्वविद्यालय से पी०एच०डी० की उपाधियाँ प्रदान होती रहीं तो वह समय दूर नहीं है जब वह उपाधियां आगरा विश्वविद्यालय की न समझी जाकर वास्तविक रूप से आगरा-प्रमादालय की ही समझी जाया करेंगी। हम आशा करते हैं कि इस प्रकार के शोध ग्रन्थों के प्रकाशन पर लेखक के नाम के साथ उसके निर्देशक तथा परीक्षकों के नाम भी प्रकाशित किये जाया करेंगे। खेद और परिताप का विषय है कि अर्थ-परिवर्तन के सिद्धान्त को मान्यता देने वाले व्यक्ति भी आज भारत के विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के संस्कृत विभागों तक में अध्यापक नियुक्त हैं। क्या इसी प्रकार के अध्यापक महामुनि पतञ्जलि के सूत्र 'सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे' का छात्रों को ज्ञान करा सकते हैं। पाठक स्वयम् विचार कर सकते हैं कि विश्व-विद्यालयों के भाषा-विज्ञान विभागों में किस प्रकार की शिक्षा दी जाती है और किस प्रकार छात्रों को अराष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाकर उनकी बुद्धि भ्रष्ट की जाती है।

सौगन्ध

उपरोक्त शोध ग्रन्थ के लेखक ने शब्द 'सौगन्ध' के अर्थ परिवर्तन के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं, पहले हम उनको उसी के शब्दों में उद्धृत करते हैं—

'हिन्दी भाषा में 'सौगन्ध' स्त्री० शब्द 'कसम' के अर्थ में प्रचलित है, जैसे—'मैं अपने पुत्र की सौगन्ध खाकर कहता हूँ'। सौगन्ध शब्द संस्कृत से ग्रहण किया हुआ तत्सम शब्द है। संस्कृत में सौगन्ध शब्द का 'कसम' अर्थ नहीं पाया जाता। संस्कृत में 'सौगन्ध' वि० शब्द का अर्थ है 'सुगन्धियुक्त' और 'सौगन्ध' नपु० शब्द का अर्थ है 'सुगन्धि'। 'सुगन्धि' और 'कसम' के भावों में कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः सामान्य रूप से विचार करने पर 'सौगन्ध' शब्द से 'कसम' अर्थ के विकास की प्रक्रिया समझ में नहीं आती। किन्तु जब हमें ध्यान आता है कि प्राचीन काल में हमारे समाज में शिष्टाचार की एक ऐसी परिपाटी प्रचलित थी, जिसके अनुसार स्नेह के कारण माता-पिया अपनी सन्तानों का और अन्य गुरुजन छोटों का सिर मूङ्घते थे, तो हमारी समझ में आ जाता है कि 'सौगन्ध' शब्द पहले प्रेमवश सूंघी जानेवाली 'सुगन्धि' को ही लक्षित करता था और 'सौगन्ध' शब्द के 'कसम' अर्थ के विकास के मूल में वही 'सुगन्धि' है।

वह आगे लिखता है कि गुरुजनों द्वारा छोटों का सिर सूंघने की परिपाटी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन भारतीय समाज में कब प्रचलित हुई, इसका निश्चित उत्तर देना कठिन है, तथापि बाल्मीकीय रामायण में सिर सूंघने का उल्लेख मिलने के कारण यह निश्चित है कि ईसा से कई शताब्दी पूर्व यह परिपाटी भारतीय समाज में प्रचलित थी।

अपने उपरोक्त कथन के समर्थन में उस लेखक ने बाल्मीकीय रामायण के जिन श्लोकों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करके उनका जो अशुद्ध अनुवाद किया है वह इस प्रकार है—

स पुत्रं मूर्ध्न्युपाघ्राय राजा दशरथस्तदा।
ददौ कुशिकपुत्राय सुप्रीतेनान्तरात्मना॥ १.२२.३.

अर्थात राजा दशरथ ने प्रिय पुत्र का सिर सूंघकर उसको बहुत प्रसन्न चित्त से विश्वामित्र को दे दिया।

आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिष्वज्य च राघवम्।
अङ्के भरतमारोप्य पर्यपृच्छत सादरम्॥ २.१००.३.

अर्थात राम ने भरत के सिर को सूंघकर छाती से लगाकर और गोद में बिठाकर आदरपूर्वक पूछा।

आनम्य मूर्ध्नि चाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनी।
अवदत् पुत्रमिष्टार्थो गच्छ राम यथासुखम्॥ २.२५.४०.

अर्थात यशस्विनी कौशल्या झुककर राम का मस्तक सूंघकर और उसे छाती से लगाकर बोली, बेटा राम, जहां तेरी इच्छा हो वहाँ सुविधापूर्वक चला जा।

ममापि परमा प्रीतिर्हृदि शत्रुघ्न वर्तते:
उपाघ्रास्यामि ते मूर्ध्नि स्नेहस्यैषा परा गति:॥ ७. ७१. १२.

अर्थात हे शत्रुघ्न, तेरे प्रति मेरे भी हृदय में बहुत प्रेम है। मैं तेरा सिर सूघूंगा क्योंकि स्नेह की यही पराकाष्टा है।

उपरोक्त श्लोकों में 'आघ्रा' और 'उपाघ्रा' का अनुवाद सूंघना किया गया है जो असङ्गत है। भारत में किसी काल में भी स्नेह के कारण छोटों का सिर सूंघने की परिपाटी नहीं रही रही है और और न इस समय है। संस्कृत शब्द कोशों में 'घ्रा' का अर्थ (१) सूंघना और (२) चुम्बन करना स्पष्ट शब्दों में दिया हुआ है। इस धातु में अव, आ, उप, वि, सम् आदि उपसर्ग लगाने पर भी इसके अर्थो में विशेष अन्तर नहीं आता है—देखो आप्टे सस्कृत-अङ्गरेजी कोश पृष्ठ ६८९, आप्टे सस्कृत हिन्दी कोश पृष्ठ ३६५। आप्टे संस्कृत अङ्गरेजी कोश में 'आघ्रा' और 'उपाघ्रा का अर्थ (१) सूंघना और (२) चुम्बन करना दिया है। भारत में प्राचीन काल से आज तक स्नेह के कारण छोटों का मस्तिष्क व सिर का चुम्बन किया जाता रहा है, सूंघा नहीं जाता था। यदि शोध ग्रन्थ लेखक ने 'आघ्रा' और 'उपाघ्रा के अर्थ प्रामाणिक शब्द कोश में देखकर अपनी बुद्धि पर बल देकर विचार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया होता तो उसने प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता के सम्बन्ध में इस प्रकार का मूर्खता पूर्ण प्रलाप न किया होता। अनुताप का विषय है कि गीता प्रेस गोरखपुर से बाल्मीकीय रामायण जो हिन्दी भाषान्तर सहित प्रकाशित हुआ है उसमें भी उपरोक्त शब्दों के अशुद्ध अर्थ दिये हुये हैं। गीता प्रेस से जो महाभारत हिन्दी-अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ है उसमें भी ३-५३-३६ में उपाघ्रा शब्द का अज्ञान-मूलक अनुवाद सूङ्घना लिखा है जो अनर्गल है तथा युक्तिसङ्गत नहीं है।

'सौगन्ध' कोई भोज्य पदार्थ नहीं होता है और न वह किसी प्रकार भक्षण की जा सकती है। मैं अपने पुत्र की सौगन्ध खाता हूं'–इस वाक्य में 'खाना' शब्द का साधु शब्द 'ख्यापनम् है, जिसका अर्थ है—'घोषणा करना, विख्यात या स्वीकार करना आदि'—देखो आप्टे संस्कृत अङ्गरेजी कोश पृष्ठ ६४१, आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश पृष्ठ ३२७, मोनियर विलियम्स पृष्ठ ३४१। हमारी भाषा में 'सौगन्ध' एक स्त्रीलिङ्ग शब्द है, इसका साधु शब्द 'सौगन्ध' वि० या सौगन्धः पु० शब्द नहीं हो सकता है। सौगन्ध शब्द का साधु शब्द 'सुगन्धिः' है जिसका अर्थ परमात्मा है—देखा आप्टे संस्कृत अङ्गरेजी कोश पृष्ठ १६६८, मोनियर विलियम्स पृष्ठ १२२२, आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश पृष्ठ ११११०। हमारी भाषा में 'सौगन्ध खाना' अङ्गरेजी में 'बाइ गौड' (By God) और अरबी में 'ब-खुदा' पर्याय वाची शब्द हैं। अतः 'मैं पुत्र की सौगन्ध खाता हूं' का अर्थ है कि मैं परमात्मा के सामने विख्यात करता हूं या स्वीकार करता हूं कि 'यदि मेरा कथन सत्य न हो तो उसका शाप मेरे पुत्र पर पड़े'।

'सौगन्ध' शब्द में 'ग' का लोप होने और 'ध' महाप्राण का उच्चारण 'ह' होने से यह शब्द 'सौन्ह या सौंह' के रूप में भी हमारी भाषा में प्रचलित है। हम ग्राम वासी तो अपने बलदों (बैलों) तक की सौंह खाते हैं।

'पिण्ड'

उपरोक्त शोधग्रन्थ के लेखक ने अपनी बुद्धि का जो कौशल दिखाया है उसके कुछ अन्य हास्यास्पद प्रलापों का उदाहरण देते हैं। वह लिखता है—"हिन्दी में 'पिण्ड' पु० शब्द के 'ठोस गोल पदार्थ', 'श्राद्ध में पितरों को दिया जाने वाला चावल, आटे आदि का गोल लौन्दा' आदि अर्थ तो पाये ही जाते हैं, इनके अतिरिक्त एक अन्य विशिष्ट अर्थ में भी 'पिण्ड' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'साथ रहकर या पीछे लगकर तङ्ग करने से विरत होने' को 'पिण्ड छोड़ना' और 'साथ रहकर या पीछे लगकर तङ्ग किये जाने से छूटने' को 'पिण्ड छूटना' कहा जाता है। इन दोनों मुहावरों में उपलब्ध 'पिण्ड' शब्द का अर्थ पितरों को दिया जाने वाला चावल, आटे आदि का गोला' अर्थ से विकसित हुआ है"। इस अर्थ का कारण बताते हुये उसका कथन है—'तीन पूर्वजों को ही पिण्ड दिये जाते हैं और शेष के साथ पिण्ड-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्बन्ध नहीं रहता है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि श्राद्ध, पिण्ड आदि देने के सम्बन्ध से छूटने को ही पहिले 'पिण्ड छूटना' कहा गया होगा। यह सम्बन्ध ऐसा है कि छुटाये से नहीं छूटता"।

इसी सम्बन्ध में वह लिखता है कि—संस्कृत में 'पिण्ड-निवृत्ति' शब्द के पाये जाने से इस बात की पुष्टि होती है कि श्राद्ध, पिण्ड आदि देने से सम्बन्ध के सादृश्य से किसी के द्वारा साथ रहकर या पीछे लगकर तङ्ग किये जाने से छूटने के लिये 'पिण्ड छूटना' मुहावरे का प्रयोग आलङ्कारित रूप में प्रचलित हुआ। 'पिण्ड' शब्द के वर्तमान अर्थ के विकास से पिण्ड आदि देने के धार्मिक विधान से लोगों के तङ्ग आने की भावना अथवा उसके प्रति अनास्था भी प्रकट होती है"।

समाधान—हम दिखा चुके हैं कि हमारी भाषा में सूक्तियां या न्याय तो प्रचलित हैं परन्तु मुहावरे नही हैं। पितरों को पिण्ड देने का, किसी व्यक्ति से पिण्ड छुटाने से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार की मूर्खता पूर्ण कल्पना से कोई लाभ नहीं है। शब्द 'पिण्ड' अनेकार्थी शब्द है जिसके २४ अर्थ आप्टे संस्कृत अङ्गरेजी कोश में दिये हुये हैं, देखो पृष्ठ १०१९। विभिन्न अर्थों के अनुसार इस शब्द के अनेक शब्द हमारी भाषा में प्रचलित हैं, यथा पिण्ड, पीण्ड, पैंण्डा आदि। इस शब्द को वाक्यों में प्रयोग करके हम शोध ग्रन्थ लेखक के भ्रम को दूर करते हैं—

(१) वह पिण्ड देने के लिये गया जाने वाला है (पिण्ड=पितरों को पिण्ड दान)।

(२) मार्ग में मेरे मित्र ने मुझे पकड़ लिया, मैं बड़े प्रयास से अपना पिण्ड छुटा कर आया हूं (पिण्ड = शरीर)।

(३) इस सम्बन्ध में आप प्रत्येक दिन मेरे पास चले आते हैं, आप कृप्या मेरा पिण्ड छोड़ दें (पिण्ड = विषय, अर्थ)।

कतिपय अनेकार्थी शब्दों जैसे दण्ड, शोक, शकुन आदि के अर्थ परिवर्तन के अनर्गल तथा हास्यास्पद विचार उसी शोध ग्रन्थ मे व्यक्त किये गये हैं, पाठक उनको उसी पुस्तक में देख सकते है। उसी शोध ग्रन्थ के लेखक ने हमारी भाषा में अपने साधु अर्थों में प्रचलित शब्दों के किस प्रकार असाधु तथा भ्रामक अर्थ बताकर अपने मस्तिष्क की शोध प्रक्रिया, बुद्धि का कौशल तथा अर्थ परिवर्तन के जो भ्रामक उदाहरण दिये हैं, उसका एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

ज्येष्ठ

वह लिखता है—"ऋग्वेद में 'ज्येष्ठ' वि० शब्द का प्रयोग सर्वोतम, सबसे बड़ा, प्रथम, मुख्य, आयु में सबसे बड़ा आदि अर्थों में पाया जाता है। बाद (पश्चात) के साहित्य में भी इन अर्थों में 'ज्येष्ठ' शब्द का प्रयोग होता रहा है। 'ज्येष्ठ' शब्द के अर्थ में सर्वाधिकता का भाव ऋग्वेद-काल में ही लुप्त होने लगा था। आज

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कल हिन्दी में 'ज्येष्ठ' शब्द का प्रयोग अधिकतर बड़े भाई के लिये, भाई के वाचक शब्दों के विशेषण के रूप में किया जाता है, जैसे—ज्येष्ठ भ्राता। वस्तुत: किसी व्यक्ति के सभी भाइयों में जो सबसे बड़ा हो, उसे ही 'ज्येष्ठ' कहना चाहिये। किन्तु हिन्दी में बहुधा सर्वाधिकता के भाव का ध्यान नहीं रक्खा जाता, किसी ऐसे बड़े भाई को भी 'ज्येष्ठ' कह दिया जाता है, जो सबसे बड़ा न हो''।

समाधान—'ज्येष्ठ' वि० और ज्येष्ठ: संज्ञा पु० पृथक पृथक शब्द हैं, जो आज भी हमारी भाषा में अपने साधु अर्थों में प्रयोग होते हैं।

'ज्येष्ठ' वि० शब्द के अर्थ हैं—(१) आयु में सबसे बड़ा, जेट्ठा, (२) सर्वोत्तम, (३) प्रमुख, प्रथम, मुख्य, उच्चतम। 'ज्येष्ठ:' सं० पु० शब्द का अर्थ है बड़ा भाई, वह भाई सबसे बड़ा हो या न हो। देखो आप्टे संस्कृत अङ्गरेजी कोश पृष्ठ ७४५, आप्टे संस्कृत हि० कोश पृष्ठ ४१०। बड़े भाई के अर्थ में ही यह शब्द रघु० १२/१९ और ३५ में प्रयोग हुआ है।

यह बताने के लिये कि अमुक स्त्री की सबसे प्रथम अर्थात आयु में सबसे बड़ी सन्तान लड़का या लड़की है तो हम उसे जेट्ठा लड़का या जेट्ठी लड़की कहते हैं। किसी फल देने वाले वृक्ष पर जब सबसे प्रथम बार फल आता है तो उसे जेट्ठा फल कहते हैं। 'ज्येष्ठ भ्राता' में ज्येष्ठ वि० है, अत: इसका अर्थ सबसे बड़ा भाई होगा।

शब्द 'ज्येष्ठ:' संज्ञा पु० शब्द का अर्थ केवल बड़ा भाई है, वह सबसे बड़ा हो या नही, जैसे यदि कोई स्त्री कहे कि उसके तीन जेट्ठ हैं तो उनको क्रमश: बढ़ा जेट्ठ, बिचला जेट्ठ और छोटा जेट्ठ कहा जायेगा।

समाचार

शब्द 'समाचार' के सम्बन्ध में वह लिखता है—''हिन्दी में 'समाचार' पु० शब्द 'खबर', सूचना आदि अर्थों में प्रचलित है। संस्कृत में 'समाचार' शब्द के यह अर्थ नहीं पाये जाते। संस्कृत में 'समाचार' शब्द का मौलिक अर्थ है—सम्यग् आचरण। संस्कृत में 'समाचार' सम्यग् आचरण' अर्थ से ही आचरण, धर्म, सामान्य व्यवहार, प्रथा, प्रथानुकूल प्रदर्शन आदि का विकास पाया जाता है''। परन्तु हम देखते हैं कि 'समाचार' शब्द के—सूचना, विवरण विज्ञापना, विश्रुति, वृतान्त आदि अर्थ विल्सन, आप्टे, मोनियर विलियम्स आदि शब्द कोशों तथा शब्दकल्पद्रुम में भी दिये हुये हैं। इस सम्बन्ध में उसका कथन है कि यह अर्थ आधुनिक ही प्रतीत होते हैं, क्योंकि इन कोशों में 'समाचार' शब्द के 'चसूना' आदि अर्थों में प्रयोग के विषय में संस्कृत साहित्य के किसी ग्रन्थ का निर्देश नहीं दिया हुआ है। पाठक स्वयम् विचार रक सकते हैं कि क्या किसी शब्द के समी अर्थों का शब्द कोशों में निर्देश न दिये रहने से उस शब्द का वह अर्थ नहीं होता है। अर्थ परिवर्तन के सिद्धान्त के उपासक ही इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार की मूर्खता पूर्ण जल्पना कर सकते हैं। सरस्वती भाषा में इस शब्द के इन दो अर्थों का समाधान इस प्रकार हो सकता है। सम्यक् आचार के अर्थ में 'समाचार' शब्द कि व्युत्पत्ति है, (सम-आचार)। सूचना आदि अर्थों में यह शब्द (समा—चार:) है। 'समा' अव्य० का अर्थ है, से, साथ मिलकर। 'चार:' का अर्थ है—भेदिया, चर, गुप्तचर, गूढचर, दूत आदि। देखो आप्टे पृष्ठ ७०४, मनुस्मृति ७/१८४, ९/२६१।

उसने इसी प्रकार का प्रलाप 'संवाद' शब्द के सम्बन्ध में भी किया है। वह लिखता है कि 'संवाद' शब्द का वार्तालाप अर्थ तो संस्कृत में भी पाया जाता है, किन्तु समाचार, सूचना, विवरण आदि अर्थ संस्कृत में नहीं पाये जाते। परन्तु यह सभी अर्थ आप्टे, विलसन, मोनियर विलियम्स के शब्द कोशों तथा शब्द कल्पद्रुम में दिये हुये हैं। यदि भाषा-वैज्ञानिक गोधूम: (गो—धूम:) का अर्थ गेहूं न बताकर गाय का धुंवा बताने लगें तो कुछ आश्चर्य नहीं होगा।

बिस्तार भय से उपरोक्त शोधग्रन्थ के सम्बन्ध में हम अधिक नहीं लिख रहे है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: २३ :

हिन्दी भाषा के इतिहास का प्रमाद

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है ।
वह नर नहीं नर-पशु निरा है और मृतक समान है ।।

—मैथिलीशरण

भारत के विश्वविद्यालयों के कुछ विभागों ने सदा राष्ट्रीय गौरव और उच्च स्तर को नीचे गिराने का प्रयास किया है । यह विभाग भारत में ब्रिटिश शासन के कलङ्क केन्द्र के रूप में कार्य करते रहे हैं । इन विभागों में अराष्ट्रीयता की ऐसी घूण्टी पिलाई जाती रही है कि भारत के अन्तर आत्मा की क्रान्ति नष्ट हो जाये । पाश्चात्त्य पद्धति से क्षिक्षित व दीक्षित भाषा विज्ञान के अध्यापकों पर हीनता का अनुभव छाया हुआ है और उन्हें पूर्ण विश्वास है कि जब तक वह छात्रों के सम्मुख यूरोप के ४—५ भाषा वैज्ञानियों के नामों की चर्चा और उनकी पुस्तकों के कतिपय अङ्गरेजी वाक्यों का उल्लेख न करेंगे, तब तक छात्र उन्हें (अध्यापकों को) विद्वान ही नहीं समझेंगे । इन विद्वानों ने अपने जीवन में प्रामाणिक संस्कृत शब्द कोशों के दर्शन भी नहीं किये होंगे, अपितु अङ्गरेजी का शब्द कोश इनके घरों में अवश्य दिखाई देगा । यह लेखक भूल जाते है कि आज से केवल ३५०० वर्ष पूर्व जब हमारे देश में पाणिनि प्रभृति व्याकरण का अध्ययन होता था (और उससे भी सहस्त्रों वर्ष पूर्व हम भाषा शास्त्र के क्षेत्र में उन्नता के शृङ्ग पर पहुंच चुके थे) उस समय उत्तरी यूरोप में यूराल पर्वत से अटलाण्टिक महासागर तक मनुष्य प्राकृत अवस्था और नग्न रूप में वन्दरों के समान वृक्षों पर रहा करते थे अथवा पशुओं के समान गुफाओं में रहा करते थे । यूरोप में भाषा-विज्ञान का इतिहास आज से २००-२५० वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है ।

भाषा विज्ञान के जड़-अज्ञानी अध्यापक जब हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और विकास विषय पर प्रकाश डालना आरम्भ करते हैं तो मूल विषय से शशक शृङ्ग वत् (जिस प्रकार शश. के सिर से सीङ्ग) पृथक होकर यह जलाना आरम्भ करते हैं कि प्राचीन काल में हमारे मन्त्र दृष्टा वैदिक ऋषि किसी अज्ञात भूभाग से भारत आये थे और साथ ही यह भी विषय उपस्थित करते हैं कि यूरोप की म्लेच्छ जातियां जो आज से केवल ३५००-४००० वर्ष पूर्व असभ्य, नग्न और प्राकृत रूप में अपने जीवन को व्यतीत कर रही थी वह और हमारे महान ज्ञान दृष्टा ऋषि एक ही समुदाय और जाति के थे । परन्तु यह बात विचार के परे है कि भारत में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आने वाली जातियाँ उनके (भाषा वैज्ञानिकों) के अनुसार कैसे इतनी शिक्षित और सभ्य हुई कि ऋग्वेद की ऋचाओं की रचना करके भारत की ओर बढ़ीं और उनके सजातीय जो पश्चिम की ओर चले वह सहस्त्राब्दियों तक असभ्य, नग्न तथा प्राकृत अवस्था में क्यों रहे। अतः हमें बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि इन तथा कथित भाषा-वैज्ञानिकों में आत्म ज्ञान और आत्म गौरव की एक लघुतम स्फुलिङ्गा भी शेष नहीं रही है। यूरोप के लेखकों के प्रति हमें इतना क्षोभ नहीं है कारण कि वह श्वेत जातियां भारत को हीन एवं निम्न श्रेणी का प्रमाणित करना चाहती थीं जिससे उनका आधिपत्य और गौरव सुरक्षित रहे। परन्तु सबसे अधिक उपालम्भ की बात तो हमें अपने देशवासियों भारतीय रक्त के उन अध्यापकों से है जिन्होंने कभी सत्यानुवेषण का प्रयास नहीं किया और वही लोकोक्ति चरितार्थ कर दी जो शृगाल, गर्दभ और काक की है कि एक के शब्द का सब अन्धानुकरण करने लगते हैं।

उपरोक्त कथन के साथ हम इतना और कहते हैं कि आदि ज्ञान परम्परा के प्रवर्तक हमारे वैदिक ऋषि थे जिनके नामों को आज भी हम गोत्र रूप में अपने नामों के साथ सम्बद्ध करते हैं कि अमुक गर्ग गोत्र का है तो अमुक गौतम, कश्यप, पाराशर, वसिष्ठ, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र आदि आदि गोत्र से सम्बन्धित हैं। क्या हम इस अनर्गल उल्लेख को स्वीकार कर सकते हैं कि यह हमारे दिव्य दृष्टा ऋषि यूरोपीय म्लेच्छों की समान श्रेणी में रक्खे जा सकते हैं। इतना सा सूक्ष्म ज्ञान भी इन भाषा वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में जन्म नहीं ले सका जब कि भाषा-विज्ञान के लेखक गौतम, कपिल, विश्वामित्र आदि के नामों का उल्लेख करके स्वयं अपने को उन्हीं गोत्रों से सम्बन्धित करते हैं। इस प्रकार यह भाषा-वैज्ञानी हमारे ऋषियों तथा पूर्वजों को एक प्रकार से खुली गालियां देते हैं तथा उनके गौरव और सम्मान को कलङ्कित करने का प्रयास करते हैं। परन्तु सत्य तो यह है कि भारत के पूर्वजों के प्रति जो अपशब्द यह प्रयोग करते हैं, वह मानों उनके अपने ही लिये हैं और वह स्वयं कलङ्कित और अपमानित होते हैं। यूरोपीय लेखक कितनी आत्म-प्रसन्नता और आनन्द का अनुभव करते होंगे कि भारतीय ऋषियों को कलङ्कित और अपमानित करने के लिये भारतीय रक्त और वंश के भाषा-वैज्ञानिकों की एक सेना ब्रिटिश प्रयासों से बना दी गई, भारत में जिसकी स्थापना कलकत्ता विश्व-विद्यालय में सुनीति कुमार आदि ने की थी।

वैदिक सभ्यता की ज्योति किस काल में इस पवित्र भारत भूमि को आलोकित कर उठी, उसका तो आज तक किसी को ज्ञान ही नहीं है और न भविष्य में होगा। जब किसी को वैदिक युग का अल्प ज्ञान भी नहीं है तो किस आधार पर यह भाषा-वैज्ञानिक पूर्व वैदिक युग की गतिविधियों और परिस्थितियों पर प्रकाश डालने का दम्भ भरते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमें तो आश्चर्य इस बात पर आता है कि विश्वविद्यालयों के छात्र भाषा विज्ञान के अध्यापकों की बातें केवल शान्ति पूर्वक सुनते ही नहीं है अपितु परिक्षाओं में उन्हीं शब्दों को लिखित रूप में उदधृत भी करते हैं। खेद है कि विश्वविद्यालयों में जो शिक्षा पद्धति प्रचलित की गई है उसमें मौलिक चिन्तन का हनन किया जाता है, अर्थात स्वयम् चिन्तन की धारा विद्यार्थियों में जन्म नहीं लेती है, अपितु विदेशी लेखकों द्वारा जो स्व रचित सिद्धान्त निर्धारित किये हैं केवल उन्हीं को सर्वाङ्ग सत्य मानकर कण्ठाग्र कर लेना ही शिक्षा की इतिश्री समझी जाती है। क्या इसी प्रकार की शिक्षा को ग्रहण करके विद्यार्थी अपने को शिक्षित समझते हैं? हम उनसे स्पष्ट शब्दों में पूछते हैं कि वह अपने ऋषियों और पूर्वजों के सम्मान में भाषा-विज्ञान के अध्यापकों की गालियां कब तक सुनते रहेंगे? इस प्रश्न का उत्तर हक शब्दों द्वारा नहीं अपितु कार्यों द्वारा चाहते हैं।

भाषा सर्वेक्षण के उपासक

पाश्चात्य पद्धति से शिक्षित व दीक्षित भारतीय लेखक भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में जब कुछ लिखना आरम्भ करते हैं तो सबसे पहले वह ग्रियर्सन की शरण में जाते हैं। 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' की भूमिका में उसने जो विचार व्यक्त किये हैं उनको ब्रह्मवाक्य मानकर ही आगे चलते हैं। इस प्रकार के लेखकों ने इस भूमिका के प्रति श्रद्धापूर्वक जो अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पित की हैं, उसके कुछ उदाहरण हम उन्हीं लेखकों के शब्दों में प्रस्तुत करते हैं—

धीरेन्द्र वर्मा 'हिन्दी भाषा का इतिहास' के वक्तव्य में लिखता है—ज़ार्ज अब्राहम ग्रियर्सन की सबसे बड़ी कृति 'भारतीय भाषाओं का सर्वे' है। यह बृहत ग्रन्थ ग्यारह बड़ी-बड़ी जिल्दों में है। हिन्दी की भिन्न भिन्न आधुनिक बोलियों की सीमाओं तथा उनके ठीक रूप का वैज्ञानिक वर्णन पहले-पहल इन्हीं जिल्दों में मिलता है। जिल्द १, भाग १ में सम्पूर्ण ग्रन्थ की भूमिका है। भारतीय आर्य भाषाओं के इतिहास का सबसे अधिक प्रमाणिक तथा क्रमबद्ध वर्णन इस भूमिका में सुगमता से मिल सकता है।

देवेन्द्र नाथ शर्मा 'भाषा विज्ञान की भूमिका' नामक अपनी पुस्तक में लिखता है—ग्रियर्सन की कीर्ति का आधारस्तम्भ है 'भारतीय भाषाओं का सर्वे' नामक महान ग्रन्थ, जो सत्रह बड़ी-बड़ी जिल्दों में प्रकाशित है। इस पुस्तक में भारत की सभी भाषाओं का सोदाहरण विवेचन है। ग्रियर्सन के इस ग्रन्थ का महत्त्व ऐतिहासिक ही नहीं, व्यवहारिक भी है चूंकि आज भी उससे उत्कृष्ट ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

मनमोहन गौतम 'सरल भाषा विज्ञान' में लिखता है—जिस महान कार्य ने ग्रियर्सन को सुप्रसिद्ध बनाया वह उनकी रचना, 'भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। यह एक विशालकाय ग्रन्थ है जो कि १७ जिल्दों में विभाजित है। इसमें भारत की सभी भाषाओं तथा बोलियों का उदाहरण सहित व्याकरण विद्यमान है। आरम्भ की विस्तृत भूमिका में योग्य विद्वान ने भारतीय आर्य भाषाओं का प्रमाणिक इतिहास दिया है।

भोलानाथ तिवारी 'भाषा विज्ञान' नामक पुस्तिका में लिखता है—ग्रियर्सन का प्रसिद्ध कार्य, "भारतीय भाषाओं का सर्वे" है। ३३ वर्ष घोर परिश्रम के बाद ये इसे समाप्त कर सके। आज तक विश्व के किसी भी देश में भाषाओं की ऐसी पैमाइश नहीं हुई। यह ग्रन्थरत्न ११ बड़ी बड़ी जिल्दों में है, जिनमें सभी भारतीय भाषाओं तथा बोलियों का सोदाहरण व्याकरण दिया गया है। आरम्भ में बहुत विस्तृत और विद्वत्तापूर्ण भूमिका है, जिसमें भारतीय आर्य भाषाओं का प्रमाणिक इतिहास है।

हिन्दी भाषा का इतिहास ?

भारत का भाषा सर्वेक्षण' नामक ग्रन्थ की भूमिका संवत १९८४ वि० में प्रकाशित हुई थी। इसके प्रकाशित होने के छ: वर्ष पश्चात ग्रियर्सन के विचारों के एक उपासक धीरेन्द्र वर्मा ने 'हिन्दी भाषा का इतिहास' नामक एक पुस्तिका लिखी। इस पुस्तिका के दो भाग हैं—पहले मे भूमिका है और दूसरे भाग में इतिहास (?) है। इस पुस्तिका की भूमिका वास्तव में "भारत का भाषा सर्वेक्षण" की भूमिका अर्थात खण्ड १, भाग १ का सामासिक रूप है। हिन्दी भाषा का इतिहास की भूमिका की वही विषय सूची है और इन विषयों के सम्बन्ध में वही विचार व्यक्त किये गये हैं जो 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' की भूमिका में प्रकट किये गये है। अत: इस पुस्तिका की भूमिका को 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' की भूमिका का संक्षिप्त रूप कह सकते हैं। जिन पाठकों को सर्वेक्षण की भूमिका न प्राप्त हो सके, वह इस पुस्तिका की भूमिका से ग्रियंसन के विचारों का परिचय प्राप्त कर सकते हैं। इस विद्वान लेखक ने अपने स्वतन्त्र मनन चिन्तन को पूर्णतया तिरोहित करके 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' की भूमिका का अन्धानुकरण किया है। इस पुस्तिका का दूसरा भाग, अर्थात इतिहास भाग, असमीक्ष्य विचारों का समवाय है। इस भाग में जो विचार व्यक्त किये गये हैं, उनसे न हिन्दी भाषा के इतिहास का कोई सम्बन्ध है और न व्याकरण की दृष्टि से उसका कोई महत्व है। इस भाग में जो विचार व्यक्त किये गये हैं, उनको हम इन शब्दों में प्रस्तुत कर सकते हैं—कहीं की ईण्ट कहीं को रोड़ा, भानुमती ने कुनवा जोड़ा। पुस्तिका लिखी गई, प्रकाशित हुई और कतिपय विश्वविद्यालयों में पाठ्य पुस्तिका के रूप में नियमित हुई। इस पुस्तिका में न कोई मौलिक विषय है न विचार। सत्य तो यह है कि इस पुस्तिका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को ग्रियर्सन के विचारों को विश्वविद्यालयों के छात्रों में प्रसारित करने का एक माध्यम कह सकते हैं। हमें ज्ञान नहीं है कि इस पुस्तिका के लिखने पर तत्कालीन भारत में स्थापित ब्रिटिश शासन ने विद्वान लेखक को कोई उपाधि या पुरस्कार भी दिया था या नहीं, जिसके यह लेखक पूर्ण रूपेण अधिकारी होते थे।

State Museum Library Lucknow 7635

हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास ?

उपरोक्त पुस्तिका के प्रकाशित होने के २२ वर्ष पश्चात हिन्दी भाषा के इतिहास पर संवत २०१२ वि० में धीरेन्द्र वर्मा के एक विद्यार्थी ने एक अन्य पुस्तक लिखी। जिसके प्राक्कथन के अनुसार इस पुस्तक के दो भाग हैं। पूर्व पीठिका में भारोपीय से लेकर अपभ्रंश तथा सङ्क्रान्ति कालीन भाषा की सामग्री दी गई है और उत्तर पीठिका में केवल हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक व्याकरण दिया गया है। इसके पश्चात एक दो अन्य पुस्तकें भी इसी विषय पर प्रकाशित हुई हैं, परन्तु यह पुस्तकें पूर्व प्रकाशित पुस्तकों पर ही आधारित हैं। इनमें न कोई मौलिक विषय है और न कोई मौलिक विचार धारा है। इन पुस्तकों के पीछे किसी सत्य शोध की भावना भी नहीं है, केवल अर्थ प्राप्ति को लक्ष में रखकर ही यह पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। जिस प्रकार विश्वविद्यालयों में अध्यापकों की गुटबन्दी से परीक्षक नियुक्त होते हैं, उसी प्रकार विश्वविद्यालयों के अध्यापकों द्वारा लिखित पुस्तकों को परीक्षाओं के पाठ्यक्रम के लिये मान्यता प्रदान हो जाती है। अब विश्वविद्यालय विद्या अध्ययन के स्थान नही रहे हैं अपितु कतिपय षड्‌यन्त्रकारी अध्यापकों के अर्थ प्राप्ति, विद्या और उपाधियों के वितरण तथा विक्रय के केन्द्र बने हुये हैं। अब विश्वविद्यालयों के प्रत्येक विभाग में प्रत्येक विषय पर उन्हीं विचारों पर प्रकाश डाला जाता है जो सिद्धान्त यूरोपीय लेखकों द्वारा निर्धारित हो चुकते हैं। परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने के लिये विद्यार्थियों को उन सिद्धान्तों को कण्ठस्थ कर लेना अनिवार्य होता है। खेद और अनुताप है कि इन केन्द्रों में विद्यार्थियों के स्वतन्त्र मनन चिन्तन और विचार धारा को लुप्त और देश के स्वाभिमान और गौरव तक को नष्ट किया जा रहा है।

प्रतीत होता है कि 'हिन्दी भाषा का उदगम और विकास' का लेखक मध्य देश (सरस्वती क्षेत्र) के बाहर भोजपुरी क्षेत्र का रहने वाला है। उपरोक्त पुस्तक के प्राक्कथन में वह लिखता है कि "भाषा-विज्ञान के अध्ययन के लिए कलकत्ता जाने के पूर्व, प्रयाग विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डा० बाबूराम सक्सेना की देख रेख में मैंने भोजपुरी का अध्ययन प्रारम्भ किया था और डा० धीरेन्द्र वर्मा से मुझे भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने के लिये सर्व प्रथम प्रेरणा मिली थी।" भोजपुरी भाषा में व्याकरण सम्बन्धी लिङ्ग भेद बहुत कम किया जाता है। अत: भोजपुरी क्षेत्र के निवासियों को कुरु अर्थात खरी बोली क्षेत्र की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा तथा उसके व्याकरण सम्बन्धी लिङ्गानुशासन का ज्ञान नहीं होता है। इस कारण इस क्षेत्र के विद्वानों को कुरु क्षेत्र की भाषा के सम्बन्ध में प्रकाश डालने का कोई अधिकार नही है, और इस आक्षेप का उपरोक्त लेखक को पूर्ण अनुभव है। वह अपनी पुस्तक के प्राक्कथन में ही लिखता है—

यद्यपि हिन्दी (खरी बोली) राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन हो गई है तथापि अभी तक न तो उसका ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक व्याकरण हीं लिखा गया है और न भाषा-तात्विक दृष्टि से इसका गम्भीर अध्ययन ही प्रस्तुत हो सका है। पूर्वी हिन्दी की बोलियों में अवधी तथा बिहार की बोलियों में मैथिली एवं भोजपुरी का अध्ययन हो चुका है। बङ्गला भाषा के अध्ययन के लिए तो डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या की पुस्तक 'बङ्गला का उदगम और विकास' वस्तुतः श्रेष्ठतम कृति है। भारतीय भाषाओं एवं बोलियों के ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन करने वालों के मार्ग दर्शन के लिए तो यह पुस्तक वरदान सदश है। ऐसो दशा में हिन्दी जैसी महत्त्पूर्ण भाषा का अध्ययन न होना कम आश्चर्य की बात नहीं हैं। इसका मुख्य कारण यह है—कि यद्यपि हिंन्दी नितान्त पश्चिम की भाषा है तथापि आधुनिक साहित्य का अभ्युदय पूरब में ही हुआ है। किसी समय कलकत्ता, हिन्दी का प्रधान केन्द्र था, तदुपरान्त काशी नागरी प्रचारणी सभा तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना से काशी एवं प्रयाग हिन्दी के केन्द्र बने"।

उपरोक्त पुस्तक की पूर्व पीटिका में भारोपीय परिवार, संस्कृत, पलि अपभ्रंश से सम्बन्धित वही मूर्खता पूर्ण जल्पना की गई है जिसका उल्लेख और खण्डन किया जा चुका है। इस विषय पर अधिक लिखना आवश्यक प्रतीत नहीं होता है। पूर्व पीठिका के सम्बन्ध में यह लेखक अपनी पुस्तक के प्राक्कथन में लिखता है—

"पुस्तक पूर्व पीठिका में भारोपीय, संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि के सम्बन्ध में जो सामग्री दी गई है उसे जाने बिना भाषा-विज्ञान का अध्ययन करना व्यर्थ का परिश्रम करना है। यह सामग्री केवल हिन्दी के भाषा-विज्ञान के अध्ययन करने वाले के लिए ही आवश्यक नहीं है अपितु पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के भी प्रारम्भिक अध्ययन के लिये आवश्यक है। आशा है कि हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत एवं पालि-प्राकृत के विद्यार्थी भी इससे लाभ उठावेंगे।"

उपरोक्त पुस्तक के परिशिष्ट लिखने के लिये जो सामग्री उस लेखक को मिली उसके सम्बन्ध में उस लेखक का कथन इस प्रकार है—

"परिशिष्ट में संस्कृत, अङ्गरेजी, फारसी एवं अरबी से हिन्दी तुलना की गई है। यह समस्त सामग्री डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के भाषणों एवं व्याखानों से ली गई है। इसी प्रकार प्राकृत की अधिकांश सामग्री डा० सुकुमार सेन के व्याखानों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से उपलब्ध हुई है। सच तो यह है कि भाषा-विज्ञान के अध्ययन में मुझे सर्वाधिक सहायता डा० चाटुर्ज्या एवं डा० सेन से मिली है और इस पुस्तक पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से इन दोनों गुरुजनों की छाप है।''

पुस्तक के उत्तरार्द्ध लिखने की सामग्री के सम्बन्ध वही लेखक इस प्रकार लिखता है—

"उत्तरार्द्ध लिखने में मुझे सबसे अधिक सहायता डा० राल्फलिली टर्नर कृत 'नेपाली शब्द कोश', डा० चाटुर्ज्या कृत 'बङ्गला का उद्गम और विकास' तथा अपनी पुस्तक 'भोजपुरी भाषा एवं साहित्य' से प्राप्त हुई है। विविध बोलियों की तुलनात्मक सामग्री का तो एकमात्र आधार "नेपाली शब्द कोश है।''

डा० टर्नर के प्रति उपरोक्त लेखक ने जो आस्था, श्रद्धा तथा भक्ति भाव प्रकट किये हैं, उनसे सिद्ध होता है कि पाश्चात्य पद्धति से शिक्षित भारतीय भाषा-वैज्ञानिकों का आत्मगौरव और स्वाभिमान पूर्णतया नष्ट हो चुका है। शब्द के अर्थ परिवर्तन का नियम बताने वाले यूरोपीय म्लेच्छों की तुलना भारत के वैयाकरण मुनियों (जो 'सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे' जैसे सूत्र के प्रवक्ता हैं) से करके उसने उनको कलङ्कित करने का प्रयास किया है, जिसका हमें बहुत दुःख है। वह लिखता है—

डा० टर्नर के तत्त्वविधान में भाषा शास्त्र के अध्ययन का मुझे अवसर नहीं मिला, किन्तु वह मेरे आदरणीय गुरू डा० बाबूराम सक्सेना के गुरू हैं। इस प्रकार मेरे गुरुजनों में उनका मूर्धन्य स्थान है। आज (सं० २०१२ वि०) से दो वर्ष पूर्व, पुणे के डेकन कालेज में, उनके दर्शन एवं सान्निध्य का अवसर मिला था। उनके व्यक्तित्व से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ; उनका सारल्य, उनकी प्रखर प्रतिभा, उनकी गम्भीर मुद्रा तथा उनके पाण्डित्य में, मुझे प्राचीन भारतीय पण्डितों का दर्शन हुआ।''

भारत के विश्वविद्यालयों में भाषा तथा व्याकरण के अध्ययन के सम्बन्ध में तथा अपनी पुस्तक-रचना के सम्बन्ध में उसी लेखक का कथन है—

पुस्तक-रचना की प्रेरणा मेरे मन में एक क्रम से विकसित हुई है, अतः पाठकों के सामने उसे भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है। भारत में जहां यास्क, पाणिनि, कात्यायन तथा पतञ्जलि जैसे भाषा-शास्त्री एवं वैयाकरण हो गए हैं वहीं पर आज यहां के महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में भाषा तथा व्याकरण का अध्ययन नितान्त उपेक्षित है और कलकत्ता एवं पूना विश्वविद्यालयों को छोड़कर भारत के अन्य विश्वविद्यालयों में न तो भाषा-शास्त्र का अलग विभाग ही है और न उसके अध्ययन-अध्यापन का ही समुचित प्रबन्ध है। हमारे देश के विश्वविद्यालयों की उच्चतर कक्षाओं के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत भाषा-शास्त्र की जो शिक्षा दी जाती है उसका स्तर इतना निम्न है कि कभी-कभी छात्रों तथा छात्राओं को इसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधारण परिचय भी नहीं हो पाता। इसका एक परिणाम यह रहा है कि हमारे देश के अनेक उच्चशिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी भाषा के कारण उत्पन्न हुई अनेक राजनीतिक समस्याओं एवं ग्रन्थियों के समझने में अक्षम हैं।"

उपरोक्त कथन के पश्चात भारत के अधिकांश विश्वविद्यालयों में भाषा-विज्ञान की शिक्षा दी जाने लगी है, जिसका मूल आधार यूरोपीय पादरियों तथा लेखकों के स्वरचित सिद्धान्त हैं। पाश्चात्य पद्धति से भारतीय भाषाओं के भाषा शास्त्र की शिक्षा देने का यह भयङ्कर परिणाम हुआ कि आज इन विभागों के अध्यापकों को सञ्ज्ञा और विशेषण तक के भेद का ज्ञान नहीं है (इस विषय पर इसी पुस्तक के सिद्धान्त खण्ड का सञ्ज्ञा-विशेषण अध्याय देखो)। इन विभागों में आज विद्यार्थियों की केवल बुद्धि नष्ट की जाती है और यह विभाग भारत में यूरोपीयों के कलङ्क केन्द्रों के रूप में कार्य कर रहे हैं। हम स्पष्ट और दृढ़ शब्दों में कहते हैं कि अनादि काल से भारत को भाषा के एक ही सूत्र में बान्धने वाली देववाणी सरस्वती भाषा का पतन और भारत में भाषा के नाम पर उपद्रवों का मूल कारण इन्हीं विभागो में प्रचलित शिक्षा प्रणाली है।

उपरोक्त विचार निरूपण से स्पष्ट है कि 'हिन्दी भाषा का इतिहास' नामक पुस्तक का मूल आधार भारत की भाषा सर्वेक्षण' की भूमिका है, तथा 'हिन्दी भाषा का उदगम और विकास' नामक पुस्तक 'बङ्गला भाषा का उदगम और विकास' पुस्तक पर आधारित है। 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' की भूमिका में ग्रियर्सन और 'बङ्गला भाषा का उद्गम और विकास' की प्रस्तावना में सुनीति कुमार चाटुर्ज्या तो नाममात्र हैं। इन पुस्तकों में जो विचार व्यक्त हुये हैं, वह यूरोपीय भाषा वैज्ञानिकों के स्वरचित हैं और उन पुस्तकों के लिखने से बहुत समय पूर्व मैक्समूलर इत्यादि षड्यन्त्रकारी यूरोपीय पादरियों और लेखकों द्वारा निर्धारित हो चुके थे। वही विचार तत्कालीन भारत में ब्रिटिश शासन की मान्यता प्रदान दिखाने के हेतु 'बङ्गला भाषा का उद्गम और विकास' की प्रस्तावना मे सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के मुख से कहलाये गये थे। यूरोपीय भाषा-वैज्ञानिकों के उन विचारों का उल्लेख तथा खण्डन हम यथार्थ रूप से इसी पुस्तक के अन्य स्थानों पर कर ही चुके हैं और उनको फिर लिखने की आवश्यकता नहीं है।

द्रविड़ भाषाओं के शब्द

यूरोपीय पादरी और इङ्गलैण्ड के भाषा-वैज्ञानिक भारत की एकता को नष्ट करने की निरन्तर योजनायें बनाते रहे हैं। अतः वह यह स्वीकार नहीं करते हैं कि भारत की आदि मूल कथ्य भाषा सरस्वती है, और इसी का साहित्यिक रूप संस्कृत भारत को एकता में आबद्ध करने वाली एकमात्र भाषा है। पञ्चगौड़ (अर्थात उत्तर भारत) के निवासियों और पञ्च द्रविड़ (अर्थात दक्षिण भारत) के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निवासियों में परस्पर घृणा के भाव उत्पन्न करने के षड़यन्त्र के अन्तर्गत ग्रियर्सन लिखता है कि :—

"पश्चिमोत्तर मार्ग से भारत में प्रवेश करने वाले आर्य प्रारम्भिक युग में द्रविड़ों के सम्पर्क में आये। भाषा के क्षेत्र में आर्यों ने द्रविड़ों से कुछ शब्दों को ग्रहण किया। अब दृढ़तापूर्वक इस बात का समर्थन किया जाने लगा हैं कि इन भाषाओं से कुछ नहीं लिया गया। मेरा (ग्रियर्सनका) अपना विचार है कि द्रविड़ भाषा से आगत शब्दों के सम्बन्ध में जो इतर विद्वानों के विचार हैं उनसे कहीं अधिक शब्द आये। विवाद की यह बात अब प्रधानतया मूर्धन्य वर्गों पर केन्द्रित हो गई है। मूल आर्य (भारत-पारसी) भाषा में इन वर्गों का अभाव है और भारतीय आर्य भाषाओं में, भारत की धरती पर ही ये अस्तित्व में आये। द्रविड़ तथा मुण्डा (कोल) भाषाओं में ये बहुत प्रचलित हैं और निश्चित रूप से ये इन भाषाओं में आर्य-भाषा से नहीं आये। वास्तव में विवाद का प्रश्न यह है कि भारतीय आर्यों ने उन्हें द्रविड़ों से ग्रहण किया या नही। विशुद्ध आर्य भाषा के शब्दों में भी इन (मूर्धन्य) वर्णों का प्रयोग हुआ है। इस सम्बन्ध में यह कथन अधिक सङ्गत होगा कि अनेक दशाओं में, पड़ोस की अनार्य जातियों के प्रभाव से, आर्य भाषा के शब्दों के उच्चारण में परिवर्तन हो गया। क्योंकि इन अनार्य भाषा-भाषियों की सङ्ख्या आर्यों की अपेक्षा बहुत अधिक थी।"

ग्रियर्सन का उपरोक्त कथन एक अनर्गल और मूर्खतापूर्ण प्रलाप है। वैदिक युग से भी सहस्त्राब्दियों वर्ष पूर्व से मूर्धन्य वर्ण सरस्वती भाषा में प्रयोग होते रहे हैं और सरस्वती भाषा के अङ्ग थे। वेदों में भी उनका निरन्तर प्रयोग हुआ है। सरस्वती भाषा से पूर्व भारत में कोई भाषा नहीं थी, अत: सरस्वती भाषा में कोई भी शब्द किसी अन्य भाषा से ग्रहण नहीं हुआ है।

ग्रियर्सन अपनी दुष्टता, नीचता और निर्बुद्धि का प्रमाण अपने ही शब्दों में उपस्थित करता है। वह लिखता है—आर्य भाषा में द्रविड़ भाषा के अनेक शब्द सीधे भी आये। इस प्रकार के आगत शब्दों के मूल अर्थ में परिवर्तन हो जाता है और इनके अर्थ प्राय: घृणास्पद हो जाते हैं। उदाहरणार्थ 'पिल्लई' का अर्थ 'पुत्र' होता है किन्तु जब यही शब्द भारतीय आर्यभाषा में आता हैं तो इसका अर्थ 'पिल्ला' अर्थात कुत्ते का बच्चा हो जाता है। ऐसी अवस्था में यही आशा भी की जाती है।" इन शब्दों से अधिक स्पष्ट शब्दों में वह अपनी मनोवृत्ति का और क्या परिचय दे सकता था।

'हिन्दी भाषा का इतिहास' नामक पुस्तक के लेखक ने अपनी बुद्धि को पूर्णतया तिरोहित करके ग्रियर्सन के उपरोक्त विचारों का अपनी पुस्तक में अन्धानुकरण किया है। उस लेखक ने कभी यह भी विचार करने का प्रयास न किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि द्रविड़ भाषा के और कौन कौन से शब्द आर्य भाषाओं ने ग्रहण किये हैं, यदि कोई ऐसा शब्द है तो क्या वह भी बुरे अर्थ में प्रयोग हुआ है। वह लिखता है— "द्राविड़ भाषाओं से आये हुए शब्दों का प्रयोग हिन्दी में प्राय: बुरे अर्थों में होता है। द्राविड़ 'पिल्लै' शब्द का अर्थ पुत्र होता है, वही शब्द हिन्दी में 'पिल्ला' होकर कुत्ते के बच्चे के अर्थ में प्रयुक्त होता है। मूर्धन्य वर्ण से युक्त कुछ शब्द यदि सीधे द्राविड़ से नहीं आए हैं तो कम से कम उन पर द्राविड़ भाषाओं का प्रभाव तो बहुत ही पड़ा है। मूर्धन्य वर्ण द्राविड़ भाषाओं की विशेषता है।"

उपरोक्त लेखक को जब 'पिल्लै' और 'पिल्ला' शब्दों के भेद का ज्ञान न हो सका तो हम समझते हैं कि उसे 'वैश्या' अर्थात वैश्य जाति की स्त्री और 'वेश्या' अर्थात व्यभिचारिणी, कुलटा स्त्री या रण्डी के भेद का ज्ञान क्या हो सकेगा। उपरोक्त लेखक ने 'पिल्ला' शब्द का पिष्टपेषण करके एक विष्टा भक्षी सम्प्रदाय की स्थापना करदी। इस सम्प्रदाय के सदस्यों के लक्ष में जब भी और जहाँ भी कोई विष्टा रूपी शब्द या विचार आता है, वे बिना सङ्कोच, तुरन्त ही उसे ग्रहण करलेते हैं। खेद और परिताप है कि हिन्दी भाषा के उद्गम और विकास, तथा हिन्दी भाषा के इतिहास और भाषा-विज्ञान के सभी लेखकों ने अपनी अपनी कृतियों में लिखा है कि 'पिल्ला' शब्द हिन्दी भाषा में द्रविड़ भाषा से आया है। इसे ढोने में किन किन गर्दभों का उपयोग किया गया था उनके नामों का उल्लेख हम शिष्टतावश नहीं कर रहे हैं। पाठक इस विषय पर स्वयम् विचार कर सकते हैं।

'पिल्ल:' शब्द हिन्दी भाषा में न द्रविड़ भाषाओं से आया है और न यह शब्द हमारे लिये नया है। भाषा-वैज्ञानिकों के अनुसार द्रविड भाषाओं का विकास आज से १५०० वर्ष पूर्व माना जाता है। द्रविड़ भाषाओं के विकास से बहुत समय पूर्व 'पिल्ह' शब्द प्राकृत भाषा में भी प्रयोग होता रहा है। प्राकृत-शब्द-महार्णव में इस शब्द का अर्थ 'छोटे पक्षि के तुल्य' दिया हुआ है। परन्तु हिन्दी (खरी बोली) क्षेत्र में यह शब्द प्राचीन काल से निरन्तर प्रयोग हो रहा है। प्रत्येक भाषा का सर्व-प्रथम उद्देश्य अर्थ-प्रकाश होता है। जिस भाषा के द्वारा जितने स्पष्ट रूप से और जितने अल्प प्रयास से अर्थ-प्रकाश किया जाता है, वह उतनी ही उत्कृष्ट भाषा मानी जाती है। इसी कारण संस्कृत के अनेकार्थी शब्दों के अर्थों को स्पष्ट करने के हेतु हिन्दी भाषा में उस शब्द के अक्षर-विन्यासों में थोड़ा थोड़ा परिवर्तन करके अर्थानुसार अनेक शब्द बना लिये गये हैं।

संस्कृत शब्द कोशों में 'पुत्र:' शब्द के दो अर्थ दिये हैं—' (१) बेटा अर्थात मनुष्य का पुत्र, (२) किसी भी पशु का बच्चा। इस शब्द में 'कुत्ते के बच्चे' के अर्थ को 'मनुष्य के बच्चे' के अर्थ से स्पष्ट करने के लिये हम 'पुत्र:' शब्द के दो रूप हिन्दी में प्रचलित हैं। इसी पुस्तिका के सिद्धान्त अङ्क के ध्वनि विचार अध्याय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में हमने दिखाया है कि 'र' का उच्चारण 'ल' भी होता है और संयुक्त व्यञ्जन में पूर्व व्यञ्जन का लोप होकर उत्तर व्यञ्जन द्वैध हो जाता है। 'पुत्र:' शब्द का ही एक रूप 'पिल्ल:' अर्थात कुत्ते का बच्चा इस प्रकार सिद्ध होता है–पुत्र:–पुत्ल: पुल्ल: पिल्ल:

जिस प्रकार कामिनी स्त्री सुन्दर वस्त्रों द्वारा सजी होने पर भी पति के उद्देश्य से अपने शरीर को प्रकट कर देती है, और वैयाकरण के आगे वाणी अपना स्वरूप खोल कर रख देती है, उसी प्रकार विद्वान के आगे ग्रन्थ के लेखक का वास्तविक उद्देश्य, उसके एक ही विचार द्वारा प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार स्थालीपुलाक न्याय: वत् यह जानने के लिये कि हाण्डी मे चावल पक गये हैं या नहीं हम सभी चावलों की परीक्षा नहीं करते हैं, अपितु एक ही चावल की परीक्षा से उसका ज्ञान हो जाता है। पर्याप्तो ह्यक: पूलाक: स्थालया निदर्शनाय। महाभाष्य १.४.२३

'भारत का भाषा सर्वेक्षण' की भूमिका में इङ्गलेण्ड के भाषा-वैज्ञानिकों ने भारतियों तथा भारतीय भाषाओं के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त निर्धारित किये हैं, उनके पीछे जो गुप्त रहस्य है, भूमिका के शब्द 'पिल्ला' से तथा 'पिल्लै' से उसका नग्न रूप विद्वानों को स्पष्ट दिखाई दे सकता है। खेद है कि इन छद्म वेशी पाश्चात्य लेखकों के रहस्य को भारतीय विद्वान समझने में असमर्थ रहे।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के भाषा-विज्ञान विभाग (जिसको हमने कलङ्क केन्द्र की सञ्ज्ञा दी है) में सुनीति कुमार आदि अध्यापकों से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात एक भाषा-वैज्ञानिक लिखता है कि संस्कृत भाषा में ऐसे अनेक शब्द विद्यमान हैं जो मूलत: द्रविड़ तथा अन्य अनार्य भाषाओं से आये हैं। उसके अनुसार आधुनिक भाषा शास्त्रियों ने तो लग-भग साढ़े चार सौ संस्कृत के ऐसे शब्दों को ढूण्ढ निकाला है जिनका अनार्य स्रोत है। ऐसे शब्दों में वह जिन शब्दों की गणना करता है वह इस प्रकार है—काल, कला, पुष्प, पुष्कर, अणु, पूजा, वल्गु, नाना, पिक, कीचक, तिन्तिड़ी, वटिङ्गण, मयूर, कदलि, कम्बल तथा वाण आदि।

उपरोक्त सभी शब्द अनादि काल से सरस्वती भाषा के अङ्ग हैं और वैदिक संस्कृत में भी प्रयोग हुये हैं। यह सभी शब्द संस्कृत के प्रामाणिक शब्द कोशों में उपलब्ध होते हैं। संस्कृत साहित्य में जिस सम्पर्क में इनका प्रयोग हुआ है उसके उदाहरण भी शब्द कोशों में दिये हुये हैं। इन शब्दों पर आलोचना करना व्यर्थ प्रतीत होता है। हम सत्यचित भगवान से प्रार्थना करते हैं इस प्रकार के आधुनिक भाषा शास्त्रियों के दूषित मस्तिष्क के विकार को दूर करके इनको सम्मति प्रदान करे और छात्रों को उनसे मुक्ति दिलाये।

कोल भाषाओं के शब्द

'भारत का भाषा सर्वेक्षण' की भूमिका में ग्रियसेन ने कोल भाषा को 'मुण्डा' भाषा की सञ्ज्ञा दी है। 'मुण्डा नाम भी यूरोपीव लेखकों का स्वरचित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, मुण्डा नाम की कोई जाति या भाषा भारत में नहीं है। उसके अनुसार हमारी भाषा ने कोल भाषा के शब्द भी ग्रहण किये हैं। वह लिखता है आधुनिक आर्य भाषाओं में जो बीस बीस करके गणना होती है, वह भी कोल भाषा का ही अवशेष है। भारतीय आर्य भाषाओं की अङ्क-प्रणाली निश्चित रूप से दशमलव पद्धति पर है। गणना के लिये 'कोड़ी' शब्द का भी प्रयोग होता है जो सम्भवतः कोल शब्द है। बीस वस्तुओं की कोड़ी होती है और गङ्गा के काण्ठ में अशिक्षित लोग बड़ी सङ्ख्याओं के लिये इसी का प्रयोग करते हैं। उदाहरण स्वरूप बावन की सङ्ख्या को वे 'दो बीस और बारह' अथवा 'दो कोड़ी बारह' के रूप में प्रकट करते हैं। बीस के हिसाब से गिनना कोल भाषाओं की एक विशेषता है।"

भाषा-विज्ञान के भारतीय लेखकों ने ग्रियर्सन के उपरोक्त कथक का भी अन्धानुकरण किया है। जो भी ग्रियसेन ने लिखा भारतीय लेखकों ने अपने द्विगुणित बल से उसका प्रसार करने का प्रयास किया। उन्होंने दो अन्य शब्द ढूण्ढ निकाले जिनको वह कोल भाषा से हमारी भाषा ने ग्रहण किये बताते हैं, इस प्रकार उपरोक्त सिद्धान्त की पुष्टि में वह तीन शब्दों को प्रस्तुत कर सके हैं, जो यह हैं—(१) कोड़ी, (२) गण्डा और (३) हाण्डी।

ग्रियर्सन तथा भाषा-वैज्ञानिकों का उपरोक्त सिद्धान्त भी भ्रामक और अनर्गल प्रलाप है। यह तीनों शब्द अनादि काल से सरस्वती भाषा के शब्द हैं और हिन्दी (खरी बोली) कथ्य भाषा में प्रचलित हैं। यह तीनों शब्द संस्कृत शब्द कोशों में भी उपलब्ध हैं, तथा इन शब्दों के प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार जो लिङ्ग हैं उन्हीं लिङ्गों और अर्थों में यह शब्द हिन्दी (खरी बोली) में व्यवहार में आते हैं।

कोड़ी सं० स्त्री०—इस शब्द का साधु शब्द कोटी या कोटिः है। इसी पुस्तिका के सिद्धान्त खण्ड के ध्वनि विचार अध्याय में हमने अनेक शब्दों को प्रस्तुत करके दिखया है कि 'ट' का उच्चारण 'ड़' हो जाता है। अतः 'कोटी' शब्द ही 'कोड़ी' शब्द है। मोनियर विलियम्स ने संस्कृत-अङ्गरेजी कोश में 'कोटी' शब्द का अर्थ लिखा है—पुरानी गणित पद्धति के अनुसार सबसे बड़ी सङ्ख्या। परन्तु अपनी अज्ञानता से कोष्ट के भीतर लिख दिया अर्थात 'एक करोड़'। यदि वह दशमलव पद्धति को प्राचीन गणित पद्धित मानता है तो उसके अनुसार 'करोड़' सब से बड़ी सङ्ख्या नहीं होती है। करोड़ से बड़ी सङ्ख्या तो अरब, खरब, नील, पद्म, शङ्ख, आदि होती हैं।

'कोटी' शब्द का प्रयोग प्राचीन संस्कृत साहित्य में होता रहा है। महाभारत २.४५.३९ में, मनुस्मृति ६.६३ में और रघुवंश ५.२१ और १२.८२ में 'कोटी सहस्त्र' शब्द आया है जहां इस शब्द का अर्थ बीस सहस्त्र होता है न कि करोडसहस्त्र। भारतीय गणित पद्धति के अनुसार कोई सङ्ख्या करोड़-सहस्त्र नही लिखी जाती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोटी सहस्त्रं प्रददौ ब्राह्मणानां महात्मनाम—महाभारत २, ४५, ३९—

अर्थात उन्होंने महात्मा ब्राह्मणों को दक्षिण के रूप में सहस्त्र कोटि (बीस सहस्त्र) स्वर्ण मुद्राऐं प्रदान की। कोटि सहस्त्र शब्द का प्रयोग बाल्मीकीय रामायण के महात्म्यम् २.५३ में भी हुआ है—

नामस्मणमात्रेण राक्षसा अपि दूरगा।
मया प्रभक्षिता: पूर्वं विप्रा: कोटिसहस्त्रश:॥

अर्थात राक्षस ने कहा—आप जो भगवन्नामों का स्मरण कर रहे हैं, इतने से ही राक्षस भी दूर भाग जाते हैं। मैंने पहले कोटि सहस्त्र ब्राह्मणों का भक्षण किया है। यहां भी कोटि सहस्त्र का अर्थ बीस सहस्त्र होता है, क्रोड सहस्त्र तो संसार की जन-सङ्ख्या भी नहीं थी।

गण्डा सं० पु०— इस शब्द का साधु रूप गण्डक: सं०पु० है। जिसका अर्थ है चार कौड़ी के मूल्य का एक सिक्का। इसी अर्थ और लिङ्ग में यह शब्द आज भी हिन्दी (खरी बोली) क्षेत्र की कथ्य भाषा में प्रयोग में आता है-देखो आप्टे खण्ड २, पृष्ट ६४५।

हाण्डी, सं० स्त्री०—इस शब्द का साधु शब्द है हण्डिका या हण्डी सं० स्त्री० जिसका अर्थ है मिट्टी की हाण्डी। इसी अर्थ और लिङ्ग में यह शब्द हिन्दी (ख़री बोली) में प्रचलित है। देखो आप्टे खण्ड ३, पृष्ट १७४६।

'हण्डी' शब्द का एक यौगिक शब्द भी हमारी भाषा में बहुत प्रचलित है, और वह शब्द है—'पल्हण्डी' सं० स्त्री०। कुरुप्रदेश में हण्डी रखने के लिये भीत (देवाल) में एक बड़ा आला बनाते हैं और उसके नीचे के भाग को चौड़ा करने के लिये उसके नीचे के भाग में चोड़ा पत्थर या लकड़ी का पट्ड़ा लगा देते हैं जिस पर हण्डी सुरक्षा पूर्वक रखी ज़ा सके। शब्द 'पल्हन्डी' की व्युत्पत्ति है—(पल्-हण्डी) सं० स्त्री० पल् शब्द पलनम् का स्त्री० रूप है जिसका अर्थ है—सुरक्षा करना। देखो आप्टे संस्कृत अङ्गरेजी कोश पृष्ठ ९९७।

उपर्युक्त सभी शब्द हमारी भाषा के लोक प्रचलित शब्द हैं। जब किसी भाषा में किसी अन्य भाषा का शब्द प्रयोग होता है तो उसका व्यवहार केवल उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित रहता है जो उस शब्द को जानते हैं। मुसलमानों के शासन काल में अरबी, फारसी के अनेक शब्द कचहरियों में प्रयोग होते थे। परन्तु उनका व्यवहार भी उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित रहा जो वहाँ काम करते थे। यही दशा अङ्गरेजी शब्दों की है। किसी अन्य भाषा से सरस्वती भाषा में शब्द ग्रहण करने का कथन एक मूर्खता पूर्ण जल्पना है तथा षड्यन्त्र पर आधारित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: २४ :

हमारी उत्पत्ति एवं आदि देश

गर्हित-कल्पना

इस पुस्तक के अन्य पृष्ठों पर हम पाठकों को मैकोल और मैक्समूलर का परिचय दे चुके हैं। संक्षेप में हम फिर बता दें कि मैकोले एक उन्मादी ईसाई था और उसने भारतीयों (हिन्दुओं) के धर्म और संस्कृति को विनष्ट करने की एक योजना बनाई थी। मैक्समूलर एक जर्मन पादरी (ईसाई धर्म प्रचारक) था जिसको संस्कृत भाषा का अल्प ज्ञान था। मैकोले ने अपने षड्यन्त्र की पूर्ति के हेतु मैक्समूलर को ईस्ट इण्डिया कम्पनी से धन की सहायता लेकर इङ्गलेण्ड बुला लिया था और वह फिर आजीवन वहीं रहा है। उपरोक्त योजना के अन्तर्गत मैकोले ने भारत में शिक्षा नीति पर प्रकाश डालना आरम्भ किया। मैक्समूलर ने भारतीयों के धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में अपनी दुर्बुद्धि का प्रदर्शन प्रारम्भ किया और उसमें उसे कुछ भी सफलता न मिलने पर उसने भाषा विज्ञान का आश्रय लेकर भारतीयों के अस्तित्व को मिटाने का षड्यन्त्र रचा और उसने एक पुस्तक "शब्दों का जीवन वृतान्त और आर्यों का आदि देश" नामक लिख कर प्रकाशित की। मोनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत-इङ्गलिश कोश में 'आर्य' शब्द का अर्थ 'एक जाति का नाम जो मध्य एशिया से देश भ्रमण करती हुई भारत आई' लिख कर भारतीयों के प्रति अपनी कलुषित मनोभावना का परिचय दिया। उपरोक्त विचारों का दृढीकरण तथा प्रमाणीकरण करने के हेतु तत्कालीन भारत में अङ्गरेजी सरकार ने भारत का भाषा सर्वेक्षण ग्रियसेन के नेतृत्व में कराया और उसमें यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि—

(१) भारत के समस्त निवासी अभारतीय हैं, वह यहाँ के मूल और आदि निवासी नहीं हैं, वह आर्यों (जाति) के समूहों के रूप में कई शताब्दियों तक पश्चिम की ओर से आ आकर इस देश में बसते रहे हैं और इतना ही नहीं अपितु वह अपने धर्म ग्रन्थ वेदों और अपनी भाषा को भी विदेश से (लाद कर) यहाँ लाये थे।

(२) दक्षिण अर्थात आन्ध्र, तमिल, करनाटक, केरल आदि के निवासी और पूरब अर्थात उत्कल, वङ्ग और असम के निवासी द्रविड, मुण्डा, आस्ट्रिक आदि परिवारों के हैं जो सहस्त्रों वर्ष पूर्व (आग्नेय द्वीपों) की ओर से आकर भारत में बस गये थे। पहले आने वालों और पश्चात के आने वाले में निरन्तर सङ्घर्ष होता रहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपरोक्त सिद्धान्त अङ्गरेज स्वार्थी जाति के द्वारा इस कारण (कल्पित) किये गये थे कि भारत में राष्ट्रीय भावना जन्म न लेने पावे और कोई भी व्यक्ति माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या', अर्थात 'मेरा माता भूमि है और मैं मातृभूमि का पुत्र हूँ' यह भावना अपने हृदय में न लाने पावे। पाश्चात्य लेखकों द्वारा लिखी गई इतिहास की पुस्तकों में भी भारत के प्राचीन इतिहास को उसी ढङ्ग और शैली से लिखा गया है और भारत के इतिहास लेखक भी शृगाल और गर्दभ वत अपने नेता गौराङ्ग महाप्रभुओं के स्वर में स्वर मिला कर बोलते रहे। कितने उपहास की बात है कि भारोपीय इतिहास कारों और भाषा-विज्ञान के लेखकों ने भारत को उस रेल के डिब्बे के समान प्रभावित किया है जिसमें पहले से ही यात्री अपना अपना सामान लिये हुये भरे हुये हों और पश्चात वाले यात्री भी अपने सिरों और पीठ पर अपना सामान लादे पहले वाले यात्रियों को धकेल कर भीतर प्रवेश कर रहे हों और समस्त डिब्बे में द्वन्द हो रहा हो। इस प्रकार अङ्गरेज़ों ने अपने स्वार्थ के लिये अपने ही रङ्ग के शीशों को रख कर एक दूरदीक्षण यन्त्र बनाया और भारतीयों को कहा कि इस दूर दीक्षण यन्त्र में तुम भी देखो और इसे ठीक मानो। अङ्गरेजों के द्वारा बनाई हुई इस प्रणाली पर भारत में विश्वविद्यालय स्थापित किये गये और जो कला वहां पर उन्होंने प्रदर्शित की भारतीय इतिहास कार और भाषा-विज्ञानी उसी रङ्ग में रङ्ग गये और वही सब कुछ कहने और दोहराने लगे जो उन्हें सिखाया गया। यह उपहास जनक और लज्जा जनक स्थिति भारतीय इतिहास लेखकों और भाषा विज्ञान के अध्यापकों की कई दशाब्दियों से चली आ रही है। इस प्रकार के अध्यापकों की कहां तक गणना करें परन्तु भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में एक नाम तो शीघ्रता से अवश्य ही सामने आ जाता है और वह है, डा॰ सुनीति कुमार चटर्जी का। इस विद्वान ने भाषा विज्ञान के क्षेत्र में इङ्गलेण्ड में जो ज्ञान अर्जन किया उसे भारत में, पूर्ण गुरु दक्षिणा देते हुये प्रगट किया। उन्होंने हमारी राष्ट्रीयता पर 'बङ्गला भाषा की उत्पत्ति और विकास' नामक अङ्गरेजी पुस्तक द्वारा यह चोट की कि भारतीय राष्ट्रीयता की दृष्टि से तथा भाषा की दृष्टि से भारतीय नहीं हैं और यह दिखाने का प्रयास किया कि बङ्ग देश के बङ्गाली, मङ्गोल, चीन और न जाने कहां कहां से आये मिश्रित रक्त के हैं।

राम कृष्ण परमहंस जिनकी शिक्षा साधारण व सामान्य थी, स्वामी दयानन्द सरस्वती जो केवल संस्कृत के ज्ञाता थे, स्वामी विवेकानन्द जो राम कृष्ण के प्रिय शिष्य थे तथा ऐसे ही अन्य सदविचारशील व्यक्तियों ने भारत को, भारत के आत्मा को उस समय जीवित रखने का प्रयास किया जब अङ्गरेज षड्यन्त्रकारी विद्वान, और पाश्चात्य प्रणाली द्वारा शिक्षा, दीक्षा पाये भारतीय उसको नष्ट करने में लगे हुये थे। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि भारत की राष्ट्रीय नौका के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तलमें जब यह विदेशी और भारतीय विद्वान, छिद्र करके उसके डुबाने का प्रयास कर रहे थे, तब भिक्षा पर जीवन यापन करने वाले हमारे यह साधु सन्त उस नौका में आने वाले दूषित जन को निकाल निकाल कर बाहर फेंक रहे थे, रज्जू को खीञ्च कर किनारे बान्धने का प्रयास कर रहे थे जिससे विदेशी लहरों में यह बह न जाय और विदेशी दस्युओं द्वारा यह नष्ट न कर दी जाये।

शब्द साम्य एक भ्रम (?)

मैक्स मूलर ने बड़े प्रयास से कुछ ऐसे शब्दों को ढूण्ढ निकाला जो संस्कृत (भारतीय भाषा), जेन्द (पारसी भाषा), तथा ग्रीक, लेटिन, टयूटानिक, स्लेवोनिक, केल्टिक आदि (योरोपीय भाषाओं) में एक से ही प्रतीत होते हैं। इन शब्दों की संख्या बहुत थोड़ी है। इन शब्दों को निर्देशित करने में उसने बड़ी पटुता से काम किया। इनमें से कुछ संस्कृत शब्द तो ऐसे हैं जिनकी समानता जेन्द और ग्रीक भाषा के शब्दों से दिखाई गई है। शेष संस्कृत शब्दों में किसी शब्द की साम्यता जेन्द भाषा के शब्द से, किसी शब्द की साम्यता ग्रीक भाषा के शब्द से, और किसी शब्द की साम्यता लेटिन या ट्यूटोनिक या स्लोवोनिक या केल्टिक आदि किसी योरोपीय भाषा के शब्द से दिखाई गई है। भारतीयो, पारसियों, यूनानियों, रोमनों, रूसियों, केल्टों और जर्मनों की भाषाओं में इन शब्दों की साम्यता का कारण, मैक्समूलर ने यह बताया कि एक ऐसा समय था जब इनके पूर्वज एक ही स्थान पर रहा करते थे। इस प्रकार उसने यह सिद्धान्त बताया कि यह लोग, जिनकी भाषायें संस्कृत-फारसी-ग्रीक-लैटिन की मातृ-स्वरूपा प्राचीन किसी अज्ञात भाषा से निकली हैं, किसी समय एक ही स्थान पर रहते थे अर्थात इनके पूर्वज एक ही थे। जब यह लोग दूसरे देशों में फैले तो काल तथा जलवायु के प्रभाव तथा दूसरे लोगों के सम्पर्क में आने के कारण इनकी भाषाओं में अन्तर पड़ गया और बढ़ता ही गया, यहाँ तक कि उसने साम्य को दबा दिया। इस प्रकार उसने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि भारत, पारस और योरोप के रहने वाले एक ही उपजाति के हैं। पाश्चात्य लेखकों ने मैक्समूअर के उपरोक्त सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया।

मैक्समूलर तथा अधिकांश योरोपिय लेखकों ने मध्य ऐशिया को ही इस उपजाति का आदिम निवास-स्थान स्वीकार किया है। तत्कालीन भारतीय सरकार ने भी (जैसी कि आशा की जा सकती थी) इस मत को स्वीकार कर लिया था और विश्वविद्यालयों में इसी की शिक्षा दी जाती थी। खेद है कि भारत के स्वतन्त्र होने पर भी आज इसी सिद्धान्त की शिक्षा, भारत के गौरव-शून्य भाषा विज्ञानी अध्यापक, विश्वविद्यालय, में छात्रों को देते हैं। मैक्समूलर के इस मत के प्रतिपादन का मूल आधार यह था कि भारत-योरोपीय कुल की योरोपीय, पारसी तथा भारतीय उपशाखायें जिस स्थान पर मिलती हैं उसी के निकट इन भाषाओं को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बोलने वालों का मूल-स्थान रहा होगा। इस स्थान से यह जन-समूह दो दलों में विभक्त हुआ होगा। पहला दल उत्तर-पश्चिम की ओर चला गया होगा जो यूरोपीय शाखा हुई। सबसे पहले यूरोपीय शाखा अलग हुई होगी कारण कि उसकी भाषाओं और शेष आर्यों की भारत-ईरानी भाषाओं में भेद है। दूसरा दल दक्षिण-पूर्व की ओर चला गया होगा जो एशियाई शाखा हुई। इस शाखा का सबसे अधिक परिचय वेद और अवेस्ता में मिलता है। इन दोनों ग्रन्थों से यह स्पष्ट है कि जिन लोगों के यह ग्रन्थ हैं, उनका बहुत दिनों तक साथ रहा होगा। अतः इस स्थान से एक उपशाखा पारस गई होगी और दूसरी भारत आई होगी।

इस समस्त भाषा परिवार को व्यक्त करने के लिये इण्डो-जर्मनिक, इण्डों-टयूटानिक, इण्डो-केल्टिक, इण्डो-क्लासिक आदि नाम प्रस्तावित हुये हैं और इनमें भी इण्डो-जर्मेनिक नाम का प्रयोग विशेष रूप से होता रहा है, परन्तु ग्रियर्सन ने इस भाषा-परिवार का इण्डो-यूरोपीन (भारत-यूरोपीन या भारोपीय) नाम दिया है और भारत के विश्वविद्यालयों में यही नाम प्रचलित है। उपर्युक्त कथन के अनुसार जब यूरोप के म्लेच्छों तथा भारत और पारस के निवासियों की वंश-परम्परा एक है तो क्या यूरोप के म्लेच्छ भी आर्य ही हैं? इस प्रश्न का उत्तर हम ग्रियर्सन के ही शब्दों में लिखते हैं—"यह दुख की बात है कि आर्य शब्द का प्रायः अङ्गरेज विद्वान व्यापक रूप में भारोपीय के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। आर्य वस्तुतः शतम् समूह के अन्तरगत एक विशेष वर्ग के है और इस वर्ग के लोग अपने को आर्य नाम से सम्बोधित करते थे। अन्य शतम भाषायें इसके अन्तर्गत नहीं आती हैं। इङ्गलैण्ड में कभी-कभी अङ्गरेजी, लैटिन तथा जर्मन को 'आर्य भाषा' नाम से अभिहित किया जाता है किन्तु यह भाषायें आर्य भाषा नहीं हैं। मूलतः आर्य शब्द आर्या भाषा का ही है और आर्यों ने अपने लिये ही इस शब्द का प्रयोग भी किया है। इसके जो अर्थ दिये गये हैं उनमें एक अर्थ उच्चवंशीय तथा अभिजात भी है। भारत तथा ईरान के लोग भारोपीय वंश के हैं अतएव उन्हें अपने को आर्य कहने का पूर्ण अधिकार है, किन्तु हम अङ्गरेजों को नहीं"।

विचित्र–अनुशीलन (आर्य जाति)

मैक्समूलर, ग्रियर्सन और मोनियर-विलियम्स आदि यूरोपीय लेखकों का 'आर्य' शब्द का अर्थ 'एक जाति का नाम जो प्राचीन काल में किसी अज्ञात स्थान से भारत में आई थी, का खण्डन भारतीय पण्डितों तथा देश-भक्त भारतीय-विद्वानों द्वारा अनेक बार हो चुका है। परन्तु खेद है कि पाश्चात्य पद्धति से शिक्षित वा दीक्षित विश्व विद्यालयों के भाषा-विज्ञान विभाग के अध्यापक, भारतीय लेखकों के तर्कों की चर्चा तक भी नहीं करते हैं और यूरोपीय लेखकों के वचनों को ब्रह्मवाक्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानकर ही यह अध्यापक छात्रों को शिक्षा देते हैं। (इस पुस्तक के लेखक) ने उत्तर-प्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के भाषा-विज्ञान के अनेक अध्यापकों से पूछा कि क्या उन्होंने वह पुस्तक पढ़ी है जिसमें मैक्समूलर ने भारतीय हिन्दुओं का मूल-स्थान भारत के बाहर सिद्ध किया है। हमें यह जान कर आश्चर्य हुआ कि इन अध्यापकों का उस पुस्तक को पढ़ना तो दूर रहा, उनको उस पुस्तक के नाम तक का ज्ञान नहीं है यह है दशा इन गौरव शून्य, विद्याविहीन और दुर्बुद्धि अध्यापकों की। यदि पाश्चात्त्य लेखकों के सिद्धान्त के साथ साथ छात्रों के सम्मुख भारतीय लेखकों के तर्कों को भी उपस्थित किया जाता तो हमें पूर्ण विश्वास है कि पाश्चात्त्य सिद्धान्त अब तक विनष्ट हो गया होता। दयानन्द सरस्वती ने लिखा है कि वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इसी कारण वह सत्य को प्राप्त नहीं हो सकता। अतः विद्वानों का यही मुख्य कर्त्तव्य है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप प्रस्तुत करदें, पश्चात में अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करदें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्या आदि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। दुःख और शोक की बात है कि भाषा-विज्ञान के अध्यापकों ने एक षड्यन्त्र के अन्तर्गत भाषा-विज्ञान को केवल अपनी जीविका वृत्ति का माध्यम बना रक्खा है। भाषा-विज्ञान न कोई भाषा है और न विज्ञान है अपितु यह विभाग प्रत्येक वर्ष सहस्त्रों विद्यार्थियों की बुद्धि अवश्य नष्ट करता है। हम दृढ़ और स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि जब तक इस कलङ्कित, देश द्रोही विभाग को हिन्दी विभाग से निकाल कर नहीं फेंक दिया जायगा, उस समय तक हिन्दी भाषा की उन्नति नहीं होगी।

यदि किसी मनुष्य को संसार के सभी पदार्थ प्राप्त हो जायें परन्तु उसका आत्मा नष्ट हो जाये तो वह उसके किसी काम नहीं आ सकते। इसी प्रकार यदि किसी विद्यार्थी को विश्वविद्यालय की उच्चकोटि की सभी उपाधियां प्राप्त हो जायें किन्तु उसकी बुद्धि नष्ट-भ्रष्ट हो जाय तो वह उपाधियां उसके किसी काम की नहीं हो सकतीं। मनुष्य के नाम के पीछे लगे इस प्रकार के प्रत्यय पुच्छ के समान ही हो सकते हैं। सत्यासत्य की परीक्षा करके विद्या ग्रहण करना ही विद्यार्थी का परम धर्म है।

मैक्समूलर आदि यूरोपीय लेखकों के इस कथन का कि आर्य एक जाति का नाम है जो लगभग १५०० वर्ष वि०पू० मध्य ऐशिया से ईरान और अफगानिस्तान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होती हुई भारत आई थी और भारतीय (हिन्दु) उसी जाति के हैं तथा उनके आगमन से पूर्व ही ऋग्वेद की ऋचाओं की रचना ईरान में हो चुकी थी, के खण्डन में भारतीय लेखकों द्वारा जो तर्क दिये जा चुके हैं, हम पहले उनका उल्लेख करेंगे। उसके पश्चात मैक्समूमर के शब्द-साम्य के आधार पर रचे गये षडयन्त्र को उसी के आधार पर खण्डन करे सर्वदा के लिये विनष्ट करके दिखायेंगे। यूरोपीय लेखक और उनके मानस पुत्र, भारतीय इतिहास लेखक और भाषा-विज्ञान अध्यापक कुछ दशाब्दियों से हमारे पूर्वजों और यूरोपीय म्लेच्छों को एक ही बताकर हमारे पूर्वजों को अपमानित कर रहे हैं तथा हम भारतीयों के लिये अपशब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। अब समय आगया है कि उनके कथन का उत्तर उन्हीं की भाषा में प्रस्तुत किया जाय।

(१) वेदों का सर्वाधिक धार्मिक महत्त्व है। भारत में जितने विभिन्न मत मतान्तर प्रचलित हैं, इनका मूल स्रोत वेद से ही प्रवाहित होता है। वेद भारतीयों के ही नहीं प्रत्युत मानव जाति के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। स्मृति शीघ्र नष्ट नहीं होती है। वेदों में कहीं भी ऐसा सङ्केत नहीं मिलता कि भारतीय (हिन्दु) कहीं बाहर से आये। वेदों में जिन नदियों के नाम आते हैं वह सब नदियां भारत में ही हैं। वह मूजवान पर्वत जहां से सोम लाकर यज्ञ होते थे, हिमालय का ही भाग है।

(२) जैन शास्त्रों के अनुसार भी भारतवर्ष ही चिरकाल से हिन्दुओं का आदिम निवास स्थान है। जैन मत के प्रवर्त्तक चोबीस तीर्थङ्कर हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से ही इन तीर्थङ्करों की एक लम्बी परम्परा चली आरही है। ऋषभदेव इस परम्परा के प्रथम तीर्थङ्कर माने जाते हैं। इनके पीछे होने वाले तेईस तीर्थङ्करों का विस्तृत विवरण जैन ग्रन्थों में उपलब्ध है। इन चोबीस तीर्थङ्करों में अन्तिम दो तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ तथा वर्धमान या महावीर निःसन्देह ऐतिहासिक पुरुष थे। पार्श्वनाथ का ८७४ वि०पू० काशी नगरी में जन्म हुआ था। पार्श्वनाथ के २५० वर्ष पश्चात वर्धमान ने ६५६ वि०पू० वैशाली में जन्म लिया था। यदि प्रत्येक तीर्थङ्कर के बीच २५० वर्ष का भी समय माना जाये तो प्रथम तीर्थङ्कर का समय ६३०० वि०पू० माना जासकता है। वैदिक संस्कृति जैन धर्म से बहुत प्राचीन है।

(३) वेद भाषा उच्च कोटि की साहित्यिक भाषा है। यह भाषा कथ्य भाषा सरस्वती का संस्कृत रूप है। हम भारतीय सरस्वती को भाषा और ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी मानते है और इसी कारण सरस्वती भाषा को देववाणी कहते हैं। इस भाषा को हम चिरकाल से बोलते चल आरहे हैं। भाषा अपने मूल देश से कभी नष्ट नहीं होती है। इसका सब से बड़ा प्रमाण यह है कि हमारी भाषा के सञ्ज्ञा शब्दों के व्याकरणिक लिङ्ग आज भी वही हैं जो इन शब्दों के वैदिक युग से पूर्व व्यवहारिक सरस्वती भाषा में थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपहासजन्य तर्क

मैक्समूलर ने दस-बीस शब्दों को संस्कृत, जेन्द तथा यूरोपीय भाषाओं में अनुरूप दिखाने का प्रयास किया है, परन्तु उसके पास यह सिद्ध करने के कोई प्रमाण नहीं हैं कि इन भाषाओं में यह शब्द उस समय के पहले के हैं जब इन भाषाओं को बोलने वालों के पूर्वज एक ही स्थान पर रहा करते थे। मैक्समूलर निर्लज्जता पूर्वक लिखता है कि जो कुछ भी उत्तर-पश्चिमी और दक्षिण-पूर्वी भाषाओं में समान रूप है वह उस समय के पूर्व का है जब यह दोनों शाखायें अलग अलग हुई होगी। तथा जो कुछ इन शाखाओं की भाषाओं में भेद है वह उनके अलग होने से पूर्व का हो भी सकता है और नहीं भी। एक शाखा की भाषा में वह सुरक्षित रहा होगा जो दूसरी शाखा का भाषा ने खोदिया होगा। एक शाखा जब यूरोप पहुंच गई तो उसने यूरोप की भाषायें सीख ली होंगी। पाठक स्वयम् देख सकते हैं कि उसका यह कथन कितना उपहास्यास्पद है। विभिन्न भाषाओं में दस-बीस शब्दों की अनुरूपता से यह प्रमाणित नहीं हो सकता है कि इन भाषाओं का उद्गम एक ही स्थान से हुआ है और जिन मनुष्यों की वह भाषायें हैं उनके पूर्वज कभी एक ही थे। यह सिद्धान्त भाषा विज्ञान के लेखकों को मान्य है और हम उनका कथन उन्ही की भाषा में उदधृत करते हैं—"विभिन्न भाषाओं में शब्दों का आदान-प्रदान हो जाया करता है इसीलिए शब्दों का साम्य मिलता है पर भाषाओं के एक परिवार की खोज के लिए शब्द समूह की समानता सिद्धान्त रूप में गृहीत नहीं की जा सकती है"[१] एक अन्य लेखक लिखता है—"भाषा का शब्द भण्डार भी परिवारिक वर्गीकरण का प्रमाणिक आधार नहीं है क्योंकि किसी भाषा मे अनेक कारणों से दूसरी भाषाओं के शब्द आ जाया करते हैं"[२] अतः विभिन्न भाषाओं के कतिपय शब्दों के साम्य को देखकर यह मान्य नहीं होसकता कि उन भाषाओं को बोलने वालों में भी कभी साम्य रहा होगा। यह बात भी मानने योग्य नहीं है कि जिन मनुष्यों की भाषा एक है उनके पूर्वज भी कभी एक थे जैसे अरबी भाषा के अनेक शब्द तुर्की और फारसी भाषाओं में मिल गये हैं परन्तु उन भाषाओं को बोलने वाले अरब नहीं हैं। इसका दूसरा उदाहरण अङ्गरेजी भाषा का है। आज यह भाषा केवल इङ्गलेण्ड में ही नहीं बोली जाती है अपितु पृथ्वी के अनेक देशों के निवासी इसे बोलते हैं, जिनका भाषा के अतिरिक्त अङ्गरेजों से कोई भी समता नहीं है। भाषा के साथ-साथ अङ्गरेजों के खान-पान, वेष-भूषा आदि का भी अनुकरण किया जाता है, परन्तु ऐसा करने वाले अङ्गरेजों से सर्वथा भिन्न हैं। यदि

(१) सरल भाषा-विज्ञान पृष्ठ ८७

(२) भाषा-विज्ञान की भूमिका पृष्ठ १०३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा मात्र की समता देखकर कोई इन सब को एक मान ले और फिर इनमें एकता के लक्षण ढूण्ढने लगे तो उसे कुछ बातें तो मिल ही जायेंगी, पर उसका विभाजन निराधार और कृत्तिम होगा। भाषा और सभ्यता के बाहरी आडम्बर के एक होने से वंश की एकता सिद्ध नहीं होती[1]।

शब्द-अनुरूपता (आकस्मिक)

संसार की कोई सी भी दो भाषाओं में यदि अनुरूप शब्दों को ढूण्ढने का प्रयास किया जाये तो दोनों भाषाओं मे ऐसे अनेक शब्द मिलेंगे जो साधारण व्यक्तियों को एक ही प्रतीत होंगे। इसका कारण आकस्मिक अनुरूपता होता है जिसे अङ्गरेजी में accidental coincidence कहते हैं। इस प्रकार के शब्दों से उन भाषाओं में या उन भाषाओं के बोलने वालों में किसी प्रकार का भी पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता है। हम जानते हैं कि अङ्गरेजी भाषा का विकास केवल एक सहस्त्र वर्ष हुये हुआ था। अङ्गरेजी भाषा और अङ्गरेजों का भारतीय भाषा या भारतयों (हिन्दुओं) से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था, परन्तु इन दोनों भाषाओं में सैकड़ों शब्द मिल सकते हैं जो साम्य प्रतीत होते हैं। सरस्वती (संस्कृत कोशों में दिये शब्द) और संसार की अन्य भाषाओं में भी इसी प्रकार के शब्द ढूण्ढे जा सकते हैं। पर्याप्त स्थान न होने के कारण हम यहां संस्कृत और अङ्गरेजी के कुछ शब्दों को उदाहरण रूप में उपस्थि करते हैं—

सरस्वती	अङ्गरेजी	सरस्वती	अङ्गरेजी
मूढ	Mad	मिश्रम्	Mixture
द्रप्स:	Drops	कुरल:	Curl
क्रमेल:	Camel	सूप:	Soup
दानव:	Demon	पूति:	Pus
बर्बर:	Barbarian	मय:	Mule
तिन्तडी	Tamarind	मयी	Mare
सूनु:,	Son	झम्पा	Jump
सुनु:, सुवन:	Sun	तृषित	Thirsty
गोरम्	Gold	त्रिंशति	Thirty
गोरी	Girl	षष्टि:	Sixty
यूष:	Juice	जम्भ:	Jaws
तथ्यम्	Truth	मध्यदिनम्	Midday
क्रूर	Cruel	द्वारम्	Door

(१) देखो आर्यों का आदिदेश—सम्पूर्णानन्द पृष्ठ १९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नव	New	समान	Same
तरु:	Tree	नीड:	Nest
बटु:	Boy	शिरि:	Sword
नक्तम्, नवित:	Night	ललित	Lovely
सर्प:	Serpant	स्वनि:	Souud
सराव:	Saucer	दुहितृ	Daughter
मुकुर:	Mirror	स्वसृ	Sister
वरण्ड:	Veranda	मातृ	Mother
कर्कटी	Cucumber	कोकिला	Cuckoo
वृक:	Wolf	वामा।	Woman

उपरोक्त शब्दों पर सावधानी से बिचार करने से यह स्पष्ट होता है कि इन शब्दों में केवल प्रथम व्यञ्जन ही साम्य है, इसके अतिरिक्त इन शब्दों में कोई साम्यता नहीं है। पाठकों को इस प्रकार के शब्दों के उदाहरणों से भ्रम में पड़ना उचित नहीं है। अब हम उन सिद्धान्तों का उल्लेख करेंगे जिनके आधार पर दो भाषायें एक ही परिवार की मानी जा सकती हैं और उनका परस्पर सम्बन्ध स्थापित होता है।

(सृष्टि) समाज का प्रादुर्भाव एवं विकास

इस समस्त विश्व-प्रपञ्च का मूल एक ही है जिसे परमात्मा, परब्रह्म, निराकार, ईश्वर आदि किसी भी नाम से सम्बोधित किया जासकता है। जो निर्गुण-निराकार ब्रह्म अनादि और अरूप है वही सगुण और साकार होकर इस चराचर विश्व को प्रकट करता है। उसको सब से पृथक किसी अगम्य स्थान में विराजमान मानना निरर्थक है। ब्रह्म ही चराचर जगत के रूप में अपना विस्तार करते हैं। इसी दृष्टि से वेदान्त में प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्म स्वरूप ही मानकर मुक्त कण्ठ से 'अहं ब्रह्मास्मि' की घोषणा करदी है। सर्व प्रथम तामस अहङ्कार से असञ्ज्ञ (चेतना रहित) पदार्थों की उत्पत्ति होती है जैसे पत्थर, लोहा, मिट्टी आदि। फिर राजस अहङ्कार से अन्तः सञ्ज्ञ (सुप्त चैतन्य) पदार्थों की उत्पत्ति होती है जैसे बेले, घास, वृक्ष, वनस्पति आदि। इनमें प्राण शक्ति तो होती है परन्तु मन कि क्रिया भीतर छिपी रहती है। अन्त में सात्विक अहङ्कार से ससञ्ज्ञ (चैतन्य) जीवधारी सृष्टि होती है, जैसे मनुष्य, पशु, पक्षि, कीट, पतङ्ग आदि।

ब्रह्मा ने जो प्राणी प्रथम बनाये वह सर्दी-गर्मी से बहुत कम प्रभावित होकर जङ्गलों, वनों में या नदियो, झीलों, पर्वतों और समुद्र से निकट विचरण करते रहते थे। वे उपभोग के विषय में अनायास तृप्ति लाभ करलेते थे और उसमें किसी प्रकार का विघ्न, द्वेष अथवा मत्सर नहीं था। उस समय वे घर बनाकर नहीं रहते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे और सदा निषकर्मचारी और प्रसन्नचित थे। उस समय को हम 'प्रकृति का साम्राज्य' या 'स्टेट आफ नेचर' कह सकते हैं। उस समय प्राणी अपना निर्वाह घास-पात, फल-फूल से करते थे अत: उस समय उनको किसी प्रकार की चिन्ता या सङ्घर्ष की आवश्यकता नहीं होती थी। पर परिवर्तन शील सृष्टि-क्रम में यह अवस्था सदैव स्थिर नहीं रह सकती थी। धीरे-धीरे मनुष्य लोभी होने लगे. वे वृक्षों पर अपना अधिकार जमाने लगे और उनकी जड़ों में अपने रहने के किये घर बनाने लगे। जैसे जैसे जीवन-निर्वाह के साधन बदलते गये उसी प्रकार प्राणियों और उनकी जीवन-निर्वाह विधि में भी परिवर्तन होता गया। जब तक मनुष्यों में स्वार्थ बुद्धि की वृद्धि नहीं हुई और वे प्रकृति द त्त पदार्थों में से आवश्यकता अनुसार ही लेकर अपनी भूख मिटा लेते थे तब तक उनका काम बिना किसी विशेष प्रयत्न के जङ्गल और वनों की स्वाभाविक उपज से होता रहा। पर जैसे-जैसे उनमें सङ्ग्रह और परिग्रह की भावना उत्पन्न होने लगी, प्रकृति भी अपने दान को सङ्कुचित करने लगी और मनुष्यों को जीवन-निर्वाह के लिये परिश्रम करना पड़ा तथा युक्ति-साध्य विधियों का आश्रय लेना पड़ा। इसी से कृषि-विद्या और पृथक परिवार की प्रथा का जन्म हुआ। उसके पश्चात विभिन्न प्रकार के सामाजिक कार्यों से जाति-प्रथा का जन्म हुआ। मनुष्य जितने अधिक विभाजित हुये और अपने उत्पादन को सुरक्षित रखकर उनका स्वयम् ही उपभोग करने लगे वैसे-वैसे ही मानव-सम्बन्धों में जटिलता आती गई और क्रमश: शासन, राज्य और राष्ट्र का प्रादुर्भाव होकर मानव-समुदाय आधुनिक सभ्यता और संस्कृति तक पहुंच गया[१]।

यह विद्यमान जगत जैसा आज है वैसा ही प्राचीन काल में भी था और अनादि काल से ऐसा ही चला आ रहा है। यह जगत इससे विपरीत कभी था, इसके मानने के लिये हमारे पास कोई प्रमाण नहीं हैं। इस भूमण्डल पर पहाड़, नदियाँ, मरुस्थल, दलदल, समुद्र, द्वीप तथा महाद्वीप जहां-जहां आज हैं उन्हीं स्थानों पर प्राचीनकाल में भी थे। महासागर भी अपनी तटभूमि का कभी उल्लङ्घन नहीं करता है। समुद्रों में स्थित सहस्त्रों ऐसे छोटे-छोटे द्वीप हैं जिनके निवासियों का, आधुनिक काल से पूर्व, इस भूमण्डल के किसी अन्य क्षेत्र के निवासियों से कभी किसी प्रकार का संसर्ग नहीं रहा है। आधुनिक काल में जलयानों द्वारा जब मनुष्य उन द्वीपों मे पहुंचा तो उन द्वीपों में भी मनुष्य, पशु, पक्षि आदि प्राणी रहते मिले हैं। प्रशान्त महासागर में अब भी, पोलीनीसिया आदि अनेक छोटे-छोटे इस प्रकार के द्वीप हैं जिनमें निवास करने वाले मनुष्य नग्न रहते हैं। वे अपने रहने के लिये घर नहीं बनाते हैं अपितु जङ्गलों में तथा समुद्र के तट पर पशुओं की भान्ति पड़े रहते हैं। आज भी उनकी स्थिति प्रकृति के साम्राज्य जैसी है। आज से लगभग चार

(१) देखो मार्कण्डेय पुराण, प्रकाशक संस्कृति संस्थान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहस्त्र वर्ष पूर्व यही दशा भूमध्य सागर के निकटवर्ती प्रदेशों ग्रीस और इटली को छोड़-कर समस्त यूरोप की थी । इटली के निवासी जब प्रथम बार फ्रांस पहुंचे थे तो वहां के मनुष्य वृक्षों पर नङ्गे रहा करते थे । लगभग चार सौ वर्ष पूर्व जब यूरोप वाले आस्ट्रेलिया पहुंचे तो यही दशा वहाँ के निवासियों की पाई गई । इन विभिन्न क्षेत्रों के रहने वाले मनुष्य विभिन्न प्रकार की बोलियां बोलते थे जिनका संसार की किसी अन्य भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं था । अत: हम नि:सन्देह कह सकते हैं कि संसार के मनुष्य एक ही पूर्वजों की सन्तान नहीं हैं अपितु पृथ्वी के विभिन्न भागों में रहने वाले मनुष्य सृष्टि के आरम्भ में एक ही साथ उत्पन्न हुये थे ।

भाषाओं की विभिन्नता के आधार पर भी उपरोक्त सिद्धान्त की पुष्टि होती है । इस पृथ्वी के विभिन्न भागों में रहने वाले मनुष्य विभिन्न भाषायें बोलते हैं जिन भाषाओं का परस्पर कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता है । यदि भूमण्डल के सभी मनुष्य एक ही पूर्वजों के वंशज होते (जैसा कि ईसाइयों के धर्मशास्त्र में लिखा है) तो पथ्वी के विभिन्न भागों में फैलने के पूर्व वह एक ही भाषा बोलते होंगे । पृथ्वी के अन्य भागों में अन्य मनुष्य न रहने के कारण उनकी भाषा पर किसी अन्य भाषा का प्रभाव नहीं पड़ सकता था । अत: पृथ्वी के विभिन्न भागों में रहने वाले मनुष्यों की भाषा में व्यक्तिगत उच्चारण के भेद के अतिरिक्त और कोई भेद नहीं हो सकता था । इस प्रकार संसार की सभी भाषाओं के मूल तत्त्व एक ही होते, जो नहीं हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य पृथ्वी के प्रत्येक भाग में एक ही साथ उत्पन्न हुये थे । इसके विपरीत बाइबिल की उक्ति पूर्णतया भ्रामक, निर्मूल और निराधार है ।

नृवंश विभिन्नता

इस भूमण्डल पर जो महाद्वीप हैं उनके विभिन्न क्षेत्रों में भी इस प्रकार के भूगोल विषयक अवरोध हैं कि मनुष्य का प्राचीन काल में, उनको पार करके एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाना असम्भव था । संसार के विभिन्न क्षेत्रों और भागों में रहने वाले मनुष्यों में आकार-प्रकार, डील-डौल, मुखमण्डल, रङ्ग, रूप, आकृति आदि के अनेक भेद होते हैं । किसी भाग के निवासियों का रङ्ग गोरा, किसी का गेहुंआ, किसी का ताम्र वर्णी और किसी का काला होता है । इन में भी किसी भाग के रहने वालों की नाक चपटी होती है, किसी भाग वालों की आंखें छोटी और तिरछी होती हैं और किसी भाग वालों के होण्ट मोटे होते हैं और किसी भाग वालो के बाल ऊन जैसे होते हैं । हबशियों का रङ्ग काला, होण्ट मोटे और बाल ऊन जैसे होते हैं । तिब्बत के निवासियो की नाक चपटी, आंखें छोटी और तिरछी और गाल पर की हड्डी उभरी होती है । एक देश को छोड़कर दूसरे देश में निवास करने तथा जल-वायु के प्रभाव से रङ्ग बदल जाने पर भी यह बातें रह जाती हैं । अत: विभिन्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भागों के आदि निवासियों में कुछ न कुछ लक्षण इस प्रकार के होते हैं जिनसे इनकी पहचान हो जाती है। इसी प्रकार की दशा भाषा की भी है। संसार के विभिन्न भागों में रहने वाले मनुष्यों की भाषाओं में भी अनेक मूल भेद होते हैं। यद्यपि संसार की सभी भाषायें मनुष्यों द्वारा ही बोली जाती हैं और मनुष्य में विभिन्न भाषाओं को सीखने की नैसर्गिक शक्ति होती है, पर उनके मूल भेद के कारण संसार की सभी भाषायें एक ही परिवार या जाति की नहीं होती हैं और उनकी भी पहचान हो जाती है।

प्राचीन काल में भूमण्डल के जिस क्षेत्र का दूसरे क्षेत्र के निवासियों से भूगोल विषयक अवरोधों के कारण विशेष संपर्ग नहीं रहा है, उन उन क्षेत्रों की भाषाओं का उद्गम और विकास भी स्वतन्त्र रूप से अपने अपने क्षेत्र के किसी स्थान से हुआ है और फिर वही भाषा उसी उसी क्षेत्र में फैली है। भाषा मानवीय अभिव्यक्ति का श्रेष्ठ साधन है, चिन्तन धारा का स्रोत और संस्कृति का स्वभाविक प्रवाह भाषा में ही प्रतिबिम्बित होता है। प्रत्येक जाति का नैतिक गौरव पूर्ण इतिहास उसी का भाषा में उदय होता है। देश, काल और व्यक्तिगत उच्चारण के भेद से भाषा में परिवर्तन हुआ करता है, परन्तु मूल भाषा के मूल तत्त्व न कभी नष्ट होते हैं न बिगड़ते हैं। अत: भाषा अपने मूल देश से कभी नष्ट नहीं होती है। भूमण्डल के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न भाषाओं का उद्गम और विकास होने के कारण उन उन भाषाओं के मूल तत्त्व भी पृथक् पृथक होते हैं अत: वह भाषायें भी विभिन्न जाति या परिवार की होती हैं। संसार की विभिन्न भाषाओं में कुछ न कुछ साम्यता अवश्य परिलक्षित की जा सकती है, परन्तु कुछ साम्य लक्षणों से उन उन भाषाओं का एक ही परिवार की होना सिद्ध नहीं होसकता है और इससे यह नहीं कहा जासकता कि उन उन भाषाओं का उद्गम स्थान एक ही है।

सम-विषम जाति-भेद

उपरोक्त कथन का एक उदाहरण यह है कि पशु और मनुष्य में यह साम्यता है कि दोनों ही जरायुज अर्थात गर्भ से उत्पन्न होने वाले जीव हैं। मनुष्य की भाँति पशु के भी दो आंख, दो कान, एक नाक, मुंह, दान्त आदि होते हैं, परन्तु दोनों एक ही जाति के नहीं होते हैं। इन में प्रकृति के अनुसार यह मूल भेद है कि पशु के पूञ्छ होती है मनुष्य के नहीं होती है। इसी लक्षण से मनुष्य और पशु की पहचान हो जाती है।

इसका दूसरा उदाहरण यह है कि यदि यह निर्णय करना हो कि दो प्रकार के जरायुज प्राणी एक ही जाति के हैं या नहीं तो प्राणिशास्त्र के अनुसार उन प्राणियों के तीन लक्षणों पर ध्यान देना होता है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१) क्या इन प्राणियों में यौन-सम्बन्ध होता है, यदि नहीं होता तो वह एक जाति के नहीं हैं।

(२) यदि इन प्राणियों में यौन-सम्बन्ध होता है तो क्या इस सम्बन्ध से सन्तान होती है। यदि सन्तान नही होती है तो वह प्राणी विभिन्न जातियोंके हैं।

(३) यदि इन के यौन-सम्बन्ध से सन्तान होतो है तो यह निर्णय करना चाहिये कि क्या इस सन्तान के सन्तान होती है। यदि नहीं होती है तो वे प्राणी एक जाति के नहीं हैं। इसका भी एक उदाहरण यह है कि घोड़ो और गधों में यौन-सम्बन्ध होता है और इस सम्बन्ध से सन्तान भी होती है जिसे खच्चर कहते हैं, परन्तु खच्चर के सन्तान नहीं होती है। अतः इससे यह सिद्ध होता है कि घोड़े और गधे विभिन्न जातीय होते हैं।

जरायुज जीवों के एक लक्षण के अनुसार यह भी ज्ञात होसकता है कि कौन कौन से जरायुज जीव शाकाहारी होते हैं और कौन कौन से जरायुज जीव मांसाहारी होते हैं। जो जरायुज जीव शाकाहारी होते हैं वह पानी घूण्ट भर भर कर पीते हैं और जो मांसाहारी होते हैं वह पानी अपनी जिह्वा से चाट चाट कर पीते हैं। जन्म के समय शाकाहारी जीवों की सन्तान की आंखें खुली होती हैं परन्तु मांसाहारी जीवों की सन्तान की आंखें बन्द होती हैं।

भारोपीय भाषा परिवार—असत्य तथा काल्पनिक विचार

जिस प्रकार प्राणिशास्त्र की सहायता से विभिन्न जातीय होने का बोध होसकता है, उसी प्रकार भाषा-शास्त्र के आश्रय से विभिन्न भाषाओं का विभिन्न जातीय होने का ज्ञान होसकता है। जब दो भाषायें एक दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तो एक भाषा दूसरी समृद्ध भाषा के शब्दों को तो ग्रहण कर सकती है, परन्तु उन शब्दों का अपनी ध्वनियों के अनुसार परिवर्तन करके उच्चारण करती है। कोई भी मूल भाषा दूसरी भाषा के ध्वनि समूह को उसी प्रकार स्वीकार नहीं करती है। दूसरा विषय विचारणीय यह होता है कि एक भाषा यदि दूसरी भाषा के शब्दो को ग्रहण भी करती है तो उन शब्दों का अपने वाक्यों में प्रयोग अपनी ही वाक्य रचना की पद्धति के अनुसार करती है। अर्थात एक भाषा दूसरी भाषा के शब्दों को तो ग्रहण कर सकती है परन्तु दूसरी भाषा के व्याकरण को ग्रहण नहीं करती है। अतः संसार के किसी भी क्षेत्र की भाषा को सरस्वती भाषा परिवार की सिद्ध करने के हेतु निम्न दो बातों का साम्य होना अनिवार्य है :—

(१) उस भाषा की ध्वनियों का सरस्वती भाषा की ध्वनियों से समानता, और

(२) उस भाषा की वाक्य-रचना का सरस्वती भाषा की वाक्य-रचना से समानता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थात यदि उस भाषा की ध्वनियां और वाक्य-रचना सरस्वती भाषा की ध्वनियों और वाक्य-रचना के समान नहीं है तो वह भाषा कदाचित् भारतीयभाषा परिवार की नहीं हो सकती है। इसके अतिरिक्त हम यह भी पूर्णतया सिद्ध कर चुके हैं कि सरस्वती भाषा के शब्द, शब्दों के अर्थ तथा शब्द-अर्थ का सम्बन्ध नित्य है। शब्दों के उच्चारण कितने भी विकृत हो जायें परन्तु उनका अर्थ नित्य रहता है और इसी कारण सरस्वती भाषा के शब्दों के सम्बन्ध में कहा गया है—"सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे"।

ध्वनि साम्यता

योरोपीय भाषाओं के ध्वनि समूह में क्रमहीय अपूर्ण ध्वनियां हैं परन्तु सरस्वती भाषा का ध्वनि समूह क्रमबद्ध स्फोटवाद पर आधारित है। भारत में वर्ण का अर्थ अक्षर (अविनाशी) है। भारत में ब्रह्म का प्रतिपादक होने से वर्णों को शब्दब्रह्म कहते हैं। हमारी भाषा में स्वर और व्यञ्जन वर्ण भी पृथक पृथक हैं। कण्ठ की घट्टी से ओष्ठ तक के भाग को मुख कहते हैं। वर्णों की उत्पत्ति या अभिव्यक्ति के कण्ठ आदि पाञ्च स्थान हैं। जीभ के चार भाग होते हैं—मूल, मध्य, उपाग्र और अग्र। यह चार और नीचे का ओष्ठ मिलकर जो पाञ्च भाग हैं उनको अनुक्रम से कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ इनका परस्पर सम्बन्ध होकर विभिन्न अक्षर स्फुटित होते हैं। अ, कवर्ग, ह और विसर्ग का कण्ठ स्थान है। इ, चवर्ग, य, श इनका तालु स्थान है। ऋ, टवर्ग, र और ष इनका मूर्धा स्थान है। तवर्ग, ल और स इनका दन्त स्थान है। उ और पवर्ग का ओष्ठ स्थान है। ञ म ङ ण न इनका नासिका स्थान भी है। ए और ऐ का कण्ठ तालु स्थान है। ओ और औ का कण्ठ एव ओष्ठ स्थान है। वकार का दन्त एव ओष्ठ स्थान है। अनुस्वार का नासिका स्थान है। इस प्रकार मनुष्य के मुख के विभिन्न अवयवों से जितनी भी ध्वनियां स्फुटित होती हैं वह सभी हमारी भाषा में हैं। इतना ही नहीं हमारी भाषा में दो या अधिक व्यञ्जनों का समूह भी होता है जिसे संयोग कहते हैं। सरस्वती भाषा की ध्वनियों का संसार की किसी भी अभारतीय भाषा की ध्वनियों से साम्य नहीं है। अतः हम इसी आधार पर कह सकते हैं कि संसार की कोई भी अभारतीय भाषा, भारतीय भाषा परिवार की नहीं है।

फारसी, ग्रीक, लैटिन तथा आधुनिक यूरोपीय भाषाओं में मूर्धन्य उच्चरित ध्वनियां (टवर्ग और ष) नहीं हैं। इस आधार पर यूरोपीय पादरियों और भाषा-विज्ञान के लेखकों का कथन है कि वैदिक युग पूर्व यह ध्वनियां आर्य (भारतीय) भाषाओं मे नहीं थीं। द्रविड़ भाषाओं में मूर्धन्य ध्वनियों की प्रधानता थी और है। द्रविड़ भाषाओं के सम्पर्क से आर्य भाषाओं में मूर्धन्य ध्वनियों का आविर्भाव हुआ है, तथा वैदिक काल के उपरान्त भारतीय आर्य भाषाओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में मूर्धन्य ध्वनियों की वृद्धि हुई है। उनका उपरोक्त कथन कितना हास्यास्पद हो जाता है जब इन्हीं लेखकों के द्वारा हमें यह बताया जाता है कि वेद भाषा (संस्कृत) भारत की प्राचीनतम भाषा है और द्राविड़ भाषाओं की उत्पत्ति का समय आज से केवल १५०० वर्ष पूर्व है। हम दिखा चुके हैं कि कथ्य भाषा सरस्वती का ही संस्कृत रूप वेद भाषा थी और दोनों भाषाओं के शब्द एक ही थे। मूर्धन्य ध्वनियों का वेदों में सहस्त्रों बार प्रयोग हुआ है। उदाहरण रूप में हम यहां ऋग्वेद के मण्डल १०, सूक्त ९३ के मन्त्र ११, १२, १३, और १५ को प्रस्तुत करते हैं। इन चार ही मन्त्रों में टवर्ग का ८ बार और 'ष' का १० बार प्रयोग हुआ है।

एतं शंसामन्द्रास्मयुष्टंव कूचित्सन्तं सहमावन्नभिष्टये सदा पाह्यभिष्टये।
भेदतां वेदता वसो ।। ११
एतं मे स्तोम तना न सूर्ये द्यु तद्यामानं वावृधन्त नृणाम्।
संवननं नाश्व्यं तष्ठेवान पच्युतम ।।१२
वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययी।
नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता ।। १३
अधीन्न्वत्र सप्तति च सप्त च।
सद्यो दिदिष्ट तान्वः सद्यो दिदिष्ट पार्थ्यः सद्यो दिदिष्ट मायवः ।। १५

पाणिनि ने भी मूर्धन्य ध्वनियों को चौदह माहेश्वर सूत्रों में इस क्रम से बान्धा है—

अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ्, घढधष्, जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर, हल्।

अतः मूर्धन्य ध्वनियां आदि काल से हमारे ध्वनि समूह का अङ्ग रही हैं।

वाक्य रचना

वाक्य रचना में वाक्य मे विभिन्न पदों को यथास्थान रखने की पद्धति पर विचार होता है। वाक्य रचना में तीन बातें आती हैं—पदों का परस्पर सम्बन्ध, कारक और क्रम। सरस्वती भाषा में वाक्य-रचना की प्रथम दो बातों पर ही विचार हुआ है। सरस्वती और उसकी साजातीय भाषायें हिन्दी आदि, विभक्ति प्रधान हैं, अतः उनमें परस्पर पदों का सम्बन्ध शब्द के अन्त में होने वाली विभक्तियों से निर्धारित होता है, भले ही वे कहीं पर भी रख दिये जायें। क्रम-परिवर्तन से अर्थ-परिवर्तन नहीं होता है, यथा

राम ने गोविन्द को पीटा।
गोविन्द को रामने पीटा।
पीटा गोविन्द को रामने।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपरोक्त तीनों वाक्यों में क्रम परिवर्तन से अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है, किन्तु इङ्गलिश तथा अन्य यूरोपीय भाषायें विभक्ति-हीन हैं, उनमें क्रम ही सर्वोत्तम महत्त्व की बात है। उन भाषाओं में क्रम-परिवर्तन करते ही अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। यथा:—

राम बीटस गोविन्द।

गोविन्द बीट्स राम।

उपरोक्त दोनों वाक्यों का अर्थ एक दूसरे से पूर्णतः विपरीत है।

विभिन्न भाषाओं की वाक्य रचना के आधार पर पारिवारिक वर्गीकरण करने के हेतु भाषा-विज्ञान के लेखकों ने जो विचार प्रकट किये हैं वह उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार हैं—"परिस्थितियों से प्रभावित होकर किसी भाषा की ध्वनियाँ बदल सकती हैं, नये शब्द आ सकते हैं, अर्थ में परिवर्तन हो सकता है, किन्तु पद-रचना या वाक्य-रचना का प्रकार आसानी से नहीं बदल सकता। इस लिये पारिवारिक वर्गीकरण पर विचार करते समय सबसे अधिक महत्त्व इन्हें देना पड़ता है। अतः पारिवारिक वर्गीकरण के लिये मुख्यतः पद-रचना और वाक्य रचना के ही आधार मानना चाहिये। ध्वनि, अर्थ, शब्द-भण्डार एवं स्थानिक निकटता पारिवारि वर्गीकरण के आधार तो हैं किन्तु गौण रूप में हैं, उन पर पूर्णतः निर्भर नहीं किया जा सकता"[1] यह विचार प्रकट करने पर भी यह लेखक लिखता है कि हिन्दी और अङ्गरेजो के बीच हजारो (सहस्त्रों) मील की दूरी होने पर भी वे एक परिवार की हैं।[2] एक अन्य लेखक लिखता है कि "आज हिन्दी और अङ्गरेजी के बीच परस्पर सर्वनामों, सङ्ख्यावाचकों, पिता, माता आदि सम्बन्ध के बोधक शब्दों आदि की समानता प्राप्त है, किन्तु दोनों के व्याकरण में समानता का लोप होगया है। सौभाग्य से इन दोनों भाषाओं की पूर्ववर्ती अवस्थाओं के प्रदर्शक ग्रन्थ दोनों तरफ (ओर) मौजूद (उपस्थित) है जिनसे इतिहासिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यदि सामग्री उपस्थित न रहती तो हिन्दी और अङ्गरेजी का सम्बन्ध विचार-कोटि तक सीमित रहता।[3] वह सामग्री क्या है? यदि स्वाभिमान विहीन भाषा-विज्ञान के लेखकों के पास इस प्रकार की कोई सामग्री होती तो वे उसका उल्लेख अवश्य करते और हमें उसका भी खण्डन करने का अवसर प्राप्त होता। एक अन्य लेखक का कथन है कि सामग्री की अल्पता के कारण निश्चित निर्णय में बाधा पहुंचती है। अनेक भाषायें लुप्त हो चुकी हैं, कुछ भाषाओं के कतिपय शब्द ही अवशिष्ट रह गये हैं, जैसे हित्ती के। ऐसी अपूर्ण सामग्री से सर्वथा सन्तोषप्रद निष्कर्ष

(१) भाषा विज्ञान की भूमिका पृष्ठ १०३, १०४

(२) भाषा विज्ञान की भूमिका पृष्ठ १०४

(३) सामान्य भाषा-विज्ञान पृष्ठ २०२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं निकल सकता ।[४] पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक संस्कृत भाषा को भी प्राचीन ग्रीक, लैटिन के समकक्ष किसी प्राचीन भाषा से अपभ्रष्ट हुई सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। परन्तु उनके घोर प्रयत्न करने पर भी वे किसी ऐसी प्राचीन भाषा का अस्तित्व सिद्ध नहीं कर सके, जो व्यवहार रूप मे संस्कृत से प्राचीन हो। उन्होंने अपने असत्य अनैतिहासिक उक्त मत को वैज्ञानिकत्व का चोला पहराने के लिये एक काल्पनिक भाषा बनाई है और उसे सस्कृत, हिटैटी, ग्रीक, लैटिन प्रभृति भाषाओं की जननी बताया है। कितना दुस्साहस है इन तथाकथित भाषा–वैज्ञानिक पाश्चात्य विद्वानों का ?[५]

भारतीय और यूरोपीय भाषाओं को एक ही परिवार की बताने का जो वास्तविक कारण है उसको हम एक भाषा-विज्ञान के लेखक के शब्दो में उद्धृत करते हैं—वस्तुत: भाषा-विज्ञान का आरम्भ भारत-यूरोपीय परिवार की भाषाओं के अध्ययन से हुआ……उसका पहली बार प्रामाणिक और तुलनात्मक निरूपण सर विलियम जोन्स के १८८६ ई० (संवत १९४३ वि०) के ऐतिहासिक भाषण में मिलता है जो उन्होंने बङ्गाल की रौयल एशियाटिक सोसाइटी के सामने दिया था और जिसमें उन्होंने यह घोषित किया कि ग्रीक और लैटिन का संस्कृत से इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि वे निश्चित ही किसी एक सामान्य स्रोत से निकली प्रतीत होती हैं, जो स्रोत अब सम्भवत: नष्ट होगया है। तुलनात्मक भाषा विज्ञान का आरम्भ सर विलियम जोन्स के ऐतिहासिक भाषण से ही होता है।[६] १९ वीं शताब्दि के अन्त मे यूरोपीय पादरियों और लेखकों ने इस प्रकार के विश्वास और भावना को एक षड्यन्त्र के अन्तर्गत जन्म दिया था तथा स्वनामधन्य भारतीय इतिहास के विद्वानों और भाषा विज्ञान के भ्रामक प्रचारकों ने इस यूरोपीय विचार को अपने द्विगुणित बल के साथ उद्-घोषित किया और आज भी कितने भाषा-विज्ञान के अध्यापक उसी मत के समर्थन मे गर्दभ न्यायवत 'एको जल्पति अन्य: अनुवदति' की कहावत को चरितार्थ करते हैं। यूरोपीय लेखकों का यह कथन, कि संस्कृत, अवेस्ता, ग्रीक, लैटीन, रूसी, जर्मन आदि भाषाओं के अध्ययन से इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व कोई एक प्राचीन भाषा थी जिससे यह सब भाषायें विकसित हुई हैं और जिसे जानने का आज कोई साधन नहीं रह गया है, पूर्ण रूपेण कपोल कल्पना और मूर्खता पूर्ण जल्पना है। कोई भी सामान्य बुद्धि का व्यक्ति इस प्रकार की असत्य बातों का विश्वास नही कर सकता है।

(४) भाषा-विज्ञान की भूमिका पृष्ठ १०४।
(५) देखो व्याकरण महाभाष्यम, प्रस्तावना पृष्ठ ६।
(६) भाषा-विज्ञान की भूमिका पृष्ठ १०८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिक्षुक सम तेहि घर घर खोजत मूरखता के चेरे।
हिय में ताको रूप विलोकौ झलकत अंसवन मेरे।।

भारतीय दर्शन के अनुसार यह चराचर जगत ही ब्रह्म का विस्तार है, वह सबसे पृथक किसी अगम्य स्थान में विराजमान नहीं है। चौथे और सातवें आकाश पर उनके विराजमान होने की कल्पना निर्मूल और निराधार है। इसी प्रकार प्रत्येक भाषा का स्रोत भी उसी क्षेत्र के जन-साधारण की भाषा में समावेश रहता है। मूर्खता के चेले ही उसकी खोज उस भाषा के क्षेत्र से बाहर परदेशों में किया करते हैं और असफल रहने पर उस स्रोत को अब नष्ट बताया करते हैं। किसी भी आदि मूल भाषा के मूल तत्त्व कभी नष्ट नहीं होते हैं, वे जन-साधारण की कथ्य भाषा में सर्वदा विद्यमान रहते हैं और उनको वहीं खोजा जा सकता है, परन्तु उनको ढूण्ढने के हेतु मौलिक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।

भाषा विज्ञान के भारतीय लेखक अपने स्वतन्त्र मनन चिन्तन को तिरोहित करके यूरोपीय लेखकों का अनुकरण मात्र कर रहे हैं। जब हम मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि भाषा मानवीय अभिव्यक्त का श्रेष्ठ साधन है। चिन्तन धारा का स्रोत और संस्कृति का प्रवाह भाषा में ही अङ्कुरित होता है। किसी भी क्षेत्र की भाषा उस समुदाय के मानसिक भावों और विचारों से सम्बन्धित होती है। यह सूर्य प्रकाश की भान्ति स्पष्ट लक्षित है कि यूरोप और भारतीय (हिन्दु) जाति के पूर्वजों के भावों तथा विचारों में बहुत अधिक भेद था और वैसा कुछ आज भी उनकी सन्तानों की परम्पराओं में है। यूरोपीय भौतिक वादी एव स्थूल दृष्टि के थे, उनमें पार्थिव मोह और तामसिक वृत्ति अधिक थी और आज भी है। भोजन और खानपान में उनमें मांस मदिरा का आधिक्य और भोगवादी प्रवृत्ति हे, जबकि उनके विपरीत हमारे पूर्वजों में जो सप्त सिन्धु के उर्वर क्षेत्र सरस्वती, यमुना और गङ्गा की शस्य श्यामला भूमि में रहते थे, पारलौकिक दृष्टिकोण का बाहुल्य था और उनकी वृत्ति सात्विक थी, उनमें इहलौकिक सुखों के हेय दृष्टि प्राप्त थी और भोजन आदि भी सात्विक प्रधान था। अत: हमारे पूर्वजों की उद्गम भाषा में उनके सात्विक भाव विद्यमान है जो हमारी संस्कृति तथा सभ्यता की अमिट छाप आज भी छोड़ रहे हैं, केवल उसको देखने और समझने के लिये नवीन दृष्टिकोण चाहिये जो मौलिक हो।

यूरोपीय विचारों का अनुशीलन करने पर हम उनमें अधिकांश रूप में बर्बरता, हिंसा, स्थूल-दृष्टि और व्यवहार में तामसिक वृत्तियों का आधिक्य पाते हैं, जैसे मांस, मदिरा आदि का सेवन; जबकि हमारे पूर्वजों में सात्विक प्रधान भाव थे, जैसे दया, अहिंसा, परोपकार आदि, उत्तम मानवीय गुण थे। अत: तामस प्रधान जातियों की सात्विक प्रधान जातियों से तुलना करके इन पाश्चात्य लेखकों ने अपनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुर्बुद्धि का प्रमाण दिया है। खेद है कि हमारे भारतीय लेखक उसका परिमार्जन न करके, दास मनोवृत्ति के कारण उसी का समर्थन करते आ रहे हैं।

देशान्तर गमन मार्ग (?)

भारतीय (हिन्दुओं) के आदि मूल-स्थान की समस्या का समाधान ढूण्ढने के लिये जिस जिस यूरोपीय लेखक ने प्रयास किया उसने अपने ही देश को भारतीयों का मूल-स्थान स्थापित करने की चेष्टा की। इस प्रकार यूरोपीय विचारकों ने यूराल पहाड़ से अटलाण्टिक महासागर के बीच स्थित अधिकांश देशों यथा दक्षिण रूस, काकेशस का उत्तरी ढाल, वोल्गा नदी का मुहाना, कैस्पियन सागर का उत्तरी भाग, जर्मनी, पोलैण्ड में विश्चुला नदी का तट, हङ्गरी, लिथुआनिया, स्कैण्डिनेविया आदि देशों को भारतीयों का मूल स्थान बताया। यूरोप के अन्य लेखकों ने मध्य एशिया को उनका मूल स्थान बताया। उनके अनुसार यहाँ से मनुष्यों के जो दल सुदूर पश्चिम को गये उनके वंशज आजकल के यूरोपीय राष्ट्र हैं और मनुष्यों के जो दल पारस और भारत को आये उनके वंशज पारस देश के निवासी और भारतीय हैं।

यूरोप के म्लेच्छों और भारतीयों के वंशज को एक ही प्रमाणित करने के लिये, हम उपरोक्त कोई भी मत स्वीकार करें, हमें इस प्रश्न का तो निर्णय करना ही होगा कि उस समय, यूरोप से एशिया में या मध्य एशिया से यूरोप में मनुष्य के लिये देशान्तर गमन करने का कोई मार्ग था भी या नहीं।

यूरोप और एशिया की प्राकृतिक स्थिति जैसे प्राचीन काल में थी वैसी ही आज भी है। समुद्र, पहाड़, नदियां, झीलें, मरुभूमि, दलदल आदि जिस जिस स्थान पर आज हैं उसी स्थान पर प्राचीन काल में भी थे। यूरोपीय विचारकों के अनुसार भारतीयों के देशान्तर गमन का समय आज से लगभग ३५००-४००० वर्ष पूर्व था। यह सामान्य ज्ञान की बात है कि उस समय मनुष्य को अपने परिवार और पशुओं के झुण्डों को साथ लेकर समुद्र को पार करने के कोई साधन उपलब्ध नहीं थे। अतः यह देशान्तर गमन किसी भूमार्ग से ही हुआ होगा। यह बात यूरोपीय विचारकों को मान्य भी है।

यूरोप और एशिया का भूभाग केवल दो स्थानों पर परस्पर मिला हुआ है। अतः यूरोप और एशिया के बीच उन्हीं दो स्थानों से भूमार्ग हो सकता था, जो इस प्रकार हैं:—

(१) काले सागर के उत्तर पूर्व और कैस्पियन सागर के बीच का भूमि भाग।

(२) अरल एवं कैस्पियन सागर के उत्तर स्थिति भूभाग।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काले सागर और कस्पियन सागर के बीच के भूभाग में काकेशस पर्वत हैं। यह बात यूरोपीय विचारकों तथा ग्रियर्सन आदि लेखकों ने स्वीकार की है कि काकेशस पर्वत ऐसा दुर्लंघनीय पर्वत है कि पशुपालक लोगों के लिये इसका पार करना असम्भव है। दूसरे मार्ग कैस्पियन सागर के उत्तरी प्रदेश के भूतत्त्वशास्त्र के सम्बन्ध में हम एक यूरोपीय लेखक के विचार उसी के शब्दों में उद्धृत करते हैं :—

कैस्पियन एक ऐसा अन्तर्देशीय समुद्र है जो धीरे-धीरे अधिक छिछला एवं सङ्कुचित होता जा रहा है। यदि हम यह मान भी लें कि आज की अपेक्षा वह पहले थोड़ा ही अधिक विस्तृत रहा होगा, तब भी इसके तथा अरल सागर के बीच से होता हुआ जो मार्ग तुर्किस्तान को जाता होगा, वह उस्ट उर्ट के भयानक रेगिस्तान से होकर ही जाता होगा। प्राचीन युग के लोगों के लिये अपने परिवार तथा पशुओं के झुण्डों के साथ इस रेगिस्तान को पार करना, उस समय असम्भव ही रहा होगा। किन्तु यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त प्रमाण हैं कि अधिक समय नहीं हुआ जब कैस्पियन सागर आज की अपेक्षा उत्तर में अधिक विस्तृत था। इसके आगे दलदल या रेतीली भूमि का क्षेत्र था। प्राचीन काल में आर्यों के देशान्तर गमन के समय तो इस दलदल तथा रेगिस्तान क्षेत्र का विस्तार पूर्व में बहुत दूर तक था और अरल सागर तथा इसके आगे का निचला मैदान भी इसके अन्तर्गत था। इस प्रकार प्राचीन युग में इस मार्ग से तुर्किस्तान में प्रवेश करना सरल न रहा होगा। सच बात तो यह है कि इस सम्बन्ध में कोई भी ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि ईरानियों (पारसियों), अफगानों तथा हिन्दुओं के पूर्वज तुर्किस्तान के मार्ग से होकर गुजरे भी थे।

देशान्तर गमन के निर्मूल और निराधार सिद्धात को व्यक्त करने में यूरोपीय पादरियों और लेखकों की ऐसी उन्मादी दशा हुई कि उनको यूरोप और एशिया के बीच की प्राकृतिक स्थिति का ध्यान ही नहीं रहा और दस-पाञ्च शब्दों के आधार पर उनके जो मन में आया उसी में बहकने लगे। सच तो यह हैं जो यूरोप के सामान्य बुद्धि के लेखकों को स्वीकार भी है, कि प्राचीन काल में यूरोप और ऐशिया के बीच न कोई समुद्र-मार्ग था और न कोई भूमार्ग था। यद्यपि यूरोप और ऐशिया का भूभाग दो स्थलों पर परस्पर मिला हुआ है, परन्तु प्राचीन काल मे यूरोप और ऐशिया के बीच किसी प्रकार का सम्बन्ध न रहने के कारण ही यूरोप और ऐशिया पृथक पृथक महाद्वीप माने जाते थे और आज तक माने जाते हैं।

एक और बात विचारणीय एवं ध्यान देने योग्य है। यदि यह भी मान लिया जाय कि भारतीयों, पारसियों और यूरोप के वंशज मध्य ऐशिया में रहते थे, तो वह सब के सब उस प्रदेश को छोड़कर क्यों चले गये ? इसका कोई कारण नहीं बताया जाता है। कहा जाता है कि उनके मन में ऐसी ही प्रवृत्ति उठी। यह कोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर नहीं है। यदि पारिवारिक जनों की सङ्ख्या की वृद्धि हो जाने और खाद्य पदार्थ कम हो जाने के कारण उनके झुण्ड बहर निकले, तो कुछ तो घर पर ही रह जाते। यह आश्चर्य की बात है कि वह प्रदेश जो भारतीयों और यूरोपीयों आदि का आदिम निवास बताया जाता है, स्वतः पूर्णतया मानव शून्य हो गया।[1]

दूसरी आश्चर्य जनक बात यह है कि जब इन यूरोपीय लेखकों को भारतीयों के आदि मूल-स्थान का भी ज्ञान नहीं है तो इन्हें उनके आदि देश की भाषा का ज्ञान कहां से हो गया। उनका देशान्तर गमन का सिद्धान्त एक प्रमाद है। मैक्समूलर आदि उन्मादी पादरियों और ग्रियसेन आदि षड्यन्त्र कारियों ने इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा, भारत के मति भ्रष्ट भाषा-विज्ञानियों ने उसी को ब्रह्म वाक्यम् जनार्दनः मानकर भारतीय भाषाओं पर अङ्गरेजी भाषा में शोध ग्रन्थ रच डाले और उन विदेशी विश्वविद्यालयों ने, जिनको हमारी भाषा का कोई ज्ञान भी नहीं है, इस प्रकार के शोध कृताओं को डी०लिट् आदि की उपाधियों से सुशोभित कर दिया, और आज उन्हीं आधारों पर भारत में भाषा-विज्ञान (अज्ञान) की शिक्षा दी जाती है। हम भारत के भाषा-शास्त्र के तरुण रक्त विद्यार्थियों को सत्य का उद्घाटन कराना चाहते हैं।

आज से लग-भग ४००० वर्ष पूर्व यूराल पर्वत से अटलाण्टिक महासागर तक उत्तरी यूरोप एक घना जङ्गल था। इस क्षेत्र में यूरोपीय आदिम निवासी प्राकृत अवस्था में पेड़ों के ऊपर नग्न रूप में रहते तथा फल-पत्तों पर अपना जीवन यापन किया करते थे। उस समय वे सर्दी गर्मी से अधिक प्रभावित नहीं होते थे। पशुओं की भान्ति दिन भर जङ्गलो में विचरते फिरते थे और उपभोग के विषय में अनायास तृप्ति लाभ कर लेते थे। उस समय तक सभ्यता के प्रथम किरण की क्षीण रेखा भी उनके पास तक नहीं पहुंची थी। उस समय भारत में पाणिनि के व्याकरण अष्टाध्यायी का अध्ययन हुआ करता था। संवत २७६ वि०पू० यूनान के राजा सिकन्दर ने और देशों को जीतने के लिये प्रस्थान किया तो उस समय तक यूरोप में कोई अन्य सङ्घटित राज्य ही नहीं था। अतः वह पूर्व की ओर पारस और भारत आदि देशों की ओर युद्ध के लिये बढ़ा था।

भारत अनादि काल से ज्ञान-विज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में पूर्णत्व प्राप्त कर चुका था। आज सर्व सम्मति से स्वीकृत है कि ऋग्वेद विश्व की प्राचीनतम रचना है। ऋग्वेद के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भाषा की प्रौढता और शब्द शक्ति के सामर्थ की दृष्टि से ऋग्वेद किसी अर्ध विकसित भाषा की रचना नहीं है, अपितु भारत में व्याप्त सरस्वती भाषा का उत्कृष्ट साहित्यिक रूप

(१) देखो आर्यों का आदि देश —सम्पूर्णानन्द

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। अतः इन भाषा वैज्ञानियों का यह कथन, कि ऋग्वेद का निर्माण भारत के बाहर पारस के किसी स्थल पर हुआ और वह जातियां धीरे धीरे पूर्व की ओर-बढ़ती हुई जब भारत पहुंची तब ऋग्वेद की ऋचायें पूरी हुई, कैसे माना जासकता है। परिताप है कि एक पुस्तक जो हमारे राष्ट्र-गौरव को विश्व में उच्चता के शिखर तक ले जा सकती है, उसके विषय में यूरोपीय पादरियों ने जो कुछ लिखा, पाश्चात्य पद्धति से शिक्षित भारतीयों ने, उसका बाल-बुद्धि से अनुकरण किया।

हम पूर्ण विवेक के पश्चात दृढता पूर्वक कहते हैं कि हमारी भाषा हमारे ही देश की स्वभाविक देन है और वह इसी देश में विकसित, पोषित और पल्लवित हुई। हमारी भाषा के शब्दों का, शब्दों के अर्थों का, भाषा की ध्वनियों तथा लिपि का कोई सम्बन्ध या सम्पर्क किसी विदेशी भाषा से नहीं है। यह स्वतन्त्र जन्मा ओर स्वतन्त्र विकसित है। भाषा-वैज्ञानिक हमारी भाषा पर जो अज्ञान की धूल फैला रहे हैं और आज के नवयुवकों में अराष्ट्रीय भावना तथा हीनत्व की जो मनोदशा को जन्म दे रहे हैं, हम चाहते हैं कि उसका समूल उच्छेद हो और शमन हो।

भाषाओं का मिलन केन्द्र (सङ्गम-स्थल)

हमने पूर्णतया सिद्ध किया है कि वैदिक भारतीयों और यूरोप के निवासियों के पूर्वज एक ही उपजाति के नहीं थे और उनका किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं था। अब हम प्राचीन काल के भारतीयों और पारस देश के निवासियों के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य और अन्य प्राणी इस भूमण्डल के विभिन्न भागों में एक साथ ही उत्पन्न हुये थे। उस समय मनुष्य भी प्राकृत अवस्था में अन्य पशुओं की भान्ति अपना जीवन यापन किया करता था। उसके पास न रहने को घर थे और न पहनने को कपड़े। मनुष्य के जीवित रहने के लिये, प्रकृति के अनुसार पृथ्वी के जिन भागों का वातावरण जितना अधिक अनुकूल था, उतनी ही अधिक सङ्ख्या में मनुष्य उन भागों में जीवित रहे। भूमण्डल के जिन भागों का वातावरण मनुष्य के जीवित रहने के लिये प्रतिकूल था, उन भागों में या तो मनुष्य अधिक सङ्ख्या में उत्पन्न ही नहीं हुये या धीरे धीरे नष्ट हो गये। अतः भूमण्डल के जिन क्षेत्रों में बहुत शीत पड़ता था, या निरन्तर वर्षा होने के कारण घने तथा भयानक वन थे जिनमें अनेक प्रकार के हिंसक जीव जन्तु रहते थे, या जहां की भूमि ईरिण अर्थात मरुस्थल या बञ्जर थी, उन क्षेत्रों की जन सङ्ख्या अधिक नहीं थी। परन्तु जिन देशों में अधिक गर्मी-सर्दी नहीं होती थी, ऋतु-समथी, जहां की भूमि उर्वरा थी और खाद्य पदार्थ अधिक मात्रा में उपजते थे, उन देशों की जन-सङ्ख्या प्राचीन काल से आजतक अधिक ही रही है। संसार में इसी प्रकार का देश भारत था। प्राचीन काल में जिन देशों की जन सङ्ख्या अधिक थी उन्हीं देशों में विद्या का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पठन-पाठन सर्व प्रथम आरम्भ हुआ। यही कारण है कि भारत का धर्म, दर्शन, संस्कृति और सभ्यता संसार में सब से प्राचीन है। अत: उस समय भारत को ही पृथ्वी लोक और यहां के रहने वालों को मनुष्य कहते थे।

अवगणस्थान

भारत की सीमा का वर्णन हमारे अनेक प्राचीन धर्म ग्रन्थों में आता है। विष्णु-पुराण के अनुसार समुद्र के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित देश भारतवर्ष है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार भारत के दक्षिण में, पूर्व में तथा पश्चिम में महोदधि है और उत्तर में हिमालय पर्वत है जो धनुष की ज्या के समान फैला हुआ है। हिन्दुकुश पर्वत भी हिमालय का ही भाग है। हिन्दुकुश पर्वत के दक्षिण में स्थित देश को अब अफगानिस्तान कहते हैं, यह भी भारत का ही भाग था। गुप्त साम्राज्य काल में तो भारत की सीमा मध्य ऐशिया तक थी। मुगलों के समय तक अफगानिस्तान भारत का ही अङ्ग माना जाता था। अफगानिस्तान भारतीय भाषा का ही शब्द है, इस शब्द का साधु रूप 'अवगण-स्थान' है। 'अवगण' का अर्थ है विविक्त, एकाकिन, या जो अपने साथियों से नि:सङ्ग होगया हो। आज भी अफगानिस्तान इसी प्रकार का देश है।

दरदस्थान

यह पुन:-पुन: स्मरण रखने की बात है कि प्राचीन काल में भारत की जन स्थिति दो प्रकार की थी। एक विभाग पुरवासियों का था जो मणिजा कहलाते थे। मणिजा सभ्य थे और कर्म के अनुसार चार भागों में विभक्त थे और यही चार भाग वर्ण के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हुये। दूसरा भाग वन वासियों का था। वन में रहने वाले अशिक्षित, प्राकृतिक और असभ्य थे और अनार्य बर्बर कहलाते थे। भारत के विभिन्न पहाड़ों के निवासियों के विभिन्न नाम थे, यथा किरात, दारद आदि। शब्द 'दरद' भी भारतीय भाषा का ही है जिसका अर्थ है 'पहाड़' देखो आप्टे संस्कृत अङ्गरेजी कोश पृष्ठ ८०३। दरदा भारत के उस पहाड़ी प्रदेश का नाम था जो भारत के पश्चिमोत्तर में कश्मीर से मिला हुआ अफगानिस्तान के पूर्व में है। इसके अन्तर्गत गिलगित, चित्राल आदि आते है। दरद प्रदेश के निवासियों का संस्कृत साहित्य में प्राय: उल्लेख मिलता है, जहां इनको 'दारद' कहा गया है। इस नाम का भौगोलिक ग्रन्थों, महाकाव्यों और पुराणों में अनेक बार प्रयोग हुआ है। पश्चिमोतर भारत के अन्य निवासियों के साथ, भारतीय विद्वान उन्हें 'बर्बर' कहकर पुकारते थे। उनकी रीतियां भी बड़ी घृणा की दृष्टि से देखी जाती थीं। उनके मनुष्य भक्षी होने की कथायें भी लोक प्रचलित थीं। इसी कारण अन्य उपयुक्त नामों में उन्हें 'पिशाच' शब्द से सम्बोधित किया गया है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसका प्रयोग उन मनुष्य के लिये होता था जो मांस पर निर्भर रहने वाले थे और 'राक्षस' के अर्थ में भी किया जाता है। मनुस्मृति के दशम अध्याय में बताया गया है कि कुछ क्षत्रिय जातियां क्रिया लोप से (यज्ञ यगादि क्रिया छोड़ देने से) तथा ब्राह्मणों के अदर्शन (बिना अध्ययन तथा प्रायश्चितादि) से धीरे धीरे शूद्रतव को प्राप्त हो गयीं, उनमें किरात और दरद नाम भी दिये हुये हैं। दरदस्थान की भाषा में भारतीय भाषा के ही अधिकांश शब्द भ्रष्ट रूप में प्रचलित हैं, आज भी दरदीय भाषा पर अपनी निकटवर्ती पञ्जाबी और लहन्दा भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। किन्तु खेद है कि ग्रियसेन जैसे उन्मादी फिरङ्गी ने भारत के भाषा सर्वेक्षण में, जिसका मूल उद्देश्य भारतीयों को अभारतीय सिद्ध करना था, एक कपोल कल्पना और मूर्खता पूर्ण जल्पना को इस सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—"कतिपय फारसी आर्यों ने हिन्दुकुश के उत्तर से पूर्व की ओर निष्क्रमण कर पामीर प्रदेश को अधिकृत कर लिया। वहां से उन्होंने एक दल या अनेक दलों के रूप में, हिन्दुकुश को दक्षिण की ओर से पार कर उस देश में प्रवेश किया जो आज दरदस्तान के नाम से विख्यात है। यह बहुत सम्भव है कि वहां पश्चिमोत्तर भारत के आदिवासी रहते हों और प्रथम भारतीय आर्य आक्रमणकारियों के आगमन पर वहां से भगा दिये गये हों। इस ऊबड़-खाबड़ तथा बर्बर देश में उत्तर से आने वाले आर्य-आक्रमणकारियों की भाषा निश्चित रूप से वहां के पूर्व निवासियों की उस आर्योत्तर भाषा से प्रभावित हुई, जो अपने ढङ्ग से विकसित हुई थी। यह न तो फारसी थी और न भारतीय ही अपितु दोनों के मध्य की भाषा थी।"

हम भली प्रकार जानते हैं कि पामीर प्रदेश से हिमालय पर्वत को पार करके गिलगित और चित्राल पहुंचना आज भी असम्भव ही है, परन्तु ग्रियर्सन के अनुसार उस समय के आक्रमणकारी अपने परिवार और पशुओं के झुण्डों को साथ लेकर उस मार्ग से आये और वहां आकर उन्होंने वहां के आदिवासियों को मार मार कर भगा दिया। इसका कोई कारण भी नही बताया जाता कि उस ऊबड़-खाबड़ देश में आकर वह आक्रमकारी क्यों वास करने लगे। कितना दुस्साहस है इन तथाकथित पाश्चात्त्य षड्यन्त्रकारियों का ? खेद है कि विश्वविद्यालयों के भाषा-विज्ञान के अध्यापक अपनी बुद्धि को तिरोहित करके इस प्रकार के विचारों को सत्य मानकर उनकी शिक्षा छात्रों को देते हैं।

पारस देश ईरान या ईरिण ?

भारतीय भाषा में किसी देश की भाषा का नाम उसी देश के नाम के अनुरूप एक स्त्रीलिङ्ग शब्द होता है, यथा भारत की भाषा को भारती, हिन्द की भाषा को हिन्दी, पञ्जाब की भाषा को पञ्जाबी, पहाड़ की भाषा को पहाड़ी, गुजरात की भाषा को गुजराती, बङ्गाल की भाषा को बङ्गाली, दरद की भाषा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को दरदी कहते हैं। पश्चिम की ओर भारत से मिला हुआ देश पारस है जिसकी भाषा का नाम पारसी था। आज इस देश को फारस और उसकी भाषा को फारसी कहते हैं। प्रकृति के अनुसार किसी भी देश की प्राकृत अवस्था में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है। आज की भान्ति प्राचीन काल में भी पारस देश का अधिकांश भाग या तो मरुभूमि था या बञ्जर था। संस्कृत में मरुभूमि या बञ्जर भूमि को ईरिण या इरिण कहते हैं—यथेरिणे बीजमुप्त्वा न बप्ता लभते फलम। मनुस्मृति ३ १४२। मुहूर्तमिव नि:शब्द मासीदीरिणसंनिभम्। रामायण १.५५.२४। ईरिण भूमि का देश होने के कारण भारतीय उस देश को 'ईरिण' कहते थे जिस शब्द का ही भ्रष्ट रूप 'ईरान' है यदि ईरान पारस देश का नाम होता तो उस देश की भाषा का नाम ईरानी होता, परन्तु हम जानते हैं कि पारस देश की भाषा का नाम पारसी (फारसी) है, ईरानी किसी भाषा का नाम नही है। षड्यन्त्रकारी यूरोपीय लेखकों ने पारस देश की भाषा को ईरानी लिखने का प्रयास किया, किन्तु यह शब्द प्रचलित न हो सका। अत: 'आय' शब्द का 'ईरान' शब्द से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैक्समूलर जैसे उन्मादी पादरियों ने ही बड़े प्रयास से आर्य शब्द का ईरान शब्द से सम्बन्ध जोड़ा है, इस में न कोई सत्य है और न तथ्य है। मैक्समूलर की यह एक मूर्खता पूर्ण जल्पना है।

पारस देश का क्षेत्र फल भारत देश के क्षेत्रफल के आधे से भी अधिक है परन्तु वहां की जन-सङ्ख्या भारत की जन-सङ्ख्या के पच्चीसवें भाग के तुल्य भी नहीं है। प्राचीन काल में तो पारस देश के कतिपय भागों में अल्प सङ्ख्या में मनुष्य रहते थे और इसका अधिकांश भाग मानव शून्य ही था। आज से कुछ सहस्त्रों वर्ष पूर्व पारस में न कोई सङ्घटित भाषा बोली जाती थी, संस्कृति, सभ्यता तथा धर्म और दर्शन की क्षीण रेखा उनके पास तक नहीं पहुंची थी।

पारस के पश्चिम की ओर भूमध्य सागर तक सेमेटिक भाषाओं का क्षेत्र है। इन देशों की भूमि भी अधिकांश मरुस्थल और बञ्जर है। इन देशों का क्षेत्र-फल भी बहुत अधिक है परन्तु उनके क्षेत्रफल के तुल्य उन देशों की जन सङ्ख्या बहुत थोड़ी है। इन देशों के अधिकांश भागों में मनुष्य रहते ही नहीं है। जो प्राकृत दशा इन देशों की आज है वही प्राचीन काल मे भी थी। हम बता चुके है कि प्राचीन काल में जिन देशो में अधिक गर्मी-सर्दी नहीं पड़ती थी, भूमि उर्वरा थी, मनुष्य को जीवन यापन की कोई चिन्ता नही थी, केवल उन्हीं देशों की जन-सङ्ख्या अधिक थी और उन्हीं देशों मे सब से पूर्व समृद्ध भाषा का निर्माण, तथा धर्म, दर्शन और विचार धारा का उदय हुआ था। आज से केवल दो सहस्त्र वर्ष पूर्व सेमेटिक देशों में असभ्य और जङ्गली जातियां रहा करती थीं, जिनके पास न कोई सङ्घटित भाषा थी और न कोई धर्म और दर्शन। आज से २००० वर्ष पूर्व उन देशों में जनता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की जो अवस्था थी, उसका निदर्शन विद्यार्थियों को ईसाइयों के धर्म पुस्तक न्यु-टेस्टामेण्ट (नया नियम) के अध्ययन से हो सकता है और आज से १४००-१५०० वर्ष पूर्व जो दशा अरब की जनता की थी उसका निदर्शन मुसलमानों के धर्म पुस्सक कुरान से हो सकता है। विस्तार भय से हम इस विषय पर अधिक नहीं लिख रहे हैं यद्यपि हमारे मस्तिष्क में विचारों की शृंखला-प्रमाण सहित प्रचुर है हम अपने विज्ञ पाठकों के सन्मुख इस विषय पर विस्तार से पृथक् पुस्तिका ही प्रस्तुत करेंगे।

भारतवर्ष अति प्राचीन काल में ही भाषा-शास्त्र, व्याकरण, और दर्शन में उच्चता के शृङ्ग पर पहुंच चुका था। आज से ५००० वर्ष पूर्व पाणिनि मुनि का लिखा व्याकरण उपरोक्त कथन का एक प्रमाण है। एक देश की भाषा दूसरे देश में सम्पर्क के द्वारा पहुंचती है। सहस्त्रों वर्ष पूर्व पारस देश वासी अपने पार्श्ववर्त्ती देश भारत के सम्पर्क में आये तो उन्होने भारत में एक समृद्ध भाषा पाई और उन्होंने भारत की भाषा के शब्दों को ग्रहण करना आरम्भ कर दिया। कुछ ही समय पश्चात भारत की भाषा पारस की कथ्य भाषा को प्रभावित करती हुई समस्त पारस में फैल गई। उस समय भारत के पश्चिमोत्तर में स्थित तक्षशिला का विश्वविद्यालय सर्वोत्तम शिक्षा के लिये अग्रणी था। पारस के बहुसङ्ख्यक नवयुवक तक्षशिला के सम्पर्क में आये और वहां से ज्ञान अर्जन के साथ ही भारतीय धर्म, दर्शन और विचार धारा को अपने साथ पारस लेगये। इस प्रकार पारस देश भारत की संस्कृति, दर्शन और विचार धारा से प्रभावित हुआ, और पारसियों ने ऋग्वेद के आधार पर अवेस्ता की रचना कर डाली, जिसने पारसियों के धर्म ग्रन्थ का रूप धारण कर लिया। यह बात दूसरी है कि जब कोई भाषा अपने मूल स्थान से दूसरे देश में विस्तारण करती है तो उस देश के निवासियों के उच्चारण की जो नीति और रीति होती है, उसके अनुसार उसमें उच्चारण विपर्यय होजाता है और कुछ काल के पश्चात शब्दों का मूल रूप पूर्ण रूपेण विकृत होकर वह शब्द दूसरे देश की भाषा का अङ्ग बन जाते हैं। इतना ही नहीं एक देश की भाषा अपनी आवश्यकता के अनुसार दूसरे देश की भाषा के शब्दों से यौगिक शब्द बना कर भी अपनी भाषा में प्रयोग कर लेती है। इस प्रकार के शब्द दूसरे देश की भाषा के प्रतीत नहीं होते हैं, परन्तु उन शब्दों की यदि मौलिक विचार धारा से विश्लेषित परीक्षा की जाये तो उन में से अधिकांश शब्दों के स्रोत का आज भी ज्ञान हो सकता है।

भारतीय दर्शन और विचार धारा से प्रभावित होने के पश्चात पारस देश में अनेक साहित्यिक ग्रन्थों की रचना हुई थी, परन्तु वह साहित्य इस समय उपलब्ध नहीं है। उसका कारण यह है कि सिकन्दर से पूर्व पारसी दो बार यूनान (ग्रीस) पर आक्रमण कर चुके थे। संवत २६६ वि०पू० जब सिकन्दर ने पारस को पराजित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया तो उसने पारस के पुस्तकालय नष्ट कर दिये थे। इसके पश्चात जब अरब के मुसलमानों ने हिंसा के आधार पर इसलाम का प्रसार किया तो संवत ५९३ वि० में उन्होंने पारस पर आक्रमण करके उनको पराजित किया और उनकी संस्कृति, सभ्यता, धर्म और दर्शन को विनष्ट करने की भावना से उनके सभी साहित्यिक ग्रन्थों एवं विद्या केन्द्रों को अग्निसात कर दिया। धर्म के नाम पर अरबों ने उन पर जो अत्याचार किये उनका यथार्थ शब्दों में वर्णन नहीं किया जासकता है। इस कारण अनेक फारसी अपना देश छोड़कर भागे और भारत में गुजरात प्रदेश में आकर शरण ली। उस समय वह अपने साथ केवल अपना धर्म ग्रन्थ अवेस्ता ही लासके जो आज भी उपलब्ध है।

धर्मान्ध अरब विजेताओं ने अपने धर्म के साथ साथ अपने शासन में अरबी भाषा का भी कट्टरता के साथ प्रयोग किया। धीरे धीरे अरबी भाषा का फारसी कथ्य भाषा पर भी बहुत प्रभाव पड़ा और अरबी के अनेक शब्द फारसी का अङ्ग बन गये। फारसी भाषा में अनेक यौगिक शब्दों की उत्पत्ति अरबी और फारसी के शब्दों के मिश्रण से हुई। आधुनिक फारसी भाषा के शब्द कोशों को ध्यान पूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि अब फारसी भाषा में दो प्रकार के शब्द प्रचलित हैं। शब्द कोशों में कुछ शब्दों के आगे फारसी और कुछ के आगे अरबी लिखा रहता है। अब फारसी भाषा से अरबी भाषा के शब्दों को निकालना सरल बात नहीं है, कारण कि वह शब्द अब फारसी भाषा का मूल रूप बन चुके हैं। परन्तु फारसी भाषा के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि फारसी भाषा का व्याकरण संस्कृत व्याकरण से पूर्ण रूप से प्रभावित है। शब्द कोशों में जिन शब्दों को फारसी बताया जाता है, वह सभी शब्द संस्कृत (सरस्वती) के शब्दों के विकृत रूप हैं। इस प्रकार प्राचीन काल में पारस देश की भाषा पर पूर्व की ओर से तत्कालीन भारतीय भाषा का प्रभाव पड़ा और उत्तर काल में पश्चिम की ओर से अरबी भाषा के शब्दों का उसमें मिश्रण हुआ।

भाषा-शास्त्र का आश्रय लेकर मैक्समूलर जैसे षड्यन्त्रकारी लेखक ने यह सिद्धान्त निरूपित किया कि जिस स्थल पर कतिपय भाषायें मिलती दिखाई देती हैं, उसी स्थान से वह भाषायें विभिन्न रूप लेकर विभिन्न दिशाओं में जाती हैं। उसका यह कथन भ्रामक, निराधार और निर्मूल है और मूर्खतापूर्ण जल्पना है। भाषा का प्रवाह नदी प्रवाह तुल्य होता है। नदी अपने उद्गम स्थान से सेकड़ों कोस दूर चली जाती है। नदी का जल अपने उद्गम स्थल पर पूर्ण शुद्ध और मिश्रण रहित होता है और जैसे जैसे नदी आगे बढ़ती है, उसमें अन्य नदी, जल स्रोत, बरसाती नदी नाले अपने दूषित जल के साथ उसमें मिलकर नदी के जल को मिश्रित और कलुषित करते रहते हैं। इसी प्रकार भाषा अपने उद्गम स्थान के निकट शुद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप में बोली जाती है और जैसे जैसे वह अन्य क्षेत्रों में फैलती है, उसमें उन क्षेत्रों की बोली के प्रभाव से मूल भाषा के शब्द विकृत होते रहते हैं। इसी प्रकार दूसरी ओर से जब कोई अन्य भाषा बढ़ती चली आती है तो जिस स्थल पर यह दोनों भाषायें मिलती हैं उस स्थल पर इन भाषाओं के सम्मिश्रण से एक नई भाषा प्रतीत होने लगती है जिसमें उन दोनों भाषाओं के विकृत रूप मिले दिखाई देते हैं। यह स्थान उन भाषाओं का उद्गम स्थल नहीं होता है अपितु उस स्थल पर दोनों भाषायें समाप्त हो जाती हैं और वह उन भाषाओं का अवसान-स्थल बन जाता है। इसके विपरीत मैक्समूलर का कथन पूणतया अनर्गल और असत्य है। सामान्य बुद्धिवालों की समझ में यह बात भली प्रकार आ सकती है कि विभिन्न दिशाओं से विभिन्न रङ्गों की धारायें आकर एक ही कुण्ड मे मिल सकती है, परन्तु एक ही कुण्ड से विभिन्न दिशाओ में विभिन्न रङ्गों की धारायें प्रवाहित नहीं हो सकती हैं। इसी प्रकार विभिन्न देशों के सङ्गम स्थल पर उन दिशों की भाषाओं का एक मिश्रित रूप व्यवहार में आ सकता है, परन्तु यह कथन कि इस स्थल से विभिन्न देशों मैं विभिन्न भाषायें गईं एक प्रथम श्रेणी की मूर्खता है।

यूरोपीय पादरियों और लेखकों का यह कथन कि प्राचीन काल में एक कल्पित जाति (जिसे वह आर्य कहते हैं) किसी कल्पित देश (जिसको वह आज तक ढूण्ढ न सके) से आकर पारस देश में बस गई थी और वहां से उस जाति के कुछ दल भारत चले गये जो आज भारतीय हिन्दु हैं, केवल मूर्खों का प्रलाप है और भारत के गौरव को कलुषित करने का एक षड्यन्त्र मात्र था।

अब हम फारसी शब्द कोशों में दिये हुये जिन शब्दों के आगे फारसी लिखा रहता है की उत्पत्ति सरस्वती भाषा के शब्दों से सिद्ध करके दिखायेंगे। हमारे पास पर्याप्त स्थान न होने के कारण हम थोड़े ही शब्दों को उदाहरण रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं, परन्तु इस प्रकार के सभी शब्दों की उत्पत्ति सरस्वती भाषा के शब्दों से सिद्ध की जा सकती है।

दूसरी आश्चर्य जनक बात यह है कि जब इन शब्दों को हिन्दी (खड़ी बोली) मे मिलाकर कुछ म्लेच्छ प्रयोग में लाते हैं तो उन शब्दों के वही लिङ्ग होते हैं जो उन शब्दो के साधु शब्द के प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार सरस्वती भाषा में होते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि पारस देश की भाषा कोई आदि मूल भाषा नहीं है अपितु यह एक सम्पर्कीय भाषा है जिसने पूर्व की ओर से सरस्वती भाषा के शब्द ग्रहण किये और पश्चिम की ओर से अरबी के शब्दग्रहण किये।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फारसी शब्द

अब्र—(अभ्र) पु०
अस्प—(अश्वः) पु०
अश्तुर—(उष्ट्रः) पु०
अश्क—(अश्रु) पु०
आफत—(आपत्ति) स्त्री०
अफसोस—(अप-शोकः) पु०
अफसाना—(आख्यानकम्) पु०
अन्देशा—(अनु-देश्यम्, सन्देहः) पु०
अब्रू—(भ्रू, भ्रुकुटी) स्त्री०
अखगर—(अग्निकणः) पु०
अजनबी—(अज्ञात) वि०
आगाह—(आज्ञातृ) वि०
अस्तुखवान—(अस्थि) स्त्री०
आल—अर्थ सन्तान, (आली) स्त्री०
अंजाम—(अन्त-यामन्) पु०
अङ्गुश्त—(अङ्गुलिः) स्त्री०
अन्दाजः—(अनुमानम्-जः) पु०
अरक—(अर्कः) पु०
आब—अर्थ-चमक (आभा) स्त्री०
आब—अर्थ-पानी, (आपम्) पु०
आराम—(आरमणम, आरामः) पु०
आफताब—(आप्यः-तपः)पु०, आप्यः = देवता, तपः = सूर्यः
आवारा—(अवहारः) पु०
अस्तबल—(अश्वः-तल्पम्) पु०
आशयाना—(आशयः-नः) पु०, आशयः-शयनम् स्थान, यनागार, न = उसी प्रकार का।
आबशार—(आपम् क्षार) पु०
अहुर—सुरः पु० (अः-सुरः) पु०
ऐन—(अक्षि) स्त्री०
ऐनक—(उप-अक्षि) स्त्री०
कलम—(कलमः) पु०
कलम-बन्द—(कलमः—बद्ध)
करशमा—(कारः-शमः) पु० कारः = कार्य, शमः = हाथ
कार—(कार्यम्) पु०
कासा—(कंसः) पु०
किश्त, काश्त—(कृषिः) स्त्री०
कान—अर्थ खान, (खनिः) स्त्री०
कबूतर—(कपोतः) पु०
किर्म—(कीटः) पु०
कुलाल—(कुलालः) पु०
कुशती—(कु०—क्षतिः) स्त्री०
कुश्ता—(कु०-क्षत) पु०
कल्ला—(कपालः) पु०
कारीगर—(कारिः—कारः) पु०
कारीगिरी—(कारिः—गिरि) स्त्री०, गिरि = आदरणीय।
कमीना—(कर्म—हीनः) पु०
कन्द—(कन्दम्) पु०
कारखाना—(कार्य—कोणः) पु०
कनारा—(कणः—आरः) पु०
कवल—(कम्बलः) पु०
कारवान—(कार्य—वानम्) पु०
कोशिश—(कु—शिष्टिः) स्त्री०
कारनामा—(कार्य—नामन्) पु०
कदम—(क्रमः पु०
करम—(करुणः) पु०
किश्त—शतरञ्ज के खेल में राजा पर चोट—(क्षतिः) स्त्री०
खुर्दा—(क्षुद्र) वि०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खुर्मा—अर्थ छुहारा, (खर्जूरम्) पु०
खार—(क्षार) पु०
खर—गधा—(खर:) पु०
खुसुर—(श्वशुर:) पु०
खुश्क—(शुष्क)
ख्वाहिश—(स्व—इषि) स्त्री०
ख्वाहर (बहन)—(स्वसृ) स्त्री०
ख्वाब—(सुपना)—(स्वाप:) पु०
गज—(एक नाप)—(गज:) पु०
गर्दन—(ग्रीवा) स्त्री०
गर्दूं—(गगनम्) पु०
गिरिह—(ग्रन्थि:) स्त्री०
गलू—(गल:) पु०
गलूबन्द—(गल:—बन्ध:) पु०
गन्दुम—(गोधूम:) पु०
गोर—कबर—(गर्ता) स्त्री०
गेसू—(केश:) पु०
गुजर—(गमनम्) पु०
गोशाह—(गोस:) पु०
गाह—(गृहा) स्त्री०
गुर्ग—भेड़िया—(वृक:) पु०
गञ्ज—(गञ्जम्) पु०
गञ्जूर—खजानची, (गञ्ज:-वर:) पु०
चारपाया—(चतुष्पद:) पु०
चारा—(उपचार:) पु०
चर्ख—(चक्रम्) पु०
चर्म, चिर्म—(चर्मन्) पु०
चश्म—(चक्षुस्) पु०
चश्मा—(उप—चक्षुस्) पु०, देखो ऐनक
चरागाह—(चर्वा—गृहा) स्त्री०
चारखान:—(चतुर्—कोण:) पु०
जन—(जनि:, जनी) स्त्री०
जात—(जाति:) स्त्री०

जिया—(ज्यानि:) स्त्री०
जबान—(जिह्वा) स्त्री०
जाग—(काग:) पु०
जुफ्त—(युक्तकम्) पु०
जिगर—(यकृत्) पु०
जादबूम—(जात—भूमि:) स्त्री०
जहान—(ज—स्थानम) पु०. ज=जन्म, उत्पत्ति। थ—महाप्राण=ह
जानू—(जानु) पु०
जीरा—(जीरक:) पु०
जर—(ज—रै) पु०. ज=उत्पत्ति, रै=धन, सम्पत्ति।
जालिम—(जालम:) पु०
जौज:—(जाया) स्त्री०
जानी, जानाँ, जान—(जानि:) स्त्री०
जायदाद—(ज्या—आदि) स्त्री०
जागीर—(ज्या—गिरि) स्त्री०, गिरि=विशाल।
जीन—घोडे का जीन, (जीन:) पु०
जगाह, जायगाह—(ज्या—गृहा) स्त्री०
जहर—(ज:—घर:) पु०, ज:=विष, घ महाप्राण=ह
जिन—(जि:—न) पु०, जि:=पिशाच, दानव:, न=उसी प्रकार का।
जवान—(युवन्) वि०
नौजवान—(नव-युवन्) पु०
जशन—(यशस्—न) पु०, न=उसी प्रकार का।
जन्नत—(जन:—अत्) स्त्री०, जन:=देवत्व को प्राप्त मनुष्यों का स्वर्ग; अत्=प्राप्त करना, पाना।
जिन्द.वाद—(जीवन—द:-वाद:), द=देनेवाला, उत्पादन करने वाला, वाद:

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वक्तव्य, वचन, सिद्धान्त ।
जानवर—(जन्युःवर) पु०
तार—(तारः) पु०
तलाव—(तल्लः—आपम्) पु०
तराजू—(तुला ज्या) स्त्री०, ज्या = एक प्रकार की लकड़ी की डण्डी ।
तश्नगी—(तृष्णा) स्त्री०
तरकश—(तीरः-कोशः) पु०
तूतिया—(तुत्थ) पु०
तेज—(तेजित) वि०
तारीख—(तिथि) स्त्री०
तपिश—(तपुशी) स्त्री०
तंग—(तङ्क) पु०
तंगदस्त—(तङ्क-हस्तः) पु०
तमाशा—(तमस्-शः) पु०, तमस् = मानसिक अन्धेरा, भ्रम; श. = आनन्द, हर्ष.; अर्थात भ्रान्ति आनन्द ।
तवाशीर—बंशलोचन, (त्वक्षीरम्) पु०
तारीक—(तमिस्त्र) वि०
तरीकी—(तमिस्त्रा) स्त्री०
तलख—(तीक्ष्ण) वि०
तेजाब—(तेजस्—आपम्) पु०
तलाश—(तल्—आशा) स्त्री०, तल = ढूण्ढना, प्रमाणित करना ।
तखत—(तक्ष्—तत) पु०, तक्ष् = लकड़ी से घड़ कर बनाना हुआ; तत = फैला हुआ ।
दकन—(दक्षिणम्) पु०
दन्दां—(दन्तः) पु०
दरवाजा—(द्वारम्—जः) पु०
दवा—(दैत्या) स्त्री०
दस्त—(हस्तः) पु०
दस्ताना—(हस्तः—त्राणः) पु०
दान (पात्र)—(धानम्) पु०
दाम—फन्दा—(दामन्) पु०
दामाद—(जामातृ) पु०
दिरम—एक मुद्रा—(द्रम्मम्) पु०
दाया—(धात्री) स्त्री०
दारू—(दैत्या) स्त्री
दीनार, सोने का एक सिक्का—(दीनारः) पु० ।
दुस्त—(दुष्ट) वि०
दरख्त—(द्रुतः) पु०
दुहुल—(ढोलः) पु०
दूद—धुआं—(धूमः) पु०
दरबान—(द्वारम्—वानम्) पु०
दुखतर—(दुहितृ) स्त्री०
दबिस्ताँ—(अध्ययन—स्थानम्) पु०
दस्तखत—(हस्तः—अक्षरम्) पु०
दस्तकारी—(हस्त्य—कारिः) स्त्री०
दस्तपा—(हस्तपादम्) पु०
दानः—(धान्यम्) पु०
दाद—(दातिः) स्त्री०
दुशमन—(दुष्—मनस्) पु०, दुष् = विनष्ट करना, क्षतिग्रस्त करना ।
नाफ—(नाभि) स्त्री०
नर्मी—(नम्रता) स्त्री०
नब्ज—(नाडी) स्त्री०
नाल—(नाली) स्त्री०
नारा—(नादः) पु०
नीयत—(नीयतिः) स्त्री०
निशिस्तगाह—(नि—शिष्ट—गृहा) स्त्री०, नि = निकाय, गृहा = बैठने का स्थान अर्थात शिष्ट व्यक्तियों के एकत्र होने का स्थान ।
नीम—(आधा)—(नेम) वि०
निज—अपना—(नैज) वि०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नौशादर—(लवण—क्षार) पु०

नमूना—(नम्र—न) पु०, न = उसी प्रकार का।

नर—(नृ) पु०

नतीजा—(अन्त्य—जः) पु०

नशतर—(न—अस्त्रम्) पु० न = पतला।

पिसर—(पुत्रः) पु०

पिदर—(पितृ) पु०

पर—(पत्रम्) पु०

परचम—(पताका) स्त्री०

पलास—(पलाशकः) पु०

पाया—(पादः) पु०

परिस्तिश—(परि—स्तुतिः) स्त्री०

परिन्दः—(पत्रिन्) पु०

परवरिश—(परि—पुष्टिः) स्त्री०

पशः—मच्छर—(मषः) पु०

परदः—(पटः) पु०

परहेज—(परिहारः) पु०

पञ्जा—(पञ्चन—जः) पु०

पयादा—(पदातिन्, पदिकः) पु०

पियालः—(पुलकः) पु०

पियाज—(पलाण्डु) पु०

पेशाब—(प्रस्राव:) पु०

परीशान—(परि—शान्त) पु०

परीशानी—(परि—शान्तिः) स्त्री०

पील—(पीलू) पु०

पैमान,—प्रतिज्ञा—(प्रतिज्ञानम्) पु०

पैमाना—नापने का—(परिमाणम्) पु०

पैमाना—शराब पीने का पियाला—(पीमानम्) पु०

पुलाव—(पुलाकम्) पु०

पैराहन—(परिधानीयम्) पु०

पुश्तः—(पृष्ठम्) पु०

पाबन्द—(प्रतिबन्धम्)

पारीनः—पुराना—(पुरातन) वि०

पाखाना—(पुरीषणः) पु०

पैरोकार—(परिकरः) पु०

पिस्तान—(पीन—स्तनः) पु०

परगनः—(प्र—गणः) पु०

फिरिश्तः—(परि—इष्टः) पु०

शीरनी—(शिखरिणी) स्त्री०

बद—(बुरा)—(अभद्र) वि०

बाद—(वातिः) स्त्री०

बादनजान—(वातिङ्गण) पु०

बार—बोझ—(भारः) पु०

बाराँ—(वर्षा) स्त्री०

बारिश—(वृष्टिः) स्त्री०

बाजू—(बाहू) पु०

बाग—(बाटः) पु०

बालिश्त—(वितस्तिः) स्त्री०

बख्त—(भाग्यम्) पु०

बर्ग—पत्ता—(बर्हः) पु०

बरकत—(वृद्धिः) स्त्री०

बरा, बर्रा—(वर्करः) पु०

बूम—(भूमिः) स्त्री०

बेवा—(विधवा) स्त्री०

बिस्तरः—(विस्तरः) पु०

बेगानः—(विगृहिन्) वि०

बेइमान—(वि—मान्य) वि०

बेदानः—(वि—धान्यम्) पु०

बन्दा—(वन्दकः) पु०

बयान—(व्याख्यानम्) पु०

बिहिश्त—(व—इष्टिः) स्त्री०

बखिया—(व्ये—क्रिया) स्त्री०, व्ये = सीना, सिलाई करना।

बाहादुर—(बाहा—दृढ़) पु०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बन्दगी—(वन्दना) स्त्री०
बेशक--(वि—शङ्कनीय) वि०
बाजार—(वाणिज्यम्-आरम्) पु०
आरम्=कोना, गमनम् व्रजनम्, गति, सरणम् आदि ।
माह—चान्द=(मः) पु०
मादर—(मातृ) स्त्री०
माष—(माषः) पु०
माह—(मासम्) पु०, स महाप्राण=ह ।
माहताब—(मः—तापः) पु० तापः=किरणों का गोलाकार । मः=चान्द
माही—(मत्सी) स्त्री०
मर्ग—(मृतिः) स्त्री०
मगस—(मक्षिका) स्त्री०
मूश—(मूषः) पु०
मास्त—(मस्तु) पु०
मुहर—(मुद्रा) स्त्री०
मेष—(मेषी) स्त्री०
मुर्ग—(मृगः) पु०
माद्रा—(माता) स्त्री०
मशक—(मशकः) पु०
महमान—(महत्—मानः) पु०
मुशंग—(मूष्—अङ्गम्) पु०
मुश्त—(मुष्टिः) स्त्री०
मीनाकार—(मणिः—कारः) पु०
मनशः—(मनस्—आशयः) पु० ।
मुनशी—मनीषिन् पु०
मात—शतरञ्ज के खेल में मात (मातिः) स्त्री० । मातिः=बोध, ग्रहणम्, भावना, विचार ।
यार—विश्वस्त मित्र, प्रेमी (जारः) पु०
यकसां—(एकसमान) वि०
राज—(रहस्यम्) पु०
रुख—(मुखम्) पु०
रसन—रस्सी—(रसना, रशना) स्त्री०
रेगिस्तान—(रेणुस्थानम्) पु०
रोशन—(रोचन) वि०
रियासत—(रयि—अस्ति) स्त्री०
रयीस—(रयि-ईशः) पु० रयि=धन, सम्पत्ति ।
रयीसजादः -(रयि-ईशः-जातः) पु०
लगाम—(लङ्खनी) स्त्री०
लंग--(लङ्गः) पु०
लफंगा—(लङ्गकः) पु०
लाश--(लय—शी) स्त्री०, लय=नष्ट होना, शी=नीन्द ।
वीराना—(वि-इरिणम् पु०)
शाख—(शाखा) स्त्री०
शारक—(सारिका) स्त्री०
शानः—(स्कन्धः) पु०
शाहीं—बाज पक्षी-(श्येनः) पु०
शब—(शर्वरी) स्त्री०
शबिस्तान—(शयन—स्थानम्) पु०
शगाल—गीदड़-(शृगालः) पु०
शकर—(शर्करा) स्त्री०
शुगुन—(शकुनम्) पु०
शहद - (क्षौद्रम्) पु०
शहर—(शम्—घरः) पु० शम्=आनन्द, हर्षः, घ महाप्राण=ह
शोब—(शोधनम्)
शोरा—(क्षारः) पु०
शीर—दूध—(क्षीरम्) पु०
शलाख—(शलाका) स्त्री०
शुहरत—(श्रुतिः) स्त्री०
शरीर—(शर्शरीक) वि०
शोशः—(शेषः) पु०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शादी—(शम्—आदि) स्त्री०

शरबत—(शर्करा—व्रत्) पु०

शिकार--(क्षि:–कार:) पु० क्षि: = मार डालना।

शिकारी—(क्षि:--कारिन्) पु०

शमशीर—हाथ की छोटी तलवार, छुरी (शम:—शिरि:) स्त्री०, शम: = हाथ; शिरि: तलवार।

शकरकन्द:—(शर्करा—कन्दम्) पु०

शकरपार:—(शर्करा--पाक) पु०

शादयान:—(शम् वाद्यम्) पु०

शबबाशी—(शर्वरी—वासि) स्त्री०

शायस्तगी—(शिष्टता) स्त्री०

शुतुर—(उष्ट्र:) पु०

शायद—(स्यात्) अव्यय०

शिताबी—शीघ्रता, (शि-—त्वरा) स्त्री०

शाबाश--(ष—वाश्) स्त्री०, ष = अत्यन्त श्रेष्ठ; वाश् = कहना, यह वाशनम् का स्त्री० है।

शाल—(शलली) स्त्री०

शह--शतरञ्ज मे राजा को शह–(क्षि:) स्त्री०

शिकस्त—(ष:-क्षति:),(श:-क्षति:)स्त्री० ष: = अन्त, श: = नष्ट करना। देखो शब्द किश्त (क्षति:) स्त्री०; मात (माति:) स्त्री०।

शतरञ्ज = (शतम्—रञ्ज)स्त्री० रज्ज् = रञ्जनम् का स्त्री०, रञ्जनम् = हर्ष, आनन्द करना, प्रसन्न करना। शब्द रञ्ज् या रङ्ग का अर्थ रणक्षेत्र भी है। अतः शतरञ्ज का अर्थ है वह खेल जिसमें सैकड़ों प्रकार से युद्ध होते हैं।

शामलात--(सम्मिलित)

शान—(ईशा—नी) स्त्री०

सुरङ्ग—(सुरङ्गा) स्त्री

सफेद--(श्वेत) वि०

सफेदी—(श्विति:) स्त्री०

सोजन—सूई--(सूचिका) स्त्री०

शीख—(ईषिका) स्त्री०

सीमाब, पारा = (श्वेतम्-आपम्) पु०

सरेश--(श्लेष:) पु०

सरकार—(स्वर-कारि:) स्त्री० स्वर = दोष निकलना, दण्डित करना।

सोक—(शोक:) पु०

सोख्त:--(शुष्क) पु०

सज़ा—(शिष्टि:) स्त्री०

हफता—(सप्तन्–अह: = सप्ताह:) पु०

हलाहल—घातक विष, यह विष समुद्र मन्थन के परिणाम स्वरूप मिला था-- (हालाहलम्, हालहलम्) पु०

हरम—(हर्म्यम्) पु०

हिस्सा—(अंस:) पु०

हतक--(हतक) वि०

हम--एक उपसर्ग—(सम), स महाप्राण = ह।

हमेश:--(सम—ईश) वि०

हमसाया—(सम--छायम्) पु०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: २५ :

देव (नागरी) लिपि

फिरङ्गियों की राज्यधुरा की यह उत्पत्ति रही है कि वे सर्वप्रथम दूसरे देश में व्यापारी बन कर जाते थे, फिर अपने व्यापार के साथ उस देश में अपनी सेना लेजाते थे, तदन्तर धोके और षडयन्त्र द्वारा उसी देश के धन और सैनिकों की सहायता से उस देश पर अपना अधिकार करलेते थे। उसके उपरान्त उस देश में ईसाई धर्म प्रकारक (पादरी) पहुंच जाते थे जिनका सदैव यह नियम और भावना रही है कि वे निर्लज्जता से उस देश की निन्दा करना और कलङ्क लगाना आरम्भ कर देते थे, तथा उनकी संस्कृति, सभ्यता और भाषा को नष्ट करने की योजनायें बनाने लगते थे। वे उस देश की भाषा को पतित और गर्हित बताकर अपने देश वासियों के अधिकार का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगते थे।

जिस प्रकार योरोपीय पादरियों तथा लेखकों ने भारतीयों, भारतीय संस्कृति तथा भाषा और उसके शब्दों और शब्दों के अर्थों के सम्बन्ध में भ्रामक, अनर्गल, तथ्यविहीन और कपोल कल्पित सिद्धान्तों को जन्म देकर उनका प्रचार किया है, उससे भी अधिक मूर्खतापूर्ण प्रलाप उन्होंने देवनागरी लिपि और उसके विकास के सम्बन्ध में किये हैं। योरोपीय पादरियों तथा लेखकों का यह एक षड्यन्त्र रहा है कि वे प्रत्येक भारतीय श्रेष्ट कला के उद्गम का स्रोत विदेशी बताते रहे हैं। इसी आधार पर उनका कथन है कि भारतीयों ने वि०पू० चौथी, आठवीं या दसवीं शताब्दि में विदेशियों से लिखने की कला सीखी। उनका यह कथन कितना हास्यास्पद प्रतीत होता है जब वे इस प्रश्न का उत्तर ही नहीं देते कि वह विदेशी कौन थे और उनकी कौनसी लिपि थी। हम पूछते हैं कि क्या इस संसार के किसी भी देश में आजतक देवनागरी लिपि से अधिक वैज्ञानिक किसी अन्य लिपि का निर्माण हो सका है?

वेद और लिपि

वेद भारतीय ज्ञान की महानतम् आत्मा है, तथा आज जो कुछ भी विकसित समाज है उसकी परम्परायें और दार्शनिक विचारधारा है, उस सब का मूल स्रोत वेद है। यह पुनीत भावना हमारे देश की महानतम् संस्कृतिक धरोहर है। हमें अपने देश की सांस्कृतिक परम्परा के प्रति पूर्ण श्रद्धा है, परन्तु जब हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करते हैं तो यह स्वीकार करने में हम बाध्य होते हैं कि वेदों की भाषा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक प्रौढ़, विकसिक तथा व्याकरण आदि नियमों में सम्बद्ध है इसके साथ ही वेदों का जो पद्य में भाग है, जिसे मन्त्र कहते हैं वह छन्दोबद्ध है, उसका प्रत्येक अक्षर स्वरलहरी से संयुक्त है। साथ ही वेदों का जो वर्ण विषय है उससे वह प्रतिबिम्बित होता है कि उस समय समाज और उसके प्रत्येक अङ्गों का समुचित विकास हो चुका था, राज–सत्ता और जन–सत्ता विकसित होचुकी थी। इतना ही नहीं, समाज में कृषि से लेकर विभिन्न समुदायों और वर्गों की प्रतिष्ठा होचुकी थी।

उपरोक्त कथन को स्वीकार करते हुये एक प्रश्न और स्वभाविक है, कि वेदों की भाषा के प्रौढ और सम उन्नत रूप के पीछे और कौन सी क्रमिक विकासमयी भाषा है। अवश्य ही उस समय के जन-समुदाय की जो भाषा थी, जिसे सरस्वती कहते थे, वह भाषा पूर्ण रूप से विकसित और अभिव्यञ्जना शक्ति से परिपूर्ण थी। कोई भाषा सहस्त्रों वर्षों तक व्योहार गम्य होने के पश्चात जब पूर्ण समर्थ होजाती है, तभी उसमें काव्य रचना, वह भी उच्च कोटि की, हो सकती है। ऋग्वेद, जो सहिताओं में प्राचीनतम है, का जब हम अध्ययन करते हैं तो हम स्वीकार करते हैं कि ऋग्वेद का काव्य समर्थ और उच्चकोटि का है। मन्त्रों में आत्मा को स्पष्ट करने वाला रस तथा भावों में उत्कृष्टता प्रदान करने वाले अलङ्कारों का पूर्ण रूप से प्रयोग मिलता है।

जब कोई कथ्य भाषा प्रयोग के क्षेत्र से आगे बढ़कर साहित्य वर्ग में प्रवेश करती है तो उसका रूप सुरक्षित होजाता है। हम इसी सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं कि आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व जब वैदिक भाषा साहित्यिक रूप में आई तो वह कोई विदेशी अथवा बाहर से लाई हुई भाषा नहीं हो सकती है अपितु शिक्षित व्यक्तियों द्वारा सरस्वती भाषा को जो प्रेरणा दी गई, वही वैदिक भाषा है। एक विषय और विचारणीय है कि वेदों में जो सङ्गीत पक्ष और स्वर साधना की श्रेष्ठ पद्धतियां हैं, वह स्वयं यह कह रही हैं कि उस समय की सरस्वती भाषा में केवल भाव अभिव्यञ्जना ही नहीं अपितु सङ्गीत की पूर्ण क्षमता प्रकट होचुकी थी और वही सङ्गीत का विकास वेदों में शास्त्रीय परम्परागत स्थान पासका। अतः वेद की ऋचाओं के निर्माण से सहस्त्रों वर्ष पूर्व सरस्वती भाषा साहित्यिक भाषा बन चुकी थी।

भारतीय दर्शनों के अनुसार वेद के सम्बन्ध में प्रधानतः दो मत हैं—पौरुषेय-वाद और अपौरुषेयवाद। मीमांसकों का मत है कि यह जगत जैसा इस समय है ऐसा ही बराबर चला आ रहा है—'न कदाचिदनीदृश जगत्' यह मानने के कोई प्रमाण नहीं हैं कि यह जगत इससे भिन्न अवस्था में कभी था। अतः जैसे सब जगत अनादि काल से इसी रूप में चला आ रहा उसी प्रकार वेद भी अनादिकाल से चले आरहे हैं। इस सिद्धान्त की पुष्टि श्रुति, स्मृति तथा पुराण आदि से भी होती है। बृहदारण्यकोपनिषद के अनुसार जैसे निःश्वास आदि में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनुष्य का स्वतन्त्र्य नहीं है वह इच्छापूर्वक श्वास प्रश्वास नहीं चलाता प्रत्युत प्रकृति के नियमानुसार श्वास प्रश्वासादि;उससे प्रकट होते हैं, वैसे वेद भी नित्य हैं वे ईश्वर से प्रकट मात्र होते हैं।

दूसरा सिद्धान्त न्याय वैशेषिक दर्शनों का है। उनके अनुसार वेद महर्षियों के बनाये हुये हैं, पौरुषेय हैं और अनित्य हैं। वैशेषिक सूत्र—'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे' का अभिप्राय यह है कि वेद में बुद्धिपूर्वक वाक्य-रचना की गई है। बुद्धिपूर्वक ज्ञानपूर्वक—अर्थ का साक्षात्कार करके तदनुसार वाक्य-रचना ऋषियों ने की है, अत: शब्दराशि रूप वेद पौरुषेय और अनित्य हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि के अनुसार यद्यपि अर्थ नित्य है किन्तु यह जो वर्णा नुपूर्वी वाक्य रचना है वह अनित्य है। वेद शब्दों की विवक्षा दो प्रकार की है--शब्द रूप से और अर्थ रूप से। वेद शब्द के व्यवहार में वाक्य की प्रधानता की विवक्षा होने पर वेद-ग्रन्थ महर्षिकृत, पौरुषेय और अनित्य हैं। वाच्य अर्थ (तत्प्रतिपादित विद्या) की प्रधानता की विवक्षा वेद अकृतक हैं, अपौरुषेय हैं, नित्य हैं। वास्तव में यही मत सर्वमान्य है। यदि विज्ञान ईश्वर का रूप माना जाय—'सत्य विज्ञान मानन्दं ब्रह्म'—तो विज्ञान अकृतक है, अत: जहाँ तक विज्ञान वेद का सम्बन्ध है वह सर्वथा अपौरुषेय हैं। मुख्य मतभेद वेद-ग्रन्थ रूप शब्द राशि के सम्बन्ध में है। हमारे अनुसार भी वेद-ग्रन्थों की वाक्य रचना महर्षियों की कृति है, तथा यह वाक्य रचना सरस्वती भाषा में उत्कृष्ट तथा उच्च कोटि की साहित्यिक रचना है। वेदों से पूर्व सरस्वती भाषा तथा संस्कृत में सहस्त्रों साहित्यिक तथा व्याकरण ग्रन्थों की रचना अवश्य हुई थी, परन्तु काल के प्रवाह से वह सब नष्ट हो चुके हैं और आज उनके विषय में कोई ज्ञान तक नहीं है।

भारत में वेदों के प्रति आदर, भक्ति, श्रद्धा सर्वदा से चली आरही है। वेद विश्व के महान तथा प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। वेदों का ज्ञान नित्य है और उसे ईश्वरीय प्रेरणा से उन ज्ञानीजनों (ऋषियों) ने प्रकट किया था जो काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पर पूर्ण विजय प्राप्त करके मनुष्य मात्र को आत्मवत् देखते थे, अत: जो कुछ वह कहते थे उसमें मानव मात्र ही नहीं, समस्त सृष्टि के कल्याण और सुख की भावना सन्निहित रहती थी। उन्होंने जो उपदेश दिये हैं, जीवन का जो मार्ग प्रदर्शित किया है, आचार-विचार, व्यवहार के जो नियम बताये हैं, वे सब त्रिकालबाधित सत्य सिद्धान्तों पर आधारित हैं। उन्होंने समाज और व्यक्तियों के आचरण और पारस्परिक सम्बन्धों के लिये जो विधान बनाया है उसके मूल्य तत्त्व अपरिवर्तनीय हैं। वेदोक्त उपदेश का आश्रय लेकर भारतीय साहित्य चलता है। स्मृति, रामायण, महाभारत, पुराण आदि समस्त संस्कृत साहित्य वेदों को ही स्वत: प्रमाण मानकर उनका आश्रय लेते हैं और वेद के आधारभूत ज्ञान से अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विचारानुसार अपने विषयों का प्रतिपादन करते हैं। मनुस्मृति में मनु महाराज ने घोषणा की है कि वेद सब धर्मों का मूल है। वेदों में कहीं भी किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय को दृष्टिगोचर रखकर उपदेश नहीं दिया गया है, वरन् स्थान स्थान पर प्राणीमात्र के कल्याण और हित-साधन का ही उपदेश दिया है।

प्रत्येक वेद के दो भाग हैं—मन्त्र या संहिता पाठ तथा ब्राह्मण भाग। हिन्दुओं की निरी धर्म निष्ठता के अनुसार वेद अपौरुषेय हैं, कारण कि वह परमात्मा से प्रकट हुये या सुने गये हैं, अतः उन्हें श्रुतिः कहते हैं, इसके विपरीत स्मृतिः हैं, अर्थात जो स्मरण रखे जायें या जो पुरुषों की कृति हों। यही कारण है कि ऋषि जिनका नाम वेद के सूक्तों से सम्बद्ध है 'द्राष्टारः' देखने वाले कहलाते हैं। दिव्य सन्देश होने के कारण वेद को श्रुतिः कहते हैं। मनुस्मृति में भी कहा गया है—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मतिः। २/१०

अर्थात वेद को श्रुतिः तथा (मनु आदि के द्वारा कथित) धर्मशास्त्र को स्मृति जानना चाहिये। अतः वेद और श्रुतिः पर्याय वाची हैं। वेद मन्त्र को ही श्रुतिः कहते हैं, इतिश्रुतेः या इति श्रुति. का अर्थ है—ऐसा वेद कहता है। वेदज्ञान के अर्थ में ही श्रुति शब्द का प्रयोग भागवत ११.३.४६ में भी हुआ है। अमर कोश में भी श्रुतिः को वेद का पर्याय वाची बताया है—श्रुतिः स्त्री वेद आम्नाय् स्त्रयो धर्मस्तु तद्विधिः १.६.४। अर्थात श्रुतिः, वेद, आम्नायः और त्रयी वेद के चार नाम हैं।

'श्रुति' शब्द का एक अन्य अर्थ' सुनना, मौखिक सँवाद' भी है। 'श्रुतिः' शब्द के इस अर्थ को लेकर योरोपीय पादरी तथा लेखक अपने षड्यन्त्र के अन्तर्गत यह प्रलाप करते है कि वेद केवल मौखिक थे और इसी कारण उनको श्रुति कहते थे। इसी आधार पर उनका कथन है कि प्राचीन काल में भारतीयों को किसी लिपि या लेखन कला का ज्ञान ही नही था। भारत में लिपि का अभाव प्रमाणित करने के हेतु पाश्चात्य लेखक सभी प्रकार के कपोल कल्पित प्रमाण उपस्थित करते हैं। इस सम्बन्ध में दो बाते पुनः पुनः स्मरण रखने की हैं।

(१) पहली यह कि बिना अक्षर ज्ञान के किसी भाषा के व्याकरण का ज्ञान नहीं हो सकता है, अतः किसी भी भाषा के व्याकरण की रचना से पूर्व उस भाषा में लिपि का निर्माण होना अनिवार्य होता है।

(२) दूसरी बात यह कि किसी भी भाषा में साहित्य की रचना मौखिक नहीं होती है, अर्थात जब तक किसी भाषा में व्याकरण की रचना तथा लिपि का निर्माण न हुआ हो, तब तक उस भाषा में साहित्य की रचवा नहीं होती है।

ऋग्वेद, जो वेदों में सर्व प्राचीन है, में ही भारत में व्याकरण शास्त्र के अध्ययन तथा लिपि ज्ञान का उल्लेख स्पष्ट शब्दों में मिलता है। ऋग्वेद के मं० १०, सू० ७१ का चौथा मन्त्र इस प्रकार है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणो त्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासा ।।

उपरोक्त मन्त्र की व्याख्या करके भाष्यकार पतञ्जलि बताते हैं कि एक अवैयाकरण वाणी को देखता हुआ भी देख नहीं पाता अर्थात वाणी का अध्ययन करने पर भी उसके यथार्थ स्वरूप को जान नहीं पाता है । उसी प्रकार जो वैयाकरण नहीं है वह उस वाणी को सुन कर भी सुन नहीं पाता है । किन्तु जिस प्रकार कोई कामिनी स्त्री सुन्दर वस्त्रों द्वारा सजी होने पर भी पति के लिये अपने शरीर को प्रकट कर देती है, उसी प्रकार एक वैयाकरण के आगे वाणी अपना स्वरूप खोल कर रख देती है । इस से अधिक स्पष्ट शब्दों में व्याकरण के अध्ययन और भाषा के लिखित रूप का और क्या उल्लेख होसकता है । उपरोक्त कथन से पूर्णतया सिद्ध होता है कि वेदों की शब्द रचना से पूर्व लोक मे व्याकरण शास्त्र का अध्ययन होता था और देव लिपि का पूर्णरूप से विकास हो चुका था ।

छन्द

वेदों के प्रत्येक मन्त्र का कोई न कोई ऋषि माना गया है । अधिकांश प्रत्येक सूक्त एक ही ऋषि का है । कुछ सूक्त ऐसे भी हैं जिनके दृष्टा एक से अधिक ऋषि हैं । चारों वेद छन्दों में हैं, अतः वेद का एक नाम छन्दस् भी है । वेदों में अनेक प्रकार के छन्द हैं । समस्त छन्द दो भेदों में विभक्त हैं । लोक में प्रयुक्त होने वाले छन्दों को 'श्लोक' कहा जाता है । जो छन्द केवल वेदों में ही प्रयुक्त होते हैं, उन्हें 'वैदिक छन्द' कहते हैं । वैदिक छन्दों को प्रायः 'ऋचा' या 'मन्त्र' कहते हैं । इस प्रकार छन्द दो प्रकार के हैं—(१) लौकिक, (२) वैदिक ।

छन्दों के निर्माण, स्वरूप-स्वर, वर्ण, व्यञ्जन, मात्रा आदि के विचार से छन्दों के दो अन्य भेद हैं, जिन्हें मात्रिक और वर्णिक छन्द कहते हैं ।

१. मात्रिक छन्द वे हैं जिनमें अक्षरों की प्रधानता न होकर मुख्य रूप से स्वरों की—ह्रस्व-दीर्घ तथा मात्राओं के विचार से लघु-गुरु की अभिव्यक्ति हो ।

२. वर्णिक या अक्षर छन्द वे हैं जहां मात्राओं की प्रधानता न मानकर पूर्ण अक्षर, स्वर या व्यञ्जन की मान्यता हो । इन छन्दों में ह्रस्व-दीर्घ, लघु-गुरू का विचार नहीं किया जाता है, केवल पूर्ण स्वर या स्वरयुक्त पूर्ण व्यञ्जन की ही गणना होती है ।

लौकिक छन्दों में उपर्युक्त दोनों प्रकार के छन्द पाये जाते हैं, किन्तु वेदों में मात्रिक छन्द नहीं होते हैं । प्रायः सभी छन्द वर्णिक या अक्षर छन्द होते हैं । वैदिक मन्त्रों में केवल स्वर की, या पूर्ण स्वरयुक्त व्यञ्जन की गणना होती है । व्यञ्जन अर्थात स्वर रहित व्यञ्जन की गणना नहीं होती है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैदिक छन्दों के मुख्य रूप से सात भेद हैं, (१) गायत्री, (२) उष्णिक्, (३) अनुष्टुप्, (४) बृहती. (५) पङ्क्ति, (६) त्रिष्टुप और (७) जगती।

सभी छन्दों का मूल गायत्री छन्द है। छन्दों की पूर्ण संख्या को 'आर्षी' कहते हैं। उपरोक्त छन्दों की पूर्ण संख्या इस प्रकार होती है—गायत्री के २४ अक्षर, उष्णिक् के २८ अक्षर, अनुष्टुप् के ३२ अक्षर, बृहती के ३६ अक्षर, पङ्क्ति के ४० अक्षर, त्रिष्टुप के ४४ अक्षर और जगती के ४८ अक्षर। उपरोक्त कथन को एक उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं—

अग्निमीले पुरोहितं—यज्ञस्य देवमत्विजम्।
होतार रत्न धातमम्॥ ऋक् म० १,सूक्त १, मन्त्र १।

यह मन्त्र वेद का प्रथम मन्त्र है जो 'गायत्री' छन्द में है। इसकी अक्षर संख्या २४ होती है। अक्षर गणना का प्रकार निम्न है—

१—अ, ग्नि, मी, ले, पु, रो, हि, तम्। (१–८)
१—य, ज्ञ, स्य, दे, व, म, त्वि, जम्। (९—१६)
३—हो, ता, रं, र, त्न, धा, त, मम्। (१७–२४)

इस गायत्री मन्त्र के तीन पाद, प्रति पाद आठ अक्षर, कुल २४ अक्षर हैं।

उपरोक्त उदाहरण से पूर्णतया सिद्ध होता है कि वेद मन्त्र लिखित रूप में थे और उनके दृष्टा ऋषियों को स्वर व्यञ्जन तथा देव लिपि और व्याकरण शास्त्र का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने प्रत्येक मन्त्र के अक्षरों की गणना करके ही प्रत्येक वेद मन्त्र के छन्द का नाम वेदों में दिया है।

वेदों की बिशुद्धता बनाये रखने के लिये प्राचीन ऋषियों ने केवल ऋचाओं और शब्दों को नहीं, अपितु वेद के अक्षरों तक को गिन रखा था। ऋग्वेद १० मण्डलों में विभक्त है, प्रत्येक मण्डल के अनेक अनुवाक, अंनुवाक के भीतर सूक्त और सूक्तों के भीतर मन्त्र या ऋचायें हैं। ऋग्वेद के दसों मण्डलों के पच्चासी (८५) अनुवाक हैं और १०१७ सूक्त हैं। ऋग्वेद के समस्त सूक्तों की ऋचाओं की संख्या १५५८० १/२ है, तथा ऋचाओ के शब्दो की संख्या १ लाख, ५३ सहस्त्र, ८ सौ, २६ (१५३८२६) है और शब्दों के अक्षरों की संख्या चार लाख बत्तीस सहस्त्र (४३२०००) है।

वेद भारतीयों के लिये इतने महत्त्वशील होने के कारण प्राचीन ऋषियों ने उनकी पूर्ण रक्षा का उपाय किया है। यह उपाय इतना जागरूक है कि इतने दीर्घकाल के अनन्तर भी वेद का एक अक्षर भी च्युत या स्खलित नहीं हुआ है। इसी कारण सस्वर मन्त्र कण्ठस्थ करने की कई रीतियां प्रचलित थीं। सस्वर मन्त्र स्मरण करने के दो उद्देश्य थे :—

(१) वेद मन्त्रों में किसी प्रकार का कोई दोष या त्रुटि न होने पाये, जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्द या वाक्य, मूल रूप में जहां जिस प्रकार हैं, वे उसी प्रकार बने रहें।

(२) मन्त्रों के अर्थ करने में सहायता मिले। शब्दों की उत्पत्ति से लेकर समास युक्त पदों का यथावत क्रम-बोध अर्थ ज्ञान हो सके।

अत: वेद मन्त्र पाञ्च प्रकार से स्मरण किये जाते थे—

(१) संहिता मन्त्र पाठ --सन्धि युक्त मन्त्र पाठ, अर्थात जब सभी शब्द एक दूसरे से मिले हों।

(२) पदच्छेद पूर्वक मन्त्र पाठ--अर्थात कुछ सन्धियों को पृथक करके मन्त्रों का पाठ।

(३) पदपाठ--सभी पदों को सन्धि रहित करके पाठ करना।

(४) क्रम पाठ--दो पदों का एक साथ पाठ, इसके अनुसार पूर्व और उत्तर पद को लेकर, क्रमश: पूर्व पूर्व शब्दों का त्याग तथा उत्तर पद के साथ उससे आगे के एक शब्द को जोड़कर पाठ करना।

(५) पञ्चसन्धियुक्त पाठ--क्रमपाठ के समान ही पूर्व और पर शब्द को लेकर पूर्व का त्याग और पर पद का ग्रहण। इस प्रकार सन्धि युक्त पाञ्च पाञ्च पदों का निरूपण करके पाठ करना। (१)

मन्त्र पाठ पद्धति के अतिरिक्त महर्षियों ने आठ विकृतियों की व्यवस्था भी की थी। इन विकृतियों से वेद का पद क्रमोच्चारण तथा विलोम-उच्चारण में अनेक बार आता है, जिससे उसके रूप ज्ञान में किसी प्रकार की त्रुटि की सम्भावना नहीं हो सकती है। (२)

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में गुरु-शिष्य परम्परा से सस्वर वेद-मन्त्र कण्ठस्थ करके पाठ करने की पद्धति उनकी रक्षा का उपाय था। वेद लिखित रूप में होने के कारण ही उनके अक्षरों तक की गणना की जासकी थी। अत: वेद मन्त्रों की शब्द रचना से सहस्त्रों वर्ष पूर्व देव वाणी लिखने के लिये देव लिपि का निर्माण हो चुका था।

ब्राह्मण—ग्रन्थ और लिपि

'वेद' शब्द का प्रयोग 'मन्त्र' तथा 'ब्राह्मण' के लिये प्रयुक्त किया जाता है। मन्त्रों के द्रष्टाओं को ऋषि और ब्राह्मणों के द्रष्टाओं को आचार्य कहते हैं। ब्राह्मणों का अभिप्राय ग्रन्थ विशेष है। ब्राह्मणों के तीन भाग होते हैं--(१) ब्राह्मण, (२) आरण्यक तथा (३) उपनिषद्। अधिकांश संहितायें छन्दोबद्ध हैं, उनमें

---

(१) पाठ पद्धितियों के उदाहरण के लिये देखो वैदिक-व्याकरण-भास्कर।

(२) इन विकृतियों के विशेष ज्ञान तथा उदाहरण के लिये देखो वैदिक-व्याकरण-भास्कर और सातवढेकर का ऋग्वेद।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथर्व संहिता का स्वल्प अंश ही गद्यात्मक है, परन्तु ब्राह्मण सर्वथा गद्यात्मक ही होता है। संहिता तथा ब्राह्मण के विवेच्य विषय में भी अन्तर है। ऋग्वेद में तो परमात्मा की शक्ति के विभिन्न अङ्ग, रूप, प्रकृति के सञ्चालक शक्तियों की ही स्तुति और प्रार्थना की गई है, पर अथर्व वेद में जहाँ ओषधियों, जड़ी-बूटियों, व्याधियों के निवारण के अन्य उपायों अथवा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन किया गया है, वहां उन्ही की अधिष्ठात्री शक्ति को देवता मान कर उसी का नाम दिया गया है। यजुर्वेद और सामवेद में प्राय: सभी देवता ऋग्वेद के ही हैं और उन्हीं की स्तुति की गई है। इस प्रकार संहिताओं में स्तुति का प्रधान्य है। ब्रह्मणों का विवेच्य विषय इससे नितान्त भिन्न होता है। ब्राह्मणों का मुख्य विषय यज्ञ के कर्मकाण्ड की व्याख्या तथा विवरण प्रस्तुत करना है। 'ब्राह्मणों में विधि ही वह केन्द्र बिन्दु है जिसके चारों ओर निरुक्ति, स्तुति, आख्यान तथा हेतु-वचन आदि विविध विषय अपना आवर्तन पूरा किया करते हैं।" (१) तात्पर्य यह है कि संहिता में स्तुति का और ब्राह्मण में विधि का प्रधान्य है।

संहिता की रचना के अनन्तर ही उनके रहस्यमय मन्त्रों के अर्थ समझाने की प्रवृत्ति जागरूक हुई। ब्राह्मण-ग्रन्थों में इस प्रवृत्ति का प्रथम प्रयास दृष्टिगत होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ की विधि के साथ ही साथ मन्त्रों का अर्थ भी न्यूनाधिक मात्रा में किया गया मिलता है। इनमें शब्दों की व्युत्पत्ति का भी स्थान-स्थान पर निर्देश किया गया है। यह निर्देश इतना मार्मिक और वैज्ञानिक है कि इनका भाषा शास्त्र की दृष्टि से बहुत महत्त्व है। निरुक्त में जो शब्दों की व्युत्पत्तियां दी गई हैं उनका मूल इन्हीं ब्राह्मण-ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। ये निर्वचन काल्पनिक नहीं हैं, प्रत्युत भाषा-शास्त्र की दृष्टि से इनकी वैज्ञानिकता अक्षुण्ण है। शतपथ-ब्राह्मण तथा ताण्ड्य-ब्राह्मण ऐसी महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय निरुक्तियों के भण्डार हैं। तथ्य की बात यह है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों में बिखरी हुई सामग्री के आधार पर ही निघण्टु तथा निरुक्त की रचना हुई थी। (२) अब हम पश्चात्त्य लेखकों और उनके मानस पुत्रों से पूछते हैं कि क्या बिना अक्षर-ज्ञान के शब्दों की व्युत्पत्ति दिखाई जा सकती है और क्या बिना लिपि के किसी भी भाषा के अक्षरों का ज्ञान होसकता है?

गोपथ-ब्राह्मण (१.२४) में प्राचीन व्याकरण के विषय का निर्देश किया गया है। धातु, प्रातिपदिक, नाम, आख्यात, लिङ्ग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय, स्वर, उपसर्ग, निपात, मात्रा, वर्ण, अक्षर, पद-संयोग, स्थानानुप्रदान आदि पारिभाषिक शब्द उस समय के व्याकरण-शास्त्र के मान्य शब्द थे। इन शब्दों का प्रयोग भी इस

---

(१) वैदिक साहित्य और सस्कृति पृष्ठ १९५

(२) देखो वैदिक साहित्य और संस्कृति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बात का स्पष्ट प्रतिपादक है कि गोपथ-ब्राह्मण की रचना से बहुत पूर्वकाल में ही व्याकरण शास्त्र, स्वर, वर्ण, अक्षर, मात्रा आदि की उत्पत्ति हो चुकी थी। अतः यह भी पूर्णतया सिद्ध है कि स्वर, वर्ण, अक्षर, मात्रा आदि की उत्पत्ति से भी पूर्व लिपि का निर्माण होचुका था।

ब्राह्मणों का गद्य बड़ा ही परिमार्जित तथा उदात्त है। तत्कालीन जन-साधारण की परिमार्जित भाषा में ही ब्राह्मणों की रचना हुई थी। ब्राह्मणों की भाषा मे दीर्घ समास का न तो कहीं दर्शन होता है और न अर्थ समझने में कहीं दुरूहता होती है। वाक्यों का विन्यास सरल, सीधा तथा सरस है। यह गद्य लघु वाक्यों में विन्यस्त होने के कारण पर्याप्त रूपेण रोचक, आकर्षक तथा हृदयावर्जक है। ब्राह्मणों की भाषा तथा शैली से स्पष्ट है कि ब्राह्मण ग्रन्थ मौखिक नहीं थे अपितु उनका लिखित रूप था। ब्राह्मणों का साहित्य बड़ा ही विशाल था, परन्तु आज अनेक ब्राह्मण कालकवलित हो गये हैं, केवल उनका नामनिर्देश तथा उद्धरण ही कतिपय वेद सम्बन्धी ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

आरण्यक, उपनिषद् तथा लिपि

आरण्यक ब्राह्मण-ग्रन्थों के परिशिष्ट रूप हैं। उपनिषद् आरण्यकों में ही सम्मिलित हैं और उन्हीं के विशिष्ट अङ्ग हैं। वेद के अन्तिम भाग तथा सारभूत सिद्धान्तों के प्रतिपादक होने के कारण उपनिषद् ही 'वेदान्त' के नाम से विख्यात हैं। इन ग्रन्थों के मनन का स्थान अरण्य का एकान्त शान्त वातावरण ही उपयुक्त था। अरण्य में पाठ्य होने के कारण ही इनका 'आरण्यक' नामकरण सार्थक है। मन्त्रों में देव-स्तुतियों का प्रधान्य है और ब्राह्मणों में यज्ञों की विधि का परन्तु यज्ञों के भीतर विद्यमान आध्यात्मिक तथ्यों की मीमांसा तथा तदन्तगत दार्शनिक विचार ही आरण्यकों का मुख्य विषय है। संहिता के मन्त्रों में प्राणविद्या का सङ्केत अवश्य है परन्तु इस विद्या का महत्त्व आरण्यक का विशिष्ट विषय प्रतीत होता है। प्राणविद्या को आरण्यक अपनी खोज नहीं बताते हैं, अपितु ऋग्वेद के मन्त्रों को ही अपनी पुष्टि में उद्धृत करते हैं। जिन महनीय आध्यात्मिक तत्त्वों का सङ्केत आरण्यकों में उपलब्ध होना है उनका पूर्ण विकास उपनिषदों में मिलता है। "उपनिषद् वस्तुतः वह आध्यात्मिक मानसरोवर है जिससे ज्ञान की भिन्न भिन्न सरितायें निकल कर इस पुण्य भूमि में मानवमात्र के ऐहिक कल्याण तथा आमुष्मिक मङ्गल के लिये प्रवाहित होती हैं। वैदिक धर्म की मूल-तत्त्व-प्रतिपादिका प्रस्थानत्रयी में मुख्य उपनिषद् ही हैं। अन्य स्थान—गीता तथा ब्रह्मसूत्र-इसी के ऊपर आश्रित हैं। भारतवर्ष में प्रसूत समस्त दर्शनों का-सांख्य तथा वेदान्त आदि का ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह मूल ग्रन्थ नहीं है, अपितु जैन तथा बौद्ध दर्शनों के भी मौलिक तथ्यों की आधारशिला यही है।[1]

ऋग्वेद के दो आरण्यकों में ऐतरेय आरण्यक श्रेष्ठ है। इसमें पाञ्च आरण्यक हैं इसके तृतीय आरण्यक का दूसरा नाम संहितोपनिषद् है। संहितोपनिषद् त्रैत्तिरीय उपनिषद का भी अंश है जो 'शिक्षा-वल्ली' के नाम से विख्यात है। सहितोपनिषद में संहिता, पद, क्रम पाठों का वर्णन तथा स्वर, व्यञ्जन आदि के स्वरूप का विवेचन है। इसका द्वितीय अनुवाक इस प्रकार है—

शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्।
साम संतानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः।

इस उपनिषद् में निर्भुज (संहिता), प्रतृण्ण (पद), सन्धि, संहिता आदि पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हुये हैं। वर्णो में जो सन्धि होती है, उसको संहिता कहते हैं। वही संहिता-दृष्टि जब व्यापक रूप धारण करके लोक आदि को अपना विषय बनाती है, तब उसे 'महासंहिता' कहते हैं। संहिता या सन्धि पाञ्च प्रकार की होती है। स्वर, व्यञ्जन, स्वादि, विसर्ग और अनुस्वार–ये ही सन्धि के अधिष्ठान बनने पर पञ्चसन्धि के नाम से प्रसिद्ध होते हैं।

आरण्यक तथा उपनिषद रामायण एवं महाभारत से बहुत प्राचीन हैं। यह बात विचारनीय है कि क्या आरण्यक और उपनिषदों में स्वर, व्यञ्जन, विसर्ग, अनुस्वार, मात्रा तथा सन्धि का उल्लेख बिना लिपि ज्ञान के होसका था। यदि फ़िरङ्गियों के मानस पुत्र भाषा विज्ञान के लेखक अपनी निर्बुद्धि के कारण आरण्यक उपनिषद आदि को मौखिक बतायें और प्राचीन काल में भारत में लिपि की विद्यमानता को स्वीकार नहीं करें तो यह केवल उनका बुद्धि दोष ही हो सकता है। अथर्ववेद में इतिहास—पुराण का निर्देश मौखिक साहित्य के रूप में न होकर लिखित ग्रन्थों के रूप में किया गया मिलता है। छान्दोग्य-उपनिषद में इतिहास-पुराण अध्ययन-अध्यापन का मूख्य विषय बताया गया है। छान्दोग्य-उपनिषद के अध्याय ७ में वर्णित है कि नारदजी ने ब्रह्मनिष्ठ योगेश्वर सनत्कुमार के समीप जाकर शिष्यरूप से कहा—'हे भगवन! मुझे अध्ययन कराइये'। सनत्कुमार जी ने नादरजी से कहा कि जो कुछ तुम जानते हो उसे बताओ जिससे मैं तुम्हें तुम्हारे ज्ञान से आगे उपदेश करूँ। इस पर नारदजी बोले 'भगवान! मुझे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद स्मरण है और इतिहास-पुराण पाञ्चवां वेद, वेदों का वेद (व्याकरण), श्राद्ध—कल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, सर्पविद्या, देवजनविद्या, नृत्य-–सङ्गीत आदि का में

(१) वैदिक साहित्य—पृष्ठ २५३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्ययन करचुका हूं और यह सब में जानता हूं। अतः यह स्पष्ट है कि उपनिषद काल में भारत में उपरोक्त विषयों पर अनेक ग्रन्थ उपलब्ध थे। यहाँ यह ध्यान रहे कि श्रीमद्भागवतादि अष्टदश ग्रन्थ जो पुराणों के नाम से विख्यात हैं, वे इतिहास-पुराण या पाञ्चवां वेद नहीं हैं। इन ग्रन्थों की रचना उपनिषद तथा रामायण और महाभारत से भी पश्चात हुई थी। गृह्यसूत्र का बचन है—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति ।।

अर्थात ऐतरेय, शतपथ, साम और गेपथ आदि ब्राह्मणों के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी पाञ्च नाम हैं।

वेदाङ्ग

वेद के अर्थ ज्ञान तथा इस प्रकार की सहायता देने में जो उपयोगी शास्त्र हैं उन्हें वेदाङ्ग कहते हैं। वेदाङ्गों के नाम और उनका विधिवत विवेचन मुण्डकोपनिषद में उपलब्ध होता है, जिससे सिद्ध होता है कि इन शास्त्रों का उदय उपनिषद काल में हो चुका था। वेदाङ्गों के नाम हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष। लिपि के सम्बन्ध में हम केवल दो वेदाङ्गो—शिक्षा और व्याकरण, पर ही विचार करेंगे।

शिक्षा—वेद के स्वरों की प्रधानता का मुख्य कारण अर्थनियामकता है। शब्द के एक होने पर भी स्वर भेद से उसका अर्थ भेद होजाया करता है। वेद मन्त्रों के यथार्थ उच्चारण के लिये जो विद्या स्वर, वर्ण आदि उच्चारण का उपदेश दे उसे 'शिक्षा' कहते हैं। अक्षरों के उच्चारण करने में जो अनेक गुण एवं दोष उत्पन्न होते हैं उनका शिक्षा-ग्रन्थों में वैज्ञानिक रूप से वर्णन किया गया है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाले नियमों का उल्लेख मिलता है। तैत्तिरीय उपनिषद के अनुसार शिक्षा के छः अङ्गों के नाम हैं—(१) वर्ण, (२) स्वर, (३) मात्रा, (४) बल, (५) साम और (६) सन्तान। वर्ण से अभिप्राय अक्षरों से है। वेद क जानने के लिये संस्कृत, वर्णमाला का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। किसी भी भाषा की वणमाला का ज्ञान उस भाषा की लिपि के बिना नहीं हो सकता है। अब पाठको और भाषा-विज्ञान के अध्यापकों के सामने विचारणीय प्रश्न यह है कि शिक्षा ग्रन्थों में स्पष्ट शब्दों में लिपि का उल्लेख है या नहीं ?

व्याकरण—अर्थ-ज्ञान के बिना किसी भी शास्त्र का अध्ययन फल नहीं देता है। अर्थ—ज्ञान के सम्पन्न होने पर ही शब्द-ज्ञान सफलता प्राप्त करता है। संस्कृत व्याकरण भी प्रकृति और प्रत्यय का उपदेश देकर पद के स्वरूप तथा उसके अर्थ के निर्णय के लिये प्रयुक्त होता है। व्याकरण पदों की मीमांसा करने वाले शास्त्र का कहते हैं—व्याक्रियन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्। आजकल प्राचीन व्याकरणों में पाणिनि व्याकरण ही प्राचीनतम् है, परन्तु पाणिनि से भी पूर्व काल में 'ऐन्द्र व्याकरण'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की सत्ता थी और वैदिक काल में इन्द्र को प्रथम वैयाकरण होने का स्पष्ट निर्देश है। यह व्याकरण ग्रन्थ रूप में था और इसके भी अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। वैदिक काल में व्याकरण शास्त्र को 'अक्षर समाम्नायम्' कहते थे। गोपथ ब्राह्मण की रचना से बहुत पूर्वकाल में इस शास्त्र की उत्पत्ति हो चुकी थी। धातु, प्रातिपदिक, नाम, आख्यात, लिङ्ग, वचन, विभक्ति, प्रत्यय, स्वर, उपसर्ग, वर्ण, अक्षर आदि पारिभाषिक शब्द उस समय के व्याकरण शास्त्र के मान्य शब्द थे। पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं कि क्या अक्षर, वर्ण, स्वर, व्याकरण आदि का ज्ञान बिना लिपि ज्ञान के होसकता है ? उपरोक्त कथन से पूर्णतया सिद्ध होता है कि वैदिक काल से सहस्त्राब्दियों पूर्व लेखन कला (लिपि) का पूर्ण रूप से विकास हो चुका था और भारतीयों के सभी ग्रन्थ लिखित रूप में थे !

सरस्वती—संस्कृत विद्वानों का विचार है कि वैदिक संस्कृत भारत की आदि मूल भाषा है, परन्तु हमने इस बात का स्पष्टीकरण किया है कि भारत की आदि मूल भाषा सरस्वती थी। संस्कृत वैयाकरणों को यह बात स्वीकार है कि पूर्वकाल में वाणी अव्याकृत थी। प्रकृति-प्रत्यय आदि की व्याख्या उसमें नहीं थी और उसका व्याकरण नहीं था। संस्कृत व्याकरण का नियमन इन्द्र ने बनाया था। एक कथा के अनुसार देवगुरु बृहस्पति ने इन्द्र को प्रत्येक पद का उल्लेख कर दिव्य सहस्त्र वर्ष तक शब्द-पारायण कराया, परन्तु अन्त को न प्राप्त हो सके कारण कि शब्द अनन्त हैं। देवताओं की प्रार्थना पर इन्द्र ने इस वाणी को व्याकृत करके शब्द-ज्ञान के कुछ नियम बनाये जिनसे थोड़े समय और परिश्रम से शब्दरूपी महासागर को पार किया जा सके। इस प्रकार संस्कृत में व्याकरण शब्द से ही शब्द-व्युत्पादन या प्रकृति-प्रत्यय विभाग का अर्थ समझा जाता है। संस्कृत व्याकरण में जिस खण्ड के पश्चात प्रत्यय लगाये जाने का विधान किया जाय उसे प्रकृति कहते हैं।

सरस्वती भाषा में प्रकृति-प्रत्यय से शब्द,व्युत्पादन का बिधान नहीं था, कारण कि सरस्वती भाषा में 'धातु' और प्रत्यय नहीं माने जाते हैं, परन्तु हमें यह मान्य नहीं है कि सरस्वती भाषा का व्याकरण नहीं था। सरस्तती भाषा का व्याकरण अत्यन्त सरल था। वास्तव में शब्द ब्युत्पादन को छोड़कर वैदिक संस्कृत भाषा का व्याकरण सरस्वती भाषा के व्याकरण पर ही आधारित है। सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग अनुशासन का सरस्वती भाषा में ऐसा निश्चित नियम है जिसका एक भी अपवाद नहीं है। लिङ्गानुशासन का यह नियम प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार है। प्रकृति का अर्थ है—प्राणी की जननेन्द्रिय, योनि, लिङ्ग आदि। जिस सञ्ज्ञा के लिङ्ग का प्रकृति के अनुसार बोध नहीं होता है उसका लिङ्ग प्रत्यय के अनुसार निर्धारित होता है। प्रत्यय का अर्थ है—शब्द का अन्तिम अक्षर अर्थात स्वर या व्यञ्जन। स्वर तथा व्यञ्जन का ज्ञान बिना लिपिमाला के ज्ञान के नहीं हो सकता है। संस्कृत भाषा में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जितने भी शब्द हैं वह सभी सरस्वती भाषा के हैं और संस्कृत के धातु भी सरस्वती भाषा के क्रियार्थक सञ्ज्ञा शब्दों के मूल अवयव हैं। इस प्रकार यह पूर्णतया सिद्ध होता है कि वैदिक काल से पूर्व सरस्वती भाषा में ही लिखने की कला का विकास हो चुका था।

उपरोक्त कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत में वेद रचना से सहस्त्रों वर्ष पूर्व से लिखने की कला प्रचलित थी। यदि पाश्चात्य लेखक और भाषा-विज्ञान के अध्यापक इस तथ्य को स्वीकार न करें तो यह उनका बुद्धि दोष ही हो सकता है।

संस्कृत वाङ्मय की विपुलता

संस्कृत वाङ्मय किसी समय कितना विशाल था, उसका परिचय व्याकरण-महाभाष्यम् की प्रस्तावना में इस प्रकार है—

"वैदिक शाखाओं की भारतयुगीन महर्षियों द्वारा प्रोक्त शाखाओं की ही ११३१ संख्या थी, इतने ही इनके ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद तथा कल्पसूत्र (श्रौत-गृह्म-धर्मसूत्र) थे। भारतयुद्ध काल से पूर्ववर्ती महर्षियों द्वारा प्रोक्त वैदिक वाङ्मय जिसकी ओर भगवान पाणिनि ने पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु (४/३/१०५) सूत्र में पुराण शब्द से सङ्केत किया था वह इससे पृथक था, उसका तो इस समय ज्ञान ही नहीं। केवल एक ऐतरेय ब्राह्मण ऐसा मिलता है जो मूलरूप में भारत युद्ध से लगभग स्वा हजार वर्ष प्राचीन है और जिसका वर्तमान रूप भारतयुगीन आचार्य शौनक द्वारा संस्कृत है। हाँ, प्रतिशाख्यों में वाल्मीकि प्रभृति महर्षियों द्वारा कतिपय शाखाओ का सङ्केत अवश्य उपलब्ध होता है। वायुपुराण के अनुसार द्वापर युग के २८ परिवर्तों में २८ व्यासों द्वारा वैदिक वाङ्मय का २८ बार प्रवचन हुआ। इन १८ व्यासों के नाम पुराण में उल्लिखित हैं और इनमें से कतिपय व्यासों द्वारा प्रोक्त शाखाओं की सत्ता प्रतिशाखाओं से भी प्रमाणित होती है। भगवान पतञ्जलि द्वारा महाभाष्य के आरम्भ में निर्दिष्ट सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय भारत युद्धकालीन २८ वें व्यास भगवान कृष्ण द्वैपायन मुनि के शिष्य प्रतिशिष्यों द्वारा प्रोक्त है। इस अन्तिम विशाल वैदिक प्रवचन में से भी सम्प्रति गिने-चुने ही कतिपय ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।"

संस्कृत साहित्य की सहस्त्रों वर्षों की धारावाहिक रचना के सामने अङ्गरेजी के साहित्य की धारावाहिकता कितनी अल्प है। प्राचीन काल मे विद्या के विविध क्षेत्रों की कोई भी ऐसी शाखा नहीं थी जिसमें सस्कृत भाषा में ग्रन्थों की रचना न हुई हो। "विधर्मियों द्वारा संस्कृत वाङ्मय के नष्ट किये जाने व कालकवलित होने से जो संस्कृत ग्रन्थ राशि इस समय भी अवशिष्ट है वह संसार की किसी भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन भाषा के वाङ्मय से अत्यधिक विशाल तथा प्राचीन है ।" हम भाषा-विज्ञान के अध्यापकों से पूछते हैं कि क्या यह ग्रन्थ लिखित रूप में नहीं थे ?

रामायण और महाभारत

संस्कृत साहित्य का इतिहास पिछले आठ सहस्त्र वर्षों से हमारे पूर्वजों के मानसिक एवं बौद्धिक विकास का इतिहास है । रामायण संस्कृत का आदि 'महाकाव्य' है । नि:सन्देह रामायण की रचना महाभारत से पूर्व हुई थी कारण कि महाभारत में रामोपाख्यान मिलता है । रामायण और महाभारत आर्ष या उपजीव्य महाकाव्य हैं । इनकी रचना के पश्चात बहुत सा साहित्य निर्मित हुआ परन्तु वह कालकवलित हो गया । भारतीय अविच्छिन्न परम्परा सिद्ध सत्य ऐतिहास के अनुसार पाणिनि मुनि का काल वि० सं० के आरम्भ से २९०० वर्ष पूर्व अर्थात आज से लगभग पाञ्च सहस्त्र वर्ष पूर्व है और महाभाष्यकार पतञ्जलि का काल विक्रम संवत के आरम्भ से न्यूनातिन्यून दो सहस्त्र वर्ष पूर्व है । इस काल के निदर्शन के लिए पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने संस्कृत व्याकरण का इतिहास' नामक ग्रन्थ में अनेक अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग प्रमाण दिये हैं । रामायण और महाभारत में अनेक आर्ष प्रयोग पाये जाते हैं जो पाणिनीय व्याकरण से मेल नहीं खाते हैं अतः रामायण और महाभारत की रचना पाणिनि से पूर्व हो चुकी थी । रामायण में २४००० और महाभारत में एक लाख विशुद्ध श्लोक हैं । इतने बड़े ग्रन्थ कभी मौखिक नहीं हो सकते हैं । रामायण तथा महाभारत में ही इन ग्रन्थों के लिखित रूप में होने के उल्लेख मिलते हैं । रामायण ६।१२८।११७ के अनुसार जो व्यक्ति इस प्राचीन इतिहास का पूजन और पाठ करता है, वह सब पापों से मुक्त होता है और बड़ी आयु पाता है । पूजन और पाठ केवल लिखित ग्रन्थ का ही हो सकता है । युद्ध काण्ड के अध्याय १२८ का १२३वां श्लोक इस प्रकार है—

भक्त्या रामस्य ये चेमां संहिता मृषिणा कृताम् ।
ये लिखन्तहि च नरास्तेषां वासस्त्रि विष्टपे ।।

अर्थात जो लोग श्रीरामचन्द्र जी में भक्तिभाव रखकर महर्षि बाल्मीकि निर्मित इस रामायण संहिता को लिखते हैं, उनका स्वर्ग में निवास होता है । बालकाण्ड के प्रथम सर्ग के श्लोक ९८–१०० में भी रामायण कथा को पढ़ने के पुण्य का उल्लेख स्पष्ट शब्दों में किया गया है ।

महाभारत १/१/७५-७६ के अनुसार महाभारत की रचना से पूर्व व्यास जी ने भगवान गणेश का स्मरण किया और स्मरण करते ही गणेश जी व्यास जी के पास पहुँच गये । व्यास जी ने गणेश जी का बड़े आदर और प्रेम से स्वागत-सत्कार किया और जब वह बैठ गये तब उनसे कहा—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक ।
मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च ।।

अर्थात गणनायक ! आप मेरे द्वारा निर्मित इस महाभारत ग्रन्थ के लेखक बन जाइये; मैं बोलकर लिखाता जाऊँगा, मैंने मन ही मन इसकी रचना कर ली है ।

महाभारत में अन्य मुनियों के बनाये हुए अनेक ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है जो उस समय उपलब्ध थे । अत: यह स्पष्ट है कि रामायण और महाभारत की रचना के पूर्व भारत में देवलिपि का पूर्ण रूप से निर्माण हो चुका था ।

व्याकरणशास्त्र और लिपि

यह निर्विवाद सत्य है कि व्याकरण शास्त्र की रचना बिना लिपि ज्ञान के नहीं हो सकती है । हमारी लिपि अर्थात वर्णमाला में दो प्रकार के अक्षर हैं । एक तो 'अ, इ, उ' आदि स्वर, दूसरे 'क्, ख्, ग्, घ्' आदि व्यञ्जन या हल् । यह वर्णमाला (देव लिपि) लोक में वैदिक युग से पूर्व से प्रचलित है । वैदिक वाङ्मय से यह प्रमाणित होता है कि शब्दोपदेश के लिये प्रकृति-प्रत्यय विभाग की कल्पना सर्वप्रथम बृहस्पति के शिष्य देवराज इन्द्र ने की । देवराज इन्द्र से लेकर पाणिनि तक अनेक प्राचीन आचार्यों ने व्याकरण शास्त्र का प्रवचन किया, परन्तु दुर्भाग्य से प्राचीन व्याकरणों में से केवल पाणिनीय व्याकरण ही सर्वाङ्गपूर्ण उपलब्ध होता है । लोक में प्रचलित वर्णमाला के अक्षरों को पाणिनि ने १४ सूत्रों में बान्धा है जिन्हें माहेश्वर सूत्र कहते हैं । यह सूत्र संस्कृत व्याकरण के प्राण हैं, इनके बिना पाणिनीय व्याकरण चल ही नहीं सकता है । इनके आधार पर ही पाणिनि ने ३९७८ सूत्रों में सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र का निर्माण किया है । जिन व्यक्तियों को संस्कृत व्याकरण का अल्प ज्ञान भी है, वह भली प्रकार समझ सकते हैं कि इस शास्त्र का आधार देव (नागरी) लिपि के अतिरिक्त कोई अन्य प्राचीन लिपि नहीं हो सकती है । किसी अन्य प्राचीन लिपि में संयुक्त व्यञ्जनों और स्वरों के मात्रिक सङ्केत चिह्नित करने की अभिव्यञ्जना शक्ति नहीं है । विस्तार भय से इस सम्बन्ध में हम अधिक लिखना नहीं चाहते हैं ।

उपरोक्त कथन से पूर्णतया सिद्ध है कि भाषा-विज्ञान के लेखकों का विचार कि प्राचीनकाल में विशाल वैदिक वाङ्मय (वेद, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद तथा वेदाङ्ग) किसी लिपि में लिखित नहीं था और वह मौखिक परम्परा पर था एक तथ्यविहीन और मिथ्या धारणा है । हमारा विशाल वैदिक वाङ्मय लिपिबद्ध था और अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि वह लिपि क्या थी और उसका क्या स्वरूप था ।

देव लिपि

लिपि—भाषा की ध्वनियों को चिह्नांकित करने के प्रतीक को लिपि कहते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। वैदिक वाङ्मय आज जिस लिपि में लिखा हुआ है उसे 'देवनागरी लिपि' कहते हैं। 'देवनागरी लिपि' शब्द हमारी भाषा का नूतन शब्द नहीं है, यह शब्द उतना ही प्राचीन है जितनी कि हमारी भाषा। यह बात स्पष्ट है कि किसी भी भाषा में साहित्य की रचना विना लिपि के नहीं हो सकती है। इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि किसी भी भाषा में उसके प्राचीनतम साहित्य के रचना काल से पूर्व उस भाषा की लिपि का विकास हो चुका था। यह निर्विवाद सत्य है कि वैदिक वाङ्मय साहित्यिक रचना है। यह जिस भाषा का साहित्यिक रूप है उस भाषा का नाम 'सरस्वती' है। इस कथन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र की रचना से पूर्व सरस्वती भाषा में लिपि का विकास हो चुका था और सरस्वती भाषा में लेखन कला प्रचलित थी। भारतीय सरस्वती को वाणी और ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी मानते हैं जिसका वर्णन ब्रह्मा की पत्नी के रूप में किया जाता है। इसी कारण भारतीय सरस्वती वाणी को देव वाणी कहते थे। सरस्वती भाषा की साहित्यिक भाषा भी देववाणी ही कही जाती थी, और जिस लिपि में देव वाणी लिखी जाती थी उसको 'देवलिपि' कहते थे।

देव लिपि और देव (नागरी) लिपि पृथक पृथक लिपियां नहीं हैं। लौकिक संस्कृत काल में देव लिपि को ही देव (नागरी) लिपि कहा जाने लगा, जिसका कारण इस प्रकार है—

वैदिक साहित्य ग्राम्य जीवन तथा जनसाधारण का साहित्य है। यह साहित्य मुख्यतया धर्म प्रधान है जिसमें प्राकृत शक्तियों की कमनीय स्तुतियां तथा कीर्तन है जो कल्पना तथा भावना के विशुद्ध रूप पर आश्रित है। वैदिक साहित्य में गद्य को ही गौरव प्रदान किया गया है। समस्त ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य में ही निबद्ध किये गये हैं। इस गद्य के वाक्यों का विन्यास सीधा तथा सरल है। यह गद्य बड़ा ही परिमार्जित है, इसमें दीर्घ समास का न तो कहीं दर्शन होता है और न अर्थ समझने में कोई कठिनाई होती है। यह गद्य लघु वाक्यों में विन्यस्त होने के कारण पर्याप्तरूपेण रोचक तथा आकर्षक है। यह गद्य व्याकरण के नपे-तुले नियमों में जकड़ा हुआ नहीं था। सत्य तो यह है कि वैदिक वाङ्मय की भाषा तथा तत्कालीन कुरुप्रदेश के जन-साधारण की कथ्य भाषा में अधिक भेद नहीं था। ब्राह्मण ग्रन्थों के गद्य की भाषा को जनसाधारण भली प्रकार समझ लेते थे।

देव (नागरी) लिपि

साहित्यिक सरस्वती भाषा (वेद भाषा) पाणिनि प्रभृति के व्याकरण द्वारा नियन्त्रित होकर लौकिक संसकृत में परिणत हुई थी। संस्कृत भाषा का प्रयोग लौकिक संस्कृत भाषा के ही अर्थ में किया जाता है। लौकिक संस्कृत साहित्य के उदय होने पर वैदिक साहित्य के गद्य का ह्रास आरम्भ हो गया। इस युग में गद्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का क्षेत्र केवल व्याकरण और दर्शन शास्त्र तक ही सीमित रह गया। पद्य की प्रभुता इतनी अधिक बढ़ गई कि ज्योतिष तथा वैदिक जैसे वैज्ञानिक विषयों का वर्णन भी पद्य में किया जाने लगा। वैदिक साहित्य जन-साधारण के विचारों को प्रस्तुत करता था जिसमें नैसर्गिकता की प्रधानता थी। लौकिक संस्कृत में अलङ्कृति की अभिरुचि अधिक बढ़ने लगी और उसका काव्य-साहित्य अभिजात वर्ग की साहित्यिक भाषा का साहित्य रह गया। इस युग में बड़े-बड़े राजाओं के वैभव से गौरवपूर्ण नगरों की स्थापना की गई और जीविका के साधनों में विस्तार होने लगा तो इस साहित्य में नागरिक जीवन का चित्रण दीखने लगा। लौकिक संस्कृत साहित्य जो अपना रूप धारण कर रहा था, उस समय के साहित्यकारों और व्याकरण प्रणेताओं ने जन भाषा के शब्दों की अवहेलना करते हुये समासात्मक रीति से यौगिक शब्दों का निर्माण करके भाषा को अलङ्कृत करना आरम्भ कर दिया। भाषा में लम्बे लम्बे समासों का प्रयोग होने लगा और यह साहित्य दुरूह, प्रसादविहीन तथा दुर्बोध हो गया। इसका प्रभाव यह पड़ा कि लौकिक संस्कृत सामान्य जन से दूर होकर राज परिषदों, विद्यापीठों और विशिष्ट साहित्यकारों की ही भाषा रह गई। लौकिक संस्कृत ज्ञान और कोश की भाषा होने के कारण स्थान भेद पर विभाजित नहीं हो सकी। भारत के विभिन्न प्रदेशों में विद्या प्राप्त करने के लिये शिक्षा का माध्यम शास्त्रीय संस्कृत ही रहा चाहे कोई विद्यार्थी तक्षशिला में या नालन्दा विश्वविद्यालय में या अवन्ती की सन्दीपनि महापीठ में पढ़ता हो। सभी विद्यार्थी एक ही व्याकरण अष्टाध्यायी और महाभाष्य को एक ही संस्कृत और एक ही लिपि देवनागरी में पढ़ते थे।

सामान्य जन जो केवल अपने व्यवसाय के लिये ही लिखना पढ़ना सीखते थे वह अपनी अपनी क्षेत्रीय भाषा को स्थानीय लिपि में ही लिखते थे। देवनागरी लिपि का प्रयोग शास्त्रीय संस्कृत में ही होता था जिसकी शिक्षा केवल नगरों में ही दी जाती थी। अत: सामान्य जन देवनागरी लिपि को नगरों में उत्पन्न, नगरों से सम्बन्ध रखने वाली या नगरों में व्यवहार में आने वाली लिपि कहने लगे। इस प्रकार देवलिपि ही देव(नागरी)लिपि के नाम से जानी जाने लगी। शब्द 'लिपि' स्त्री लिङ्ग होने के कारण ही शब्द 'नागर' वि० का स्त्रीलिंग रूप 'नागरी' वि० शब्द का यहाँ प्रयोग हुआ है। अत: देवलिपि और देव(नागरी)लिपि पर्याय-वाची शब्द हैं।

ब्राह्मी लिपि (?)

पाश्चात्य लेखकों और उनके मानस पुत्रों का कथन है कि प्राचीन काल में भारत में दो ही लिपियां प्रचलित थीं—(१) ब्राह्मी और खरोष्टी। इस कथन का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधार यह है कि ये लिपियां प्रथम बार अशोक के शिलालेखों में ही मिलती हैं जिनका काल वि० पू० तीसरी शताब्दि है। अशोक के शिलालेखों से पूर्व ऐसा कोई साधन उपलब्ध नहीं है जहां भारत में प्रचलित किसी लिपि में कोई लेख हो।

जिस लिपि को भाषा विज्ञान के लेखक ब्राह्मी लिपि कहते हैं उसके अक्षरों के चिह्न उन्होंने अपनी पुस्तकों में दिये हैं—देखो सरल भाषा विज्ञान, तृतीय संस्करण पृष्ठ ३१८, भाषा विज्ञान पञ्चम संस्करण पृष्ठ ४३८। जिस लिपि को यह लेखक ब्राह्मी लिपि कहते हैं, वह ब्राह्मी लिपि नहीं है। इस लिपि में 'ब्राह्मी' शब्द भी शुद्ध रूप में लिखा नहीं जा सकता है। जिस लिपि में 'ब्राह्मी' शब्द भी लिखा नहीं जा सकता है, वह लिपि ब्राह्मी लिपि कैसे हो सकती है।

देव लिपि, देव(नागरी)लिपि और ब्राह्मी लिपि पर्याय वाची शब्द हैं और एक ही लिपि के नाम हैं। 'ब्राह्म' एक विशेषण शब्द है। हमारी भाषा में विशेषण शब्द का वही लिङ्ग होता है जो विशेष्य का होता है। 'लिपि' शब्द स्त्रीलिङ्ग है, अतः इस शब्द के विशेषण का रूप 'ब्राह्मी' प्रयोग होता है। 'ब्राह्म' और 'ब्राह्मी' वि० शब्द एक ही हैं। संस्कृत शब्द कोशों में 'ब्राह्म' वि० के अर्थ इस प्रकार हैं—(१) ब्रह्मा, विधाता या परमात्मा से सम्बद्ध, रघुवंश १३.६०, भगवद्गीता २.७२. मनुस्मृति २.४०। (२) वेदाध्ययन या ब्रह्मज्ञान से सम्बद्ध—ब्राह्मं वेदमधीयता वेदाङ्गानि च सर्वशः महाभारत १.१५६.५। (३) वैदिक, वेदविहित, श्रुतिविहित। (४) विशुद्ध, पवित्र, दिव्य। आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश पृष्ठ ७२४, आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ११७७। इन अर्थों से स्पष्ट है कि ब्राह्मी लिपि उस लिपि का नाम था जिसके द्वारा वेदाध्ययन या ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो सकती थी।

यदि 'ब्राह्मी' शब्द को विशेषण शब्द न मानकर एक स्त्रीलिङ्ग शब्द मान लिया जाय तो संस्कृत शब्द कोशों में इस शब्द का अर्थ है—ब्रह्म की मूर्तिमती शक्ति, वाणी, वाणी की देवी सरस्वती, वैदिक प्रथा। अतः ब्राह्मी लिपि वह लिपि है जिसमें सरस्वती भाषा लिखी जाती थी। ब्राह्मी शब्द को चाहे विशेषण माना जाय या संज्ञा स्त्री० शब्द, इन दोनों शब्दों के अर्थों से यह पूर्णतया सिद्ध होता है कि ब्राह्मी लिपि वह लिपि है जिसमे सरस्वती भाषा लिखी जाती थी और जिसमें हमारा विशाल वैदिक वाङ्मय लिखा हुआ था और है।

लौकिक संस्कृत युग में ही देवलिपि को ब्राह्मी लिपि कहने लगे थे। इसका कारण यह है कि इस साहित्य में धर्म का जो वर्णन है उस पर उपनिषदों का अधिक प्रभाव है। यह धर्म वैदिक धर्म पर अवलम्बित तो है, परन्तु ऋग्वेद काल में जिन देवताओं की प्रमुखता थी उनका वर्णन इस साहित्य में केवल गौण रूप में ही हुआ है। इस साहित्य में ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उपासना पर ही अधिक महत्व दिया गया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है उस काल में जिस लिपि में लिखे ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ उपलब्ध थे, उसी लिपि को ब्राह्मी लिपि भी कहने लगे थे।

देवनागरी लिपि के प्रमाण

देवलिपि या देव (नागरी) लिपि में लिखित दो सहस्त्र वर्ष से पूर्व कोई रचना न मिलने से यह नहीं कहा जा सकता हैं कि बाह्य प्रमाण विहीनता के कारण वैदिक युग या उससे भी पूर्व देवनागरी लिपि का प्रचलन नहीं था। जैसे सौवां व्यक्ति तो दूर रहा जब किसी व्यक्ति से हम ये पूछें कि तुम्हारे वंश में तुम से तीसवां पूर्व पुरूष कौन था, उसका क्या नाम था, उसके माता :पिता और पत्नी का क्या नाम था, वह कहां रहता था और उसके तुम्हारे पास क्या प्रमाण हैं, तो वह बताने में असमर्थ रहेगा। इससे यह निषकर्ष नहीं निकाला जा सकता की प्रवर नाम आदि के अभाव में तीसवां व्यक्ति नहीं था। नृवंश-परम्परा तथा प्राणी विकास पद्धति यह सिद्ध करती हैं कि प्रश्नगत तीसवां व्यक्ति था। इसी प्रकार कोई बाह्य प्रमाण न मिलने से इतनी सरलता से यह प्रमाण निकाल लेना कि दो सहस्त्राब्दियों पूर्व देवनागरी लिपि प्रचलित नहीं थी कोई सन्तोष जनक धारणा नहीं है।

नृवंश-परम्रा के अधार के अनुसार ही हम भाषा तथा लिपि शास्त्र के अधार पर यह प्रमाणित कर सकते हैं कि भारत में सरस्वती युग, अर्थात वैदिक युग से भी पूर्व काल में हमारी भाषा में लिपि का प्रचलन था और वह लिपि देवनागरी लिपि के अतिरिक्त और कोई लिपि नहीं थी। वैदिक बाङ्मय तथा विशेष रूप से ऋचायें इस बात का प्रमाण हैं कि अति पुरातन काल में हमने अपने ध्वनि शास्त्र को पूर्ण उच्चता तक पहुंचा दिया था। मानवीय कण्ठ से प्राण वायु के आश्रय से अधिक से अधिक जितनी ध्वनियां हो सकती थीं इन समस्त ध्वनियों को हमारे ऋषियों ने अपनी भाषा में आत्मसात करने का सफल प्रयास किया। जब भाषा का ध्वनि शास्त्र प्रथम कोटि का था तो यह स्वाभाविक है कि लिपि जो उन ध्वनियों का संकेत होता है उसमें भी इतनी पूर्णता होनी चाहिये थी कि वह समस्त ध्वनियों को चिह्नित कर सके। इस कल्पना के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि देवनागरी लिपि जो प्राचिनितम लिपि है, उसमें समस्त ध्वनियों को चित्रित करने की क्षमता थी। संस्कृत भाषा में एक भी ऐसा शब्द नहीं जो किसी काल में अन्य रूप में प्रयुक्त होता रहा हो और उत्तर काल में उसमें रूप परिवर्तन होकर भी वह संस्कृत भाषाका अङ्ग बना रहा हो। केवल देवनागरी लिपि में ही संयुक्त व्यञ्जन, अनुस्वार, विसर्ग, अनुनासिक और मात्रिक ध्वनियों को स्पष्ट करने और अभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता और सामर्थ है जो प्राचीन काल में प्रचलित अन्य किसी भी लिपि में नहीं है। अतः ऐसी पूर्ण और वैज्ञानिक लिपि ही प्राचीनतम लिपि हो सकती है जिसमें हमारा विशाल वैदिक वाङ्मय लिखा हुआ था। तथा जिसके द्वारा हमारा वैदिक साहित्य आज तक उसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप में सुरक्षित है और उसके एक भी शब्द में आजतक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

देवनागरी लिपि के प्राचीनतम लिपि होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आज तक ऐसा कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सका है कि किसी भी काल में किसी लेखक ने वैदिक वाङ्मय के किसी भी ग्रन्थ का किसी अन्य प्राचीन लिपि से देवनागरी लिपि में पुनर अभिलेख किया हो। यदि देवनागरी लिपि नहीं थी तो आज तक किसी पाश्चात्य विद्या-विशारद ने यदि अनेकों का नहीं तो एक आधे वैदिक साहित्य के ग्रन्थ तथा लेखक के नाम का उल्लेख करने का कष्ट क्यों नहीं किया जिसने इत्तर लिपि से उस ग्रन्थ को देवनागरी लिपि में लिखा हो। दूसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि देवनागरी लिपि से अतिरिक्त यदि कोई समर्थ लिपि थी जिसमें हमारा वैदिक साहित्य लिखा हुआ था तो वह ग्रन्थ उस लिपि में लिखे क्यों नहीं मिलतेहैं और वह समृद्ध लिपि तिरोहित अथवा लोप क्यों हो गई ? उपरोक्त कथन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जैसे वैदिक युग से पूर्व हमारी एक सम्पन्न भाषा सरस्वती थी उसी प्रकार हमारे पूर्वजों को लिपि ज्ञान भी वैदिक युग से सहस्त्राब्दियों पूर्व था और आज देवनागरी लिपि में जो लेख व्यवस्था है वह उसी विकास क्रम की परम्परा है। अतः हमारी लिपि, छन्द रचना और साहित्यिक विषय पुरा प्राचीन काल से हमारे द्वारा रक्षित और श्वासों में जीवित चला आ रहा है।

शिला लेखों की लिपि

हम लिख चुके हैं कि ब्रह्मावर्त और कुरुप्रदेश के जन-साधारण की भाषा सरस्वती और साहित्यिक भाषा (वेद भाषा) एक ही लिपि देवनागरी में लिखी जाती थीं। भारत के अन्य विभिन्न प्रदेशों में व्यवहार में दो भाषाओं और प्रयोग में दो लिपियों का प्रचलन सदेव रहा है। जैन-सूत्रों के अनुसार भारत में २८ लिपियों और बौद्ध-ग्रन्थों के अनुसार ६४ लिपियों का प्रचलन था। इन लिपियों में साहित्य रचना नहीं होती थी अपितु इनमें स्थानीय वीथियों और पणियों की भाषाओं को काम चलाउ रीति से लिखा जाता था। समस्त भारत में साहित्य रचना केवल संस्कृत भाषा में होती थी और देवनागरी लिपि में लिखी जाती थी। नाटककार भास, शूद्रक, कालिदास, भवभूति आदि ने भी इन्हीं दो प्रणालियों का आश्रय ग्रहण किया था। सम्राट अशोक ने बुद्धदेव के उपदेशों को भिन्न-भिन्न प्रदेशों में वहां-वहां की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं और स्थानीय लिपियों में खुदवाये थे। यह बात अशोक की इस भावना को प्रकट करती है कि उसने धर्मप्रचार की दृष्टि से ही साम्य जन प्रचलित भाषा और स्थानीय लिपि का आश्रय लिया था। इससे यह आभाषित नहीं होता है कि उस समय सरस्वती भाषा की परम्परा देवनागरी लिपि विलुप्त हो गई थी। जैन और बौद्धों ने संस्कृत भाषा का प्रत्याग कर उस समय की जन-साधारण की भाषा में धर्मोपदेश को लिपिबद्ध करने की प्रथा प्रचलित की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी। इससे दो नई साहित्य-भाषाओं का जन्म हुआ था, वे जैन-सूत्रों की अर्धमागधी (प्राकृत) और बौद्ध-धर्म ग्रन्थों की मागधी (पालि) भाषायें थीं, परन्तु यह दोनों भाषायें भी संस्कृत के प्रभाव का उल्लङ्घन न कर सकीं थीं। इन दोनों भाषाओं में संस्कृत के अनेक शब्द अविकल रूप में गृहीत हुये थे और यह भाषायें देवनागरी लिपि मैं लिखी जाती थीं। इतना ही नहीं जब जैन और बौद्ध-धर्मों में दार्शनिक रचनायें हुई तो वह ग्रन्थ संस्कृत में लिखे गये थे।

खरोष्ट्री लिपि

पाश्चात्य विचारकों तथा भाषा-वैज्ञानिकों के अनुसार भारत की दूसरी प्राचीन लिपि 'खरोष्ट्री' थी, जिसका प्रचार भारते के पश्चिमोत्तर सीमान्त में था। यह लिपि उर्दू लिपि की भान्ति दाहिनी ओर से बायें को लिखी जाती थी। इस लिपि के समस्त अक्षर सरस्वती (देवनागरी) लिपि के केवल १८ उच्चारणों को व्यक्त कर सकते थे। इस लिपि में न तो संस्कृत के संयुक्त व्यञ्जन ही लिखे जा सकते थे और न स्वरों की मात्राओं को चिह्नित किया जा सकता था। इसको काबुलियन तथा बैक्ट्रियन लिपि भी कहते थे और भारत में इसका प्रचार तीसरी शताब्दि ई० पू० से तीसरी शताब्दि ई० तक रहा। इसके पश्चात पश्चिमोत्तर भारत में भी ब्राह्मी लिपि से बिकसित लिपियों का प्रयोग होने लगा था। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार इस लिपि का 'खरोष्टी' नाम होने के कुछ आधार इस प्रकार हैं—

(१) इस लिपि का निर्माण किसी खरोष्ट नामक व्यक्ति ने किया था, परन्तु वह व्यक्ति कौन था, उसका इन वैज्ञानिकों को कोई ज्ञान नहीं है।

(२) यह लिपि गधे की खाल पर लिखी जाती थी, इस कारण पारस में इस लिपि को 'खरपोश्त' कहते थे और इसी शब्द का अपभ्रंश रूप 'खरोष्ट' है।

(३) इस लिपि के अक्षर गधे के ओष्ठ के समान कुरूप होते है और इसी आधार पर इसका नाम खरोष्टी पड़ा।

(४) इस लिपि का सम्बन्ध एशिया के एक नगर 'काशगर' से था और 'काशगर' शब्द ही विकृत होकर 'खरोष्ट' बन गया।

(५) हिब्रू में 'खरोशेथ' का अर्थ लिखावट है और इसी शब्द का संस्कृत रूप खरोष्ट है।

खरोष्टी शब्द की उपरोक्त सभी व्युत्पत्तियां भ्रामक, अनर्गल और तथ्य-विहीन कल्पनाओं पर आधारित हैं।

कुछ भाषा वैज्ञानिक खरोष्टी लिपि की वर्णमाला के अक्षरों की संख्या ३२ बताते है और कुछ ३७, परन्तु भाषा-विज्ञान की पुस्तकों में इस लिपि के ३८ अक्षरों के चिह्न दिये हुये हैं, देखो—सरल भाषा विज्ञान पृष्ठ ३१२, भाषा विज्ञान पृष्ठ ४२८। जिस लिपि के अक्षरों के यह चिह्न हैं वह लिपि 'खरोष्टी नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह लिपि पश्चिमी पञ्जाब और सीमान्त प्रदेश की तत्कालीन वीथियों और पणियों में प्रचलित सामान्य जन की एक प्रकार की कामचलाऊ लिपि थी, जिसमें न स्वरों की मात्राओं को चिह्नित किया जा सकता था [और न संयुक्त व्यञ्जन ही लिखे जा सकते थे । भारत का पश्मिोत्तर सीमान्त प्रदेश कौन था और खरोष्टी लिपि क्या थी इसको समझने के लिये तीसरी शताब्दि ई० पू० से तीसरी शताब्दि ई० तक भारत की राज्य स्थिति पर प्रकाश डालना अनिवार्य हो जाता है ।

३२५ ई० पू० चन्द्रगुप्त मौर्य मगध के सिंहासन पर बैठा था । ३०५ ई० पू० में सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस (जो सिकन्दर के मरने के पश्चात पारस रहने लगा था) ने भारत पर आक्रमण किया । चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिन्धु के उस पार ईरानी सेना से युद्ध करके सेल्यूकस को पराजित किया और सेल्यूकस सन्धि करने पर विवश हुआ । सेल्यूकस ने हिन्दुकुश तक का सारा प्रदेश चन्द्रगुप्त को दे दिया और चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य हिन्दुकुश तक हो गया जिसमें अफगानिस्तान भी सम्मिलित था । अत: तिसरी शताब्दि ई० पू० में भारत का पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश अफगानिस्तान था जिस भाग में 'पारसी' लिपि व्यवहार में आती थी । काबुल अफगानिस्तान का प्रमुख नगर है और इसी कारण अफगानिस्तान में प्रचलित लिपि (पारसी) को ही 'काबुलियन' लिपि भी कहते थे । उस समय अफगानिस्तान के पश्चिम में स्थित देश को बैकट्रिया कहते थे जिसकी राजधानी 'बलख' थी जो पारस देश का ही भाग था और जहां पारसी लिपि प्रचलित थी । अत: बैकट्रिया देश में प्रचलित पारसी लिपि को ही 'बैकट्रियन' लिपि भी कहते थे । इस प्रकार खरोष्टी, पारसी, काबुलियन और बैकट्रियन पर्यायवाची शब्द हैं और एक ही लिपि के नाम हैं ।

चन्द्रगुप्त मौर्य के पश्चात उसका पुत्र बिन्दुसार मगध के सिंहासन पर बैठा और बिन्दुसार के पश्चात उसका पुत्र अशोक सिंहासन पर बैठा । अशोक के शासन काल में भी भारत का साम्राज्य हिन्दुकुश तक रहा । अशोक के उत्तराधिकारी शक्तिहीन थे । १८४ ई० पू० में मौर्य वंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ क उसके सेनापति पुण्यमित्र ने मार कर सिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया । १८४ ई० पू० से ३२० ई० तक भारत में कोई महत्त्वशाली साम्राज्य नहीं रहा । इस काल को हम प्राचीन भारतीय इतिहास का अन्धकाल कह सकते हैं कारण कि उस काल की ऐतिहासिक घटनाओं का ठीक ठीक पता नहीं चलता है । इस काल में मध्यएशिया की एक जाति के लोगों ने जिन्हें शक कहते हैं बैकट्रिया को जीत लिया । उसके पश्चात उन्होंने उत्तर-पश्चिमी भारत तक एक साम्राज्य स्थापित कर लिया । यह लोग अधिक काल तक पार्थिया (पारसिया-पारस देश) में रहचुकने के कारण वहां की संस्कृति तथा भाषा और लिपि को ग्रहण कर चुके थे । उन्होंने अपने साम्रज्य में इसी लिपि का प्रचार किया । उसके पश्चात 'कुशन' लोगों के एक सरदार कुजूला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नामक ने अफगानिस्तान तथा पश्चिमी पञ्जाब के कुछ भाग को जीत लिया और उसका साम्राज्य पारस की सीमा से सिन्धु नदी तक फैल गया। गुप्त साम्राज्य की स्थापना तक बैक्ट्रिया से सिन्धु तक के प्रदेश पर इन जातियों का अधिकार रहा। यह जाति भी पारसी संस्कृति तथा भाषा को ग्रहण कर चुकी थी और इसी कारण उनके राज्य में पारसी लिपि का प्रचार रहा। यही कारण है कि उस समय पश्चिमोत्तर भारत में स्थानीय लिपि के साथ साथ पारसी लिपि का भी प्रचलन था। ४२० ई० के लगभग मगध देश में एक प्रतापशाली राजवंश की उत्पत्ति हुई। इसका पहला प्रतापी राजा चन्द्रगुप्त प्रथम हुआ, उसने पश्चिमोत्तर भारत को जीतकर फिर अपने राज्य में मिला लिया। उस क्षेत्र से म्लेच्छों के राज्य समाप्त होने के पश्चात ही पारसी अर्थात् खरोष्टी लिपि का प्रचलन उस भाग से समाप्त हो गया। उस क्षेत्र में देवनागरी लिपि से विकसित जो स्थानीय लिपि प्रचलित थी फिर केवल वही लिपि व्यवहार में रह गई। इस स्थानीय लिपि को भाषा वैज्ञानिक खरोष्टी लिपि समझ कर अन्धकार में हैं।

भारतीय पारसी लिपि को ही खरोष्टी लिपि कहते थे। पारसी लिपि की वर्णमाला में ही ३२ अक्षर होते हैं जो देवनागरी लिपि के केवल १८ उच्चारणों को व्यक्त करते हैं। पारसी लिपि की वर्णमाला में ही पाञ्च अक्षर जोड़कर जो वर्णमाला बनाई गई है उसमें उर्दू लिखी जाती है और इस प्रकार इस लिपि की वर्णमाला के अक्षरों की संख्या ३७ हो जाती है। उर्दू लिपि भी वास्तव में खरोष्टी लिपि ही है। सभी सेमिटिक लिपियां दाहिनी ओर से बायें को लिखी जाती हैं और आधुनिक पारसी लिपि भी उसी लिपि से विकसित हुई थी और यह एक विदेशी लिपि है।

'खरोष्टी' शब्द हमारे लिये नूतन शब्द नहीं है। यह शब्द हमारी ही भाषा का है। 'खरोष्ट' और 'खरोष्टी' एक ही शब्द हैं। लिपि स्त्रीलिङ्ग शब्द होने के कारण इसका विशेषण भी स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग होता है। इस शब्द का साधु रूप 'खरोष्ट्र' है और ध्वनि परिवर्तन नियम के अनुसार 'ट्र' व्यञ्जन में 'र' का उच्चारण नहीं होता है और 'खरोष्ट्र' शब्द का उच्चारण खरोष्ट होता है। खरोष्ट्र शब्द संस्कृत शब्दकोशों में उपलब्ध है जिसकी व्यत्पत्ति इस प्रकार है, खर—उष्ट्र = खरोष्ट्र यह शब्द याज्ञवल्क स्मृति २-१६० में प्रयोग भी हुआ है-सममेषां विवीतेऽपि खरोष्ट्रं महिषीसमम्। खर का अर्थ गधा और उष्ट्र का अर्थ ऊण्ट है। देखो आप्टे संस्कृत इङ्गलिश कोश पृष्ठ ६३६। इस प्रकार खरोष्ट्री या खरोष्टी लिपि का अर्थ है—गधे और ऊण्ट की लिपि, अर्थात वह लिपि जिसके कुछ अक्षर या वर्ण गधे के समान छोटे होते हैं और कुछ अक्षर ऊण्ट के समान लम्बे होते हैं। पारसी लिपि तथा उसी लिपि का दूसरा रूप उर्दू लिपि, के अक्षर ही गधे और ऊण्ट के समान कतिपय छोटे और कतिपय लम्बे होते हैं। प्राचीनकाल में भारतीय जिनकी लिपि के अक्षर एक ही परिमाण के होते हैं पारसी लिपि को ही खरोष्टी लिपि कहते थे। इस लिपि का भारत या किसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय लिपि से कोई सम्बन्ध नहीं था और न आज है ।

देवनागरी लिपि—एक विवेचना

सरस्वती अथवा देवनागरी लिपि न किसी दूसरी लिपि से विकसित रूप में है और न किसी अन्य लिपि का परवृद्धित या प्रभावित रूप है । इस लिपि का प्रचलन भारतवर्ष में अनादि और प्राक ऐतिहासिक काल से चला आ रहा है । यूरोपीय लेखक ओर उनके लेख का साधुवाद और समर्थन करते हुये जो भारतीय लेखक यह तत्त्व निकालते हैं कि हमारी लिपि का स्रोत कोई अन्य लिपि या देश है और इस लिपि का प्रचलन केवल १५०० वर्ष से है वह केवल एक प्रकार की तथ्यहीन और हास्यपूर्ण वायस जल्पना है । देवनागरी लिपि का संसार की सभी लिपियों से इतना स्पष्ट भेद है कि उनमें किसी प्रकार का सम्बन्ध ही स्थापित नहीं किया जा सकता है । एक यूरोपीय लेखक मेक्डोनल अपनी पुस्तिका 'संसकृत साहित्य का इतिहास' में लिखता है कि "देवनारी लिपि संस्कृत की सभी ध्वनियों को केवल अभिव्यक्त ही नहीं करती है अपितु इसका संविधान एक वैज्ञानिक रीति से किया गया है । इसके विपरीत यूरोप में वैज्ञानिकशास्त्र युग में भी १५०० वर्ष पश्चात ऐसी लिपि का प्रयोग होता है जो भाषा की सभी ध्वनियों को अभिव्यक्त करने में अपूर्ण तथा अयोग्य है और जिसमें स्वरों ओर व्यञ्जनों का सम्मिश्रण क्रमरहित है और जो उसी प्रकार है जैसा कि ग्रीक और सिमेटिक लिपियों में ३००० वर्ष पूर्व था" ।

हमारे देश में वाणी और गिरा आदि काल से एक दैवी वरदान माना गया है और उसका मूल स्रोत स्फोटवाद है । व्याकरणशास्त्र, जो वाणी का एक नियामक शास्त्र है, में स्फोटवाद पर अधिक विचार किया गया है और स्फोटवाद को ब्रह्मनाद स्वर कहा गया है । कण्ठतालु आदि के संयोग और विभाग के द्वारा जो उत्पन्न होता है वह स्फोट है । ध्वनिशस्त्र पर हमारे यहां जितना गम्भीर, समीक्षात्मक और वैज्ञानिक रीति से विचार किया गया है, उतना ध्वनि सम्बन्धी शास्त्र संसार के किसी भी देश में विकसित नहीं है । हमारे व्याकरण में ध्वनि और उच्चारण का गहन और विशद रूप से वर्णन मिलता है । उच्चारण, उच्चारण भेद और उच्चारणस्थल आदि के सम्बन्ध में अत्यन्त भेद एवं प्रभेद उपस्थित किये गये हैं जिनका वर्णन शिक्षा ग्रन्थों, पाणिनि के सूत्रों और सिद्धान्त—कौमुदी के सञ्ज्ञा प्रकरण में विस्तार से देखा जा सकता है । इतना ही नहीं वैदिक ऋचाओं के पाठ, उनकी स्वरसाधना, पाठ की अन्य विधियां प्रकाश डालती हैं कि हमने ध्वनिशास्त्र को एक विकसित रूप दिया । स्वरशास्त्र (फोनोलोजी) जैसा अनुशीलन वेद को छोड़कर अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होता है । हमारे यहां उस विद्या को जो स्वर, वर्ण आदि उच्चारण के प्रकार का उपदेश दे 'शिक्षा' कहते हैं । शिक्षा एक वेदाङ्ग है जिसका एक महत्त्व पूर्ण स्थान है । इन ग्रन्थों में वर्णों के विभेद, स्वरूप, परस्पर साम्य तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैषम्य आदि विषयों का सुन्दर रीति से वर्णन है।

ध्वनि के सङ्केत ही वर्ण हैं और उन वर्णों का जो रूप हैं अथवा लिखित चिह्न है वही लिपि है। ऐसी स्थिति में विभिन्न प्रकार से अभिव्यञ्जित स्वर एवं व्यञ्जन के उच्चारण को, उनके संयुक्त उच्चारण के रूपों को लिखित रूप देने के लिये जिस वैज्ञानिक और सब दृष्टियों से पूर्ण लिपि का निर्माण हो सकता था, वह हमारे ऋषियों ने किया। यह वही लिपि है जिसे देवनागरी या ब्राह्मी कहते हैं। किसी भी अन्य लिपि सङ्केतों में हमारे उच्चारण के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेद और प्रभेद व्यञ्जित नहीं किये जा सकते थे। अतः जबसे सरस्वती भाषा वैखरी रूप में हमारे सामने आई तो उसका प्रथम प्रलेखन भी सरस्वती अर्थात देवनागरी लिपि में हुआ था।

देवनागरी वर्णमाला

देवनागरी वर्णमाला स्वयम् यह प्रमाणित करती है कि यह लिपि ध्वनि शास्त्र पर आधारित है तथा उसी का विकसित रूप है। ग्रीक, सिमेटिक तथा संसार की अन्य लिपियों में वर्णों, अर्थात अक्षरों के पृथक नामादि होते हैं। देवनागरी लिपि के प्रत्येक वर्ण के लिये पृथक पृथक नाम नहीं होते हैं अपितु इसका प्रत्येक वर्ण किसी विशेष और निश्चित ध्वनि के लिये है।

वर्णों के उच्चारण में कुछ चेष्टा करनी पड़ती हैं, इसे यत्न कहते हैं, यह दो प्रकार का होता है। एक वर्ण की उत्पत्ति से पूर्व और दूसरा वर्ण की उत्पत्ति के पश्चात। जो यत्न वर्णोत्पत्ति से पूर्व होता है वह मुख के भीतर होता है और उसका अनुभव उच्चारण करने वाला ही कर सकता है। इसको 'आभ्यन्तर कहते हैं। जो यत्न वर्णोत्पत्ति के अनन्तर किया जाता है वह मुख से वर्ण निकलते समय होता है, इसका अनुभव सुनने वाला भी कर सकता है। इसको 'बाह्य' अर्थात बाहर का कहते हैं।

आभ्यन्तर यत्न पाञ्च प्रकार का होता है—१. स्पृष्ट, २. ईषत्स्पृष्ट, ३. ईषद्विवृत, ४. विवृत, ५. संवृत। वर्णों की उत्पत्ति में जिह्वा के अग्र, उपाग्र, मध्य तथा मूल भागों का उपयोग हुआ करता है। जिह्वा के स्थान को छूना 'स्पृष्ट', थोड़ा छूना 'ईषत्स्पृष्ट', थोड़ी दूर रहना 'ईषद्विवृत', दूर रहना 'विवृत', तथा हटकर समीप रहना 'संवृत' यत्न कहाता है। वाह्य यत्न ११ प्रकार का होता है—१. विवार, २. संवार, ३. श्वास, ४. नाद, ५. अघोष, ६. घोष, ७. अल्प प्राण, ८. महाप्राण, ९. उदात्त, १०. अनुदात्त, ११. स्वरित।

वर्णोच्चारण के समय मुख के खुलने को 'विवार' कहते हैं और मुख के विकास न होने को 'संवार' कहते हैं। कुछ वर्णों के उच्चारण में श्वास चलता है, उसे 'श्वास' कहते हैं। वर्णोच्चारण के समय नाद होने को 'नाद' कहते हैं। वर्णो-च्चारण के समय गूञ्ज होने को 'घोष' और न होने को 'अघोष' कहते हैं। वर्णो- में प्राणवायु के अल्प उपयोग को 'अल्पप्राण' तथा अधिक उपयोग को 'महाप्राण' कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदात्त, अनुदात्त और त्वरित के उदाहरण वेद में आते हैं और वहीं उनका उपयोग भी है। जब स्वर (अच्) कण्ठ तालु आदि सखण्ड स्थानों के ऊपर के भाग से उच्चरित होता है उसे 'उदात्त' कहते हैं और जब नीचे के भाग से उच्चरित होता है उसे 'अनुदात्त' कहते हैं। यदि उदात्त और अनुदात्त दोनों धर्म एक ही अच् में प्रतीत हों तो उसे 'स्वरित' कहते हैं।

स्वर-व्यञ्जन

देवनागरी वर्णमाला में दो प्रकार के वर्ण है। एक 'स्वर' और दूसरे 'व्यञ्जन'। स्वर का अर्थ है ऐसा वर्ण जिसका उच्चारण अपने आप हो सकता है, जिसको दूसरे वर्ण से मिलने की अपेक्षा न हो। निरन्तर अप्रलान्त जो ध्वनि उच्चरित हो सकती है, वह स्वर है और स्वतन्त्र है। व्यञ्जनों का उच्चारण स्वरों को मिलाये बिना नहीं हो सकता है। जैसे आकाश में मेघ मण्डल के मध्य चपला चमक कर नष्ट हो जाती है, वैसे ही व्यञ्जन अभिव्यञ्जित होते हुये तत्क्षण स्वर में विलीन हो जाते हैं। व्यञ्जन स्वराश्रित हैं, अतः उच्चारण की सुविधा को ध्यान में रखते हुये, व्यञ्जनों को अ से युक्त लिखा जाता है।

उच्चारण स्थान पाञ्च हैं। ये मुख के भीतर विद्यमान हैं। इनके नाम हैं—कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ट। स्वरों के उच्चारण में जिह्वा उच्चारण स्थान का स्पर्श नहीं करती है, अतः वायु बिना अवरुद्ध हुये बाहर निकलता है। क से म तक अर्थात कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग ये पच्चीस स्पर्श वर्ण हैं कारण कि इनका उच्चारण जिह्वा (ओष्ठ भी) का स्थान स्पर्श होने से होता है। 'य, र, ल, व' इन चार वर्णो को अन्तःस्थ कहते हैं कारण कि यह स्वर और व्यञ्जनों के बीच में रहते हैं। 'श, ष, स, ह' ये चार वर्ण ऊष्म कहाते हैं कारण कि इनके उच्चारण करने के लिये भीतर से प्रवलता से वायु लाना पड़ता है। अतः व्यञ्जनों और स्वरों के उच्चारण में आभ्यन्तर प्रयत्न इस प्रकार है—स्पृष्ट प्रयत्न स्पर्श वर्णो का है। ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न अन्तःस्थों का है। ईषद्विवृत ऊष्म वर्णों का है। विवृत स्वरों का है।

अल्पप्राण और महाप्राण

व्यञ्जनों का एक भेद अल्पप्राण और महाप्राण भी है। अल्पप्राण व्यञ्जनों के उच्चारण में कम श्वास की आवश्यकता होती है और महाप्राण व्यञ्जनों के उच्चारण में अधिक श्वास की। वर्णों के प्रथम, तृतीय और पञ्चम वर्ण तथा अन्तःस्थ अल्पप्राण होते हैं। वर्णों के द्वितीय, चतुर्थ तथा ऊष्म वर्ण महाप्राण होते हैं।

देवनागरी वर्णमाला के वर्णों के उच्चरस्थान इस प्रकार हैं—

अ, आ, विसर्ग, क, ख, ग, घ, ङ, ह — कण्ठ

इ, ई, य, च, छ, ज, झ, ञ, श — तालु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऋ,	र, ट, ठ, ड, ढ, ण, ष	—	मूर्धा
	ल, त, थ, द, ध, न, स	—	दन्त
उ, ऊ,	प, फ, ब, भ, म	—	ओष्ठ
	ए और ऐ	—	कण्ठ और तालु
	ओ और औ	—	कण्ठ और ओष्ठ
	व	—	दन्त और ओष्ठ
	अनुस्वार	—	नासिका

ञ, म, ङ्, ण्, न, इन पाञ्च वर्णों का नासिका स्थान भी होता है। भाव यह है कि मुख से तो प्रत्येक वर्ण बोला ही जाता है, पर जो मुख और नासिक दोनों से बोला जाये वह अनुनासिक होता है। ञ, म्, ङ्, ण्, न् मुख और नासिका दोनों से बोले जाते हैं अत: यह अनुनासिक वर्ण हैं।

उपरोक्त निरूपण से स्पष्ट है कि देवनागरी लिपि एक वैज्ञानिक रीति से स्फोटवाद पर आधारित ध्वनि समूह का सम्यक रूप चिह्नित करती है। संसार की किसी भी अन्य लिपि का आधार स्फोटवाद नहीं है। विद् पाठक स्वयम् विचार कर सकते हैं कि क्या इस प्रकार की वैज्ञानिक लिपि का स्रोत संसार की कोई अन्य लिपि या देश हो सकता है ?

संक्षेपण

पुरा प्राचीन काल में, वेदों की शब्द रचना से सहस्त्राब्दियों वर्ष पूर्व भारत में सरस्वती भाषा अर्थात देववाणी और सरस्वती लिपि अर्थात देवलिपि का उदय हो चुका था। जिस प्रकार देववाणी भारत की सभी भाषाओं की जननी है उसी प्रकार देवलिपि से भारत की सभी लिपियों का विकास हुआ है। इन सभी लिपियों में पहले स्वरों का और उसके पश्चात व्यञ्जनों का स्थान है तथा व्यञ्जनों का क्रम कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, अन्त:स्थ और ऊष्म सभी लिपियों में एक ही है। यह सभी लिपियां बायीं ओर से दाहनी ओर को लिखी जाती हैं। देवलिपि उतनी ही प्राचीन है जितनी कि देववाणी। हम भारतीय देववाणी और देव-लिपि के उदय होने से भी पूर्व भारत के निवासी हैं और अनादि काल से भारत में रहते चले आ रहे हैं। हमारे ही पूर्वजों को देववाणी और देवलिपि एक दैवी वरदान के रूप में प्राप्त हुई थी। हमारे मूल स्थान तथा हमारी भाषा और लिपि के सम्बन्ध में ऐतिहासकारों और भाषा-वैज्ञानिकों का कथन एक कपोल कल्पना और वायस जल्पना है जिसमें न कोई तथ्य है और न सत्य है। जिसको भारतीय भाषा, लिपि तथा संस्कृति के उद्गम और विकास की खोज करनी हो उसको भारत में मानव जाति के उद्गम और विकास की खोज करनी होगी। नृवंश विकास की वैज्ञानिक खोज ही समानान्तर रूप से हमारी भाषा और लिपि सम्बन्धी गवेषणा हो सकती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

: २६ :

उपसंहार

प्रस्तुत निबन्ध में भारत की आदि मूल भाषा, उसके शब्दों, शब्दों की व्याकरण कोटियों तथा सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्गानुशासन का जो संक्षिप्त निरूपण किया गया है, उससे भाषा सम्बन्धी जिन मूल सिद्धान्तों का निष्कर्ष निकलता है वह इस प्रकार हैं –

(१) किसी भी देश की आदि मूल भाषा एक कथ्य भाषा होती है। कथ्य भाषा ही व्याकरण द्वारा नियन्त्रित तथा परिमार्जित होकर उसी देश की साहित्यिक भाषा का रूप धारण करती है।

(२) साहित्यिक भाषा का आरम्भ लिखित भाषा के रूप में होता है और यह भाषा उसी लिपि में लिखी जाती है जिसमें कथ्य भाषा लिखी जाती है। अत: जब तक किसी कथ्य भाषा में लिपि का विकास नहीं हो जाता है तब तक वह कथ्य भाषा साहित्यिक भाषा का रूप धारण नहीं कर सकती है। साहित्यिक भाषा की लिपि वही होती है जिसमें कथ्य भाषा पूर्ण रूप से चिह्नात्मक की जा सकती हो। लिपि भाषा की ध्वनियों को चिह्नात्मक करने का एक प्रतीक है।

(३) जिस समय कोई कथ्य भाषा साहित्यिक भाषा में परिणत होती है, उस समय कथ्य भाषा और साहित्यिक भाषा के शब्दों के उच्चारण (अक्षर-विन्यास) एक ही होते हैं। काल तथा व्यक्तिगत उच्चारण के भेद से कथ्य भाषा के उच्चारण में परिवर्तन होता ही रहता है परन्तु साहित्यिक भाषा का नियन्त्रित तथा लिखित रूप होने के कारण उसके शब्दों के अक्षर-विन्यासों में परिवर्तन नहीं होता है।

(४) भारत की आदि कथ्य भाषा का नाम सरस्वती है जिसका दूसरा नाम भारती भी था। सरस्वती तथा भारती पर्यायवाची शब्द हैं। भारतीय सरस्वती का वर्णन वाणी तथा ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी के रूप में करते हैं।

(५) सरस्वती का वर्णन ब्रह्मा की पत्नी के रूप में किया जाता है। सरस्वती और ब्राह्मी भी पर्यायवाची शब्द हैं। जिस लिपि में सरस्वती (देववाणी) लिखी जाती थी उसको ब्राह्मी (देवलिपि) कहते थे। सरस्वती भाषा संयुक्त व्यञ्जन बाहुल्य भाषा है। अत: ब्राह्मी वही लिपि है जिसमें संयुक्त व्यञ्जन लिखे जा सकते थे जिसको देवलिपि भी कहते थे और आज इसी लिपि को देव (नागरी) लिपि कहते हैं।

(६) सरस्वती भाषा का उद्गम स्थान ब्रह्मावर्त है और यह भाषा अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शुद्ध रूप में अपने समीपवर्ती क्षेत्र, ब्रह्मर्षिदेश कुरुक्षेत्र में बोली जाती थी। यह भाषा समस्त मध्यदेश की कथ्य भाषा थी।

(७) संस्कृत भाषा सरस्वती भाषा का ही संस्कृत साहित्यिक रूप है। जिस समय सरस्वती भाषा को संस्कृत भाषा का रूप दिया जा रहा था उस समय सरस्वती और संस्कृत भाषाओं के शब्दों तथा शब्दों के उच्चारण (अक्षर-विन्यासों) में कोई भेद नहीं था। यह विख्यात है कि वैदिक युग में मध्यदेश की एक छोर से दूसरी छोर तक सरस्वती की पवित्र धारा प्रवाहित होती थी। सरस्वती की धारा अदृष्ट थी तथा प्रयाग में सरस्वती का गङ्गा-यमुना के साथ सङ्गम हुआ और उस सङ्गम को त्रिवेणी सङ्गम कहते हैं।

(८) मर्त्य लोक में जिस नदी को गङ्गा कहते हैं, देवलोक में वही नदी अलकनन्दा नाम धारण करती है। मध्यदेश में गङ्गा या उलकनन्दा के साथ जहां किसी पवित्र नदी का सङ्गम होता है तो उस स्थान को प्रयाग कहते हैं, यथा—

(१) विष्णु प्रयाग—जहां अलकनन्दा और धौली नदी का सङ्गम होता है,
(२) नन्द प्रयाग—जहां अलकनन्दा और नन्दाकिनी नदी का सङ्गम होता है,
(३) कर्ण प्रयाग—जहां अलकनन्दा के साथ पिण्डर नदी मिलती है,
(४) रुद्र प्रयाग—जहां अअकनन्दा और मन्दाकिनी नदियां मिलती हैं,
(५) देव प्रयाग—जहां अलकनन्दा तथा भागीरथी, दो देवनदियों का सङ्गम होता है।
(६) प्रयाग राज (सर्वश्रेष्ठ प्रयाग)—जहां गङ्गा और यमुना भारत की दो पवित्र नदियों का सङ्गम होता है।

मध्यदेश में दो पवित्र नदियों के सङ्गम को त्रिवेणी सङ्गम भी कहते हैं, अतः अलकनन्दा और भागीरथी के सङ्गम का नाम त्रिवेणी सङ्गम है। इन दो देव-नदियों के सङ्गम-स्थल से आगे जो धारा प्रवाहित होती है, उसी का नाम गङ्गा है। इसी प्रकार केवल गङ्गा और यमुना के सङ्गम को त्रिवेणी सङ्गम कहते है। इस त्रिवेणी सङ्गम पर गङ्गा और यमुना के साथ किसी सरस्वती नदी का सङ्गम नहीं होता है। किसी भी नदी की धारा अदृष्ट रूप से प्रवाहित नहीं होती है। यदि किसी सङ्गम-स्थल पर तीन नदियों का सङ्गम हो तो उसको चतुर्वेणी सङ्गम कहना पड़ेगा।

(९) मध्यदेश की पूर्वी सीमा प्रयागराज तक थी और मध्यदेश की आदि मूल भाषा सरस्वती इसी स्थल तक व्यवहार में आती थी। भारतीय साहित्य में कहा गया है—"भाषा बहता नीर"। अतः प्रयागराज तक प्रवाहित करने वाली सरस्वती किसी नदी का नाम नहीं है अपितु इसका अर्थ मध्यदेश की भाषा (सरस्वती) है। संस्कृत शब्द कोशों में भी सरस्वती का अर्थ है—भाषा, गिरा, वाणी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(१०) सरस्वती कथ्य भाषा का ही संस्कृत, परिमार्जित, साहित्यिक रूप संस्कृत भाषा है। पाश्चात्य लेखकों का यह कथन, कि भारत में संस्कृत भाषा किसी विदेशी से लाई गई थी और भारत की आधुनिक भाषायें भारत की प्राचीन काल की प्राकृत भाषाओं पर संस्कृत के प्रभाव से उत्पन्न हुई हैं, एक भ्रामक, अनर्गल और तथ्यविहीन मूर्खतापूर्ण प्रलाप तथा वायस जल्पना है और क्रमबद्ध षड्यन्त्र पर आधारित है।

(११) कोई भी कथ्य मूल भाषा अपने आदि उद्गम क्षेत्र से कभी नष्ट नहीं होती है। आदि मूल भाषा के शब्दो के उच्चारण अर्थात अक्षर-विन्यासों में कितना भी भेद हो जाय, परन्तु शब्द, शब्द के अर्थ तथा शब्द-अर्थ के सम्बन्ध में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है। शब्दों के नित्य होने के ही कारण व्याकरण शास्त्र बनाना सार्थक है अन्यथा शब्दों की अनित्यता से सुस्थिर व्याकरण का बनाना सम्भव न होता। अतः हमारी भाषा के व्याकरण में—"सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे" सूत्र का निर्माण किया गया है। शब्दों के नित्य होने के कारण ही हमारी भाषा में शब्दों की व्याकरण कोटियां और सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग आज तक वही हैं जो उन शब्दों के सरस्वती भाषा में थे।

(१२) संस्कृत भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसके शब्दों में प्राचीन काल से आज तक कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। संस्कृत शब्द कोशों में शब्दों के अक्षर–विन्यास, शब्दों के अर्थ तथा व्याकरण कोटियां वही हैं जो उन शब्दों की कथ्य भाषा सरस्वती में थीं। संस्कृत शब्द कोशों में जो शब्द हैं वह सभी शब्द संस्कृत ने कथ्य भाषा सरस्वती से उन्हीं अक्षर–विन्यासों, अर्थों तथा व्याकरणकोटियों में ग्रहण किये थे। अत: सरस्वती भाषा के शब्द अपने शुद्ध अक्षर-विन्यासों तथा अर्थों में संस्कृत शब्द कोशों में सुरक्षित है तथा आज भी उपलब्ध हैं।

(१३) कथ्य भाषा सरस्वती में सञ्ज्ञा शब्दों को व्याकरण की दृष्टि से केवल दो लिङ्गो (पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग) के अन्तर्गत रखा जाता था और सञ्ज्ञा शब्दों का वही लिङ्गानुशासन आजतक हमारी भाषा में व्यवहार में आता है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार सञ्ज्ञा शब्दों को तीन लिङ्गों के अन्तर्गत रखा जाता है। अत: संस्कृत शब्द कोशों में अनेक सञ्ज्ञा शब्दों के वही लिङ्ग नहीं दिये हुये हैं जो लिङ्ग उन शब्दों के सरस्वती भाषा में प्रचलित थे।

(१४) सरस्वती भाषा में सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्ग प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार निर्धारित होते हैं। यह एक ऐसा निश्चित नियम है जिसका कोई भी अपवाद नहीं है। संसार की किसी भी अन्य भाषा में सञ्ज्ञा शब्दों के लिङ्गानुशासन का इस प्रकार का सरल, सुन्दर तथा निश्चित नियम नहीं है। संस्कृत शब्द कोशों में दिये हुये सभी सञ्ज्ञा शब्द भारत की आदि मूल भाषा सरस्वती में उन्हीं लिङ्गों में प्रयोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होते हैं, जो उन शब्दों के प्रकृति-प्रत्यय के नियमानुसार होते हैं। इस प्रकार यह भी प्रमाणित होता है कि संस्कृत शब्द कोशों में दिये हुये सभी शब्द सरस्वती भाषा के हैं।

(१५) संस्कृत शब्द कोशों में उपलब्ध सञ्ज्ञा शब्दों का जो लिङ्ग प्रकृति-प्रत्यय के नियमानुसार निर्धारित होता है, उन शब्दों के वही लिङ्ग हमारी भाषा में व्यवहारित होने से पूर्णतया प्रमाणित है कि हम भारतीय ही भारत की आदि मूल भाषा सरस्वती को आदि काल से बोलते चले आ रहे हैं तथा हम भारतीय ही भारतवर्ष के आदि मूल निवासी हैं।

(१६) केवल ३५००-४००० वर्ष हुये (जिसके सहस्त्राब्दियों वर्ज पूर्व भारत भाषाशास्त्र के उच्च-शृङ्ग तक पहुंच चुका था) उत्तरी यूरोप में यूराल पर्वत से अटलाण्टिक महासागर तक मनुष्य प्राकृत अवस्था में नङ्गे बन्दरों के समान वृक्षों पर और पशुओं के समान गुफाओं में रहा करते थे। उस समय भारत के विद्यालयों में पाणिनि प्रभृति व्याकरण का अध्ययन होता था और पारिवारिक सम्बन्धों का पूर्ण विकास हो चुका था। कितनी हास्यास्पद बात है कि उत्तरी यूरोप के लेखक आज हमारी भाषा की उत्पत्ति और विकास पर प्रकाश डालते हैं। कितना दुःसाहस है इन लेखकों का कि वह हमें हमारे आदि मूल स्थान तक का ज्ञान कराना चाहते हैं।

(१७) प्राचीन काल में भारत के विभिन्न क्षेत्रों की कथ्य भाषा की उत्पत्ति सरस्वती भाषा से हुई थी। अत: समस्त भारत में केवल एक ही साहित्यिक भाषा संस्कृत थी और इसी में धर्मग्रन्थों और साहित्य की रचना होती थी। एक दीर्घ काल के पश्चात सबसे पूर्व जैन और बौद्धों ने संस्कृत भाषा का परित्याग कर उस समय की क्षेत्रीय कथ्य भाषाओं में धर्मोपदेश लिपिबद्ध करने की प्रथा चलाई थी। इससे जो दो नयी साहित्य-भाषाओं का जन्म हुआ था, वे जैन सूत्रों की अर्धमागधी (प्राकृत) और बौद्ध-धर्मग्रन्थों की पालि भाषायें हैं। यह दोनों साहित्य-भाषायें और अन्यान्य विभिन्न क्षेत्रों की प्राकृत भाषायें संस्कृत भाषा से प्रभावित तो हुईं, परन्तु यह कहना कि संस्कृत से ही पालि प्राकृत भाषाओं का जन्म हुआ एक तथ्य विहीन कथन है। एक साहित्य-भाषा का दूसरी साहित्य-भाषा से कभी जन्म नहीं हो सकता है।

(१८) काल क्रम से भारत के विभिन्न क्षेत्रों की कथ्य-भाषाओं में सरस्वती भाषा के शब्दों के विभिन्न भ्रष्ट रूप प्रचलित हो गये थे। कुरु प्रदेश के अतिरिक्त कुछ समय पश्चात भारत की विभिन्न क्षत्रीय भाषाओं में साहित्य की रचना होने लगी। इससे विभिन्न प्रादेशिक साहित्य भाषाओं का जन्म हुआ उनको विभिन्न प्रादेशिक अपभ्रंश कहा गया है, जिनके नामों का उल्लेख प्राकृति-चन्द्रिका आदि पुस्तकों में मिलता है। उन अपभ्रंश भाषाओं में विभिन्न प्रादेशिक कथ्य भाषाओं के शब्दों के भ्रष्ट रूपों का व्यवहार हुआ है। अत: बिहार को अपभ्रंश भाषा और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजस्थान की अपभ्रंश भाषा में उतना ही भेद है जितना की तत्कालीन बिहार की कथ्य भाषा और राजस्थान की कथ्य भाषा में था।

(१९) संस्कृत, पालि और प्राकृत साहित्य भाषायें थीं और यह भाषायें अपने अपने क्षेत्र की तत्कालीन कथ्य भाषाओं का संस्कृत परिमार्जित रूप हैं। यह तीनों भाषायें किसी काल में भी भारत के किसी प्रदेश की कथ्य भाषायें नहीं थीं। इनमें से किसी भी भाषा ने किसी भी कथ्य भाषा को जन्म नहीं दिया है।

(२०) कोई भी आदि मूल कथ्य भाषा अपने मूल प्रदेश से न कभी नष्ट होती है और न उसके मूल तत्त्वों में कोई परिवर्तन होती है। अतः किसी क्षेत्र में एक कथ्य भाषा के स्थान पर दूसरी कथ्य भाषा व्यवहारिक भाषा नहीं हो सकती है। भाषा-वैज्ञानिकों का यह कथन कि संस्कृत, पालि तथा शौरसेनी प्राकृत मध्यदेश की विभिन्न युगों की कथ्य भाषा थी और कालक्रम से मध्यदेश में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार हुआ और शौरसेनी अपभ्रंश भाषा ही कालन्तर में हिन्दी के रूप में परिणत हुई, एक भ्रामक, अनर्गल और मूर्खतापूर्ण प्रलाप है।

(२१) संस्कृत, पालि और प्राकृत में सञ्ज्ञा शब्दों को तीन लिङ्गों के अन्तर्गत रखा जाता है। यदि यह भाषायें कभी मध्यदेश की कथ्य भाषायें होती तो आज हमारी भाषा में सञ्ज्ञा शब्दों के भी तीन लिङ्ग होते। सरस्वती भाषा के समान हिन्दी भाषा मे भी सञ्ज्ञा शब्दों को केवल दो लिङ्गों के अन्तर्गत रखा जाता है। अतः यह पूर्णतया प्रमाणित होता है कि संस्कृत, पालि या प्राकृत मध्यदेश की किसी काल में भी व्यवहारिक कथ्य भाषायें नहीं थीं।

(२२) भारत में वैदिक युग से सहस्त्राब्दियों वर्ष पूर्व से जिस प्रदेश में सरस्वती भाषा बोली जाती थी, उसी प्रदेश की भाषा आज हिन्दी (खरी बोली) है। सरस्वती भाषा का ही आधुनिक रूप हमारी भाषा है। सरस्वती भाषा मे शब्द और शब्द का अर्थ नित्य है। अतः हिन्दी में शब्दों के वही अर्थ हैं जो उन शब्दों के सरस्वती भाषा में थे और जो आज संस्कृत शब्द कोशों में उपलब्ध हैं। शब्दों की नित्यता के कारण उनकी व्याकरण कोटियां आज भी वही हैं जो उन शब्दों की सरस्वती भाषा में थी और जिसका ज्ञान संस्कृत शब्द कोशों से हो सकता है। सञ्ज्ञा शब्दों के प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार जो लिङ्ग सरस्वती भाषा में थे वह शब्द उन्हीं लिङ्गों में आज तक हमारी भाषा मे व्यवहार में आते हैं, उन शब्दों के अक्षर-विन्यासों में कितना भी परिवर्तन क्यों न हो गया हो।

(२३) सरस्वती भाषा में कोई भी शब्द क्रिया नामक व्याकरण कोटि के अन्तर्गत नहीं रखा जाता था। अतः संस्कृत शब्द कोशों में भी कोई शब्द क्रिया नामक व्याकरण कोटि का नहीं है। सरस्वती भाषा में क्रियावाचक या क्रियार्थक सञ्ज्ञा शब्दों के ही पद बनाकर वाक्यों में प्रयोग किया जाता था (संस्कृत मे इन पदों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को तङन्त पद कहते हैं) । हमारी भाषा हिन्दी में भी कोई शब्द क्रिया नामक व्याकरण कोटि का नहीं है और सरस्वती भाषा की पद्धति के अनुसार ही हमारी भाषा में भी क्रियावाचक सञ्ज्ञा शब्दों के पदों को वाक्यों में प्रयोग किया जाता है ।

(२४) सरस्वती भाषा विभक्ति प्रधान थी और उसमें परस्पर पदों का सम्बन्ध शब्द के अन्त में लगी (या रखी) विभक्तियों से निर्धारित होता था चाहे वे पद वाक्य में कहीं पर भी रख दिये जावें । अर्थात पदों के क्रम परिवर्तन से अर्थ परिबर्तन नहीं होता था, वही पद्धति आज तक हिन्दी में प्रचलित है ।

(२५) भारत में सरस्वती का वर्णन ब्रह्मा की पत्नी के रूप में किया जाता है । अत: सरस्वती और ब्राह्मी पर्यायवाची शब्द हैं । महाभारत १२/१८८/१५ में कहा गया है—

इत्येते चतुरो वर्णा ब्राह्मी सरस्वती ।

अर्थात इस प्रकार यह चार वर्ण हुये जिनके लिये ब्रह्मा जी ने पहले ब्राह्मी सरस्वती (देववाणी) प्रकट की ।

जिस लिपि में सरस्वती भाषा लिखी जाती थी उसी को ब्राह्मी लिपि कहते थे । देववाणी सरस्वती को लिखने की लिपि का दूसरा नाम देवलिपि है और उत्तर काल में इसी लिपि को देव (नागरी) लिपि कहा गया है । अत: ब्राह्मी और देव (नागरी) लिपि पर्याय वाची हैं । इस लिपि का निर्माण वेदों की शब्द रचना से सहस्त्राब्दियों वर्ष पूर्व सरस्वती भाषा में हो चुका था । जिस लिपि में सरस्वती भाषा लिखी जाती थी उसी लिपि में आज हिन्दी लिखी जाती है ।

माहात्म्यम्

'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे'—शब्द, शब्दों के अर्थ और उनका परस्पर सम्बन्ध सिद्ध (नित्य) है जिसका ज्ञान लोकव्यवहार से होता हैं, कारण कि प्रयोग करने वाले अर्थ को बुद्धि का विषय बनाकर ही शब्दों का प्रयोग करते हैं । शब्द ब्रह्म है और वेदाङ्ग के अतिरिक्त एक दर्शन भी है । शब्दों के ज्ञान की सुगमता के हेतु व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है । व्याकरण-शास्त्र शब्दों के साधुत्वज्ञान द्वारा साक्षात् मोक्षपद भी है । जैसे शब्दों के ज्ञान में धर्म माना जाता है, वैसे ही अपशब्दों के ज्ञान में पाप । शब्दों का व्यवहार करते समय जो कुशल व्यक्ति अर्थविशेष में शब्दों का भलीभांति प्रयोग करता है, वह वाणी (शब्द) के योग (अर्थ विशेष में सम्बन्ध) का वेत्ता स्वर्ग में अनन्त उत्कर्ष को प्राप्त करता है, किन्तु अपशब्दों का प्रयोग करने से वह दोषी सिद्ध होता है । जैसे शब्द के ज्ञान में पुण्य माना जाता है वैसे ही अपशब्दों के ज्ञान में पाप ।

भारतीय भाषाओं में म्लेच्छ भाषाओं के शब्दों का बहिष्कार और परित्याग,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा साधु शब्दों का प्रयोग ही समस्त भारत को भाषा की एकता के सूत्र में आबद्ध करने का एक सीधा सरल उपाय है। शब्दार्थ-प्रकाश की अग्नि लपटों में निम्न पिशाच भस्मिभूत हुये हैं :—

(१) बायोग्रफीज़ आव् वर्ड्स एण्ड होम आव् दि आर्यज़ (Biographies of Words and the Home of the Aryas)।
(२) लिङ्ग्विस्टिक सर्वे आव् इण्डिया (Linguistic Survey of India)।
(३) भारतीयों का आदि मूल स्थान भारत के बाहर (भाषा विज्ञान और इतिहास)।
(४) हिन्दी (सरस्वती) भाषा एवं संस्कृत भाषा के शब्दों में अर्थ परिवर्तन तथा अर्थ भेद।
(५) म्लेच्छ भाषाओं के शब्द हिन्दी (सरस्वती) भाषा के अङ्ग—हिन्दी शब्द कोश।
(६) अङ्ग्रेजी भाषा के व्याकरण की पद्धति पर आधारित—हिन्दी व्याकरण।
(७) हिन्दी तथा वङ्ग भाषा का उद्गम और विकास।
(८) हिन्दी भाषा का इतिहास।
(९) पाश्चात्त्य विचारधारा पर आधारित हिन्दी भाषा विज्ञान।
(१०) भाषा विज्ञान, भाषा विज्ञान, भाषा विज्ञान।

हमें पूर्ण आशा है कि भारतीय उपर्युक्त पिशाचों को तर्पण प्रदान करके सर्वदा के लिये कीलित कर देंगे।

शुभ्र ज्ञान मण्डिता मातृभूमि नमस्ते।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

State Museum Library
7675
Lucknow

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय
प्रो० बी० एन० पुरी
संग्रह
लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधुनिक भाषा विज्ञान के लेखक वे कुपुत्र हैं जो वेदों के दृष्टा ऋषियों, दर्शनों के स्रष्टा मुनियों, व्याकरण शास्त्र के समीक्षकों, विचारकों, चिन्तकों तथा पुण्यशील पूर्वजों की अवहेलना और अपमान करते हुए शुभ्र-ज्ञान मण्डिता अपनी भारत जननी को, विदेशी षड्यन्त्रकारों के इङ्गित पर, स्वयं निःवस्त्र करते हैं। इसी प्रकार के दुर्बुद्धियों से दुखी और पीड़ित होकर किसी विद्वान ने बड़े ही मार्मिक तथा आहत हृदय से कहा है—

नोलूको पश्यति दिवा, नक्तं न च वायसः।
अपूर्वः कोऽपि दुर्बुद्धि नक्तं दिवा न पश्यति ॥

अर्थात् उलूक (उल्लू) दिन में नहीं देख पाता है और वायस (काक) रात्रि में नहीं देख सकता है, परन्तु दुर्बुद्धि व्यक्ति ऐसे अपूर्व होते हैं जो न दिन में देख पाते हैं और न रात्रि में ही देख सकते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधुनिक भाषा विज्ञान के लेखक वे कुपुत्र हैं जो वेदों के दृष्टा ऋषियों, दर्शनों के स्रष्टा मुनियों, व्याकरण शास्त्र के समीक्षकों, विचारकों, चिन्तकों तथा पुण्यशील पूर्वजों की अवहेलना और अपमान करते हुए शुभ्र-ज्ञान मण्डिता अपनी भारत जननी को, विदेशी षड्यन्त्रकारों के इङ्गित पर, स्वयं निःवस्त्र करते हैं। इसी प्रकार के दुर्बुद्धियों से दुखी और पीड़ित होकर किसी विद्वान ने बड़े ही मार्मिक तथा आहत हृदय से कहा है—

नोलूको पश्यति दिवा, नक्तं न च वायसः।
अपूर्वः कोऽपि दुर्बुद्धि नक्तं दिवा न पश्यति ॥

अर्थात् उलूक (उल्लू) दिन में नहीं देख पाता है और वायस (काक) रात्रि में नहीं देख सकता है, परन्तु दुर्बुद्धि व्यक्ति ऐसे अपूर्व होते हैं जो न दिन में देख पाते हैं और न रात्रि में ही देख सकते हैं।